भागवत-दर्शन

लेखक

डा० हरबंशलाल शर्मा,

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०

अध्यक्ष

संस्कृत-हिन्दी विभाग

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर

भागवत-दर्शन



लेखक

डा० हरबंशलाल शर्मा,

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट

अध्यक्ष

संस्कृत-हिन्दी विभाग

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ़

मूल्य—बारह रुपया

मुद्रक—चन्द्रप्रकाश शर्मा, एम० ए०
भारत प्रेस, अलीगढ़।

प्रास्तावकम्

धर्म और भक्ति की गम्भीर और सर्वग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करने वाला भागवत ग्रंथ निःसंदेह विशुद्ध रत्न-महोदधि है। इसकी व्याख्या ब्रह्म की भाँति ही असम्भव तथा दुष्कर है। जिस प्रकार ब्रह्म के सभी व्याख्यान 'नेति-नेति' में परिसमाप्त होते है, उसी प्रकार भागवत की भी कोई टीका या व्याख्या अपने मे पूर्ण नही कही जा सकती। भागवत का रस तो 'गूंगे का गुड़' है जिसका स्वाद आस्वाद्य है, कथ्य नही। भागवत के सम्बन्ध मे कुछ लिखने की चेष्टा को मै अपनी कुचेष्टा या धृष्टता ही मानता हूँ। यह मेरा कोरा बाल-चापल्य है। परन्तु भागवतकार ने दशम स्कन्ध मे स्वयं बाल-चापल्य को बाल-लीला के रूप मे प्रोत्साहित किया है, शायद इसी से मुझे भी भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा मिली। बात यह है कि मेरे स्वर्गीय पिताजी भागवत के बड़े प्रेमी थे तथा नित्य-प्रति भागवत का पाठ किया करते थे तथा मुझे भी भागवत की कथा सुनने और उसका पाठ करने के लिए विवश किया करते थे। बचपन मे अचेतावस्था के कारण मै भागवत के महत्व को तो नहीं समझता था, परन्तु मुझे यह लाभ अवश्य हुआ कि बाल्यकाल मे ही भागवत के कुछ संस्कार पड़ गए। सन् १९४० ई० मे जब मैंने मेरठ कालेज मे अध्यापन-कार्य प्रारम्भ किया तो सूरसागर के सन्दर्भ में कई बार श्रीमद्भागवत के अनुसरण की चर्चा सामने आयी। इस चर्चा से पुराने संस्कार उद्बुद्ध हो गए और मैंने श्रीमद्भागवत का अनुशीलन प्रारम्भ किया। स्वतंत्र अनुशीलन से इस ग्रन्थ के प्रति पूज्य-भाव जगने लगे। 'सूरसागर तथा श्रीमद्भागवत' विषय को लेकर एक शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किया। शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय ऐसा अनुभव हुआ कि इस रत्न महोदधि मे मेरा अभी चंचु-प्रवेश भी नहीं हो सका है। इसलिए महाकवि सूरदास पर डी० लिट्० की उपाधि के लिए इस ग्रन्थ का कुछ और व्यापक अध्ययन किया। भागवत की कई टीकाएँ देखीं तथा कितने ही संदर्भ-ग्रन्थों का अनुशीलन किया। जैसे-जैसे इस महासागर मे उतरने का प्रयास करता गया वैसे ही वैसे इसकी अतलस्पर्शिता का बोध होता गया। स्वाध्याय को नियमित करने की इच्छा ने भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा दी। उसी प्रेरणा का फल यह 'भागवत-दर्शन' है।

ग्रन्थ के लिखने मे मुझे अपने सहयोगियो तथा शोध-छात्रों से बड़ी सहायता मिली है। विभाग मे हमने यह निश्चय किया था कि ब्रज-क्षेत्र मे स्थित होने के कारण अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे मध्य-युगीन कृष्ण-भक्ति के सब पक्षो पर शोध-कार्य होना चाहिए। फलस्वरूप इस विषय पर कई शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किए गए। दो शोध-प्रबन्धों का साक्षात् सम्बन्ध श्रीमद्भागवत से रहा। एक 'श्री परमानन्द दास और उनका साहित्य' तथा दूसरा 'श्रीमद्भागवत का हिन्दी के मध्ययुगीन कृष्ण भक्तों पर प्रभाव'। पहला प्रबन्ध डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने प्रस्तुत किया तथा दूसरा डा० विश्वनाथ शुक्ल ने। इस कड़ी का एक निबन्ध आलवारो की भक्ति-भावना पर डा० मलिक मोहम्मद ने प्रस्तुत किया। अब तक केवल मध्ययुगीन भक्ति-साधना पर मेरे निर्देशन मे लगभग १२ शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा चुके हैं। मुझे यह जानकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि भारतीय भाषाओं की सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति साहित्य

श्रीमदभागवत से अनुप्राणित है भागवत दर्शन के तीन अध्याय इसी विषय पर लिखे गए है दक्षिण की भाषाओ के भागवतानुसारी साहित्य पर लिखने म मेरी श्री हनुमच्छास्त्री तथा डा० मलिक मोहम्मद ने विशेष सहायता की। इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना मे मुझे कई विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिनका मुझे निर्देशक तथा सहयोगी होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। मैं विशेषकर डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० मलिक मोहम्मद श्रीधर गोपाल कुण्टे तथा श्री हनुमच्छास्त्री के प्रति मगलकामनापुरस्सर आभार प्रकट करता हूँ। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार करने में मुझे डा० परमानन्द तथा श्री हीरावल्लभ गहतौडी ने विशेष सहायता प्रदान की, मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ।

ग्रन्थ का आधे से अधिक अंश ४—५ वर्ष पूर्व ही छप चुका था, परन्तु सन् १९५९ ई० से मैं विश्वविद्यालय के शासन-कार्यो में ऐसा व्यस्त हुआ कि मुझे कुछ भी लिखने का अवसर न मिल सका। मेरे अग्रज तुल्य प० बद्रीप्रसाद शर्मा यदि मेरे पीछे न पडते तो शायद यह ग्रन्थ पूर्ण नही हो पाता। यह उन्ही के सतत आग्रह का फल है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका। उनके इस स्नेहमय आग्रह और कभी-कभी दुराग्रह के लिए मै हृदय से आभारी हूँ। जल्दी के कारण ग्रन्थ मे अनेक छापे की अशुद्धियाँ रह गई है जो दूसरे सस्करण मे सुधार दी जावेगी। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे यह मेरा बाल-प्रयास है। मै विद्वानो के सुझावों की प्रतीक्षा करूँगा तथा भगवत्प्रसाद के रूप मे उन्हे ग्रहण कर भूल सुधार की चेष्टा करूँगा।

मधुमास पंचमी भौमवार
स० २०२० वि०

भागवतवशवद—
हरबशलाल शर्मा

भूमिका

निग फल ।
पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

श्रीमद्भागवत पुराण का आविर्भाव भारतीय वाङ्मय मे एक दैवी चमत्कार समझना चाहिए । भगवान् अर्थात् वाङ्मय के अवतार का नाम ही भागवत है । कदाचित् इसीलिए भागवत पुराण को 'ब्रह्मसम्मित' कहा गया है, 'इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्' । इस वचन में 'ब्रह्म सम्मितम्' का अर्थ श्रीमद्भागवत के विषय के अनुसार परब्रह्म स्वरूप ही ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि भागवतकार ने इस ग्रंथ को निगम रूप कल्पतरु का फल अथवा सार बताया है । स्कन्दपुराण के द्वितीय वैष्णवखण्डान्तर्गत श्रीमद्भागवत माहात्म्य के चतुर्थ अध्याय में इस भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भागवतः सदा ।
स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ।।

अर्थात् भगवद्रूप श्रीमद्भागवत का सच्चिदानन्द लक्षण मात्र एक ही स्वरूप है । महर्षि शुकदेव जी ने इस परब्रह्मस्वरूप को अमृतमय, रसमय तथा आस्वाद्य बना दिया है । सम्पूर्ण ग्रंथ मे भक्तिरस व्यंग्य है इसीलिए धर्म की रसात्मक अनुभूति जैसी इस ग्रंथ से सम्भव है, वैसी और किसी साधन से नही । अनुभूति व्यक्तिगत विषय है, उसे सामूहिक या सामाजिक रूप देना एक दुष्कर कार्य है । महर्षि वेदव्यास ने इस कठिन तथा गम्भीर कार्य का निर्वाह इस अपूर्व ग्रंथ की रचना से किया । विषय के गाम्भीर्य का अनुमान इसी उक्ति से लगाया जा सकता है, 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' । धर्म और भक्ति का वही सम्बन्ध है जो अध्यात्म-जगत् मे ब्रह्म और जीव का तथा भौतिक जगत् में ज्ञान और विज्ञान का है । इसलिए धर्म, परब्रह्म और सम्पूर्ण ज्ञान का प्रतीक है तथा भक्ति अखण्ड चेतना तथा सम्पूर्ण विज्ञान का मधुर रूप है । भागवतकार ने धर्म और भक्ति के लक्षणो मे इस बात को स्पष्ट कर दिया है । भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में धर्म का लक्षण इस प्रकार है—

'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।'

धर्म की यह व्याख्या सार्वभौम तथा सर्वजनीन है, इसमें साम्प्रदायिकता तथा सकीर्णता की गध भी नही है । इस लक्षण मे 'प्रोज्झितकैतव' तथा निर्मत्सर' ऐसे विशेषण है जो परम विशुद्ध मानवधर्म की ओर संकेत करते हैं । इस धर्म का लक्ष्य अर्थ या काम की प्राप्ति नही है बल्कि उस वास्तविक वस्तु की अनुभूति है जो तापत्रय का उन्मूलन करने वाली तथा परम कल्याण को देने वाली है । वह वस्तु ज्ञानगम्य या बुद्धिगम्य नहीं है, बल्कि हृदयगम्य है । श्रीमद्भागवत मे ब्रह्मज्ञान तथा आत्मसाक्षात्कार के लिए हृदय को ही प्रधानता मिली है । इसीलिए हम इसे अद्वैतपरक भक्ति ग्रंथ मानते हैं । इस ग्रंथ में सब प्रकार के कर्म ज्ञान तथा उपासना का बड़ी मधुरता के साथ विवेचन हुआ है । इसीलिए इसके सम्बन्ध में कहा गया है कि यह पद-पद पर स्वादु है तथा न-सुधा की सरिता है

यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।

भक्ति और धर्म का जैसा सुन्दर समन्वय श्रीमद्भागवत में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । भक्तियोग से ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है—

'वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्' ॥

धर्म मनुष्य का सामान्य आचरण है —जो कर्त्तव्य की ही कोटि में आता है । भक्ति उस आचरण को दिशा देती है । श्रीमद्भगवद्गीता में निष्कामकर्म का उपदेश है । वह निष्कामकर्म ही धर्म का शुद्ध और सात्विक रूप है । भागवतकार ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है । द्वितीय अध्याय में भागवतकार ने भक्ति और धर्म के सम्बन्ध को और भी स्पष्ट कर दिया है:—

'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति' ॥

अर्थात् मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जो परब्रह्म में निष्काम भक्तिभाव जगा सके । भक्ति का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए भागवतकार कहता है कि भक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे । इस प्रकार की निष्काम भक्ति के द्वारा ही परम आनन्द की उपलब्धि होती है । बात यह है कि मनुष्यमात्र का चरमलक्ष्य आनन्दोपलब्धि है । वह आनन्द आपेक्षिक तथा सीमित नहीं होना चाहिए । सांसारिक विषयों के आनन्द उस कोटि तक नहीं पहुँच पाते । इस प्रकार के आनन्द की उपलब्धि के लिए निष्कामकर्म अनिवार्य है तथा वे निष्काम कर्म ही धर्म के अन्तर्गत आते हैं । इसलिए यह निष्काम धर्म ही भक्ति है ।

'ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् । सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥'

धर्म ज्ञान है तथा भक्ति विज्ञान । यह सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान भागवत के निम्नलिखित चार श्लोकों में आगया है—

'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् । पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु । प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥

ये चार श्लोक 'चतुःश्लोकी भागवत' के नाम से प्रख्यात हैं । इनमें ब्रह्म की व्यापकता, अखण्डता, निर्लिप्तता तथा अनिर्वचनीयता की ओर संकेत किया गया है । 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि' दोनों श्रुति-वाक्यों का सार इन श्लोकों में आगया है । साथ ही इनमें माया के सत्त्व और असत्त्व का भी प्रतिपादन हुआ है । एक प्रकार से सभी दर्शन के सिद्धान्तों की संगति इन चार श्लोकों से लगायी जा सकती है । भागवत में इस प्रकार के कितने ही स्थल हैं जिनकी व्याख्या बुद्धि से भी सम्भव नहीं है शायद इसीलिए के सम्बन्ध

में कहा गया है। वतावधि स्वय भागवतकार ने द्वादशस्कन्ध में श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य निम्न शब्दो में बताया है—

सर्व वेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्। वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठ कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥

आगे वे कहते हैं—

"श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवाना प्रियं,
यस्मिन् पारमहस्यमेकममलं ज्ञान पर गीयते।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम् ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत तत्त्वज्ञान का एक अपूर्व ग्रन्थ है, इसीलिए इसे 'पारमहंसी संहिता' नाम से अभिहित किया गया है। इस संहिता में बारह स्कंध तथा १८,००० श्लोक हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में न तो श्रीमद्भागवत की टीका प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और न व्याख्या। इसमें केवल भागवत के महत्व पर विचार किया गया है और महत्वानुशीलन के अर्थ में ही इस ग्रन्थ का भागवत-दर्शन नामकरण किया है। सामान्य रूप से 'दर्शन' शब्द का प्रयोग एक रूढ अर्थ मे होने लगा है जिससे ब्रह्म, जीव और प्रकृति के विवेचन को ही ग्रहण किया जाता है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग इस रूढ़ अर्थ में नहीं हुआ है। ग्रन्थ बारह अध्यायों मे लिखा गया है तथा वैदिक वाङ्मय से लेकर मध्ययुगीन भारतीय भाषाओं के साहित्य तक का विवेचन श्रीमद्भागवत के सन्दर्भ से प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक 'भारतीय वाङ्मय की परम्परा' है। वास्तव में परम्पराओं का किसी भी राष्ट्र के जीवन मे बडा महत्त्व होता है। उन परम्पराओं की रक्षा कला और साहित्य के माध्यम से होती है। भारतीय वाङ्मय की परम्पराएँ अत्यन्त प्राचीन है तथा वेद भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। पाश्चात्य विद्वान् भारतीय परम्पराओं को काल्पनिक या अतिशयोक्ति पूर्ण मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का यह दृष्टिकोण एकांगी है क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय और परम्पराओ को समन्वित रूप में देखने का प्रयास करना चाहिए। यद्यपि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय साहित्य में इतिहास का अभाव मानते हैं परन्तु हमारा मत है कि इतिहास-पुराण भी भारतीय वाङ्मय का एक प्रधान अग रहा है। यह दूसरी बात है कि आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में जो इतिहास का लक्षण है उसकी कसौटी पर भारत के इतिहास ग्रन्थ ठीक न उतर सके। वैसे लगभग १६ प्रकार की इतिहास-लेखन प्रणालियाँ हमे भारतीय साहित्य में मिलती हैं। कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास की व्याख्या इस प्रकार की है। "पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रं चेतीतिहास"।" वैदिक साहित्य मे भी इतिहास और पुराण का साथ-साथ निर्देश मिलता है और परवर्ती साहित्य मे तो पुराण को 'पञ्चम वेद' ही कहा है।

भारतीय वाङ्मय में पुराण' शीर्षक द्वितीय अध्याय मे हमने पुराण शब्द के महत्त्व, पुराणों के सामान्य विषय तथा मुख्य-मुख्य पुराणो की चर्चा की है। पुराण शब्द के विविध विवेचनों से पता चलता है कि शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द का अभिधेयार्थ ही महत्त्वपूर्ण रहा है। कई कारणो से इसका अर्थापकर्ष हो गया और आज यह शब्द अंग्रेजी के 'माइथॉलोजी' का समानार्थक बन गया। पुराण के रूप और अर्थ मे चाहे जितना परिवर्तन हुआ हो यह एक तथ्य है कि पुराण का अस्तित्व वैदिककाल मे भी था। 'अथर्वसंहिता' के अनुसार ऋक साम छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ ही उत्पन्न हुए शतपथ ब्राह्मण

तथा बृहदारण्यक आदि कई उपनिषदो म भी पुराण शब्द का प्रयोग मिलता है हो सकता है क ल तर म पुराण का ऐतिहासिक पक्ष निबल पड गया हो अथवा इतिह स को पुराण से अलग ही एक अग माना जाने लगा हो। 'वायुपुराण म इतिहास और पुराण दोनों को ही वेदज्ञान मे सहायक बताया गया है—

'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृ ह्येत् ।'

सभी मुख्य पुराणों मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाए है और वशानुचरित को पुराणो का अभिन्न अंग माना है। यह वंशानुचरित इतिहास का ही विषय है। यह कहना बडा कठिन है कि पुराण संहिता का आदि रूप क्या था तथा उसका आदि प्रणेता कौन था ? हो सकता है कि यह सहिता भी ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो की भांति ऋषिप्रोक्त ही रही हो तथा द्वापर युग मे वेदव्यास जी ने अन्य भारतीय वाङ्मय के साथ पुराण सहिता का भी संपादन किया हो। 'विष्णुपुराण' मे इस विषय का एक सकेत भी मिलता है। शायद प्राचीन 'पुराण सहिता' के अठारह भाग रहे हों जिनके आधार पर कालान्तर मे अठारह पुराणो का निर्माण हुआ और उनके परिशिष्ट रूप में उपपुराण बने। पुराणों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सब पुराणों मे प्राय. एक से ही विषयो की पुनरावृत्ति की गयी है और किन्ही पुराणो के तो श्लोक भी ज्यो के त्यो मिल जाते है। परन्तु प्रत्येक पुराण का उद्देश्य पृथक् प्रतीत होता है और सम्भवत: इसीलिए प्रत्येक पुराण में कोई न कोई प्रसग विशेष रूप से आ गया है। धर्म के पुनरुत्थान युग मे जब साम्प्रदायिक प्रचार ही पुराणो का उद्देश्य हो गया तो उनमे परिवर्तन और परिवर्द्धन की कोई सीमा न रही। हिन्दू पुराणो के आधार पर अनेक बौद्ध और जैन पुराण भी निर्मित हुए तथा पुराण-रचना की यह प्रक्रिया १५ वी, १६ वी शताब्दी तक चलती रही। एक ही नाम क कई पुराणों की रचना भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे हुई। यह सब कुछ होते हुए भी पुराणों के ऐतिहासिक महत्व को कम नही किया जा सकता। सामान्य रूप से हिन्दू पुराणो की ब्राह्म, शैव, शाक्त और वैष्णव चार कोटियाँ है तथा सभी पुराणों में दो प्रकार की कथाएँ मिलती है।

(१) सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से कही गयी काल्पनिक कथाएँ अथवा अन्योक्ति या प्रतीक रूप में कथित कथाएँ।

(२) ऐतिहासिक आख्यान।

ऐतिहासिक आख्यानो की दो मुख्य परम्पराएँ हैं—ब्राह्मण परम्परा तथा क्षत्रिय परम्परा। पुराणों का काल-क्रम से वर्गीकरण एक दुष्कर कार्य है परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि पुराण साहित्य वशावलियो और परम्पराओं की एक निधि है. उन सबको सम्बद्ध करके भारत-वर्ष का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। धर्म प्रचारकों के हाथ में पडकर पुराणों का रूप बिलकुल ही बदल गया और उनका मूल उद्देश्य धर्म का व्यापक प्रचार ही बन गया।

धर्म प्रचार की दृष्टि से मध्ययुग मे भागवत धर्म को ही विशेष महत्त्व मिला तथा अधिकांश पुराणो मे भागवत धर्म की ही प्रतिष्ठा हुई। भागवत-धर्म वैष्णव धर्म का ही दूसरा नाम है जिसका मूल है, अहिंसा का भाव तथा जिसके अधिष्ठातृ-देव विष्णु भगवान् है भगवान् विष्णु तथा उसके अवतारों की चर्चा ही वैष्णव पुराणों का विषय रहा है भगवान् विष्णु के अवतारो में को सर्वोपरि माना गया है विभिन्न

के कारण मध्ययुग मे जो भक्ति आन्दोलन हुआ उसके फलस्वरूप भागवत धर्म और विष्णु के कृष्णावतार की ही विशेष प्रतिष्ठा हुई भागवत धर्म और भक्ति आन्दोलन विषय का विवेचन हमने इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे किया है।

वैष्णव धर्म के अनेक नामों मे 'भागवत' नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। भागवत-धर्म वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आर्य और निषाद संस्कृतियों का सुन्दर सुखद संगम है। श्रीमद्भगवद्गीता मे इसी धर्म का सार संगृहीत है। इस धर्म की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत-भू पर फहराती रही। इस धर्म के मूल स्तम्भ यादव अथवा सात्वत लोग थे जो राजनैतिक कारणों से शूरसेन प्रदेश छोड़कर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्रमहाभिषेक के प्रसंग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बताया गया है। सात्वतों के सम्पर्क से ही भागवत धर्म पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य का बहुत महत्त्व है तथा इसकी आज भी अनेक संहिताएँ प्राप्त होती है। इस मत का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के 'शांति पर्व' मे मिलता है। इस मत मे ज्ञान, योगचर्या आदि विषयो के साथ-साथ ब्रह्म, माया, जीव का भी विस्तृत विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो ही भाव इस मत मे स्वीकार किये गए है। अनेक आचार्यो ने अपने-अपने ढंग से इस मत की व्याख्या की और धर्म का एक परमबौद्धिक रूप प्रस्तुत किया। इसी बौद्धिक स्वरूप की प्रतिक्रिया मे भक्ति आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। धर्म मे रागात्मक तत्त्व का समावेश इस आन्दोलन की माँग थी। भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे केवल वैष्णव सम्प्रदाय ही नही थे, देश का सामान्य वातावरण तथा तज्जन्य अनेक धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ भी अपना काम कर रही थी। साम्प्रदायिक प्रचारको के अतिरिक्त एक ऐसा सन्तो का दल भी समूचे देश मे उठ खड़ा हुआ था जो हृदय की शुद्धि, आचरण की पवित्रता और ईश्वरीय प्रेम की विह्वलता पर बल देता हुआ सामान्य भाव-भक्ति के आधार पर जाति-पाँति के भेद से परे जनता की भाषा मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार कर रहा था। हेय का त्याग और आदेय का आदान इनकी सरल प्रकृति का प्रमाण है। वास्तव मे इस सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन के मूल मे प्रेम और प्रपत्ति की भावना है। इसीलिए वैष्णव सम्प्रदायों मे भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता गया और शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया। भागवत पुराण इसी प्रवृत्ति को रसात्मकता के साथ प्रतिपादित करने वाला एक अपूर्व ग्रन्थ है। भक्ति की अमृतमयी सरिता को सारे देश मे प्रवाहित करने वाला यही एकमात्र पुराण है। मध्ययुगीन भक्ति साहित्य और धार्मिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए भागवत का अनुशीलन परम आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय मे हमने भागवत के वर्ण्य-विषय स्वरूप-निर्धारण, उसकी प्राचीनता, विभिन्न टीकाएँ तथा रचनाविधान आदि पर विचार किया है। पाश्चात्य विद्वानो ने श्रीमद्भागवत को विभिन्न कालों की रचना बताया है और रास-लीला को तो वे १६ वी शताब्दी तक खीच लाये हैं। कुछ विद्वानो ने बोपदेव को जो यादवराज रामचन्द्र के मत्री हेमाद्रि के समकालीन थे श्रीमद्भागवत का रचयिता माना है, परन्तु यह मान्यता अनेक प्रमाणों से गलत सिद्ध हो चुकी है। इस पुराण की रचना ९ वीं शताब्दी से आगे किसी भी दशा में नहीं खींची जा सकती। भागवत पुराण निश्चित रूप से एक ही व्यक्ति की रचना है। यह दूसरी बात है कि इसके स्कन्ध एक क्रम से न लिखे गये हों यह बात इस ग्रन्थ की

भाषा और शैली से स्पष्ट हो जाती है। वर्ण्य विषय पर विचार करने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है क्योंकि इसमे एक निश्चित योजना के अनुसार भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे भागवतकार की समन्वय-प्रवणता स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न दार्शनिक मतों के अतिरिक्त एक ही दर्शन की विविध मान्यताओं का भी समन्वय भागवत मे हुआ है। एक यह भी बात लक्ष्य करने की है कि इस ग्रन्थ के रामायण, महाभारत के समान कई संस्करण प्राप्त नही है। सभी प्राप्त प्रतियो में इसका एकमात्र प्रतिष्ठित रूप ही मिलता है क्षेपक और पाठ-भेद भी नही के बराबर है। एक बात अवश्य विचारणीय है कि रचना विधान की दृष्टि मे भागवत के दो भाग है—एक, दशमस्कन्ध और दूसरा, अन्य स्कन्ध। दशम स्कन्ध धर्म का व्यावहारिक पक्ष है और शेष स्कन्ध धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन करते है। यह हो सकता है कि लेखक ने ग्रन्थ के सम्पादन के समय दोनों भागों का क्रम निर्धारित किया हो। श्रीमद्भागवत की भाषा पर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है कि यह एक ही कवि की रचना है। साथ ही इसकी समास-प्रधान संक्षिप्त शैली और आलंकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य-भाषा और शैली मे सरलता और स्पष्टता के स्थान पर आलंकारिक प्रयोग, प्रतीक-विधान और व्यंजना के गूढ़ साधनो को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। इसमे कोई संदेह नहीं कि इस ग्रन्थ की रचना दक्षिण भारत मे हुई क्योंकि इस ग्रन्थ के वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हैं। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा प्राप्त ज्ञात होता है।

कृष्ण और गोपियो के चरित्र-चित्रण मे भी भागवतकार ने एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया है। महाभारत, गीता तथा पुराण; कृष्णचरित्र के तीन चरण हैं। भागवत-पुराण मे इन तीनो चरणों का समन्वय हुआ है। महाभारत में श्रीकृष्ण का मानवीय रूप ही हमारे सामने उभर कर आया है और वहाँ हमें भगवान् के वीरत्व विधायक स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता यद्यपि महाभारत का ही एक भाग है फिर भी उसमे भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक अव्यक्त और अमृततत्व मानकर परमपुरुष कहा गया है जिसके दो स्वरूप है, व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी सगुण, सगुण-निर्गुण और निर्गुण तीन भेद है। कृष्ण उस परमपुरुष के ही अवतार हैं। श्रीमद्भागवत मे 'एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' कहकर कृष्ण को परमपुरुष ही बताया है। भागवत में गीता की भाँति ज्ञान, कर्म और उपासना का सामञ्जस्य कर पिण्ड, ब्रह्माण्ड के ज्ञान सहित आत्म-विद्या के गूढ़ तत्त्वो का विवेचन तो हुआ है परन्तु भक्ति को सर्वोपरि ठहराया है। इसीलिए गीता का परमपुरुष भागवत में रसिकेश्वर श्रीकृष्णरूप में चित्रित हुआ है। सिद्धान्त रूप से इस स्वरूप का निरूपण भागवत के गीतों मे हुआ है जिनमें भागवतकार का हृदय साक्षात्रूप से द्रवित हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतों में पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है। ये गीत हृदय के ऐसे स्वतःप्रवाही स्रोत हैं, जिनका अवरोध कवि नही कर सका है। वे भक्त की अन्तरात्मा की व्यथा और अन्तर्वेदना का साक्षात्रूप हैं तथा प्रेम, विरह की साक्षात् मूर्ति है। इस प्रेम तथा विरह को लीलाओं में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। बात यह है कि भागवतकार का उद्देश्य कृष्ण-चरित को चित्रित करना नहीं है बल्कि उसके द्वारा कृष्ण का परमपुरुषत्व सिद्ध करना है यह सिद्ध

बड़ी वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है। बाल लीलाएँ प्रेम को परिपक्व करने वाली हैं। वे केवल सान्त स्वरूपा हैं। आवरण अभी अवशिष्ट है, साध्य की प्राप्ति में पूर्ण समर्पण में आवरण-भंग अनिवार्य है। यह आवरण भंग ही चीर-हरण लीला है। साधक के लक्ष्य की पूर्ति रास-लीला में होती है जिसका पर्यवसान 'महारास' में होता है। भागवतकार ने इस प्रसंग में भौतिक, अभौतिक का; प्राकृत और अप्राकृत का तथा भक्त और इष्ट का पूर्ण तादात्म्य किया है। एक ओर शृङ्गार का नग्न चित्रण है तो दूसरी ओर भगवान् के दिव्य मंगलस्वरूप की झलक। एक प्रच्छन्न सखी का आयोजन भी सोद्देश्य है। इसी प्रच्छन्न सखी को राधारूप में स्वीकार किया गया है। रासलीला भगवान् के चिन्मयसंकल्प की चिन्मयी लीला है, भगवान् का दिव्य विहार है तथा काम पर विजय का साधन है। भ्रमर-गीत के द्वारा भागवतकार ने भक्ति और ज्ञान के सामञ्जस्य का व्यावहारिक पक्ष बड़ी सरसता और सुन्दरता से प्रतिपादित किया है। भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियों की आत्मा के रूप में स्थिर करना है। भागवत में गोपियों का वर्णन बड़े शास्त्रीय ढंग से हुआ है जिसके कारण उनके प्रेम की धाराओं में स्थान-स्थान पर बाँध से लगे प्रतीत होते हैं। श्रीमद्भागवत के कृष्ण और गोपियों का चित्रण हमने पंचम अध्याय में किया है। भागवत के इस चित्रण में यशोदा का पूर्ण व्यक्तित्व सामने नहीं आ सका। शायद इसीलिए परवर्ती भागवतानुसारी साहित्य में राधा और यशोदा कवियों के प्रमुख विषय रहे हैं।

श्रीमद्भागवत एक महापुराण है तथा इसका प्रधान उद्देश्य नैष्कर्म्य भक्ति का प्रतिपादन है। पुराण होने के कारण इस ग्रन्थ में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय सभी का विवेचन हुआ है। परन्तु ग्रन्थ का प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व का विवेचन ही है। आश्रयतत्त्व के संदर्भ में ही अन्य तत्त्वों का विश्लेषण हुआ है। यों तो भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में आश्रय का निरूपण किया गया है तथापि सगुण साकार रूप आश्रय का दशम स्कन्ध में तथा निर्गुण निराकार आश्रय का १२ वें स्कन्ध में विशेष निरूपण हुआ है। भागवत में ब्रह्म के विषय में तीन बातों को प्रधानता दी है—१—अधिष्ठानता, २—साक्षिता और ३—निरपेक्षिता। उस ब्रह्म के तीन रूप हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। बात यह है कि तत्त्वतः ब्रह्मसूत्र के ब्रह्म, गीता के पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण एक ही वस्तु है। इसका संकेत भागवत के प्रथम स्कन्ध में ही मिल जाता है—

> वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
> ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

ईश्वर, जीव, जगत् और माया सभी की विस्तृत व्याख्या भागवत में की गई है तथा आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद तीनों की ही संगति इस ग्रन्थ में मिल जाती है। भागवतकार का दृष्टिकोण सर्वत्र समन्वयपरक रहा है। किसी एक दर्शन के सिद्धान्तों का विवेचन भागवतकार का लक्ष्य नहीं है। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत से ब्रह्म, जीव और माया के विषय में निश्चित और सुनियोजित सिद्धान्तों का चयन एक दुस्तर कार्य है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहकर भागवतकार निर्गुण और सगुण के विरोध को बड़ी सफाई से बचा देता है। सगुण भगवान् की लीलाएँ भी अनन्त में क्रीड़ा (Paying in the Infinite

री सप्तमी च हि' श्रीमद्भागवत के दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करने का प्रयास हमने प्रस्तुत ग्रन्थ के षष्ठ अध्याय में किया है।

भागवत के आदि, मध्य और अन्त मे भक्ति के वैशिष्ट्य का ही प्रतिपादन हुआ है। भागवतकार का प्रयोजन भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना है। इसीलिए भागवतकार भक्ति की परिभाषा से ग्रन्थ का प्रारम्भ करता है और भक्त की प्रार्थना से ही समाप्त करता है। ग्रन्थ के बीच-बीच मे अनेक प्रकार से भक्ति का विवेचन हुआ है। इस विवेचन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त नैष्कर्म्य का आविष्कार किया गया है तथा भक्ति सहित ज्ञान का निरूपण हुआ है। भागवतकार की दृष्टि में ज्ञान और भक्ति में कोई तात्त्विक भेद नही है। भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति। जहाँ भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है वहाँ भक्ति का अर्थ है साधन भक्ति और जहाँ ज्ञान को भक्ति से श्रेष्ठ बताया है वहाँ ज्ञान का अर्थ है परोक्ष ज्ञान। पराभक्ति और परम ज्ञान दोनो एक ही वस्तु है तथा दोनो ही अन्तरग भाव है। भागवत में साधन और साध्य इन दो भक्ति-प्रकारो को स्वीकार किया गया है। साध्यभक्ति वास्तव मे निर्गुणा भक्ति है जिसे भागवतकार अहैतुकी और अप्रतिहता कहते हैं। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में उसे ही ईश्वर में परानुरक्ति कहा है तथा भक्तिरसामृतसिन्धुकार ने उसे पराभक्ति बताया है। वैधी और रागानुगा साधना-भक्ति के ही भेद है। इससे उच्चकोटि की भक्ति साध्यभक्ति है जिसे भाव-भक्ति या प्रेमाभक्ति कहते है। भागवत के ११ वें स्कन्ध मे इसी भाव-भक्ति को स्पष्ट किया गया है। गीताकार इसे अनन्याभक्ति कहते है। इस प्रेमलक्षणाभक्ति का जैसा सुन्दर तथा स्पष्ट विवेचन श्रीमद्भागवत मे हुआ है वैसा न तो गीता मे है तथा न ही किसी अन्य भक्ति सूत्र मे। वास्तव मे प्रेमलक्षणाभक्ति ही भागवत का विषय है जिसका मानवीय मनोविज्ञान के धरातल पर विवेचन हुआ है। इसीलिए वह शाश्वत तथा सार्वभौम है। भागवत की भक्ति का विवेचन ग्रन्थ के सप्तम अध्याय मे हुआ है।

श्रीमद्भागवत केवल दर्शन अथवा भक्ति का ही ग्रन्थ नही है, इसका साहित्यिक महत्त्व भी अवर्णनीय है। यह एक रस-प्रधान भक्ति-काव्य है। 'रसात्मक वाक्य काव्यम्' यह लक्षण ठीक श्रीमद्भागवत मे घटता है। अब तक श्रीमद्भागवत का अनुशीलन धर्म और भक्ति की दृष्टि से हुआ है, उसके साहित्यिक महत्त्व का मूल्याङ्कन अभी तक नही हो सका है। वास्तव मे गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की भाँति भागवत में भी पूर्ववर्ती काव्य शैलियो का समावेश है।

श्रीमद्भागवत मे जहाँ एक ओर कालिदासोत्तर अलकृत शैली को प्रश्रय मिला है, वहाँ दूसरी ओर इसमे संस्कृत गीतिशैली का विकसित रूप भी मिलता है। सचमुच, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो श्रीमद्भागवत में कई काव्य-शैलियों का समन्वय प्राप्त होता है। प्रधान-रूप से इसमे चार काव्य-शैलियाँ है :—

(१) अलकार प्रधान ऊहात्मक शैली।
(२) अलकार प्रधान भावात्मक शैली।
(३) प्रसादपूर्ण भावात्मक शैली।
तथा (४ शैली

यद्यपि श्रीमद्भागवत भक्ति और ज्ञान का प्रतिपादक एक आध्यात्मिक ग्रंथ है तथापि वर्ण्य-विषय की गरिमा, विस्तार और व्यापकता के कारण यह ग्रन्थ सहज ही एक श्रेष्ठ काव्य के गुणों से अलंकृत हो गया है। वास्तव में यह काव्य लौकिक काव्यों से उच्चतर धरातल पर पहुँचकर 'दिव्य-काव्य' के नाम से अभिहित होने का अधिकारी है। यद्यपि भागवत में भाषा की अपेक्षा भाव को ही प्रमुखता मिली है फिर भी भागवतकार के सहज पाण्डित्य से भाषा का सुन्दरतम और प्राणमय रूप कहीं भी मन्द नहीं हुआ है। जान-बूझकर भाषा को क्लिष्ट बनाने का प्रयत्न इस ग्रन्थ में कहीं नहीं मिलता। यहाँ तक कि भागवत के इतिवृत्त भी बड़े सरस और कवित्वमय हैं। साहित्यिक दृष्टि से भागवत के गीतों का अत्यन्त महत्त्व है। वर्णन की चित्रात्मकता, भावों की कोमल व्यंजना, अनुभावों के मनोरम विधान, घटनाओं की भावुकतापूर्ण कल्पना प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण, अलंकारों के संतुलित प्रयोग और भाषा के यथा प्रसंग संयोजन से भागवत में उन सब काव्योचित गुणों का समावेश हो गया है जो किसी भी रचना के लिए गौरव का विषय बनकर उसे स्थायी साहित्य की श्रेणी में रख सकते हैं। भागवत के साहित्यिक महत्त्व का प्रतिपादन हमने ग्रंथ के अष्टम अध्याय में किया है।

श्रीमद्भागवत में जिन व्यापक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है, उनको आंशिक रूप में ही विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों ने ग्रहण किया। सभी वैष्णव सम्प्रदायों के सिद्धान्त तथा आचरण पक्ष श्रीमद्भागवत में मिल जाते हैं। यही कारण है कि दक्षिण और उत्तर के सभी वैष्णव सम्प्रदायों के लिए श्रीमद्भागवत एक अपार प्रेरणा-स्रोत रहा है। सम्पूर्ण भागवत में भागवतकार बड़ी सुन्दरता से अद्वैत को मोड़ देकर चला गया है तथा भक्ति-साधना की सीधी रेखा में वे मोड़ बिल्कुल प्रतीत नहीं होते। भक्ति-प्रवर्तक आचार्यों में रामानुज आद्याचार्य माने जाते हैं। उनके सभी ग्रन्थों में भागवत की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उनके प्रशिष्य श्री वीर राघवाचार्य ने तो भागवत को पंचमवेद ही स्वीकार किया है तथा उसे ब्रह्म-सूत्रों की व्याख्या बताया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में भी श्रीमद्भागवत को मूलग्रन्थ मानकर प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, इस सम्प्रदाय में भागवत की कई टीकाएँ लिखी गयीं।

श्रीमद्भागवत के सांगोपाङ्ग रहस्यों का उद्घाटन सबसे पहले मध्वाचार्य ने अपने ग्रंथ 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय' में किया था। इसी सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज तीर्थ ने भागवत को लोकप्रिय ग्रन्थ बनाने का महनीय प्रयत्न किया था। माध्वमत की गौड़ीय शाखा चैतन्य मत में तो भागवत महापुराण की इतनी मान्यता है कि उसमें सब प्रकार की भक्ति के लिए इस ग्रन्थ को ही साधन ग्रन्थ ठहराया गया है। चैतन्यमत में जितने भी भक्ति ग्रंथ हैं, उन सबका आधार प्रायः श्रीमद्भागवत ही है। अनेक ग्रंथों में भागवत की बड़ी मार्मिक व्याख्या की गयी है। एक प्रकार से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रचार तथा विवेचन में माध्वमत तथा चैतन्य सम्प्रदाय अग्रणी है।

चैतन्य सम्प्रदाय की भाँति वल्लभ-सम्प्रदाय का भी एकमात्र प्रेरणा-स्रोत भागवत महापुराण रहा है। आचार्य वल्लभ ने सम्पूर्ण देश में भ्रमण करके भागवत का प्रचार किया तथा देश के ८४ प्रमुख स्थानों पर इस महापुराण का पारायण किया। महाप्रभु पहले आचार्य थे जिन्होंने इस महापुराण को 'व्यास की समाधि भाषा' कहा तथा इसे 'प्रस्थान चतुष्टय' की संज्ञा दी वल्लभाचार्य ने अपने तत्त्व-दीप-निबन्ध तथा सुबोधिनी आदि में भागवत की अनेक प्रकार से की है यहाँ तक कि अपने सम्प्रदाय अर्थात् पुष्टि सम्प्रदाय के

नामकरण की प्रेरणा भी उन्होंने श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त की। पुष्टि-सम्प्रदाय का सेवा मडान भी भागवतानुसारी ही सिद्ध किया गया तथा भागवतोक्त कृष्ण क श्रो के आधार पर अष्टछाप की स्थापना हुई। इस प्रकार सभी वैष्णव सम्प्रदायों ने भागवत पुराण को ही अपने सिद्धान्तों का मूल ग्रंथ माना है। ग्रंथ के नवम अध्याय मे हमने इस विषय पर विचार किया है।

वैष्णव आचार्यों का अधिकांश भक्ति-साहित्य संस्कृत भाषा मे है। देश की आधुनिक भाषाओं का विकास प्रायः ६ वी शताब्दी के अनन्तर हुआ तथा सत्रहवी शताब्दी तक उनके साहित्य का मूलस्वर भक्ति ही रहा। इसीलिए ६-७ शताब्दियो का यह साहित्य भक्ति-आन्दोलन का साहित्य कहा जाता है। इस साहित्य की अपनी एक विशेषता यह है कि यह परम्परागत भारतीय साधना से अविच्छिन्न नही है। इसकी मूल प्रेरणा को अभारतीय या विदेशी देन कहना तथ्यों की अवहेलना करना है। एक प्रकार से यह सम्पूर्ण साहित्य 'जन-साहित्य' कहा जा सकता है। इसके मूल तत्त्व हैं—प्रेम और शृङ्गार। भागवत की भक्ति की भी विशिष्टता प्रेम और शृङ्गार ही है। वास्तव में श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य ही प्रेम और शृङ्गार का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे है जो धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियों से अद्वितीय कहा जा सकता है। रूप-माधुरी तथा लीला-विहार इन दोनो तत्त्वो को रूप प्रदान करने वाले भागवतकार ने मानवमात्र का जो उपकार किया है वह विश्व की धर्म-साधना में अनुपम, अद्वितीय तथा बेजोड है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाओ का साहित्य श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। श्रीमद्भागवत की रचना से पहले भारतीय धर्म-साधना क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप में अनेक शाखाओं मे विभाजित थी। वैदिक-साधना, लोक-साधना न रहकर वर्ग विशेष की साधना बन चुकी थी। पौराणिको ने उसे लोक-साधना बनाने का प्रयास किया परन्तु वे सफल न हो सके। बौद्धधर्म तथा जैन धर्म भी वैदिक धर्म साधना की ही प्रतिक्रिया में खडे हुए थे, परन्तु कालान्तर में वे दोनो ही जनसाधारण से अलग पड़ गए। राजनैतिक परिस्थितियों के कारण अनेक अभारतीय धर्म-साधनाओं का भी देश में प्रवेश हो गया, जिसके कारण शास्त्रीय धर्म साधनों का रूप और भी सिमटता गया। धर्म जिसका आधार मनोविज्ञान था, कठोर मे कठोरतर बन्धनो को अपनाता गया। प्रेम और सौन्दर्य की ओर स्वभाव से आकृष्ट होने वाला मानव-मन धर्म के कठोर बन्धनो से वितृष्ण हो उठा तथा प्रेम और शृङ्गार की खोज मे भटकने लगा। सिद्धो तथा शाक्तो ने भटकते हुए मानव मन का लाभ तो उठाया, परन्तु वे उसे स्वस्थ न कर सके। तन्त्र साधनाओं से भी उसका समाधान नही हुआ। भागवतकार ने मानव-मन की इस स्थिति को पहिचान कर उसे सात्त्विक प्रेम की ओर मोड़ने का प्रयास किया। रसिकेश्वर कृष्ण को प्रेम का आश्रय बनाकर भारतीय साधना पद्धति मे भागवतकार ने प्रथमवार प्रेम के सात्त्विक रूप को प्रस्तुत किया। कृष्ण लीलाओं का लौकिक रूप पहले से प्रचलित था ही, भागवतकार ने उन्हें आमुष्मिकता प्रदान कर दी। इस प्रकार वैष्णव धर्म मे प्रेम और शृङ्गार का शास्त्रीय ढगसे समावेश सबसे पहले भागवतकार ने किया। लोकभाषाओं के सगुण भक्ति-साहित्य के साथ निर्गुण भक्ति-साहित्य मे भी हमे भागवत के प्रेमभाव की छाप मिलती है। उत्तर और दक्षिण की सभी भाषाओं में भागवत के अनुवाद हुए तथा भागवतानुसारी ग्रन्थ लिखे गए। यहाँ तक कि इस युग के संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्य को भी भागवत ने प्रभावित किया

जब हम भागवतानुसारी साहित्य की बात कहते है तो हमारा अभिप्राय यह नही है कि भागवत का अनुसरण करने वाले कवियो ने अपनी रचनाओ मे ज्यों का त्यों भागवत का अनुवाद कर दिया हो। इसका अभिप्राय: तो केवल इतना ही है कि भागवत के प्रभाव से कृष्ण-भक्ति साहित्य को एक विशेष दिशा मिली तथा भागवतोक्त सामान्य तथा विशिष्ट तत्वो का वैष्णव भक्ति-भावना में समावेश हुआ। वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से सम्पूर्ण देश में कृष्णभक्ति का प्रचार हुआ। सम्प्रदायों मे दीक्षित भक्तों के अतिरिक्त अन्य कवियो ने भी भक्ति-साहित्य की रचना की। भगवान् कृष्ण का लीला-क्षेत्र ब्रज होने के कारण ब्रजभाषा मे सबसे अधिक भागवतानुसारी साहित्य लिखा गया। निम्बार्क, सखी, राधावल्लभीय, चैतन्य तथा वल्लभ सभी सम्प्रदायो का विशाल भागवतानुसारी साहित्य आज हमे प्राप्त होता है। प्रत्येक सम्प्रदाय में अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए तथा उन्होंने अनुपम भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो को छोडकर अन्य सम्प्रदायों के प्रमुख भक्त-कवियों के ब्रजभाषा-साहित्य का निरूपण हमने ग्रंथ के दशम अध्याय मे किया है। कृष्ण की रूप-माधुरी और लीलाओ को लेकर इन कवियो ने अपनी अलौकिक कल्पना से अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। भक्ति के विभिन्न रूपों और तत्वों की विवेचन भी उनकी रचनाओ मे हुआ है। रचनाओं का मूलस्वर प्रेम और शृङ्गार ही रहा है। शायद इसीलिए इन सम्प्रदायो में युगल उपासना के लिए राधा को इतना महत्त्व दिया गया।

भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा में सबसे अधिक और प्राणवान् साहित्य की सर्जना वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने की। बात यह है कि वल्लभ सम्प्रदाय का धर्म-क्षेत्र और कार्य-क्षेत्र प्रधानरूप से ब्रज ही रहा। इस सम्प्रदाय के अधिकांश ब्रजभाषा कवियों की एक यही विशेषता थी कि उनकी मातृभाषा ब्रजभाषा थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप मिलता है तथा ब्रजक्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक परम्पराओं का भी उनमे यथोचित सन्निवेश है। पुष्टि सम्प्रदाय मे भगवान् की प्रत्येक लीला के लिए एक दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है तथा लीला के उपकरणों को नित्य-स्वरूप प्रदान किया है। कृष्ण की रूपमाधुरी और ब्रज के अलौकिक प्राकृतिक सौंदर्य मे वे उपकरण बड़े दिव्य और मनोहारी बन गये हैं। पुष्टि-सम्प्रदाय के कवियों ने उनका वर्णन बड़े कवित्वमय और आकर्षक ढग से किया है। एक-एक उपकरण को लेकर एक-एक खण्डकाव्य की रचना कर डाली है। पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना इस विशाल साहित्य की सर्जना का मूल कारण थी। भगवान् की आठ झाँकियो मे नियमित कीर्तन के लिए आठ सगीताचार्य कीर्तनकार तथा अनेक झालरिया नियुक्त किये गए। अष्टछाप के आठों कीर्तनकार ठाकुर जी के आठ सखाओ के रूप मे स्वीकृत हुए। साथ ही साथ आचार्य वल्लभ के सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने श्रीकृष्ण की उन सात दिव्य मूर्तियों को, जो उन्हे अपने पूज्य पिता से सप्तनिधि के रूप मे प्राप्त हुई थी अलग-अलग अपने सातो पुत्रो को दे दिया जिन्होने उन स्वरूपो की पृथक्-पृथक् सेवा प्रारम्भ की। इन्ही सात स्वरूपो के कारण पुष्टि-सम्प्रदाय मे सात गृह अथवा सप्तपीठ प्रतिष्ठित हुए। इनके माध्यम से पुष्टि सम्प्रदाय मे विशाल ब्रजभाषा साहित्य की सर्जना हुई। पुष्टि-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों का राधा-वर्णन भी एक अलग विशेषता है। ग्रन्थ के एकादश अध्याय मे हमने पुष्टि के अष्टछापी कवियो के साहित्य का ही विश्लेषण प्रस्तुत किया है

ब्रजभाषा के अतिरिक्त भारत की अन्य मध्ययुगीन भाषाओं का साहित्य भी भागवत से कम प्रभावित नहीं हुआ है। ग्रंथ के द्वादश अध्याय में इस विषय के प्रतिपादन के लिए हमने तेलुगु, तमिल मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, बंगला, असमिया, उड़िया तथा पंजाबी भाषाओं को लिया है। दक्षिण की भाषाओं के मध्ययुगीन-साहित्य में निश्चित रूप से भक्ति-भावना का वेग अधिक है और उनका साहित्य अपेक्षाकृत प्राचीन भी है। परिमाण की दृष्टि से तेलुगु का भक्ति-साहित्य बडा विशाल है तथा उसमें वैष्णव-काव्य की बड़ी समृद्ध धाराएँ हैं। राम और कृष्ण दोनों ही भगवत्स्वरूपों को लेकर तेलुगु में विपुल साहित्य की सर्जना हुई है। रामपरक ग्रन्थों में भी श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्वों का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। तेलुगु का कृष्ण-परक भक्ति-साहित्य तो एक प्रकार से भागवत साहित्य ही कहा जा सकता है। मडिकिसिंगन्न का भागवत दशमस्कन्ध का अनुवाद कदाचित् सर्वप्राचीन है। यह अनुवाद १४ वीं शताब्दी में हुआ था। इसी प्रकार बम्मेर पोतन्न की अमरकृति महाभागवत भी तेलुगु साहित्य का एक अत्यन्त प्रदीप्त रत्न है। इन दो प्रमुख कवियों के अतिरिक्त तेलुगु में कृष्णभक्ति साहित्य की रचना करने वाले उल्लेखनीय कवि हैं—अन्नमाचार्य, महाराजाधिराज श्रीकृष्णदेवराज, श्री तेनालि रामकृष्ण-कवि तथा त्यागराजु। तेलुगु में राधा-कृष्ण विषयक लोकसाहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है।

तेलुगु के पश्चात् दक्षिण की भाषाओं में तमिल का साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव में भागवतकार का 'द्रविड देश' से अभिप्राय 'तमिल देश' ही लगता है। तमिल का वैष्णव काव्य बहुत प्राचीन है। कहना न होगा कि प्रेमाभक्ति को रूप देने वाला तमिल का प्रबन्ध साहित्य ही था। तमिल साहित्य में आलवार संतों की भक्ति-भावपूर्ण उक्तियों का ही प्राचुर्य है। इन भक्तों के मधुमय रसायन से ही भक्ति का काया-कल्प हुआ था। आलवार भक्तों में १२ भक्त विशेष प्रसिद्ध है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन आलवार भक्तों ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा ग्रहण की परन्तु इतना निश्चित है कि उनके लीला-पद भागवत से बहुत साम्य रखते हैं। आलवार भक्तों ने भगवद्भक्ति का जो प्रवाह प्रवाहित किया वह सम्पूर्ण देश को सरस बनाता हुआ अक्षयरूप में बहता रहा। उसे सिद्धान्त और आचार के कूलों में बाँधकर प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीनाथ मुनि, यामुनाचार्य श्री रामानुज तथा वेदान्त देशिक आदि आचार्यों को है। आलवारों की कथाओं को लेकर अनन्ताचार्य ने संस्कृत में 'प्रपन्नामृत ग्रंथ' लिखा। 'दिव्य सूरि-चरितम्' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है। हमें तो ऐसा लगता है कि आलवार भक्तों के पदों से भागवतकार स्वयं बहुत प्रभावित हुए हैं। भागवत में आलवारों की भक्ति-भावना को ही शास्त्रीय रूप देने का प्रयास किया गया है।

मलयालय भाषा में भी भागवतानुसारी साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अनेक कवियों ने श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर लीला-नायक कृष्ण की लीलाओं को लेकर रसपूर्ण रचनाएँ मलयालम भाषा में प्रस्तुत की हैं। मलयालम में भागवत नाम की कई रचनाएँ प्राप्त होती है जो 'भागवत' के अक्षरशः अनुवाद तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु उनका क्रम तथा विषय विवेचन भागवत के अनुसार ही है अनेक रचनाएँ के आख्यानों पर आधारित होते हुए भी तथा मौलिक हैं में यह रचना-क्रम

चौदहवीं शताब्दी से ही प्राप्त होते हैं भक्त कवियों में एलुत्तच्छन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो मलयालम के सूर या तुलसी कहे जा सकते हैं एलुत्तच्छन रचित भागवतम् के पदों का गायन आज भी जनता में बड़े प्रेम-भाव से किया जाता है। इसी प्रकार 'पून्तानम् नपूतिरि, के पदों में भी भक्त-हृदय को अनायास ही आकृष्ट करने की सामर्थ्य निहित है। अठारहवीं शती के प्रारम्भ में 'कुंचन नप्यार' ने भागवतानुसारी विशाल साहित्य की सर्जना की। उन्होंने 'भागवतम् इरुपतिनालुवृत्तम्' नामक ग्रंथ में भागवत की कथावस्तु को चौबीस सर्गों और विभिन्न वृत्तों में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मलयालम के मध्ययुगीन-भक्ति-साहित्य में भागवत निरन्तर प्रेरणा-स्रोत रहा है।

कन्नड़ भाषा का मध्ययुगीन साहित्य भी अधिकांश में भागवत' से अनुप्राणित है। कन्नड़ के भागवत-साहित्य पर मध्वाचार्य के द्वैत-सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा है। मध्वमतावलम्बी भक्त-कवि, 'हरिदास, कहलाए जो संख्या में दो सौ के लगभग है। इनमें से अनेक ने भागवत के कथा-प्रसंगों को लेकर गेय पदों की रचना की जो संकीर्तन-पद्धति में है। इनके गेय पदों को गाकर आज भी भक्त-जन आत्म-विभोर हो जाते हैं। श्री प्रसन्नवेंकटदास ने तो भजनों के अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध का कन्नड़ भाषा में अनुवाद भी किया। इन हरिदास भक्तों के अतिरिक्त कन्नड में और भी अनेक वैष्णव-भक्त-कवि हुए हैं जिन्होंने भागवत को आधार मानकर रचनाएँ की हैं। इनमें रुद्रभट्ट, सोमनाथ और चौण्डरस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड़ भाषा में श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड़ भाषी जनता के बीच कृष्ण-भक्ति के प्रचार में इस ग्रन्थ का बड़ा योगदान रहा है। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण की जिन लीलाओं का गान किया है, उनका बड़ा भाव-पूर्ण वर्णन कन्नड के साहित्य में उनसे पहले ही हो चुका था।

मध्ययुग में महाराष्ट्र यद्यपि अनेक राजनैतिक क्रान्तियों का गढ रहा है तथा वहाँ का साहित्य सन्त-साहित्य नाम से ही अभिहित किया जाता है, फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि मराठी का भागवतानुसारी सगुण-भक्ति साहित्य बड़ा प्राचीन तथा प्राणवान् है। संत ज्ञानेश्वर से पहले ही श्रीकृष्णोपासना के एक नवीन मार्ग 'महानुभाव पंथ' का उदय हो चुका था। गीता तथा भागवत दोनों ही ग्रन्थों का इस पथ में बड़ा आदर है तथा दोनों के आधार पर मराठी में अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भागवत के आख्यानों के आधार पर अनेक रचनाओं के अतिरिक्त शक ११११६ का कवीश्वर भास्कर रचित 'एकादश स्कन्ध' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। संत शिरोमणि ज्ञानेश्वर ने ऐसे अनेक अभंग लिखे जिनमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है। इन अभंगों पर 'भागवत' का प्रभाव स्पष्ट है। बारकरी सम्प्रदाय में कृष्ण की उपासना 'विट्ठल' नाम से होती हैं। इस सम्प्रदाय में जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नहीं है। इसीलिये निम्न जातियों के भक्त कवियों ने भी इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर कृष्ण-लीला का गान किया। संत ज्ञानेश्वर और संत नामदेव दोनों की ही इस सम्प्रदाय में बड़ी मान्यता है। संत नामदेव भी श्रीकृष्ण रूप विट्ठल के अनन्य भक्त थे। उनके अभंगों में कृष्णलीला का वर्णन हुआ है। बारकरी सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों के अतिरिक्त मराठी में रचना करने वाले ऐसे अनेक भक्त कवि हुए हैं जिनका साहित्य भागवतानुसारी है शालिवाहन शक की १४ वीं शताब्दी के मध्य में बहिरा जातवेद नामक कवि ने श्री

के घ पर मराठी मे टीका लिखी थी जिसे भरवी टीका भी कहते है सत एकनाथ के पितामह भानुदास ने हिन्दी तथा मराठी दोनों भाषाओं में कृष्ण लीलाओ का बडे विस्तार से वर्णन किया है। १५ वी शताब्दी मे भागवत के सबसे बडे प्रेमी भक्त श्री एकनाथ जी हुए जिनकी रचनाओ का प्रारम्भ ही 'चतु श्लोकी भागवत की टीका' से हुआ। महाराष्ट्र मे भागवत धर्म का प्रचार करने वाले सतो और भक्तो मे एकनाथ अग्रगण्य है। उन्होंने श्रीमद्-भागवत के एकादश स्कन्ध पर एक विस्तृत टीका भी लिखी। श्रीमद्भागवत के आधार पर उन्होने और भी कई स्वतत्र रचनाएँ की तथा कृष्ण-भक्ति परक अनेक अभग तथा पद लिखे। श्री एकनाथ के पश्चात् तो श्रीमद्भागवत पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी। इन टीकाकारो मे उल्लेखनीय कवि है—शिवकल्याण, रमावल्लभ, जनीजनार्दन तथा लोलुम्बराज। १६ वी शताब्दी मे बारकरी सम्प्रदाय के आधार-स्तम्भ सत तुकाराम जी हुए जिनके सहस्त्रावधि अभग उपलब्ध है। उनके नाम सकीर्तन परक पदो मे श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, इसीलिए उन्हे 'भागवत मन्दिर का कलश' कहा जाता है। संत तुकाराम के अनन्तर मराठो मे भागवतानुसारी अनेक ग्रथ लिखे गए। शके १६५६ मे कृष्णदयार्णव कवि ने भागवत के दशमस्कन्ध पर टीका लिखी। श्रीधर स्वामी तथा मोरोपंत की अधिकाश रचनाओ का आधार भी श्रीमद्भागवत ही है। मराठी मे सम्पूर्ण भागवत पर टीका लिखने वालो मे ज्योतिपंत दादा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मराठी का लोक साहित्य भी बहुत कुछ भागवतानुसारी है तथा उसमे अनेक कृष्णलीलापरक लोकगीत तथा लावणियाँ मिलती हैं।

मध्ययुगीन भक्ति-भावना की दृष्टि से गुजराती भाषा का साहित्य भी प्रौढ़ तथा विशाल है। मध्ययुग में गुजराती भाषा के समर्थ कवि नरसिंह मेहता ने बालकृष्णलीलाओ के वर्णन मे अद्भुत कौशल दिखाया है। उनके अध्यात्मपरक पदों पर भी श्रीमद्भागवत का प्रभाव है। नरसिंह मेहता के उपरांत भागवत के आधार पर रचना करने वालो मे वीरसिंह, केशवदेव कायस्थ, भीम, जनार्दन त्रवाडी, नाकर आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय है। लक्ष्मीदास ने भागवत के आधार पर 'रास पञ्चाध्यायी' की रचना की तथा दशम स्कन्ध का गुजराती मे अनुवाद भी किया। सत्रहवी शताब्दी मे भागवतानुसारी रचना करने वालो मे प्रेमानन्द का नाम अग्रगण्य है। पौराणिक साहित्य लिखने वालो मे ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ कवि है। इन्हें 'गुजराती का सूरदास' कहा जाता है। विशुद्ध भागवत के आधार पर इनकी 'दशमस्कन्ध' नाम की अलग ही रचना है। अठारहवी शताब्दी मे तो गुजराती भाषा मे भागवतानुसारी और भी अधिक साहित्य लिखा गया।

राधा और कृष्ण के माध्यम से प्रेमलक्षणा-साहित्य की सर्जना का उद्गम बंगाल माना जाता है। बौद्धों की सहजयानी शाखा तथा वैष्णव के सहजिया सम्प्रदाय के गीतों मे हमें भक्ति का सहजरूप प्राप्त होता है। इसी सहजरूप की अभिव्यक्ति भागवतकार का चरम उद्देश्य है। बगला में विशुद्ध भागवतानुसारी साहित्य चैतन्य के प्रभाव से लिखा गया तथा लगभग दो सौ वर्षों तक यह परम्परा चलती रही। बंगला के भागवतानुसारी साहित्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें राधाको बड़ी मान्यता मिली है। राधा-कृष्ण के प्रेमगीत लिखने वाले बंगला में असख्य कवि हुए। १५ वी शताब्दी का मालाधर बसु का भागवतानुवाद प्रसिद्ध है। १६ वी शताब्दी मे माधवाचार्य, रघुनाथ पडित तथा श्यामदास आदि ने भी भागवत के अनुवाद प्रस्तुत किए

बगला की भाँति असमिया का मध्ययुगीन साहि य भी गीत साहित्य ही है बगला की राधाकृष्ण लीलाओ से असमिया का साहित्य बहुत प्रभावित है असमिया में वैष्णव धारा को विशेष बल देने वाले कवि शंकरदेव थे, जिन्होंने असम में भागवत-धर्म का प्रचार किया। भागवतानुसारी अनेक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होने भागवतपुराण का रूपान्तर भी असमिया मे प्रस्तुत किया, जो गेय पदों मे है। असमिया के शंकरदेव हिन्दी के सूरदास के समकक्ष कहे जा सकते है। असमिया के बड़गीत भागवत से बहुत अनुप्राणित हैं। उनमे बालकृष्ण की लीलाओं तथा यशोदा के वात्सल्य का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। शंकरदेव के अतिरिक्त माधवदेव भी असमिया के समर्थ लेखक हुए। अनंतकदली ने भी भागवत के कई स्कन्धो का असमिया मे अनुवाद किया। उनके अतिरिक्त असमिया मे भागवत का अनुवाद करने वाले भट्टदेव, केशवशरण, गोपालशरण आदि प्रसिद्ध है।

उडिया मे भक्ति-साहित्य की रचना करने वाले अनेक कवि हुए है। उड़िया साहित्य का मध्ययुग 'पंचसखा' नाम से प्रख्यात है। इन पंच सखाओ में से जगन्नाथदास ने 'उड़िया-भागवत' की रचना की जिसका आज भी उडीसा मे बड़ा मान है। १६ वी शताब्दी के अनन्तर उडिया का भक्ति-साहित्य चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित हुआ तथा उसमे भागवत के आधार पर अनेक ग्रंथों की रचना हुई।

पजाबी का अधिकाश वैष्णव-साहित्य हिन्दी मे ही लिखा गया। इसलिए पंजाबी की भागवतानुसारी रचनाएँ ब्रजभाषा के अन्तर्गत ही आती हैं। १७ वी और १६ वी शताब्दी के बीच पजाब में कृष्ण भक्ति के अनेक ग्रथ लिखे गए। भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर भी पंजाब में कई रचनाएँ हुई।

इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय धार्मिक-चेतना सदा सास्कृतिक तथा रागात्मक एकता की ओर अग्रसर रही है। भागवतपुराण उस चेतना का ठीक प्रतिनिधित्व करने वाला ग्रथ है। उसमें दर्शन तथा भक्ति के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वे समन्वयात्मक तथा मौलिक है। विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के आचारपक्षों का भी भागवत मे समावेश हुआ है तथा साथ ही उसमे सभी दर्शनों व धर्ममार्गों मे अविरोध स्थापित करने का सफल प्रयास किया गया है। भागवत पुराण मे सबसे पहले ब्रह्मसूत्रों की सामयिक तथा प्रामाणिक व्याख्या की गयी। प्रेम और शृङ्गार को सात्त्विक रूप प्रदान करने वाला यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। भागवत मे जिस धर्म का प्रतिपादन हुआ है उसे हम मानव-प्रेम का प्रतीक कह सकते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण-भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे एकमात्र भागवत पुराण ही वैष्णवो का प्रेरणा-स्रोत रहा है तथा देश की सभी भाषाओ में इतना विशाल भागवतानुसारी साहित्य प्राप्त होता है। १२ वी शताब्दी से आज तक श्रीमद्भागवत की लोकप्रियता बढती ही रही है। कहना न होगा कि भारत की सास्कृतिक तथा धार्मिक एकता मे जितना योगदान भागवतपुराण का है, उतना अन्य किसी एक ग्रन्थ का नही।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाग्भवेत्

प्रकाशकीय

हिन्दी और संस्कृत के यशस्वी लेखक डा० हरवंशलाल शर्मा की कृति 'भागवत-दर्शन' विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसमे आर्ष ग्रन्थ श्रीमद्भागवत के सूक्ष्म सिद्धान्तो का सरल तथा प्रसादमयी भाषा मे विवेचन करने का प्रयास किया गया है। अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के साथ कई आधुनिक भारतीय भाषाओं का ज्ञान होने के कारण लेखक ने भागवत-धर्म तथा भागवतानुसारी साहित्य का बड़े अधिकार के साथ सुन्दर विश्लेषण किया है। लेखक ने मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य का अनेक स्रोतों से अध्ययन किया है जिसका स्पष्ट आभास ग्रथ मे मिलता है। लेखक की मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य पर कई कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'सूर और उनका साहित्य' तथा 'बिहारी और उनका साहित्य' तो लेखक की ऐसी कृतियाँ हैं जिनका हिन्दी जगत् मे बड़ा मान है तथा जिनके अनेक संस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत कृति मे लेखक का दृष्टिकोण साहित्य के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक तथा रागात्मक एकता का वह समुज्ज्वल रूप प्रस्तुत करना रहा है जो भारतीय धर्म-साधना के मूल मे निहित है। देश की सभी भाषाओ के साहित्य मे यह रागात्मक एकता अनवच्छिन्न रूप में अनुस्यूत है। इस तथ्य को व्यक्त करने का इस ग्रंथ के द्वारा शायद पहला ही प्रयत्न किया गया है।

लगभग सभी वैष्णव-सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की मान्यता है तथा इस पर अनेक साम्प्रदायिक टीकाएँ तथा भाष्य भी हुए हैं, परन्तु इस ग्रन्थ में लेखक का दृष्टिकोण सर्वथा स्वतन्त्र तथा सम्प्रदाय-निरपेक्ष रहा है। ग्रन्थ में साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का ओर सकेत भर कर दिया है, जिससे पाठको को भागवत का अध्ययन व अनुशीलन स्वतन्त्र रूप से करने का अवसर मिल सके। वास्तव मे ग्रन्थ का प्रणयन विद्यार्थियों तथा जिज्ञासुओं को दृष्टि मे रखकर किया गया है। स्नातकोत्तर कक्षाओं के हिन्दी के विद्यार्थियों के सामने मध्य-युगीन भक्ति साहित्य सम्बन्धी ऐसी अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं, जिनके उचित समाधान के बिना साहित्य-महोदधि में पैठ सम्भव नही होता। ऐसे छात्रो के लिए यह ग्रन्थ निस्सन्देह उपादेय सिद्ध होगा। साथ ही ग्रन्थ का एक प्रयोजन यह भी है कि आधुनिक भारतीय भाषाओ के विद्यार्थियो मे अपनी-अपनी भाषा के साहित्य के साथ अन्य भाषाओं के सम-सामयिक साहित्य को पढ़ने की आवश्यकता का अनुभव तथा रुचि हो। लेखक ने अपने दीर्घ-अध्यापन-काल में इस बात का स्वयं अनुभव किया है। हमे आशा है कि भागवतदर्शन हिन्दी के विद्यार्थियो तथा धर्म-जिज्ञासुओ का कुछ पथ-प्रदर्शन अवश्य करेगा।

—प्रकाशक

समर्पण

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

दिवङ्गत देवोपम श्रद्धेय बापू जी को—

विषय-सूची

भारतीय वाङ्मय की परम्परा

किसी भी राष्ट्र के जीवन में परम्पराओं का बड़ा महत्त्व है। परम्पराएँ सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन की मूल चेतना होती है, और वे ही राष्ट्र-जीवन के मूलभूत स्तम्भ कहे जा सकते है। सब प्रकार की परम्पराओं को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन कला है। साहित्य भी कला का ही एक रूप है और सामूहिक साहित्य का नाम वाङ्मय है जो सम्पूर्ण ज्ञान राशि की अभिव्यक्ति है। भारतीय परम्पराओं की प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी को विरोध नही है। श्री रामदास गोड अपने 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में इस परम्परा के विषय मे इस प्रकार लिखते है, "भारत की परम्परा इतनी प्राचीन बतायी जाती है कि यदि उस काल से लेकर आज तक का इतिहास वर्तमान होता और अत्यन्त संक्षेप से लिखा जाता और सौ-सौ वर्ष के लिये केवल एक-एक पृष्ठ लिखा जाता तो एक करोड़ ९६ लाख ८६ हजार ४३१ पृष्ठ होते और एक-एक हजार पृष्ठो की एक-एक जिल्द होती, तो १९ हजार ६०८ मोटी-मोटी जिल्दें होती।"[1] भारतीय परम्पराओं के विषय में यह एक दृष्टिकोण है। पाश्चात्य दृष्टिकोण तो दूसरा ही है और भारतीय वाङ्मय की तिथि और क्रम के निर्धारण मे अभी तक इतना गहरा मतभेद है कि विभिन्न मतो के अनुसार तिथियों और वर्षों के अन्तर की कल्पना भी दुरारूढ-सी लगती है। पाश्चात्य विद्वान् भारतीय वाङ्मय की परम्परा को दस हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नही मानते और न ही वेदो की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ मे मानते है। भारतीय वाङ्मय मे वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। वेद वास्तव में संसार भर मे सर्व प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ हैं। पाश्चात्य विद्वान् तो वेदों का रचनाकाल ईसा से ७-८ सहस्र वर्ष पूर्व से पहले मानने को तैयार नही है परन्तु वेदो के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनकी उत्पत्ति सृष्टि के साथ ही साथ सिद्ध होती है।

ऋग्वेद में लिखा है—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छंदांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

ऋ० म० १० सू० ९० म० ७

यही मन्त्र यजुर्वेद के ३१ वे अध्याय मे भी आया है। अथर्ववेद के दशम काण्ड के २३ वे प्रपाठक के चौथे अनुवाक् का दूसरा मन्त्र यह है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसोमुखम्॥

इस प्रकार वेदों के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनकी उत्पत्ति परमपुरुष यज्ञ भगवान् से ठहरती है। ज्योतिषियों ने सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर गणना भी की है। उस गणना के अनुसार आज तक (सं० २०१५) एक अरब पिचानवे करोड़ अट्ठावन लाख पिचासी हजार

[1] हिन्दुत्व पृष्ठ १२

उनतीस वर्षों के लगभग होते है इस गणना का आधार वैज्ञानिक है और नक्षत्रों की गति में उसकी सङ्गति भी लगाई गई है पाश्चात्य विद्वानों की वैज्ञानिक प्रक्रिया की परख से तो यह गणना बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण है। वास्तव मे प्राचीन भारतीय साहित्य का आधार परम्पराएं हैं। ये परम्पराएं दीर्घकाल से चली आ रही है। यहाँ की परम्पराएँ अन्य देशों की परम्पराओं से बिल्कुल भिन्न है। गणना की भी यह अपनी एक परम्परा है, जो प्रायः मन्वन्तर से चलती है। ये परम्पराएँ किसी न किसी रूप मे भारतीय वाङ्मय के प्रत्येक अङ्ग मे मिलती है। यदि इन परम्पराओं के आधार पर आज प्राचीन भारत का इतिहास लिखा जाय तो उसका दूसरा ही रूप होगा। हो सकता है, नये मानदण्डो के द्वारा परीक्षण करने पर भारतीय वाङ्मय की तिथियों मे घटा बढी हो जाय। परन्तु यह विषय अवश्य गवेषणीय है। पाश्चात्य विद्वान् हमारी परम्पराओं को काल्पनिक या अतिशयोक्तिपूर्ण कहकर समाधान करते रहे है और दुर्भाग्यवश हमारे भारतीय विद्वान् भी उन्ही के चरण-चिह्नो पर चलकर अपना सौभाग्य मानते रहे है। इन परम्पराओ मे ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि अनेक प्रकार की परम्पराएं है। कुछ पाश्चात्य विद्वानो के मत नीचे उद्धृत करते है। मैक्डॉलन लिखते है—

"History is the one weak spot in Indian literature. It is in fact nonexistent The total lack of Historical sense is so characteristic that the whole course of Sanskrit Literature is darkened by the shadow of this defect, suffering as it does from an entire absense of exact chronology."[१]

अर्थात् भारतीय साहित्य मे ऐतिहासिकता का अभाव है। वास्तव में इसका अस्तित्व है ही नही, और ऐसा यह दोष है, जिसके कारण सारा ही भारतीय साहित्य धूमिल है और इसमे पूर्ण रूप से ठीक-ठीक तिथि-विवरण कही नही है।

कीथ लिखते है—

"To the old Complaint that India has no historians and no historical sense, it has recently been objected doubtless with a major of truth that there is certain amount of writing a number of facts attesting a degree of sense of history. In view of the antiquity and the developed character of Indian Civilization, it would indeed be ridiculous to expect to find India destitute of Historical sense. But what is really essential is the fact that despite of abundance of its literature, history is so miserably represented and that in the whole of the great period of the Sanskrit literature there is not one writer who can be seriously regarded as a critical historian "

कीथ महोदय अपने इस कथन मे यद्यपि यह स्वीकार करते हैं कि भारतीय वाङ्मय मे ऐतिहासिकता के अभाव का दोषारोपण पूर्णतया सत्य नही है, भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विकसित रूप और उसकी प्राचीनता के आधार पर उसमे ऐतिहासिकता न मानना

१ मैक्डानल संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ १०

2 History of Sanskr t l teratu e by Ke th

वे समझते हैं परन्तु उनका कहना है कि भारतीय विशद साहित्य मे ऐतिहासिकता को यथायोग्य स्थान नही मिल सका है और सारे ही साहित्य में एक भी अच्छा इतिहासकार नही हुआ है। ह्विटने लिखा है:—

"All dates given in Indian Literary history are pins set up to be bowled down again."

अर्थात् भारतीय साहित्य के इतिहास मे सारा तिथि-निर्धारण बहुत शिथिल है।

आधुनिक आलोचक की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानो के इन कथनो मे बहुत कुछ सार दीख पड़ता है क्योंकि भारतीय वाड्मय मे इतिहास को आधुनिक ढग से कभी नही लिखा गया। परम्पराएँ ही इतिहास का निर्वाह करती रही हैं। पार्जिटर ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"Tradition therefore becomes all important It is the only resource, since historical works are wanting, and is not an untrustworthy guide In ancient times men knew perfectly well the difference between truth and falsehood as abundant proverbs and sayings show. It was natural therefore that they should discriminate what was true and preserve it, and historical tradition must be considered in this light [1]"

ये परम्पराएँ सारे भारतीय वाड्मय मे बिखरी पडी है। जो ग्रन्थ धर्मप्रधान हैं, उनमे सिद्धान्तवाद की अपेक्षा अर्थवाद का प्राधान्य है और ऐतिहासिकता की उपेक्षा है। परन्तु प्राचीन भारत के इतिहास की दृष्टि से सारा ही साहित्य और परम्पराएँ समन्वित रूप से देखे जाने चाहिएँ। इस सम्बन्ध मे पार्जिटर लिखते है—

"Hitherto opinions about ancient India have been based on a study of the Veda and Vedic literature without much regard for historical traditions outside that. Historical traditions yield very different conclusions to make the former the chief and authoritative basis of historical reconstruction, is much the same as to write European History mainly from theological works—an undertaking that would not receive a moment's, acceptance.' [2]

अर्थात् प्राचीन भारत के सम्बन्ध मे जो मत अभी तक निर्धारित किये गये हैं, उनका आधार वेद अथवा वैदिक साहित्य रहा है। अन्य ऐतिहासिक परम्पराओ की उनमें उपेक्षा की गई है। परन्तु केवल वैदिक साहित्य के आधार पर भारत के इतिहास की रचना ऐसी ही है, जैसे यूरोप के इतिहास को धार्मिक ग्रन्थो के आधार पर लिखना। इस दृष्टि से पुराणो का अपना अलग महत्व है। पुराणों की प्राचीनता का विवेचन करने से पहले हम प्रसङ्ग वश भारतीय वाड्मय का कुछ विवरण प्रस्तुत करते है।

---

1 Ancient Indian Historical Tradition by F E Pargiter, P. 3.

3 F L Pa g ter An ent Indian Historical Trad t on.

वैदिक साहित्य केवल चारो वेदो के मन्त्रो मे ही सीमित नही समझना चाहिए इन चारों वेदों के अतिरिक्त इनका पूरा साहित्य भी है, जिसमे वेद-मन्त्रो की व्याख्या और विस्तार किया गया है। वेदो मे मुख्य रूप से तीन विषयो का विवेचन है—कर्मकाण्ड, ज्ञान-काण्ड और उपासनाकाण्ड। प्रत्येक वेद इन तीनो काण्डो मे विभक्त समझा जाता है और प्रत्येक मन्त्र का विषय इन काण्डो मे से कोई न कोई है। ये चारो वेद 'संहिता' नाम से प्रचलित हुए। इनका पूरक साहित्य ब्राह्मण-ग्रन्थो और उपनिषदो के नाम से प्रख्यात हुआ। प्रत्येक वेद का अपना अलग पूरक साहित्य है और अपने अलग-अलग ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषद् हैं। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषद् हैं। ऋग्वेद के ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं—ऐतरेय और शाखायन, शाखायन का दूसरा नाम कौशीतकी ब्राह्मण भी है। इन दोनो प्रकार के ब्राह्मण-ग्रन्थो मे बहुत से ऐतिहासिक और भौगोलिक विवरण, आख्यान, गाथा और कारिका है। इन दोनो ब्राह्मण-ग्रन्थो के आरण्यक ग्रन्थ भी है, जिनमे ऋषियो की अनुभूतियो का वर्णन मिलता है। इन ग्रन्थो मे प्राय उपनिषदो के ही अश है। ऐतरेय आरण्यक के आजकल पाँच ग्रन्थ पाये जाते है, जिनमे से कुछ ऐतरेय-उपनिषद् नाम से विख्यात हैं। कौशीतकी आरण्यक के तीन खण्ड है, जिनमे से एक खण्ड 'कौशीतकी उपनिषद्' कहलाता है। इन ब्राह्मण ग्रन्थो को हम ऋग्वेद की प्रथम शाखा कह सकते है। दूसरी शाखा वाष्कल और मैत्रायणी उपनिषदो के रूप मे हैं और तीसरी शाखा सूत्रो के रूप मे। इनमे मे कुछ श्रौत सूत्र है, जिन्हे कल्पसूत्र भी कहते है और कुछ गृह्य सूत्र है तथा एक प्रातिशाख्य सूत्र है। ये सूत्र प्राय. अलग-अलग ऋषियो के नाम से प्रचलित है—जैसे, आश्वलायन शाखायन, जैमिनीय वैशम्पायन आदि। इनके अतिरिक्त ऋक्संहिता की कुछ अनुक्रमणिकाएं भी है, जिनमे छन्द, देवता और ऋषियो का विवेचन किया गया है।

यजुर्वेद की बहुत-सी शाखाएँ प्रचलित है जिनमे से ८६ शाखाएँ विशेष प्रसिद्ध है। यजुर्वेद दो नामो से प्रचलित है, जो क्रम से कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद कहे जाते है। शुक्ल यजुर्वेद मे वाजसनेयी संहिताएं आती है और कृष्ण यजुर्वेद मे तैत्तिरीय। दोनो संहिताओं के विषय प्राय: एक ही है। यजुर्वेद की एक मैत्रायणी शाखा भी है। यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ प्राय: शाखाओ मे मिलते-जुलते है। तैत्तिरीय ब्राह्मण यजुर्वेद का प्रसिद्ध ब्राह्मण है। तैत्तिरीय आरण्यक के कुछ भाग तैत्तिरीय उपनिषद् के नाम से प्रचलित है। तैत्तिरीय आरण्यक मे अनेक विषयो का समावेश है। यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले सूत्रो की संख्या बहुत है, जिनमे श्रौतसूत्र भी हैं और गृह्यसूत्र भी। कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के शुल्वसूत्र और धर्मसूत्र है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के ब्राह्मणो मे शतपथ ब्राह्मण बहुत प्रसिद्ध है। यह ब्राह्मण बडा महत्वपूर्ण और विशालकाय ग्रन्थ रहा होगा। इसके कुछ अध्याय बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। यह अभी तक पूरा ग्रन्थ नही मिल सका है। इसमें बहुत-सी कथाएँ और आख्यान है। यजुर्वेद के प्रातिशाख्य सूत्र और अनुक्रमणी भी मिलती है।

सामवेद भी कई शाखाओ मे विभक्त है और प्रत्येक शाखा के श्रौत, गृह्यसूत्र और प्रातिशाख्य भिन्न-भिन्न हैं। सामवेद की ऋचाएं 'सामगीति' कही जाती है और गाने की दृष्टि से इसके चार भाग है—गेय, आरण्य, ऊह और ऊह्य। सामवेद के कई ब्राह्मण ग्रन्थ है, जिनमें ताण्ड्य महाब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान, आर्षेय ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण और मन्त्र-ब्राह्मण विशेष प्रसिद्ध हैं वास्तव म ये नाम नहीं हैं सामवेदीय

उपनिषद् ग्रन्थो मे छान्दोग्योपनिषद् और केनोपनिषद् प्रसिद्ध हैं। यह छान्दोग्योपनिषद् छान्दोग्य ब्राह्मण का ही अंश है। सामवेद के सूत्र-ग्रन्थो की सख्या बहुत है, जिनमें श्रौत और गृह्य दोनो ही प्रकार के है। इन सूत्रो के अतिरिक्त सामवेद के कई प्रकार के पद्धति-ग्रन्थ भी है और परिशिष्ट ग्रन्थ भी कई हैं।

अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थो मे गोपथ ब्राह्मण विशेष प्रसिद्ध है। इसी के आधार पर कुछ सूत्र-ग्रन्थ भी बने, जिनमें अथर्ववेद के विषयो का प्रति-पादन किया गया है। इनमे पाँच विशेष रूप से उल्लेखनीय है—कौशिकसूत्र, वैतान सूत्र, नक्षत्र कल्पसूत्र और शान्ति कल्पसूत्र। इन सूत्रो मे राज्याभिषेक तथा राजधर्म आदि का विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा गया है और इसीलिये इस वेद के उपनिषदो की सख्या बहुत है। विभिन्न आचार्यो ने इस वेद के विषय में अलग-अलग मत का प्रतिपादन किया है। प्रधान उप-निषद् ये है—

मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न, नृसिंहतापनी और मुक्तिकोपनिषद्। इनके अतिरिक्त दो सौ से अधिक अथर्ववेद के उपनिषद् और बताये जाते है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अन्तर्गत संहिताएं, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद् और सूत्र ग्रन्थ आते है। इनके अतिरिक्त वेद के उपवेद और अङ्ग-उपाङ्ग भी है। इन सब ग्रन्थो को मिलाकर वैदिक साहित्य बड़ा विशाल है। यहाँ हम वेद के उपवेद और अङ्गोपाङ्गों का भी सक्षेप मे परिचय प्रस्तुत करते है। वेद के चार उपवेद है। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र। आयुर्वेद के ग्रन्थों में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना है। वेद के अग ६ माने जाते है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। इनमे शिक्षा को नासिका, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को कान, व्याकरण को मुख, कल्प को हाथ और छन्दो को पाँव माना है। सहिताओ मे इन सब अङ्गो के सकेत मिलते है और वास्तव मे वेदो के यथार्थज्ञान के लिये इन उपवेदो और अङ्गो का अध्ययन बड़ा आवश्यक है।

उपवेद अब पूर्ण रूप मे प्राप्य नही है। या तो अन्य ग्रन्थो मे उनके सकेतमात्र है या उनके कुछ भाग कुछ पण्डितों को कण्ठाग्र है। यजुर्वेद के उपवेद धनुर्वेद के चार पाद हैं और उसके रचयिता विश्वामित्र बताये जाते है। इस उपवेद में आयुधों की विस्तृत चर्चा है। वैशम्पायन का भी एक धनुर्वेद प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार मे न आने के कारण धनुर्वेद लुप्त हो गया। सामवेद का उपवेद गाधर्ववेद भी अब नही मिलता है। उसके विषय का विवेचन करने वाले कुछ ग्रन्थ अवश्य प्राप्य है। गान-विद्या का सर्वाङ्गीण विवेचन गान्धर्व वेद मे हुआ है। गान-विद्या की परम्परा किसी न किसी रूप मे अक्षुण्ण रही है, इसलिये गान्धर्ववेद के विषयो पर हमे अनेक ग्रन्थ मिलते है। आयुर्वेद के अन्तर्गत आठ अगो का विवेचन है और कहा जाता है कि ब्रह्मा ने आयुर्वेद को आठ अगो मे विभाजित किया था जो ये हैं क भूत विद्यातन्त्र कौमारभृत्यतन्त्र अगद तन्त्र तन्त्र और तन्त्र

अर्थवेद या अर्थशास्त्र का ऐसा कोई उल्लेखनीय प्राचीन ग्रन्थ नहीं मिलता, जिसका सम्बन्ध शुद्धवैदिक साहित्य से हो। हाँ कुछ पण्डितो को इस वेद के कुछ अंश अवश्य कण्ठाग्र है। नि सन्देह अर्थशास्त्र बड़ा महत्वपूर्ण उपादेय उपवेद रहा होगा। इसमे समाजशास्त्र, दण्डनीति और सम्पत्ति शास्त्र तीनों का समावेश है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्मृति ग्रन्थो का आधार अर्थशास्त्र का अंग समाजशास्त्र रहा होगा। स्मृतियो की भाँति दण्डनीति और सम्पत्तिशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ अवश्य प्राप्य है—जैसे नीतिप्रभा, काश्यपीय दण्डनीति, कौटल्य अर्थशास्त्र आदि।

शिक्षा, व्याकरण आदि जो वेदाङ्ग है, उनके विषय के भी प्राचीन ग्रन्थ अब उपलब्ध नही। शिक्षा एक महत्वपूर्ण वेदाङ्ग है क्योकि उसमे उच्चारण सम्बन्धी नियम बताये जाते है। वैदिक मन्त्रो के उच्चारण तथा ध्वनिविज्ञान सम्बन्धी ग्रथ प्रातिशाख्य कहलाते थे और और अवश्य ही चारो वेदो से सम्बन्ध रखने वाले प्रातिशाख्य ग्रथो की रचना हुई होगी किन्तु अब इन वेदो की कुछ शाखाओ के प्रातिशाख्य ही उपलब्ध है जैसे—ऋग्वेद की शाकल शाखा का ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का तैत्तिरीय प्रातिशाख्य तथा वाजसनेयी शाखा का वाजसनेय प्रातिशाख्य। सामवेद की माध्यन्दिनी शाखा का साम प्रातिशाख्य और अथर्ववेद का अथर्वप्रातिशाख्य। इन प्रातिशाख्यो मे शिक्षा का विषय ही प्रधान है तथा वर्ण, स्वर, मात्रा और उच्चारण आदि पर विचार किया गया है। यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण रहा होगा। इस विषय मे एक उक्ति प्रचलित है—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।

अर्थात् स्वर अथवा वर्ण के उच्चारण मे दूषित शब्द वास्तविक अर्थ का द्योतक नही होता। ऐसा दूषित वाक्य वज्र के सदृश यजमान को ही नष्ट कर देता है, जैसे इन्द्र शत्रु शब्द-स्वर के दोष से यजमान अर्थात् वृत्र को ही मारने वाला हुआ। प्राचीन शिक्षा-ग्रन्थो मे शौनकीय शिक्षा अधिक प्रसिद्ध है क्योकि उसमे वैज्ञानिक ढग से वर्ण, स्वर, मात्रा आदि पर विचार किया गया है। शिक्षा-ग्रन्थ और भी ऋषियो के नाम से प्रचलित हैं।

प्रातिशाख्यो मे जिस प्रकार के बहुत से अंश आगये है उसी प्रकार कही-कही व्याकरण का भी उल्लेख मिलता है। व्याकरण और शिक्षा का विषय अलग-अलग है। व्याकरण मे भाषा के नियमो का विवेचन और शब्दो का अनुशासन रहता है। आदि वैयाकरण बृहस्पति माने जाते है और फिर इन्द्र का नम्बर आता है। चौदह शिवसूत्र, जिनके आधार पर पाणिनि के व्याकरण की रचना हुई है, वैदिक है, जिससे पता चलता है कि महेश अथवा शिव भी एक वैयाकरण रहे होगे। पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती वैयाकरणो का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी में किया है, परन्तु उनके ग्रंथ अब उपलब्ध नही। सस्कृत के उपलब्ध व्याकरणो मे पाणिनि की अष्टाध्यायी ही अधिक प्रचलित है और उसी के टीकाग्रन्थो का विशेष रिवाज है। निरुक्तकार यास्क भी प्रसिद्ध वैयाकरण हुए है, परन्तु उनके काल-निर्णय मे भी विद्वानो को सन्देह है।

निरुक्त व्याकरण की भाँति ही एक वेदाङ्ग है। निरुक्त मे केवल वैदिक शब्दो पर विचार किया गया है निरुक्त के ग्रंथ मे अवश्य रहे होंगे केवल

यास्क का ही निरुक्त मिलता है वेदो की व्याख्या करने के लिए निरुक्त बड़ा महत्वपूर्ण है यास्क ने अपने ग्रन्थ मे कई निरुक्तकारो का उल्लेख किया है।

वेद के चौथे अङ्ग छन्द मे भाषा के लालित्य का विश्लेषण रहता है। छन्दों का बड़ा महत्व है। वेदाध्ययन के लिए छन्दो का ज्ञान बड़ा अनिवार्य है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो मे छन्दो की बहुत-सी कथाएँ आती है। छन्दो का विवेचन कात्यायन की सर्वानुक्रमणिका मे किया गया है, जिनमे मूल ७ छन्दो को लेकर उनका विस्तार किया गया है। वे सात छन्द ये है—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती। लौकिक छन्दों का विवेचन महर्षि पिङ्गल ने किया है जिन्होने १,६१,७७२१६ प्रकार के वर्णवृत्तो का उल्लेख किया है।

कल्प भी वेद का एक अङ्ग है। कल्प विधि को कहते है। कल्प सूत्रो मे कर्म काण्ड का विषय है और सस्कार के नामकरण, उनकी विधियाँ और यज्ञ यागादि का विवेचन है। इन सब विधियो और समारम्भो के लिये उत्तम मुहूर्तो की आवश्यकता है, जिनका विवेचन वेद का छठा अङ्ग ज्योतिष करता है। ज्योतिर्विज्ञान भारतवर्ष मे एक महत्वपूर्ण विज्ञान रहा है और उस पर अच्छे प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे गये है। ज्योतिष् के ग्रन्थ भी दो प्रकार के है—वैदिक ज्योतिष् और लौकिक ज्योतिष्। लौकिक ज्योतिष् के तो बहुत से ग्रन्थ उपलब्ध है पर वैदिक ज्योतिष् के ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। ज्योतिष् का प्रधान विषय पञ्चागसिद्धि है अर्थात्—तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। वराहमिहिर एक उच्च कोटि के ज्योतिर्विद् हुए है। उन्होंने अपनी पाञ्चसिद्धान्तिका मे सूर्य सिद्धान्त, पौलिश सिद्धान्त, रोमक सिद्धान्त, वशिष्ठ सिद्धान्त, वराहमिहिर-सिद्धान्त और पितामह सिद्धान्त की चर्चा की है। वराहमिहिर से पूर्व भी कई ज्योतिषाचार्य हुए है जिनमे पराशर और गर्ग विशेष उल्लेखनीय है।

उपवेदो और वेदाङ्गो के अतिरिक्त सस्कृत वाङ्मय के और भी कई महत्वपूर्ण भाग है, जिनमे कुछ वेद के उपाङ्ग बताये जाते है। इन उपाङ्गों की गणना के विषय मे विद्वानो मे कुछ मतभेद है। मधुसूदन सरस्वती पुराण, न्याय, मीमासा और धर्मशास्त्र को उपाङ्ग मानते है और कुछ विद्वानो ने इन उपाङ्गों को अगो के ही अन्तर्गत मान लिया है। कुछ विद्वान् इतिहास पुराण को पाँचवाँ वेद मानते है। उपाङ्ग के नाम से अभिहित होने वाले इस विशाल-काय साहित्य को चार भागो मे बाँटा जा सकता है—इतिहास, पुराण, दर्शन, धर्मशास्त्र और तन्त्र। पुराण हमारा मुख्य विषय है इसलिए इसका विवेचन हम बाद मे करेंगे।

यह सारा ही वाङ्मय दो बडे भागो मे विभाजित किया जा सकता है—श्रुति और स्मृति। वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् श्रुति ग्रन्थ कहलाते है और शेष स्मृति। परन्तु स्मृति का एक विशेष अर्थ भी है और स्मृति से धर्मशास्त्र का ही बोध होता है। स्मृतियों की सख्या १८ से लेकर ५६ तक गिनाई गई है। मुख्य स्मृतिकार ये है:—

मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस्, अङ्गिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, भृगु और शङ्ख। स्मृतियों में प्रजाधर्म, समाजधर्म और सदाचार के नियमो की व्याख्या की गई है। मनुस्मृति सब स्मृतियो मे अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसके १२ अध्यायो मे मानव धर्मशास्त्र की विशद विवेचना हुई है और वास्तव मे मनुस्मृति ही अन्य स्मृतियो का आधार है। दूसरी उल्लेखनीय स्मृति याज्ञवल्क्य-स्मृति है, जिसमे आचार, व्यवहार और प्रायश्चित नाम के तीन अध्याय है। मनुस्मृति का आधार

उपवेद ही रहा है

संस्कृत में तन्त्र साहित्य का भी विपुल विस्तार है और हिन्दुओं की भाँति बौद्धों के भी बहुत से तन्त्र संस्कृत भाषा में मिलते हैं। हिन्दू तन्त्रशास्त्र शिवप्रणीत और बौद्धतन्त्रशास्त्र बुद्धप्रणीत माना जाता है। बौद्ध तन्त्र ग्रन्थों का प्रचार चीन और तिब्बत देशों में विशेष रूप से है। हिन्दू तन्त्रशास्त्र तीन भागों में विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तन्त्र। आगमतन्त्र में सृष्टि, प्रलय, पूजा, विधि-विधान आदि का वर्णन रहता है—यामलतन्त्र में सृष्टितत्व, ज्योतिष्, नित्यकर्म, वर्णभेद, युगधर्म आदि का वर्णन होता है और मुख्यतन्त्र में शेष सब विषय रहते हैं। तन्त्रशास्त्र प्रायः शाक्तों का ही है और उसमें मारण, उच्चाटन, वशीकरण, सिद्धि आदि का विशद वर्णन है। वाराहीतन्त्र में तन्त्रशास्त्र का विशद विवेचन हुआ है। कलियुग में इन तन्त्रों का बड़ा महत्व बताया है और तन्त्र को गुप्त तत्व माना गया है। तन्त्रशास्त्र के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन तन्त्रग्रन्थों के अतिरिक्त उपतन्त्रग्रन्थ भी अनेक मिलते हैं। अथर्व-संहिता में मारण, उच्चाटन, वशीकरण-विषयक मन्त्र अवश्य हैं, परन्तु कहीं तन्त्रों का उल्लेख नहीं मिलता, इसलिये तन्त्रशास्त्र के प्रारम्भ की तिथि का निर्णय करना बड़ा कठिन है। तन्त्रशास्त्र निःसन्देह बहुत बाद का है और बौद्धतन्त्र तो छठी-सातवीं शताब्दी के बाद के ही प्रतीत होते हैं। चीनी परिव्राजक फाह्यान ने तान्त्रिक मत का उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तन्त्रशास्त्र का श्री गणेश बंगाल में हुआ। शाक्त मत का वहाँ बहुत पहले से प्रचार रहा है। इसलिए गौड देश तन्त्रमत का मूलस्थान माना जा सकता है। काश्मीर और केरल देश के तान्त्रिक भी प्रसिद्ध हैं। हिन्दू तन्त्रों में शिव—दुर्गा की पूजा का ही विशेष विधान है और उन्हीं को वज्रसत्व और वज्र डाकिनी कहा गया है। बौद्धतन्त्रों में चण्डी, तारा, वाराही, महाविद्या, योगिनी, डाकिनी भैरव-भैरवी आदि की पूजा की प्रधानता है।

आत्मा, परमात्मा का विवेचन करने वाले ग्रन्थ दर्शन कहलाते हैं। दर्शन ग्रन्थ आस्तिक भी हैं और नास्तिक भी हैं। महामहोपाध्याय प० राधाप्रसाद शास्त्री ने अपने 'प्राच्यदर्शन' नामक ग्रन्थ में ६ नास्तिक दर्शन माने हैं और ६ आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शनों में चार्वाक्, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक और अर्हत् गिनाये गये हैं और आस्तिक दर्शनों में वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और वेदान्त गिनाये गये हैं। आस्तिक और नास्तिक का भेद वेदोक्त परलोकों के मानने और न मानने के आधार पर किया गया है। ६ नास्तिक दर्शन चार्वाक् हिन्दू-दर्शन, चार बौद्ध दर्शन और एक जैन दर्शन माने गये हैं। चार्वाक् प्रत्यक्षवादी है और पृथ्वी, जल, तेज और वायु चार ही तत्वों को मानते हैं। इन चारों के मेल से ही चैतन्य की उत्पत्ति होती है और उनके नाश से चैतन्य स्वयं नष्ट हो जाता है। ये चैतन्य-विशिष्ट देह को ही आत्मा मानते हैं। इनके मत में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही मान्य है। स्वर्ग और नरक सब यहीं हैं। देह का नाश ही मोक्ष है। ये जन्मान्तर को भी नहीं मानते और धार्मिक क्रियाओं को पाखण्ड समझते हैं।

बौद्ध मत के चार दर्शन हैं—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। माध्यमिक दर्शन मानने वालों का कथन है कि संसार में जो कुछ भी सत्ता है या भाव है, वह क्षणिक है। सत् का लक्षण वे इस प्रकार करते हैं—'अर्थक्रियाकारित्व सत्त्वम्' अर्थात् विषय या वस्तु का क्रिया करना ही सत्ता है। क्रिया के पश्चात् वह समाप्त हो जाती है। सब वस्तु स्वलक्षण है, सब शून्य है। इनके मत से चार प्रकार की भावना से मुक्ति मिलती है—सब क्षणिक है—सर्व क्षणिक है, दुःख है—दुःख है, स्वलक्षण है   है, शून्य है—शून्य है

इस मत को सर्वशून्यत्ववादी कहते है क्योंकि इस मत के अनुयायियो ने बुद्ध के केवल आधे ही उपदेश को ग्रहण किया इसलिये इसे माध्यमिक कहते है बौद्धो का दूसरा दर्शन योगाचार है बुद्ध भगवान् के जो शिष्य माध्यमिक दर्शन से आगे बढकर योग और आचार मे विश्वास करने वाले हुए, वे इस मत के अनुयायी कहलाते हैं। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए पर्यनुयोग या शङ्का उठाना योग कहलाता है और पूर्व के कहे हुए को अंगीकार करना आचार कहलाता है। इस दर्शन के अनुसार यद्यपि माध्यमिक दर्शन की चार भावनाये मान्य है और बाहर के पदार्थ सब शून्य हैं परन्तु जो आन्तरिक पदार्थ हमारे ज्ञान मे रहते है, शून्य नही है। चार प्रकार की भावनाओ के अभ्यास से धीरे-धीरे वस्तु के स्वरूप का नाश होता है और विशद विज्ञान का उदय होता है। इस प्रकार ये लोग आन्तरिक पदार्थ के ज्ञान की शङ्का उठाते है और फिर शुद्ध विज्ञान के उदय को मुक्ति मानते है।

बौद्धमत का तीसरा दर्शन सौत्रान्तिक दर्शन है। इन लोगों का कहना है कि बुद्ध के सूत्र अर्थात् उपदेश वाक्य के अन्त या सिद्धान्त को इन्होंने ही ठीक-ठीक समझा है। इसलिए ये अपने को सौत्रान्तिक कहते है। इन लोगो ने 'अहम्' और 'इदम्' रूपात्मक ज्ञान में भेद करके आन्तरिक वस्तु के ज्ञान को 'अहम्' नाम दिया है। वाह्य अर्थ के सिद्ध करने में इन्होंने अनुमान का सहारा लिया है और ज्ञान सन्तान को ही आत्मा बताया है, जिसको एक लक्ष्य से उपमित करके उसके पाँच स्कन्ध बताये है—रूप, विज्ञान, वेदना, सज्ञा और सस्कार। तत्वज्ञान से निर्वाण प्राप्त हो सकता है। तत्वज्ञान के चार उपाय हैं—दु ख, आयतन, समुदाय और मार्ग। पाँच स्कन्ध दुःख है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय मन और बुद्धि ये बारह आयतन हैं अर्थात् दु ख के स्थान है। मनुष्यो के हृदय मे उत्पन्न होने वाले राग, द्वेष, मद मान आदि समुदाय हैं, जो दु.ख के साधन है। सब क्षणिक हैं ऐसी भावना मार्ग है। यही तत्वज्ञान का मूल है। इस प्रकार ये वाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार की वस्तुओं को सत्य मान कर चलते हैं और आन्तरिक पदार्थो को प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रमाणित करते है तथा वाह्य पदार्थो को अनुमान से।

चौथा बौद्ध दर्शन वैभाविक दर्शन है, जो वाह्य पदार्थो को प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध करता है। वैभाषिक मत वालो का कहना है कि हमने ही बुद्धदेव के विरुद्धभाषा के तत्त्व को ठीक समझा है, इसलिये उनका नाम वैभाषिक पडा।

जैन दर्शन आर्हत दर्शन कहलाता है। बौद्धो के विरुद्ध ये जगत को अनादि मानते है और आत्मा को भी स्थायी मानते है। इस मत मे जीव और अजीव दो तत्व है। बोध वाले जीव और अबोध वाले अजीव। इन्ही को चित् और अचित् भी कहते हैं। इस मत के अनुसार पाँच अस्तिकाय (तत्व) होते है—जीव, आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल। इन तत्वो की विस्तृत विवेचना इस मत मे की गई है। कुछ विद्वानो ने सात तत्व माने है और उनका विस्तृत विवेचन किया है। वे तत्व ये हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जर और मोक्ष।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है—आस्तिक दर्शनों की सख्या ६ है। आत्मा के निर्णय में नास्तिक दर्शन विरोधी दल वाले कहे जाते हैं और आस्तिक दर्शन संवादी कहे जा सकते हैं। पहला दर्शन वैशेषिक दर्शन है जिसके प्रणेता कणाद ऋषि है। इस दर्शन की रचना उन लोगो के लिये हुई, जो पृथ्वी आदि पदार्थो को ही आत्मा मानते हैं सबसे पहले

इस दर्शन में धर्म का स्वरूप ... पदार्थज्ञान कराया गया ... के लिये उद्देश्य लक्षण, परीक्षा और उपदेशविशेष की प्रक्रिया को स्वीकार किया और फिर अधिकारियों के लिये आत्मा और अनात्मा का विवेक कराया गया है। फिर अन्त में सारी सृष्टि का नियन्ता और कर्ता ईश्वर को सिद्ध किया गया है और उसकी सिद्धि में अनुमान और आप्त प्रमाणों को स्वीकार किया गया है। इस दर्शन में आत्म और अनात्म दोनों का ही विशद विवेचन हुआ है। इसकी पुष्टि आगे चलकर शास्त्रार्थ की विधि से गौतम ने न्यायदर्शन में की है।

न्याय का मुख्य विषय प्रमाण हैं, जो प्रमा पर आधारित है। गौतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। अनुमान में पाँच अवयव माने है—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। नैयायिकों ने मुख्य रूप से १२ पदार्थों का वर्णन किया है—आत्मा, शरीर, इन्द्रियाँ, अर्थ, मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्ग। नैयायिक प्रमाणवादी है और परमाणुओं के योग से सृष्टि मानते है।

तीसरा दर्शन सांख्यदर्शन है, जिसमें चार प्रकार से पदार्थों को लिया गया है—केवल प्रकृति केवल विकृति, प्रकृति-विकृति-उभयरूप और प्रकृति-विकृति दोनों से अलग। मूल-प्रकृति केवल प्रकृति ही हैं, जो किसी की विकृति नहीं है। महदादि सात तत्व प्रकृति और विकृति हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत और मन ये सोलह केवल विकृति है और पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। सांख्यकार प्रकृति और पुरुष दोनों को ही अनादि मानते हैं—'प्रकृति पुरुष चैव विद्ध्यनादी उभावपि।' सांख्यदर्शन के रचयिता भगवान् कपिल जी हुए हैं, जिन्होंने ६ अध्यायों में इस दर्शन का विवेचन किया है। पहले अध्याय में विषय, दूसरे में प्रकृति के कार्य, तीसरे में विषय से वैराग्य, चौथे में विरक्त पुरुषों की आख्यायिका, पञ्चम में परपक्ष का निर्णय और षष्ठ में अर्थों का संग्रह। सांख्यदर्शन में २४ तत्व माने है। प्रकृति, सात महदादि-महत्तत्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—१६ विकृति—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत और मन तथा पुरुष। पुरुष अनेक हैं, जो अन्तकरण-विशिष्ट है, निर्गुण है, संसार भोग्य है। पुरुष चेतन भोक्ता है और वही आत्मा है। प्रकृति कर्त्री है और पुरुष के पास होने के कारण चेतन की भाँति भासती है। प्रकृति और पुरुष का अन्धपंगु न्याय में सम्बन्ध है। अचेतन प्रकृति अपनी प्रवृत्ति के लिये पुरुष को आश्रय बनाती है और पुरुष अपने भोग के लिये प्रकृति का आश्रय लेता है। पुरुष की निवृत्ति का आधार प्रकृति ही है।

चौथा दर्शन योग दर्शन है। योग के तत्व वैदिक साहित्य में भी उपलब्ध होते है, परन्तु योग का वैज्ञानिक, विवेचन सबसे पहले पतञ्जलि ने किया। इस दर्शन का विषय भी अन्य दर्शनों की भाँति आत्मा और जगत का विवेचन है। योग दर्शन में सांख्यदर्शन की भाँति २५ तत्वों को स्वीकार किया गया है; विशेषता केवल इतनी है कि इसमें एक २६वाँ तत्व पुरुष विशेष और माना है। यही ईश्वर-तत्व है। इस प्रकार योगदर्शन सांख्य की भाँति अनीश्वरवादी नहीं कहा जा सकता। पातञ्जलि योगदर्शन में चार पाद है—समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य। योगदर्शन के अनुसार जन्म-जन्मान्तर के हेतु पाँच क्लेश हैं—अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच प्रकार के क्लेशों से बचने का उपाय योग

दर्शन प्रस्तुत करता है ईश्वर नित्यमुक्त एक अद्वितीय और तीनों कालों से परे है संसार दुःखमय और हेय है। चित्त की पाँच भूमियाँ है—क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र। अन्तिम दो वृत्तियाँ ही योग के काम की हैं, जिनमे सप्रज्ञात और असप्रज्ञात योग की दो अवस्थाएँ हैं। सप्रज्ञात मे तो ज्ञेय का रूप प्रत्यक्ष होता है और असप्रज्ञात मे ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते है। केवल सस्कार बाकी रह जाते है। चित्त की वृत्तियो को रोकने के योग-दर्शन मे ये उपाय बताये हैं—अभ्यास, वैराग्य, प्रणिधान, प्राणायाम, समाधि और विरक्ति। योग के आठ अङ्ग बताये है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सृष्टि के सम्बन्ध में साख्य और योग दोनों एकमत हैं। आगे चलकर जब योगशास्त्र पर तन्त्र का प्रभाव पडा तो उसके बहुत से भेद कल्पित कर लिये गये और योग के कई सम्प्रदाय चले, जिनमे नाथ-सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध है।

पाँचवाँ दर्शन मीमांसा दर्शन है। वास्तव मे मीमांसा दर्शन के दो भाग है—पूर्व-मीमासा और उत्तर मीमासा, जो विद्या के परा और अपरा दो भेद मानकर किये गये है। परा विद्यावालो के लिये उत्तर दर्शन या वेदान्त का विधान है, और अपरा विद्यावालो के लिये पूर्व दर्शन का। मीमासा शब्द का अर्थ ही 'विचार' है, इसलिये पूर्व मीमांसा शब्द का अर्थ हुआ पूर्व विचार। वेदो का विषय मुख्य रूप मे कर्म, उपासना और ज्ञान है। इनमें कर्म और उपासना का विस्तार बहुत है और ज्ञानकाण्ड वेदो में सूक्ष्म रूप में ही आया है। बात भी ठीक है। ज्ञानकाण्ड के अधिकारी तो विरले ही होते है। अधिक संख्या कर्मकाण्ड के अधिकारियो की ही है। कर्मकाण्ड की विवेचना ही पूर्व मीमासा का विषय है। पूर्वमीमासा के सूत्रो के कर्त्ता महर्षि जैमिनि है। उन सूत्रों का भाष्य शबर स्वामी ने किया है। मीमासा दर्शन में यज्ञो का विस्तृत विश्लेषण हुआ है। वह १२ अध्यायो मे विभक्त है, इसलिये उसे द्वादशलक्षणी भी कहते है। किसी भी शास्त्र का विवेचन करने के लिये मीमांसा की सात बातें प्रसिद्ध हैं—

> उपक्रमोपसंहारौ, अभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
> अर्थवादोपपत्ती च लिंगतात्पर्यनिर्णये॥

किसी बात का निर्णय करने मे मीमासक उसे अर्थवाद या सिद्धान्तवाद की कोटि में रख कर करते है। मीमांसा मे वेद-वाक्यो की नित्यता पर ही विचार किया गया है। इसमें ब्रह्म, आत्मा, जगत् आदि का विवेचन नहीं है। मीमासक शब्द को नित्य मानते है, नैयायिक उसे अनित्य मानते है। साख्य मत की भाति यह भी अनीश्वरवादी कहा जा सकता है।

वेदान्तदर्शन ज्ञानकाण्ड का दर्शन है। वास्तव मे कर्मकाण्ड की विवेचना ब्राह्मण ग्रन्थो मे और ज्ञान का विश्लेषण उपनिषदो मे हुआ है। इसलिए उपनिषदो का विषय वेदान्त ही कहा जाता है। उपनिषदो मे वेदान्त शब्द का प्रयोग ज्ञानपरक ही हुआ है। 'सर्वं ब्रह्म' को लेकर वेदान्त चलता है। उपनिषदो मे ब्रह्म का विषय विभिन्न प्रकार से समझाया गया है, और उनमे विभिन्न मतों का प्रतिपादन हुआ है। उस विषय को सिद्धान्त रूप से वेदान्त सूत्रो मे बताया गया है। वेदान्त विषय के प्रतिपादक पहले ग्रन्थ तो उपनिषद् ही हैं। ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौशीतकी तथा श्वेताश्वतर नामक उपनिषद् ब्रह्मविषयक हैं इस ब्रह्म विषय के प्रतिपादक वेदान्त सूत्र दूसरी कोटि मे आते हैं जिन्हें ब्रह्मसूत्र शारीरक मीमासा और भी कहते हैं इन सूत्रों के

रचयिता का नाम बादरायण अथवा कृष्णद्वैपायन है। वेदान्त दर्शन के चार अध्याय है और प्रत्येक अध्याय चार पादों मे विभक्त है। प्रथम अध्याय का नाम समन्वय है, दूसरे का अविरोध, तीसरे का साधन और चौथे का फल है। वेदान्त दर्शन का तीसरी कोटि का विवेचन ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है। इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता प्रस्थानत्रयी कहलाते है।

जैसाकि पहले कह चुके है, यहाँ दर्शनो का विषय ब्रह्म, जीव और जगत् का विश्लेषण है और उनका पारस्परिक सम्बन्ध-निर्णय है। वैशेषिक और न्यायदर्शन में परमाणु को मूलतत्व मानकर उसके तीन विभाग किये है, और ईश्वर को जगत् का कर्ता बताया है। ये परमाणु नित्य है, जिसके सयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, और उस संयोग का प्रेरक ईश्वर है। साख्यकारो ने ईश्वर-तत्व को न मानकर केवल दो ही तत्व नित्य माने है—पुरुष और प्रकृति। इस प्रकार उन्हे असंख्य चेतन आत्माएँ माननी पडी और प्रकृति को अव्यक्त, फिर अव्यक्त प्रकृति से ही जगत् का विकास बताया। नैयायिकों ने उसका खण्डन करके ईश्वर की कल्पना और की, और पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से सृष्टि की रचना मानी। वेदान्त दर्शन में इन सबका खण्डन करके केवल एक ब्रह्म तत्व की स्थापना की गई, और अनेकता को मायाजन्य बताया और ब्रह्म को ही जगत का निमित्त और उपादान कारण सिद्ध किया। वेदान्तियो का विवर्तवाद प्रसिद्ध है जो नैयायिको के आरम्भवाद और साख्यो के परिणामवाद के विरोध मे स्थापित किया गया वेदान्तियों के और भी कई वाद प्रचलित हैं, जैसे दृष्टिसृष्टिवाद, आच्छेदवाद विम्ब-प्रतिविम्बवाद और अजातवाद। आगे चलकर ब्रह्म, जीव और प्रकृति के विषय को लेकर बहुत से आचार्यों ने अपने-अपने मतों का प्रतिपादन किया, जिससे कई सम्प्रदाय चल निकले। इनका विशद विवेचन हम आगे करेंगे।

भारतीय वाङ्मय के विभिन्न अंगों का यह संक्षिप्त परिचय है। हम पहले कह चुके हैं कि इतिहास-पुराण भारतीय वाङ्मय का एक प्रधान अंग है। आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में जो इतिहास का लक्षण है, उसकी कसौटी पर तो भारत के इतिहास ग्रंथ ठीक नही उतर पाते, परन्तु जैसा कि कीथ ने कहा है कि—'भारतीय वाङ्मय की परम्परा में इतिहास का न मानना उपहासास्पद है।' हमारा यह मत है कि भारतीय साहित्य में किसी न किसी रूप मे इतिहास भी एक प्रधान अग रहा है। इतिहास शब्द भी भारतीय साहित्य में कोई नया नहीं। लगभग १६ प्रकार की इतिहास-लेखन प्रणालियाँ हमे भारतीय साहित्य मे मिलती हैं। आचार्य शौनक ने 'बृहद्देवता' मे लिखा है—

इतिहासः पुरावृत्तम् ऋषिभिः परिकीर्त्यते।

शतपथ ब्राह्मण मे भी इतिहास शब्द मिलता है—जूलियस एगलैन ने उस इतिहास शब्द का अनुवाद ट्रेडिशनल-मिथ या लीजेण्ड किया है। यह बात पक्षपात पूर्ण कही जा सकती हैं। इतिहास शब्द का अर्थ है—इति ह एवमासीत् इति य कथ्यते स इतिहास कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास की व्याख्या इस प्रकार की है

इतिहास से मिलता-जुलता दूसरा शब्द ऐतिह्य है बिना वक्ता के नाम बताए हुए परम्परागत कथन का नाम ऐतिह्य है ।

"ऐतिह्यं नामाप्तोपदेशो वेदादिः ।"

तीसरा शब्द पुराकल्प है, जिसका अर्थ है पुराना काल या पुराने काल की घटनाएँ । चौथा शब्द है परिकृति या परक्रिया—

"अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधैः परिकृति स्मृता ।"

पाँचवाँ शब्द है इतिवृत्त या पुरावृत्त जो लगभग इतिहासपरक है। छठा शब्द है अवदान—'अवदानमितिवृत्ते ।'

सातवाँ शब्द है आख्यान—आख्यानमितिवृत्त स्यादितिहास स एव च । आठवाँ शब्द है आख्यायिका—

आख्यायिका कथावत्स्यात्स्यात्कवेर्वंशादिकीर्तनम् ।

नवम शब्द है उपाख्यान—'अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्यातमित्युपाख्यानम्' ।

दसवाँ शब्द है अन्वाख्यान—

अन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वदुद्यने ।

ग्यारहवाँ शब्द है चरित । कौटल्य-अर्थशास्त्र में इतिहास और चरित समनार्थक माने हैं। बारहवाँ शब्द है अनुचरित—"वंशानुचरितं चैव ।"

तेरहवाँ शब्द है कथा—'प्रबन्धकल्पना कथा" । चौदहवाँ शब्द है परिकथा—

पर्यायेण वहूनां यत्र प्रतियोगिना कथा
कुशलैः श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभि परिकथा सातु ।

पन्द्रहवाँ शब्द है अनुवंशश्लोक । प्राचीन पुराणों की राजवंशावलियों के अन्तर्गत प्रतापी राजाओं के विषय में कहीं कहीं जो श्लोक विशेष मिलते है, वे अनुवंशश्लोक कहलाते हैं। सोलहवाँ शब्द है 'गाथा' । भारतीय साहित्य में गाथाएँ बहुत प्राचीन काल से मिलती हैं, जो इतिहास मे बडी सहायक हैं।

सत्रहवाँ शब्द है नाराशंसी—"नरा अस्मिन्नासीना. शंसन्ति-इति नाराशंसी" ।

अठारहवाँ शब्द है—राजशासन । याज्ञवल्क्यादि स्मृतियो में इन राजशासनों का विस्तृत वर्णन मिलता है। उन्नीसवाँ शब्द है पुराण जो इतिहास का शरीर माना जाता है और एक प्रकार से इतिहास की सूची प्रस्तुत करता है । पुराण साहित्य के विषय में हम अगले अध्याय मे विस्तार से विचार करेंगे ।

हमारे इतिहास ग्रंथों मे रामायण और महाभारत का विशिष्ट स्थान है। रामायण तो हमे अनेक मिलती हैं परन्तु महाभारत एक ही है। रामायण और महाभारत के काल के सम्बन्ध में बड़ा वाद-विवाद है, और कुछ पाश्चात्य विद्वान् महाभारत को रामायण से पहली रचना मानते हैं। परन्तु यह बात बिल्कुल असगत है। भाषा और तथ्य दोनो की दृष्टि से रामायण महाभारत से बहुत पहली ठहरती है। रामायण की कथा का प्रचार तो महाभारत से बहुत पहले था के अनेक स्थलों पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिनसे इस बात की पूर्ण

पुष्टि हो जाती है। वनपर्व में रामोपाख्यान को प्रस्तुत करते हुए .... इस उपाख्यान को पुरातन शब्द से निर्देश करता है। फिर द्रोणपर्व में भी उसे पुरातन ही बताया गया है। रामायण का आदि रूप आज यथावत् उपलब्ध नहीं होता। जनश्रुति तो यह है कि वाल्मीकि जी ने सौ करोड़ श्लोकों का रामायण ग्रंथ बनाया था। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के चौथे सर्ग में चौबीस हजार श्लोकों और पाँच सौ सर्गों का उल्लेख है, परन्तु यह उल्लेख प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। जो वाल्मीकि रामायण के संस्करण आज प्राप्त है उनमें भी बहुत भेद है। कुछ संस्करण औदीच्य है, कुछ दाक्षिणात्य और कुछ गौडीय। संस्कृत की एक और प्रसिद्ध रामायण अध्यात्म रामायण है जो शिवजी की रचना बताई जाती है। इसके अतिरिक्त और भी कई रामायण मिलती है यथा—महारामायण, संवृत रामायण, अगस्त्य रामायण, लोमस रामायण, सौपद्य रामायण, मौर्य रामायण, चान्द्र रामायण, मैन्द रामायण, स्वायम्भू रामायण, सुब्रह्मण्य रामायण, सुवर्चस् रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण और दुरन्त रामायण आदि। रामायण की कथा को लेकर और भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये है। इन रामायणों मे राम की कथा के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति और इतिहास के अच्छे उदाहरण मिलते हैं, साहित्य इतिहास और धर्म की दृष्टि से यह एक बडा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रामायण की कथा प्राय सभी पुराणों मे आई है। ब्रह्माण्ड पुराण में जो रामायण की कथा है वही अध्यात्म रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। रामायण की कथा त्रेता युग की है। भारतीय गणना के अनुसार तो यह त्रेता काल बहुत पुराना ठहरता है, परन्तु आधुनिक विद्वानों ने ईसा से तीस हजार वर्ष पूर्व तक स्वीकार किया है। वाल्मीकि रामायण की रचना के विषय मे बहुत मतभेद है। भारतीय परम्परा के अनुसार उन्हे रामचन्द्र जी का समकालीन माना गया है और महाभारत मे उनका उल्लेख वशिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों के साथ मिलता है, और वाल्मीकि का सम्बन्ध रामकथा से भी है। ऋक्संहिता के दशम मण्डल के ९३।१४ मे जो राम शब्द आया है उससे कुछ लोगों की कल्पना यह भी है कि दशम मण्डल के सम्पादन से पहले ये रामचन्द्र राजा हो चुके थे। ज्योतिष की गणना के अनुसार दशम मण्डल की रचना काल तीन हजार से चार हजार वर्ष ईसा पूर्व तक माना है।

रामायण का जो वर्तमान रूप हमे उपलब्ध है वह निश्चित रूप से एक कवि की रचना नहीं कही जा सकती। कम मे कम प्रथम और सप्तम काण्ड तो अवश्य बाद के बने हुए हैं। रामायण में साकेत का नाम कहीं नही आया है, सब जगह अयोध्यापुरी का ही नाम है। इससे पता चलता है कि बुद्ध से बहुत पहले ही रामायण की रचना हो चुकी थी। जिन सामाजिक परिस्थितियों का रामायण मे वर्णन है उनसे भी उसकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है, विशेषकर दक्षिणी भारत की परिस्थितियों से। हो सकता है कि वाल्मीकि रचित मूल रामायण आज उपलब्ध नहीं हो और उसमे धीरे-धीरे प्रक्षिप्त अंश बढते गये हो। यही कारण है कि आज के तीन प्रकार के है

विवरण प्रस्तुत करना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा होगा। वेदव्यास जी ने तीन वर्ष तक रातदिन परिश्रम करके इस ग्रन्थ को तैयार किया था। महाभारत के अन्त साक्ष्य से पता चलता है कि इस का मूलभूत रूप बहुत छोटा रहा होगा। पाश्चात्य विद्वान् तो उसका पहला रूप आठ हजार आठ सौ ही श्लोको का ग्रन्थ मानते है, और अपनी मान्यता के प्रमाण मे कूटश्लोकविषयक यह श्लोक प्रस्तुत करते है—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा।

परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार यह श्लोक कूट श्लोकों की संख्या बताने वाला ही है। भारत संहिता का मूल रूप तो चौबीस हजार श्लोको का माना गया है जैसा कि महाभारत के श्लोक से पता चलता है—

चतुर्विंशतिसाहस्री चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानेन विना तावत् भारत प्रोच्यते बुधै।

फिर रोमहर्षण के पुत्र सौति ने इस ग्रन्थ मे आख्यान और उपाख्यानों का समावेश किया। इस प्रकार महाभारत के तीन संस्करण समझने चाहिये। पहला सस्करण वेदव्यास जी का, दूसरा बादरायण व्यास जी का और तीसरा सौति का।

महाभारत स्मृति अथवा धर्मग्रन्थ माना जाता है। इसकी भाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह महाग्रन्थ एक काल व एक व्यक्ति की रचना नही है। आज जो महाभारत के सस्करण उपलब्ध है उनमें पाठभेद भी है और श्लोकसख्या-भेद भी। उत्तरी भारत में प्रचलित महाभारत दक्षिणी भारत में प्रचलित महाभारत से पर्याप्त भिन्न है। मूलग्रन्थ सम्भवत. वेदव्यास जी ने ही बनाया था जो पराशर ऋषि के शिष्य थे। महाभारत के समय उनका अस्तित्व सिद्ध भी होता है, दूसरे महाभारत ग्रन्थ से यह बात भी प्रमाणित होती है कि इस ग्रन्थ की रचना चाहे जिस रूप में हुई हो, महाभारत काल मे ही हुई थी। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय मे अनेक मत हैं। महाभारत का एक लक्ष श्लोक वाला संस्करण तीसरी चौथी शताब्दी तक तो अवश्य ही बन चुका था। इस बात के प्रमाण हमे कई शिलालेखो और सस्कृत ग्रन्थों से मिलते है। लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीतारहस्य' मे वर्तमान महाभारत को ई० पूर्व ५०० से प्राचीन ही माना है। महाभारत के युद्ध के सम्बन्ध मे भी कई कल्पनाएँ है जो १४०० ई० पूर्व से ३००० ईसवी पूर्व तक इस युद्ध का समय निर्धारित करती है। ज्योतिर्विद शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने युद्ध का समय ई० पू० १४०० या १५०० माना है जबकि प्रसिद्ध इतिहासकार चिन्तामणि राव वैद्य उसका समय ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मानते हैं। श्री पी० सी० सेन गुप्त ने अपने एक लेख मे जो उन्होने १ जून सन् १९३६ की 'रायल एशिया-टिक सोसाइटी बंगाल' के सम्मुख प्रस्तुत किया था, महाभारत के युद्ध को ज्योतिष की गणना के अनुसार ईसा से २४४९ वर्ष पहले १४ अक्तूबर से ३१ अक्तूबर तक माना है। महाभारत में १८ पर्व हैं, जिनमे चन्द्रवशीय कौरव-पाण्डवो की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवों के स्वर्गारोहण तक का वर्णन है। साथ ही साथ बहुत से उपाख्यान भी हैं जैसे—शकुन्तलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान, नलोपाख्यान, आदि। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट का नाम हरिवंश है जिसमे हरि अर्थात् कृष्ण के वंश का वर्णन है इसमें १६००० श्लोक और तीन पर्व हैं विष्णु पर्व और भविष्य पर्व इस ग्रंथ में

पुष्टि हो जाती है। वनपर्व मे रामोपाख्यान को प्रस्तुत करते हुए महाभारतकार इस उपाख्यान को पुरातन शब्द से निर्देश करता है। फिर द्रोणपर्व मे भी उसे पुरातन ही बताया गया है। रामायण का आदि रूप आज यथावत् उपलब्ध नही होता। जनश्रुति तो यह है कि बाल्मीकि जी ने सौ करोड़ श्लोको का रामायण ग्रथ बनाया था। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के चौथे सर्ग मे चौबीस हजार श्लोको और पाँच सौ सर्गो का उल्लेख है, परन्तु यह उल्लेख प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। जो वाल्मीकि रामायण के सस्करण आज प्राप्त हैं उनमे भी बहुत भेद है। कुछ सस्करण औदीच्य हैं, कुछ दाक्षिणात्य और कुछ गौडीय। सस्कृत की एक और प्रसिद्ध रामायण अध्यात्म रामायण है जो शिवजी की रचना बताई जाती है। इसके अतिरिक्त और भी कई रामायण मिलती है यथा—महारामायण, सवृत रामायण, अगस्त्य रामायण, लोमस रामायण, सौपद्य रामायण, सौर्य रामायण, चान्द्र रामायण, मैन्द रामायण, स्वायभू रामायण, सुब्रह्मण्य रामायण, सुवर्चस् रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण और दुरन्त रामायण आदि। रामायण की कथा को लेकर और भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये है। इन रामायणो मे राम की कथा के अतिरिक्त भारतीय सस्कृति और इतिहास के अच्छे उदाहरण मिलते हैं, साहित्य इतिहास और धर्म की दृष्टि से यह एक बडा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। रामायण की कथा प्राय सभी पुराणों मे आई है। ब्रह्माण्ड पुराण मे जो रामायण की कथा है वही अध्यात्म रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। रामायण की कथा त्रेता युग की है। भारतीय गणना के अनुसार तो यह त्रेता काल बहुत पुराना ठहरता है, परन्तु आधुनिक विद्वानो ने ईसा से तीस हजार वर्ष पूर्व तक स्वीकार किया है। वाल्मीकि रामायण की रचना के विषय मे बहुत मतभेद है। भारतीय परम्परा के अनुसार उन्हें रामचन्द्र जी का समकालीन माना गया है और महाभारत मे उनका उल्लेख वशिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियो के साथ मिलता है, और वाल्मीकि का सम्बन्ध रामकथा से भी है। ऋक्सहिता के दशम मण्डल के ९३।१४ में जो राम शब्द आया है उससे कुछ लोगों की कल्पना यह भी है कि दशम मण्डल के सम्पादन से पहले ये रामचन्द्र राजा हो चुके थे। ज्योतिष की गणना के अनुसार दशम मण्डल की रचना काल तीन हजार से चार हजार वर्ष ईसा पूर्व तक माना है।

रामायण का जो वर्तमान रूप हमे उपलब्ध है वह निश्चित रूप से एक कवि की रचना नही कही जा सकती। कम से कम प्रथम और सप्तम काण्ड तो अवश्य बाद के बने हुए हैं। रामायण में साकेत का नाम कही नही आया है, सब जगह अयोध्यापुरी का ही नाम है। इससे पता चलता है कि बुद्ध से बहुत पहले ही रामायण की रचना हो चुकी थी। जिन सामाजिक परिस्थितियों का रामायण में वर्णन है उनसे भी उसकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है, विशेषकर दक्षिणी भारत की परिस्थितियों से। हो सकता है कि वाल्मीकि रचित मूल रामायण आज उपलब्ध नहीं हो और उसमे धीरे-धीरे प्रक्षिप्त अश बढते गये हों। यही कारण है कि आज के तीन प्रकार के है

विवरण प्रस्तुत करना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा होगा। वेदव्यास जी ने तीन वर्ष तक रातदिन परिश्रम करके इस ग्रन्थ को तैयार किया था। महाभारत के अन्त साक्ष्य से पता चलता है कि इस का मूलभूत रूप बहुत छोटा रहा होगा। पाश्चात्य विद्वान् तो उसका पहला रूप आठ हजार आठ सौ ही श्लोको का ग्रन्थ मानते हैं, और अपनी मान्यता के प्रमाण मे कूटश्लोकविषयक यह श्लोक प्रस्तुत करते हैं—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा।

परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार यह श्लोक कूट श्लोकों की संख्या बताने वाला ही है। भारत संहिता का मूल रूप तो चौबीस हजार श्लोको का माना गया है जैसा कि महाभारत के श्लोक से पता चलता है:—

चतुर्विंशतिसाहस्री चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानेन विना तावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः।

फिर रोमहर्षण के पुत्र सौति ने इस ग्रन्थ मे आख्यान और उपाख्यानो का समावेश किया। इस प्रकार महाभारत के तीन संस्करण समझने चाहिये। पहला संस्करण वेदव्यास जी का, दूसरा बादरायण व्यास जी का और तीसरा सौति का।

महाभारत स्मृति अथवा धर्मग्रन्थ माना जाता है। इसकी भाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह महाग्रन्थ एक काल व एक व्यक्ति की रचना नही है। आज जो महाभारत के संस्करण उपलब्ध है उनमे पाठभेद भी है और श्लोकसंख्या-भेद भी। उत्तरी भारत मे प्रचलित महाभारत दक्षिणी भारत मे प्रचलित महाभारत से पर्याप्त भिन्न है। मूलग्रन्थ सम्भवतः वेदव्यास जी ने ही बनाया था जो पराशर ऋषि के शिष्य थे। महाभारत के समय उनका अस्तित्व सिद्ध भी होता है, दूसरे महाभारत ग्रन्थ से यह बात भी प्रमाणित होती है कि इस ग्रन्थ की रचना चाहे जिस रूप मे हुई हो, महाभारत काल मे ही हुई थी। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय मे अनेक मत है। महाभारत का एक लक्ष श्लोक वाला संस्करण तीसरी चौथी शताब्दी तक तो अवश्य ही बन चुका था। इस बात के प्रमाण हमें कई शिलालेखो और संस्कृत ग्रन्थो से मिलते है। लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीतारहस्य' मे वर्तमान महाभारत को ई० पूर्व ५०० से प्राचीन ही माना है। महाभारत के युद्ध के सम्बन्ध में भी कई कल्पनाएँ है जो १४०० ई० पूर्व से ३००० ईसवी पूर्व तक इस युद्ध का समय निर्धारित करती है। ज्योतिर्विद शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने युद्ध का समय ई० पू० १४०० या १५०० माना है जबकि प्रसिद्ध इतिहासकार चिन्तामणि राव वैद्य उसका समय ईसा से ३००० वर्ष पूर्व मानते है। श्री पी० सी० सेन गुप्त ने अपने एक लेख मे जो उन्होने १ जून सन् १९३६ की 'रायल एशिया-टिक सोसाइटी बंगाल' के सम्मुख प्रस्तुत किया था, महाभारत के युद्ध को ज्योतिष की गणना के अनुसार ईसा से २४४९ वर्ष पहले १४ अक्तूबर से ३१ अक्तूबर तक माना है। महाभारत में १८ पर्व है, जिनमे चन्द्रवंशीय कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवो के स्वर्गारोहण तक का वर्णन है। साथ ही साथ बहुत से उपाख्यान भी हैं जैसे—शकुन्तलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान, नलोपाख्यान, आदि। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट का नाम हरिवंश है, जिसमे हरि अर्थात् कृष्ण के वंश का वर्णन है इसमें १६००० श्लोक और तीन पर्व हैं विष्णु पर्व और भविष्य पर्व इस ग्रंथ मे

पाँच रत्न माने गये हैं। सबसे मुख्य रत्न श्रीमद्भगवद्गीता है जो भीष्मपर्व का महत्वपूर्ण भाग है। अन्य चार रत्न, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, भीष्मस्तवराज और विष्णुसहस्रनाम है। संस्कृत और प्राकृत साहित्य का बहुत कुछ भाग महाभारत के कथानकों पर अवलम्बित है। महाभारत मे कई नीतियाँ हैं और कई सम्प्रदायो का इसमें विस्तार से विवेचन हुआ है। शान्ति पर्व के ३४६ वे अध्याय मे निम्नलिखित श्लोक आया है —

> सांख्य योग पाञ्चरात्रं वेदा पाशुपत तथा।
> ज्ञानान्येतानि राजर्षे! विद्धि नानामतानि वै।

इस प्रकार उस समय प्रचलित नाना मतो मे से भीष्म ने सांख्य, योग, पाँचरात्र वेद और पाशुपत मतो की ही चर्चा की है। महाभारत के कुछ स्थलों की भाषा तो वैदिक भाषा से मिलती-जुलती है। महाभारत पर उपलब्ध लगभग २० टीकाएँ हैं, जिनमे नीलकण्ठ चतुर्धर की 'भारतभावदीप' अर्जुनमिश्र की 'भारतार्थदीपिका' और नारायण सर्वज्ञ को 'भारतार्थप्रकाश' ये तीन टीकाएँ प्रसिद्ध है।

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अङ्ग पुराण हैं। वैदिक साहित्य मे इतिहास और पुराण का निर्देश साथ-साथ मिलता है और इन्हे पचम वेद माना है। पुराण-साहित्य का विस्तृत विवेचन हम अगले प्रकरण मे करेंगे।

द्वितीय अध्याय

भारतीय वाङ्मय में पुराण

भारतीय वाङ्मय मे पुराणो का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि पुराणो में साम्प्रदायिकता का वैशिष्ट्य होने के कारण आधुनिक आलोचक पुराण-साहित्य को विशेष महत्व नही देता, फिर भी इसमे कोई सन्देह नहीं कि परम्पराओं और ऐतिहासिकता की दृष्टि से पुराण से अधिक उपादेय भारतीय वाङ्मय का दूसरा अङ्ग नही है। वायु पुराण मे ठीक ही लिखा है —

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज.।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षण.॥
इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामय प्रहरिष्यति॥

अर्थात् वह ब्राह्मण जो उपनिषद् और अङ्गो सहित वेदो को जानता है, शास्त्र-निपुण नही कहा जा सकता यदि उसे पुराणो का बोध नही है। उसे अपना वेदज्ञान इतिहास और पुराणो की सहायता से पूर्ण करना चाहिये क्योकि वेद स्वय ऐसे व्यक्ति से जिसका ज्ञान पुराणादि का बोध न होने के कारण कम है, भय मानता है कि कही मेरा अनर्थ न हो जाय।[1]

इस प्रकार के वाक्य कई पुराणो के अतिरिक्त और भी ग्रन्थो में आये है जिनसे पता चलता है कि पुराण-साहित्य प्राचीन काल से ही बडा महत्वपूर्ण रहा है।

पुराण शब्द की व्याख्या

साधारण रूप से पुराण शब्द का अर्थ पुराना है और सम्भवत 'पुराना' शब्द पुराण का ही बिगडा हुआ रूप है। पद्मचन्द्र कोष मे लिखा है —[2] 'पुराण पुराभवम्' अर्थात् पहले का। अमरकोष मे पुराण के सम्बन्ध में लिखा है[3].—"पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तना"। निरुक्तकार लिखता है:—'पुराण कस्मात् ? पुरानव भवति[4]। अमरकोष मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—पुराभव यद्वा पुरापि नव भवति यद्वा पुरा अतीतानागतौ-अर्थौ अणति। पद्म पुराण मे इस शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—'पुरा परम्परा वक्ति पुराणं तेन वै स्मृतम्।[5]

पुराण शब्द की इन निरुक्तियो से पता चलता है कि पुराण शब्द का अभिधेय अर्थ ही शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। आगे चलकर इस शब्द

१—वायु पुराण १, २००-१
२—स० गणेशदत्त शास्त्री, सस्करण १९२५, पृष्ठ ३२०
३—भानुदीक्षित की व्याख्या, वृ० का० श्लोक ७६
४—निरुक्ति ३ १९ २४
५—पद्म पुराण १ २-५३

का अर्थापकर्ष हो गया। आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में जो इसका इतना अर्थ गिर गया है उसका कारण सम्भवतः अंगरेजी भाषा का Mythology शब्द है। Mythology शब्द का अर्थ अंग्रेजी में बड़ा व्यापक है। इसके अन्तर्गत सभी प्राचीन कथाएँ, दन्तकथाएँ, परम्पराएँ, देवताओं और दिव्य पुरुषों की उत्पत्ति प्रसिद्ध व्यक्तियों का इतिहास, सृष्टि की उत्पत्ति आदि सभी बातें आ जाती हैं। इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Muthos' या Mythus से हुई है। अंग्रेजी में इस शब्द का मूल Myth है, जिसका अर्थ होता है प्राचीनतम मान्यताओं के आधार पर कल्पित अथवा असत्य पर आधारित कहानियाँ। मैक्समूलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Contribution to the science of Mythology में सूर्य आदि प्राकृतिक-शक्तियों की क्रियाओं के मानवीयकरण को Myth माना है। कुछ पुस्तकों में जैसे—Tales of Ancient Greeks and Mythology of Aryan Nations by Andrew Lang आदि में Myth का आधार जंगली जाति की मनोवृत्तियाँ मानी है। यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में इसी प्रकार Myth की व्याख्या की गई है। Charles Ann A Dale ने अपनी New Popular encyclopedia Vol I में इस शब्द की व्याख्या करते हुए ग्रीस, रोम, स्कैण्डिनेविया हिन्द तथा मिश्र की पौराणिक सामग्री को Myth कहा है। पुराण शब्द के अर्थापकर्ष का दूसरा कारण साम्प्रदायिकता है जैसा कि रायकृष्णदास ने लिखा है: 'बौद्ध, जैनों के प्रारम्भिक साहित्य में पुराण तुल्य वाङ्मय नहीं है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय में ये सम्प्रदाय चले और इनके आरम्भिक साहित्य का निर्माण हुआ उस समय तक पुराण सर्वत्र ऐतिहासिक वाङ्मय था और उसका किसी मत से सम्बन्ध न था अर्थात् वह ब्राह्मण श्रमण की समान सम्पत्ति थी अतएव श्रमणों (बौद्ध जैनों) को इस प्रकार के किसी निजी साहित्य की अपेक्षा बहुत काल तक न हुई। यह कहना कठिन है कि पुराण नाम के साहित्य में साम्प्रदायिकता लाने का पहला काम बौद्ध जैनों का था या वैदिक धर्म के ही विभिन्न मत-मतान्तरों का। बौद्ध जैनों के अतिरिक्त और भी आर्येतर मत-मतान्तर भारतवर्ष में बहुत दिन से चले आ रहे हैं जिनका सम्बन्ध आगे चलकर वैदिक धर्म की शाखाओं से हुआ। उन मत-मतान्तरों और सम्प्रदायों में अनेक अलौकिक घटनाएँ प्रचलित थीं, जिनका सम्बन्ध उनके देवी-देवताओं से था। हो सकता है समन्वय काल में उनमें से बहुत-सी घटनाओं का समावेश पुराणों में हो गया।'

पुराणों की प्राचीनता

आज जिस रूप में हमें पुराण उपलब्ध होते हैं उनका वही पहला रूप रहा होगा इसमें सन्देह है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराण-साहित्य का अस्तित्व किसी न किसी रूप में वैदिक काल में भी रहा होगा। अथर्व संहिता के अनुसार ऋक्, साम, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए—

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह[1]।

शतपथ ब्राह्मण में आया है—अध्वर्युस्तार्क्ष्यो वै पश्यतो राजेत्याह ...."पुराणं वेद सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीत[2]। अर्थात् अध्वर्यु इस प्रकार कहकर पुराण का कथन

१—अथर्व० ११-७-२४

२ शतपथ १ ४ ३ १३

करते थे बृहदारण्यक में इस प्रकार उल्लेख है स यथा आर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि[1]। अर्थात् जिस प्रकार गीली लकडी से जलती हुई अग्नि का धुआँ अलग-अलग रूप धारण करके निकलता है, उसी प्रकार महत् तत्व से विश्वास रूप मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान अनुव्याख्यान निःसृत हुए है। छान्दोग्योपनिषद में इस प्रकार उक्ति है—स हो वाच ऋग्वेदं भग वो अध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।[2] अर्थात् इतिहास पुराण पाचवाँ वेद है। पुराण शब्द के साथ इतिहास शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है, परन्तु जिन स्थलो पर इन शब्दो का प्रयोग हुआ है, उनसे यह स्पष्ट अवश्य है कि दोनो शब्द समानार्थक नही हैं। प्राय 'इतिहासपुराणौ', इतिहासपुराणाभ्याम्' आदि प्रयुक्त हुआ है। बृहदारण्यक का भाष्य करते हुए शङ्कराचार्य ने दोनो का भेद स्पष्ट किया है—इतिहास इत्युर्वशीपुरूरवसोः संवादादि, उर्वशी-ह्यप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणमसद्वा इदमग्र आसीदित्यादि[3]। अर्थात् उर्वशी पुरुरवा आदि के सवादस्वरूप ब्राह्मण भाग को इतिहास कहते है और पहले असद् था इत्यादि सृष्टि के प्रकरण को पुराण कहते है। इस भाष्य से स्पष्ट होता है कि पुराण नाम की प्राचीन शाखा के दो भाग रहे होंगे, जो आगे चलकर एक इतिहास नाम से प्रख्यात हुआ और दूसरा पुराण नाम से अवशिष्ट रह गया। हो सकता है किसी समय दोनो ही भाग स्पष्ट रूप से अलग-अलग प्रचलित रहे हो। पहले एक भाग मे इतिहास या ऐतिहासिक कथाएं और दूसरे भाग में सृष्टि का वर्णन रहा हो। आज भी पुराणो मे यह भेद लक्षित किया जा सकता है, परन्तु वह कुछ इतना मिल-जुल गया है कि अब उसका विभाजन बडा कठिन है। प्रारम्भ मे जब पुराण-संहिताओं का निर्माण हुआ होगा, उनमे दोनो ही भागो का समावेश रहा होगा। उस समय इन संहिताओ मे सृष्टि की आदि वंशावलियाँ और सर्गादि के विवरण रहे होगे। धीरे-धीरे वंशावलियाँ बढती गईं इसलिये वंशावलियो वाला भाग इतिहास नाम से प्रख्यात हुआ। जब तक यह परम्परा बनी रही इतिहास-पुराण शास्त्र का महत्व रहा। इस परम्परा के विच्छिन्न होने और साम्प्रदायिकता के आवरण के कारण पुराण-साहित्य का महत्व जाता रहा।

मुख्य-मुख्य सभी पुराणो मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाये है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।

अर्थात् सर्ग, सृष्टि विज्ञान, प्रतिसर्ग, सृष्टि विस्तार, लय और पुनः सृष्टि वंश अर्थात् सृष्टि की आदि वंशावलि, मन्वन्तर, कालक्रम और वंशानुचरित अर्थात् राजाओं की वंशावलियाँ।

इनमे अन्तिम अर्थात् राजाओ की वंशावलियाँ, इतिहास का विषय रहा होगा। पुराण-संहिता का आदिरूप क्या था, यह कहना बडा कठिन है और यह पता लगना भी सम्भव नही है कि पुराण-संहिता का आदि प्रणेता कौन था। हो सकता है कि पुराण भी ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो की भाति ऋषिप्रोक्त रहे हो। मनुसंहिता आश्वलायन गृह्यसूत्र

---

१ ———— २ ४ १० शतपथ १४ ६ १० ६

२ —छान्दोग्य० ७ १ १

३ बृ [illegible] भाष्य २ ४ १०

और महाभारत सभी से यह पता चलता है कि पुराण संख्या में कई रहे होंगे। फिर द्वापर युग में वेदव्यास जी अन्य वाङ्मय के साथ-साथ पुराणों का भी संकलन किया। विष्णु पुराण में इस संकलन के विषय में स्पष्ट उक्ति है —

"इसके बाद पुराणार्थ विशारद भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प-शुद्धि के साथ पुराण-संहिता की रचना की। व्यास का सूतजातीय लोमहर्षण नाम का एक विख्यात शिष्य था। महामुनि व्यास ने उसको पुराण-संहिता दी लोमहर्षण के ६ शिष्य हुए। उनके नाम सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि थे। इनमें से कश्यपवंशीय अकृतव्रण, सावर्णि और शांशपायन इन तीनों ने लोमहर्षण से पढ़कर मूलसंहिता के आधार पर एक-एक पुराण संहिता की रचना की। उन्हीं चार संहिताओं का सार संग्रह करके यह पुराण संहिता रची गई है। सब पुराणों में सबसे पुराना ब्रह्मपुराण कहलाता है। पुराणविदों ने पुराणों की संख्या १८ निर्दिष्ट की है।"[१] इन १८ पुराणों के अतिरिक्त कुछ उपपुराण भी प्रसिद्ध हैं। आगे चलकर तो यह निश्चय करना ही कठिन हो गया कि कौन महापुराण है और कौन उपपुराण। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में पुराण-संहिता नाम का एक संग्रह रहा होगा, जिसके अठारह विभाग रहे होंगे। फिर आगे चलकर उन्हीं १८ विभागों के आधार पर १८ बड़े-बड़े पुराण बन गये होंगे और उनके परिशिष्ट के रूप में बहुत से उपपुराण संकलित हुए होंगे। पुराणों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सब पुराणों में प्रायः एक-ही विषय की पुनरावृत्ति की गई है, और किन्हीं पुराणों के तो श्लोक भी ज्यों के त्यों मिल जाते है, परन्तु प्रत्येक पुराण का उद्देश्य पृथक् प्रतीत होता है, और सम्भवतः इसीलिये प्रत्येक पुराण में कोई न कोई प्रसंग विशेष रूप से आ गया है। जब साम्प्रदायिक प्रचार ही पुराणों का उद्देश्य हो गया तो उनमें परिवर्तन और परिवर्द्धन की कोई सीमा न रही। हिन्दू पुराणों के आधार पर ही अनेक बौद्ध और जैन पुराण भी निर्मित हुए। जैनों के मुख्य पुराण २४ और बौद्धों के ६ हैं। पुराण रचना की यह प्रक्रिया १५वीं, १६वीं शताब्दी तक चलती रही और एक-ही नाम के कई-कई पुराणों की रचना भिन्न-भिन्न प्रदेशों में हुई। यही कारण है कि आज एक-ही नाम के कुछ दाक्षिणात्य और कुछ मध्यदेशीय पुराण मिलते है। इस अव्यवस्था के कारण प्राचीन पुराणों की विषय-शृङ्खला जोड़ना आज असम्भव है, फिर भी ऐतिहासिकता की दृष्टि से पुराणों का महत्व कम नहीं किया जा सकता। अनेक प्रकार के कङ्कड़ों, पत्थरों और भवनों में ऐतिहासिक परम्परा-रत्न छिपे पड़े हैं।

पुराणों के सामान्य विषय

सामान्य विषय-विवेचन की दृष्टि से हम किसी भी पुराण को दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) अलौकिक और दिव्य घटनाएँ तथा (२) परम्पराएँ और वंशावलियाँ। इन दो बातों के साथ-साथ सृष्टि आदि का वर्णन सभी पुराणों में थोड़े बहुत भेद के साथ एकसा है। अलौकिक घटनाओं के वर्णन में प्रायः सभी पुराणों में ब्रह्म के सगुण रूप का ही विशद विवेचन हुआ है। यही बात है कि अवतारवाद पुराणों का एक विशेष अंग बन गया है। ब्राह्म, शैव, शाक्त, भागवत आदि सभी पुराणों में ब्रह्म के नाना रूपों की कल्पना कर उनके अवतारों की चर्चा की गई है। उनकी कथाओं और माहात्म्य से पुराण भरे पड़े है। एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि इन अलौकिक कथाओं के सूत्र वैदिक साहित्य में भी मौजूद है। इस विषय को उठाकर श्री रामदास गौड़ ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुत्व' में एक मत इस प्रकार उद्धृत किया है

१—हिन्दुत्व गौड़ पृ० १६२

वैदिक ग्रन्थों में देवतत्व का जिस प्रकार आभास है, वही पुराणों में विकृत रूप होकर बड़े पैमाने में दिखाई पड़ता है। पहले के देवताविशेष अनेकानेक उपाख्यानों में रूपान्तरित और परिवर्तित हो गये हैं। जैसे विष्णु शब्द सूर्य के अर्थ में वेदों में आया है, परन्तु पुराणों में सूर्य से बिलकुल भिन्न एक अलग देवता का नाम है, जिसका माहात्म्य पुराणों में भर दिया गया है और जिसके अवतारों की कथा का विकास कर दिया गया है। भक्तजनों ने दूसरों के सुशोभन अलङ्कारों का अपहरण करके अपने-अपने इष्टदेव का मनमाना शृङ्गार किया है। इस तरह ऊधो की पगड़ी माधो के सिर पहरा कर हिन्दू धर्म का एक नया रूप गढ़ लिया है। इस प्रकार हिन्दू शास्त्र क्रमशः परिवर्तित और विपर्यस्त हो गया।[1]"

यह मत यद्यपि पक्षपातपूर्ण और एकांगी है फिर भी इसमें इतना सत्य अवश्य है कि बहुत-सी पौराणिक कथाओं के सूत्र वैदिक साहित्य में मिल जाते हैं। पुराणों में अवतारों की चर्चा विशेष रूप से की गई है और यह अवतारों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। भागवत धर्म के विकास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यह अवतार चर्चा वैदिक काल में ही होने लगी थी। ऋक्संहिता के अनेक सूत्रों में विष्णुविषयक मन्त्र हैं। शिवजी का नाम उसी में रुद्र आया है और यजुर्वेद में तो रुद्र की पूर्ण स्तुति ही की गई है। वाजसनेयी संहिता की शतरुद्री में शिवजी के अनेक नाम गिनाये हैं, जैसे शिव, गिरीश, पशुपति, नीलग्रीव, शितिकण्ठ आदि। इसी संहिता में शिवा और अम्बिका का भी उल्लेख हुआ है।[2] ब्राह्मण ग्रन्थों में तो अवतार का उल्लेख और भी स्पष्ट है जैसे शतपथ ब्राह्मण में मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वाराह अवतार और वामनावतार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[3] तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) में कूर्मावतार का, तैत्तिरीय संहिता (७।१।५।१) और तैत्तरीय ब्राह्मण (१।१।३।५) में वाराह अवतार का तथा तैत्तरीय आरण्यक (१०।१।६) में वासुदेव श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है। उपनिषदों में भी अवतार विषयक उल्लेख मिलते हैं। छान्दोग्योपनिषद् (३।१७) में देवकी पुत्र कृष्ण का उल्लेख है। ऋग्वेद अष्टम मण्डल ७४ वें मन्त्र के द्रष्टा ऋषि कृष्ण बताये गए हैं और इसी मण्डल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४ वे सूक्तों के ऋषि का नाम भी श्रीकृष्ण है। कौशीतकी ब्राह्मण में भी आङ्गिरस ऋषि और कृष्ण का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में हमें पौराणिक देवताओं की कथाओं के सूत्र मिल जाते हैं। पुराणों की कथाएँ अधिकतर रूपक हैं और उनमें कल्पना का योग भी बहुत अधिक है। हमें तो ऐसा लगता है कि कालक्रम से अवतारों के रूप भी बदलते गये हैं और एक अवतार तथा देवता की कथा को दूसरे अवतार अथवा देवता की कथा से जोड़ दिया गया है। कूर्म और वाराह अवतारों की कथाएँ ब्रह्मा के अवतार की कथा हो गई है फिर थोड़े बहुत अन्तर से वे ही घटनाएँ विष्णु से अथवा सूर्य या शिव से या शक्ति से जोड़ दी गई है। वैदिक साहित्य और पुराण साहित्य को साथ-साथ रख कर पढ़ने से ऐसा लगता है कि वैदिक साहित्य में जो कथाएँ प्रसंग रूप में कही गई हैं, उन्हीं का बढ़ा चढ़ा वर्णन पुराण साहित्य में किया गया है। जब एक छोटी सी कथा बृहदाख्यायिका का रूप धारण करती है तो उसमें बहुत-सी अवान्तर कथाओं का भी समावेश हो जाता है। फिर जब उसी कथा को साम्प्रदायिकता का रूप दे दिया जाता

---

१ हिन्दुत्व पृ० १६५

२ वाजसनेयी संहिता ३५।१६।१

३ शतपथ ब्राह्मण १।८।१।२।१० १।४।३।५ १४।१।२।११ तथा १।२।५।१-७

है तो उसमे अतिशयोक्ति का ठिकाना नही रहता और वह कथा एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लेती है।

सभी पुराणो का उद्देश्य साधारण रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति की उपासना और मुख्य रूप से किसी एक देव की उपासना है। ब्रह्मा की उपासना का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया है और ऐसा लगता है कि ब्रह्मा की उपासना का स्थान गणेश ने ले लिया हो। साम्प्रदायिक दृष्टि से १८ पुराणों के विषय मे स्कन्द पुराण के केदारखण्ड के पहले अध्याय मे यह उल्लेख मिलता है कि १० पुराण शैव हैं, ४ ब्राह्म, २ शाक्त और २ वैष्णव। इसी सम्बन्ध में इस पुराण के शिवरहस्य खण्ड के अन्तर्गत सम्भव काण्ड मे इस प्रकार लिखा है कि—शैव, भविष्य मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौर्म, वामन और ब्रह्माण्ड ये १० पुराण शैव हैं। वैष्णव, भागवत, नारदीय और गरुड ये चार पुराण वैष्णव है। ब्राह्म और पाद्म ये दो पुराण ब्रह्मा के है। अग्नि पुराण अग्नि का और ब्रह्मवैवर्त सूर्य का है। जो पुराण जिस देवता से सम्बन्ध रखता है, वह उसी को श्रेष्ठ और अन्य देवताओ का स्रष्टा मानता है। इन पुराणों के सूक्ष्म विवेचन और अध्ययन से पता चलता है कि पहले शिव की उपासना का विशेष महत्त्व रहा होगा। धीरे-धीरे शिव और विष्णु मे साम्य स्थापित हुआ और फिर विष्णु को महत्त्व प्रदान किया गया। इन पुराणो में भिन्न-भिन्न कल्पो की कथाएँ है, और धार्मिक और सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से ये कथाये बडी महत्त्वपूर्ण है। पुराणो के आधार में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और प्रत्येक पुराण ने शेष १७ पुराणो की नामावलि और श्लोक-संख्या जुडती गई। पुराणो की जो श्लोक संख्या दी गई है वह सबमें अलग अलग है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पुराणो की श्लोक-संख्या में संवर्द्धन-कार्य बराबर चलता रहा।

परम्पराएँ और वंशावलियाँ

पुराणो का दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग परम्पराएँ और वशावलियो का विवेचन है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भाग बडा महत्वपूर्ण है। हो सकता है प्रारम्भ में पुराण संहिता की रचना ही उसी उद्देश्य से हुई हो, क्योकि वैदिक साहित्य तो धार्मिक साहित्य है। ऐतिहासिक परम्पराओं की रक्षा उसका उद्देश्य नही है। धार्मिक कृत्यों अथवा धर्म के विस्तार के सम्बन्ध में जो घटनाएँ उल्लेखनीय समझी गई, उनका सक्षेप मे विवरण वैदिक साहित्य मे मिल जाता है। वीर आर्यो के चरितो का पूर्ण विवेचन धार्मिक साहित्य मे न तो सम्भव ही था और न आवश्यक ही। इसलिए उस विषय के निमित्त पुराण-संहिता की रचना हुई होगी। वैदिक साहित्य, जिसका बहुत-सा अङ्ग आज भी अक्षुण्ण है, इस बात का प्रमाण है कि उस समय के समृद्ध समाज में इतिहास को सुरक्षित रखने का कोई साधन अवश्य रहा होगा और वह साधन पुराण-संहिता ही प्रतीत होता है। वैदिक साहित्य का निर्माण ऋषियो ने ग्रामों और नगरो से दूर आश्रमो और जंगलो मे किया होगा। उनके समय के राजाओ के चरित्र और वशावलियों का उन्हे पूर्ण ज्ञान रहा हो, इसमें सन्देह है। उन सबका संकलन पुराणकारो ने अलग से ही नगरो मे किया होगा। आगे चलकर जब पुराणो को साम्प्रदायिक रूप दिया गया और वे धर्म की भी व्याख्या करने लगे तो उनका रूप अव्यवस्थित हो गया होगा। रामायण, महाभारत और लगभग १३ अन्य पुराणो मे क्षत्रियो की ही वंशावलियाँ दी गई हैं ब्राह्मणों की वशावलियाँ तो अपूर्ण-सी ही हैं ऐसा लगता

है कि प्राचीन काल मे दो प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित थी, क्षत्रिय परम्परा और ब्राह्मण परम्परा। ब्राह्मण परम्परा का वैशिष्ट्य धार्मिकता में था और क्षत्रिय-परम्परा का ऐतिहासिकता मे। जब क्षत्रिय परम्परा के सुरक्षित रखने का कार्य भी ब्राह्मण-विद्वानो के हाथ मे आया तो दोनो के सम्मिश्रण मे कुछ व्यवस्था बिगड गई। श्री एफ० ई० पर्जिटर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Ancient Indian Historical Tradition मे इस विषय पर विस्तार से लिखा है और क्षत्रिय व ब्राह्मण वंशावलियो की पुराणो के अनुसार सूचियाँ भी प्रस्तुत की है। वैदिक और पौराणिक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं—

"The Vedic Literature gives us notices of ancient times from the brahmanic and religious points of view. and ksatriya tradition enables us to picture ancient India and its political conditions from the ksatriya stand point The ksatriyas manifestly played the most important part in the Aryan Conquest of India, and if we wish to discover and estimate, what their position and achievements were it is essential to study their traditions, for as will be shown, the Puranic genealogies and they alone, give an account how the Aila race dominated all the regions to which we assign the Aryan occupation, while the brahmanic literature contains no inkling whatever of that great transformation,"[1]

अर्थात् वैदिक साहित्य द्वारा जो हमे सूचना मिलती है, उसका आधार ब्राह्मणीय और धार्मिक दृष्टिकोण है। पौराणिक साहित्य द्वारा क्षत्रिय परम्पराओ का पता चलता है और उनसे उसी दृष्टिकोण से भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है। आर्यो द्वारा भारत-विजय मे क्षत्रियो का महत्वपूर्ण कार्य रहा है, और यदि हम उनकी स्थिति और कार्यो का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है, तो उनकी परम्पराओ का अध्ययन आवश्यक है। यह पौराणिक वशावलियो के द्वारा हो सकता है। ब्राह्मण साहित्य मे बहुत-सी उन बातो का उल्लेख भी नही है, जिनका पुराणों मे पूरा विवरण है। जैसे ऐल जाति, जो सारे ही आर्यो के क्षेत्र मे राज्य कर रही थी, उसका नाम तक वैदिक साहित्य मे नही आया है। पार्जिटर ने, जो वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे दोषारोपण किये है, वे पक्षपात पूर्ण और सदोष है। उनकी मान्यता वैदिक साहित्य और पौराणिक साहित्य को समकक्ष मानकर चली है और इसीलिये वे वेदो मे भी ऐतिहासिकता की खोज करते है। वस्तुस्थिति तो यह है कि वेदो मे जिन राजाओं का उल्लेख है, वे पुराण-सहिता के निर्माण-काल मे बहुत पहले के है और पुराणो की बहुत-सी कथाओं का निर्माण उनके आधार पर हुआ है। पार्जिटर का यह कथन अवश्य विचारणीय है कि वैदिक और पौराणिक परम्पराओ को सुरक्षित रखने के साधन अलग-अलग थे। हो सकता है कि पौराणिक परम्पराओ की रक्षा प्रारम्भ मे सूतो और भाटों के द्वारा ही की जाती हो और आगे चलकर यह काम भी विद्वान ब्राह्मणों द्वारा ही होने लगा हो। यह कहना बडा कठिन है कि वेदों का प्रारम्भ किस रूप मे हुआ था? सहिताओ का जो रूप आज उपलब्ध है, उसके सम्बन्ध मे पौराणिक परम्परा यह है कि

1 Ancient Indian Historical Tradition by F E Pargiter Page 8–9

द्वापर मे पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा उनका सम्पादन हुआ था . महाभारत, वायुपुराण विष्णु पुराण और कूर्मपुराण—सभी मे इस कथन को दोहराया गया है, परन्तु वैदिक साहित्य मे इस प्रकार की उक्ति कहा नही मिलती। यहाँ तक कि व्यास का नाम भी तैत्तिरीय आरण्यक मे दूसरे ही रूप मे आया है। पौराणिक परम्पराओं का जहाँ तक सूत और मागधो से सम्बन्ध है, कई पुराणो मे उसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पार्जिटर के के आधार पर इस सूत-मागध वाली परम्परा को हम सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते है।

वायु और पद्म पुराणो से ज्ञात होना है कि सूत लोगों ने किस प्रकार वशानुगत कथाओ और वीरगीतो को सुरक्षित रखा। उक्त पुराणों मे सूत के कर्तव्यो का भी उल्लेख है। वायु पुराण[1] के अनुसार पुरातन सत्पुरुषो ने सूत का धर्म देवताओं, ऋषियो, अतीव तेजस्वी भूपतियो एव प्रसिद्ध महात्माओ की, जिनका उल्लेख इतिहास पुराणो मे ब्रह्मवादियो ने किया है, वशपरम्परा की रक्षा से निश्चित किया है। यही बात पद्म पुराण मे मे इस प्रकार कही गई है—

एष धर्मस्तु सूतस्य सद्भिर्दृष्ट. सनातनै.।
देवतानामृषीणा च राज्ञाममिततेजसाम्।
तद्वशकारण कार्य स्तुतीना च महात्मनाम्।
इतिहास पुराणेषु द्रष्टा ये ब्रह्मवादिन ।[2]

अर्थात् प्राचीन आप्त पुरुषो के अनुसार सूत का धर्म देवताओं ऋषियो और तेजस्वी राजाओं के वंश का वर्णन और उन महात्माओ की स्तुति करना है, जो इतिहास और पुराणो मे ब्रह्मवादी माने गये है।

यहाँ पर सूत शब्द से उस जाति विशेष से तात्पर्य नही है, जो क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता के सयोग मे उत्पन्न हुई[3]। सूत शब्द का इसअर्थ मे प्रयोग बहुत पीछे हुआ। यहाँ सूत शब्द का प्रयोग 'मागध' की भाँति भाट-विशेष के अर्थ में हुआ है। सूत और मागध दोनो की ही उत्पत्ति वेन के पुत्र पृथु के समय में बताई गई है।[4] प्रथम सूत और मागध की उत्पत्ति पृथु के यज्ञ मे हुई और उसने अनूप अथवा सूतप्रदेश सूत को तथा मागधप्रदेश मागध को दिया। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि सूत अनूप अर्थात् बंगाल या सूत (मगध के उत्तर का जनपद) के निवासी थे और मागध मगध के। इस सूत-जाति से मनु द्वारा प्रतिपादित सूत जाति का स्पष्ट पार्थक्य दिखाया गया है। मूल सुतों के कार्य को पीछे की वर्णसकर जाति को सुपुर्द करने के कारण ही उसका सूत नाम पड़ा। इसके अतिरिक्त

---

१ स्वधर्म एव सूतस्य सद्भिर्दृष्ट पुरातनैः।
देवतानामृषीणा च राज्ञां चामिततेजसाम्।
वंशानां धारणां च कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभि॥ वायु० पु० १-३१-२

२ पद्म पुराण ६ १ २७—

३ [illegible] १० ११ ११

न्हे रथादि हाकने और चिकित्सा के जघन्य कार्य भी दिये गये। कौटल्य के अर्थशास्त्र मे भी इन दोनो सूत-जातियों का स्पष्ट शब्दो मे अन्तर बताया गया है। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण की संतति सूत का उल्लेख करके कौटल्य ने कहा है—

"पौराणिकस्त्वन्य सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद् विशेषः।"

अर्थात् पुराणो मे प्रसिद्ध सूत और मागध ब्राह्मणी और क्षत्रिय मे प्रसूत सूत से भिन्न है।

इन सूतो का कार्य परम्परा के अनुसार देवो, ऋषियो और राजाओं की वंशपरिपाटी को अक्षुण्ण बनाये रखना था। परम्परा का सकेत स्मृति' (याद किया हुआ) 'अनुशुश्रम ' (हमने परम्परा से सुना है) 'इति न श्रुतम्' (यह हमने सुना है) 'इति श्रुतम्' (यह सुना गया है) और 'इति श्रुतिः' शब्दों से मिलता है। यद्यपि 'श्रुति' शब्द का सामान्य अर्थ 'पवित्र लेख' अथवा पवित्र परम्परा है तथापि पुराणो मे श्रुति शब्द 'सामान्य परम्परा' का द्योतक है। पुराणो में 'इति श्रुतिः' का प्रयोग अनेक स्थलो पर हुआ है और जिन-जिन विषयो के सम्बन्ध में इन का प्रयोग हुआ है उनका उल्लेख वैदिक साहित्य मे नहीं मिलता। वायु और हरिवंश पुराणो मे सगर के साठ सहस्र पुत्रो की उत्पत्ति की कथा आई है जिसका प्रतिपादन 'इति श्रुति' शब्दो से किया गया है परन्तु वैदिक साहित्य इस विषय मे मौन है।[1]

वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु और भागवत पुराणों में पुराणो के मूल आविर्भाव का वर्णन तीनो से सर्वथा पृथक् है। प्रथम तीन पुराणो के अनुसार कृष्णद्वैपायन ने वेद को चार भागो में विभाजित किया और उनका सम्पादन किया इसी लिये उन्हें 'व्यास' कहा जाता है। वेद के इन चारो भागों को उन्होने अपने चार शिष्य पैल, वैशम्पान जैमिनि और सुमन्तु के सुपुर्द किया। इसके पश्चात् अनेक शताब्दियो से चले आते हुए आख्यानो, उपाख्यानो, गाथाओ और कल्प विषयक उक्तियों से पुराण[2] का सग्रह कर उन्होने इतिहास के साथ-साथ उसे अपने पाँचवे शिष्य 'सूत रोमहर्ष' या 'लोमहर्षण' को पढाया। महाभारत की रचना उन्होने पुराणों के पश्चात् की जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट भी है[3]—

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुत।
भारताख्यान मखिल चक्रे तदुपबृंहितम्।

अर्थात् सत्यवती के पुत्र व्यास ने अठारह पुराणो की रचना करके उन्ही से सम्बन्धित 'महाभारत' की रचना की। कुछ भी हो इस उल्लेख से उस सामग्री का तो पता चलता ही है जिससे पुराणो का सग्रह किया गया। यह कहा जा चुका है कि सूत लोग अति पुरातन काल से ही देवताओ, ऋषियो और राजाओ की वंशपरम्परा को अन्धकार के गर्त मे जाने से बचाते आ रहे थे। अनेक परम्पराएँ तथा सुप्रसिद्ध महापुरुषो के प्रशस्तिगीतो को वे पैतृक-सम्पत्ति के रूप में निरन्तर प्राप्त करते आ रहे थे और यही वह सामग्री थी जिससे

---

१ देखिये, वृष्णु-पुराण ८, ५८ तथा हरिवंश १५—८०२

२ आख्यानै श्चाप्युपाख्यानै गाथाभि, कल्पजक्तिभि।
पुराण-संहिता चक्रे पुराणार्थविशारदः।

३ ब्रह्माण्ड०२ ३४ २१ वायु० ६० २१ तथा विष्णु० ३—६ १६

पुराणों का सकलन हुआ धार्मिक मन्त्रों के वेदों में सकलित होने के पश्चात् यह स्वाभाविक ही था कि तदतिरिक्त प्राचीन कथानकों और गाथाओं का संग्रह पुराण में किया जाता।

व्यास द्वारा निर्मित पुराण संहिता के रोमहर्षण ने ६ पाठान्तर किये और उन्हें अपने ६ शिष्यों को पढ़ाया जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यद्यपि ये सभी पाठान्तर आज उपलब्ध नहीं तथापि उक्त व्यक्तियों में से रोमहर्षण के अतिरिक्त अन्य कई वक्ता अथवा प्रश्नकर्त्ता के रूप में कुछ पुराणों और महाभारत में दीख पड़ते हैं। सावर्णि, काश्यपेय और वैशम्पायन वायु और ब्रह्माण्डपुराण में आते हैं[1] जो प्राचीनतम पुराणों में से हैं और मूल रूप में एक ही थे। जिन प्रसङ्गों में इन व्यक्तियों का उल्लेख है वे उन प्राचीन पुराणों के अवशेष हो सकते हैं जिनका इन दिनों में अन्तर्भाव हो गया है। रोमहर्षण ने व्यास द्वारा प्रणीत मूल पुराण को अपने पुत्र सौति उग्रश्रवा;[2] को पढ़ाया जो वर्त्तमान कतिपय पुराणों में वक्ता रूप में भी आता है।[3] इस समय तक जीविका के लिये पुराणों की कथा कहना सूतों का अधिकार था[4] किन्तु जैसा कि रोमहर्षण के ६ शिष्यों में से कम से कम पाँच ब्राह्मण थे। इस प्रकार सूतों से यह ब्राह्मणों के हाथ में आ गया। कालक्रम से से मूल पुराण विकसित होता हुआ अनेक पुराणों के रूप में परिणत हो गया, संस्कृत की विद्वत्ता ब्राह्मणों के ही बाँटे पड़ी तथा निःसकोच नवीन साम्प्रदायिक पुराणों की रचना हुई।

पुराण के उल्लिखित मूल उद्गम की पुष्टि तत्तत् पुराणों में आये हुये अनेक सकेतों से भी होती है। अतीव प्राचीन काल से अनुश्रुत विषयों के बहुत से सकेत वायु और ब्रह्माण्ड आदि पुराण में खोजे जा सकते हैं। यह सामग्री पुराण का संकलन होने से भी बहुत प्राचीन समय की है। ययाति की कथायें[1], और मांधाता[2], कार्त्तवीर्य अर्जुन[3], अलर्क[4], रन्तिदेव[5], नृग[6] तथा अन्य ऐसे ही नृपतियों की प्रशस्तियाँ उदाहरण के रूप में रखी जा सकती है। इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि ऐसे व्यक्तियों का जिनका कार्य प्राचीन वंशपरम्पराओं, और आख्यान आदि का ज्ञान रखना था, यत्र-तत्र प्राचीन घटनाओं के विषय में अधिकारी के रूप में उल्लेख भी मिलता है तथा अनेक पारिभाषिक शब्द भी, जो उनके लिये प्रयुक्त हुए हैं, इस तथ्य का समर्थन करते हैं। उदाहरणार्थ 'पुराविद्' शब्द को ही लीजिये। यह शब्द वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में उन व्यक्तियों के लिए आया है जिन्होंने यादव राजा शशबिन्दु की वंश परम्परा का वर्णन किया और पितरों[8] के गीत गाये।

१ ब्रह्माण्ड० २-३५—६३-७० तथा वायु ६१—५४-६२
२ ब्रह्माण्ड ४-४-६७, पद्म० ५-१-२-१४, महाभारत १-५—८६३-६७
३ हरिवंश १-११-१४, पद्म० ५.१-११ ब्रह्मवै ६
४ कूर्म०—१-१४-१५
१ ब्रह्माण्ड०, ३,—६८,६६-१०३, वायु ९३, ९४-११९, ब्रह्म० १०,३१-४६, हरि० ३०-१६३८-४५
२ ब्रह्माण्ड ३, ६३, ६९-७०, वायु० ८८, ६७-९
३ ब्रह्माण्ड ३, ६९-१९, वायु० ९४-१९
४ ब्रह्माण्ड० ३, ६७—७०-७१, वायु० ९२, ६६-६७, हरि० २९-१५८८-९०
५ म० भा० ७, ६७—२२६९-७३
६ म० भा० ३, ८८—८३२९-३०
७ वायु० ९५-१९, ब्रह्माण्ड ३, ७०, २०
८ ब्रह्माण्ड ३ १९ ९ वायु ८३ १०

बाद मे इस शब्द का प्रयोग पुराण के अतिरिक्त स्तुति-गायको के लिये भी होने लगा भागवत मे इस शब्द का प्रयोग कृष्ण चरित का गान जिन्होने किया उनके लिये हुआ है[१] 'पुराणज्ञ, पुराणविद्' पौराणिक और पुराणिक शब्द यद्यपि सामान्य रूप से पुराणवेत्ता के लिए आये है तथापि कभी कभी प्राचीन आख्यानों और कथाओं को जानने वाले के लिए भी इनका प्रयोग हुआ है।[२] पौराण शब्द प्राय: प्राचीन के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है परन्तु कभी कभी पुराण सम्बन्ध के अर्थ मे भी आया है।[3] इन सब बातों से प्रकट होता है कि वेदों के साथ साथ प्राचीन वंशावलि और कथाओ का भी अध्ययन किया जाता था किन्तु ब्राह्मणो ने अपनी जाति और सिद्धान्तो के सर्वातिशय प्रभाव तथा राजनैतिक वातावरण का लाभ उठा कर वैदिक साहित्य को उठाया जिसके कारण धार्मिकातिरिक्त साहित्य का ह्रास अवश्यम्भावी था।

पुराणों के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि उनमे बहुत से ऐसे समानार्थक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनसे पता चलता है कि पुराण विभिन्न परम्पराओं के व्यक्तियों की कृतियाँ है। सूत और मागधों के हाथ से जब पौराणिक परम्पराओ का काम ब्राह्मणों के हाथो में पहुँचा तो उन्होने पुराणो को धार्मिकता मे पूर्ण करना प्रारम्भ कर दिया और एक समय ऐसा था जबकि 'पुराणविद्' ब्राह्मणो को वेदविद् विद्वानो से निकृष्ट कोटि का समझा जाता था। इसलिए अन्त: साक्ष्य और बहि: साक्ष्य से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर पुराणों की तिथि निश्चित की जा सकती है। वायु पुराण सन् ६२० से पूर्व अवश्य ही वर्तमान था क्योंकि बाण ने अपने हर्ष चरित मे इसका उल्लेख किया है।[४] नेपाल के राजकीय पुस्तकालय मे स्कन्दपुराण की जो पाण्डुलिपि मिली है उससे भी यही ज्ञान होता है कि वह पुराण भी उस समय वर्तमान था। सन् ५०० ई० के कुछ भूमिदान पत्रो पर जो श्लोक मिले है वे केवल पद्म, भविष्य और ब्रह्म पुराण में ही मिलते है अतः ये पुराण सन् ५०० ई० से पूर्व कालीन सिद्ध होते है। सन् ४७५-७६ तथा सन् ४८२-८३ के भूमिदान पत्रों पर जो श्लोक मिले हैं वे व्यास के महाभारत से उद्धृत बताये गये है किन्तु बहुत खोज के बाद भी वे महाभारत मे नही मिलते। ये श्लोक केवल पद्म और भविष्य पुराण मे ही प्राप्त होते है। भूमिदान पत्र की यह त्रुटि इस बात का सकेत करती है कि पुराण तथा महाभारत व्यास रचित ही माने जाते थे तथा महाभारत की प्रसिद्धि अधिक थी। इस प्रमाण को आधार मानकर भी हम इसी निर्णय पर पहुँचते है कि पद्मपुराण अथवा भविष्यपुराण या दोनों ही सन् ४७५ ई० से पूर्व वर्तमान थे। यही बात ब्रह्मपुराण के विषय मे भी कही जा सकती है।

मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में कलियुग के राजवशो का जो वर्णन है उसके सम्बन्ध मे इन पुराणो मे यह उल्लेख मिलता है कि उन्होने यह सामग्री भविष्य पुराण से ली है। इन तीनों पुराणो के अन्त साक्ष्य के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि भविष्यपुराण ईसा की तृतीय शताब्दी के मध्य मे विद्यमान था। मत्स्यपुराण ने तृतीय

---

१ भागवत—१२, २,२३

२ देखिये वायु० ८८ ६९ तथा ७० ७६-७ और ब्रह्माण्ड २ ८ ८३

३ म भा० १ २ ५४३ तथा १ १४६ १३५७५

४ हर्षचरित ३ पैराग्राफ ४

शताब्दी की समाप्ति से पूर्व तथा वायु और ब्रह्माण्ड पुराण ने चतुर्थ शताब्दी में भविष्य पुराण से यह राजवंशी सम्बन्धी सामग्री प्राप्त की। वर्तमान काल में श्री वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित भविष्य पुराण जिस रूप मे मिलता है। उसमें राजवंश सम्बन्धी वह सामग्री विद्यमान नहीं है। यह वास्तव में मूल भविष्य पुराण का विकृत रूप है क्योंकि इसमे समय-समय पर प्रक्षिप्त अंश जोडे जाते रहे है। आपस्तम्बीय धर्मसूत्र के अध्याय तीन मे भी भविष्य पुराण का उल्लेख मिलता है। पुराणो की रचना आपस्तम्ब से बहुत पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। ब्हूलर के मतानुसार आपस्तम्ब धर्मसूत्र का रचनाकाल ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के पश्चात् का नहीं है इसकी रचना सम्भवतया इस काल से १५०–२०० वर्ष पूर्व हुई। इस धर्मसूत्र मे भविष्यपुराण के उद्धरण मिलने से यह सिद्ध होता है कि उस समय तक भविष्य पुराण काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था। इस ख्याति की प्राप्ति करने मे न्यूनतम अर्ध शताब्दी अवश्य लगी होगी। अत भविष्य पुराण को ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के बाद का नहीं माना जा सकता। यदि आपस्तम्ब धर्मसूत्र का रचनाकाल और भी १५०–२०० वर्ष पूर्व का मान लिया जाय तो हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि पुराणो का अस्तित्व ईसा पूर्व पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ मे था।

कौटल्य ने सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद को वेदत्रयी माना है। उसने लिखा है कि अथर्ववेद तथा इतिहास वेद भी वेद है अर्थात् कौटल्य ने इतिहास और वेद को समकक्ष माना है और अथर्ववेद को इतिहास के साथ गिना है। इतिहास की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कौटल्य ने उसे पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उद्धरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र मे अन्तर्भूत किया है। इस प्रकार कौटल्य ने पुराण के महत्व पर अधिक बल दिया है। आगे भी कई स्थलो पर राजकुमारो की शिक्षा के सम्बन्ध मे पुराण और पौराणिक शब्दो का प्रयोग किया है। यह पौराणिक निश्चित रूप से सूत और मागध से भिन्न रहा होगा। पौराणिक ब्राह्मण जाति का पुराणवेत्ता विद्वान् होता था। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक पौराणिक परम्परा विद्वान् ब्राह्मणो के हाथ आ चुकी थी और सूत और मागध नाम पुराने पड चुके थे। इस प्रकार पुराणो का अस्तित्व कौटल्य से भी बहुत पुराना ठहरता है। वैदिक साहित्य मे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिल जाते है।

पुराणों की रचना कब तक होती रही यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। महाभारत तक की घटनाओं का पुराणों मे विस्तार से वर्णन मिलता है, पर श्रीकृष्ण और पाण्डवो के अनन्तर जिन राजवंशो का उल्लेख विशेषता से पुराणो में हुआ है, उनमे प्रधान रूप से हस्तिनापुर, अयोध्या और मगध के राजवंश हैं। बुद्धकालीन राजवंशो की चर्चा भविष्य मे होने वाले राजवंशो के रूप मे की गई है। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत काल से लगभग सौ वर्षो तक पुराणों की रचना होती रही, और पुराण-परम्परा मुख्य रूप से सूतों और मागधो के हाथों में रही। इसके अनन्तर यह परम्परा ब्राह्मणो के हाथों पड़ी। ब्राह्मण परम्परा के पुराणों में ऐतिहासिकता की अपेक्षा धार्मिकता का पुट अधिक मिलता है। इस समय उपलब्ध पुराणो के विभिन्न संस्करणों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पुराणो मे दो प्रकार की कथाएँ मिलती है—(१) सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से कही गईं, काल्पनिक कथाएँ अथवा अन्योक्ति वा प्रतीक रूप में कथित कथाएँ (२) ऐतिहासिक ऐतिहासिक

ो में भी कुछ कथाएँ वशिष्ठ नारद आदि ऋषियों से सम्बद्ध हैं, कुछ

शुद्ध हैं और कुछ मिश्रित हैं क्षत्रिय उपाख्यानो मे भी महत्व ब्राह्मणो का ही है। ऐसी परिस्थिति में पुराणों से शुद्ध ऐतिहासिक तथ्य खोजना बडा दुस्कर कार्य है। कुछ वंशावलियो और परम्पराओ का परिचय पुराणो से अवश्य मिल सकता है। पुराण-साहित्य में स्पष्ट ऐतिहासिकता के अभाव का मूल कारण ब्राह्मणो की दार्शनिकता और अध्यात्म परक प्रवृत्ति ही है। ब्राह्मणो के हाथ मे पडकर पुराणो का उद्देश्य इतिहास निरूपण न होकर धर्म और अध्यात्म निरूपण हो गया, इसलिए एक ही नाम के पात्र से सम्बद्ध कथाओ में बहुत अधिक भेद हो गया है। इस प्रकार के वैभिन्न और भेदवाली बहुतसी कथाओ के उदाहरण पुराणों से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कई स्थलो पर तो ऐतिहासिक राजाओ और ऋषियों का सम्बन्ध प्रतीकात्मक राजाओं और ऋषियों से हो गया है। यही कारण है कि पुराणों के बहुत से पात्र देश और काल की दृष्टि से सारी बौद्धिक सीमाओं को पार करते हुए एक समस्या बन जाते हैं। इस प्रकार ऐतिहासिकता पर ब्राह्मणो की उर्वरा कल्पना का ऐसा रंग चढा कि वह आज तक फीका नही हो पाया है। कथाओ और आख्यानों की अव्यवस्था के साथ-साथ देश और काल की भी पूर्ण अव्यवस्था हुई। एक स्थान और काल मे उत्पन्न हुए राजा अथवा ऋषि का सम्बन्ध न जाने किन-किन स्थानो और कालो से जोड दिया गया। इसलिए पुराणों से ठीक-ठीक भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन कार्य है। इतना होते हुए भी पौराणिक आख्यानों और कथाओ मे से ऐतिहासिकता और भौगोलिकता अवश्य खोजी जा सकती है।

प्राय. सभी प्राचीन पुराणो मे वंशावलियो का उल्लेख है। वराह, वामन, स्कन्द, नारदीय, ब्रह्मवैवर्त्त तथा भविष्य पुराण मे सुदूर अतीत का वर्णन अपेक्षाकृत कम है। महाभारत और रामायण से भी बहुत सी वंशावलियो का विवरण प्राप्त होता है। रामायण और महाभारत के अतिरिक्त सुदूर अतीत का वर्णन करने वाले पुराण, वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, हरिवंश, मत्स्य और विष्णु हैं। इनमे वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन पुराणों के सस्करण भी अधिक नही हुए हैं और विषय भी समान ही है। ऐसा लगता है कि ये दोनो पुराण एक ही सहिता के दो रूप हैं। अन्य पुराणो में दी हुई पुराणों की सूची से भी यह बात सिद्ध हो जाती है क्योकि उनमे वायु पुराण का उल्लेख नही मिलता। कूर्म पुराण मे वायवीय ब्रह्माण्ड का उल्लेख मिलता है। केवल वायु पुराण और गरुड़ पुराण मे दोनो का अलग से उल्लेख हुआ है। दोनो पुराण वायु-प्रोक्त कहे गये है। विषय की दृष्टि से ये दोनो पुराण अति प्राचीन कहे जा सकते हैं वायु और ब्रह्माण्ड की भाँति ब्रह्म पुराण और हरिवंश पुराण मे भी विषयगत समानता है। इन दोनों पुराणों के भी कई संस्करण उपलब्ध होते हैं। सस्करणों की विभिन्नता के कारण इनके काल का निर्णय करना बडा कठिन है। अन्त साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि इन दोनो पुराणो की रचना, या कम से कम उपलब्ध सस्करण वायु पुराण से बाद के हैं। मत्स्य पुराण मे भी वशावलियो का विवरण है जिनका विचार तीन खण्डो मे किया जा सकता है—(१) इक्ष्वाकु शर्याति तथा अन्य मनु के पुत्रो का वर्णन (२) ऐलो से लेकर ययाति तक का वर्णन और (३) यादव कौरव आदि ऐल जातियों का विवरण। तीसरी कोटि का विवरण वायु पुराण से मिलता-जुलता है जबकि पहली और दूसरी श्रेणी का वायु पुराण मे कुछ नामो मे भी भेद है और विस्तार मे भी। पद्म पुराण का विवरण मत्स्य पुराण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है विष्णु पुराण मे गद्य का प्राधान्य है यत्र-तत्र पद्य का समावेश है इसके विवरण वायु तथा हरिवंश पुराण से

मिलते हैं। पद्म पुराण मे ब्राह्मणत्व का आरोप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऐसा लगता है कि इस पुराण की रचना समग्ररूप मे हुई होगी और किसी निश्चित योजना के आधार पर इसे लिखा गया होगा। बुद्ध और जैन धर्म के विवरण इस बात को प्रमाणित करते है कि इसकी रचना बहुत बाद की है। गरुड, अग्नि और भागवत पुराणो से प्राय सभी वंशावलियो का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि इन पुराणो का नये सिरे से सम्पादन हुआ हो। श्रीमद्भागवत की चर्चा हम विस्तार मे आगे करेगे। इन पुराणो मे वशावलियो का परिचय बडे सक्षिप्त रूप मे दिया गया है। गरुड और भागवत पुराण मे परम्पराएँ वायु पुराण के समान है और अग्नि पुराण मे मत्स्य पुराण के समान है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन तीनों पुराणो का अपना महत्त्व है क्योंकि इन पुराणो मे विशेषकर भागवत पुराण—में वशावलियो के संकेत और सन्दर्भ सब पुराणो मे अधिक है लिङ्ग पुराण का आधार वायु पुराण ही है और कही-कही तो दोनो पुराणों के श्लोक भी समान ही है, कही-कही मत्स्य पुराण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए लिङ्ग पुराण का बडा महत्त्व है। कूर्म पुराण मे वायु और मत्स्य दोनो का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। ब्राह्मण परम्परा की इसकी कथाओ के पूर्ण समावेश है। इसीलिए देश और काल की सगति इस पुराण में नही बैठती। शिव पुराण मे मनु और उसकी सन्तान इक्ष्वाकु और शर्याति का विवरण है। आधार हरिवंश पुराण है पर न तो हरिवंश पुराण के समान विस्तार ही है और न व्यवस्था। मार्कण्डेय पुराण मे मनु की सन्तान और वैशाल वश का वर्णन है। सास्कृतिक दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का बडा महत्त्व है।

इन पुराणों मे जिस प्रकार क्षत्रियों की वंशावलियाँ दी गई हैं उसी प्रकार कुछ पुराणो मे प्रधान प्रधान ब्राह्मण वशो का विवरण भी दिया हुआ है। ब्रह्माण्ड, वायु और मत्स्य पुराण इस दृष्टि से बडे महत्त्वपूर्ण है। लिग, कूर्म और मार्कण्डेय पुराणों मे भी वशावलियो के सकेत है। ब्राह्मण वंशावलियों का सम्बन्ध अधिकांश में वैवस्वत मन्वन्तर से है और कुछ का स्वायम्भू मन्वन्तर से। ब्राह्मण वशावलियों में कल्पना और धार्मिकता का इतना अधिक पुट है कि उनसे ऐतिहासिकता खोजना दुस्तर कार्य है। पुराणो मे शुद्ध क्षत्रिय और ब्राह्मण वशावलियो के अतिरिक्त क्षत्रोपेत द्विजातियो अथवा क्षत्रिय-ब्राह्मणो की भी वंशावलियाँ हैं। क्षत्रिय से ब्राह्मण होने की अनेक कथाएँ पुराणो मे भरी पडी है।

इस प्रकार पुराण साहित्य वशावलियो और परम्पराओं का एक निधि है परन्तु इन सबको सम्बद्ध करके भारतवर्ष का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। श्री एफ० ई० पार्जीटर ने पहली बार इन सब सूत्रो को सम्बद्ध करने का प्रयास अपनी पुस्तक (Ancient Indian Historical traditions) मे दिया है पर इस प्रयास को महत्त्वपूर्ण समझते हुए भी मै अपूर्ण ही मानता हूँ क्योंकि पार्जीटर महोदय ने पुस्तक के प्रारम्भ मे ही अपना दृष्टिकोण एक विशिष्ट प्रकार का बना लिया है। ब्राह्मण परम्पराओ के प्रति वे एक अनास्थाभाव लेकर चले है दूसरे काल-निर्णय मे वे पाश्चात्य विद्वानो के मत से ही अधिक प्रभावित रहे है। तीसरे पुराणों के अतिरिक्त इतिहास सम्बन्धी अन्य भारतीय की उन्होंने उपेक्षा सी की है फिर भी पार्जीटर महोदय का प्रयत्न विशेषरूप से सराहनीय है

हम पहले ही कह चुके है कि प्राय. सभी पुराणो के मूल विषय समान ही हैं केवल उद्देश्य भेद से उनमे भेद हो गया है। पुराणो के जो संस्करण इस समय उपलब्ध है उनमे प्राधान्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति, गणेश आदि देवताओ के कीर्तन का है पर इतिहास, सभ्यता, संस्कृति और धर्म की दृष्टि से भी उनका बडा महत्व है। इसमे कोई सन्देह नही कि पुराणो के अनेक संस्करण और संकलन हुए है। जिसके कारण उनके विवरण मे इतना भेद आगया है, और वे अलग-अलग सम्प्रदायों के पुराण बन गए हैं। वैष्णव पुराणो मे विष्णु के तथा शैव पुराणों में शकर के इसी प्रकार अन्य पुराणों मे अन्य देवताओ के अवतारो की चर्चा है और उन्ही के माहात्म्यो से पुराण भरे पडे हैं। यह हम पहले ही कह चुके है कि अवतारो तथा उनके माहात्म्यो के मूल सूत्र वैदिक साहित्य मे मिल जाते है। इसमे कोई सन्देह नही कि पुराणो के अधिकाश उपाख्यान रूपक मे प्रस्तुत हुए है। लगभग प्रत्येक पुराण के अन्त मे शेप सत्तरह पुराणो की नामावली दी गई है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह नामावली वाला अंश बहुत बाद मे जोड़ा गया है। सभी पुराणो मे पञ्चदेवोपासना का प्राधान्य है। (विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और शक्ति) ब्रह्मा का प्राधान्य उत्तरोत्तर कम होता गया। प्रत्येक पुराण का मूल उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि इन पाँच देवताओं मे से एक को प्रधान माना जाय और शेष को गौण। ब्रह्मा की उपासना का स्थान शायद गणेश जी ने लिया। पाँचो देवताओ का कार्य विभाग भी अलग-अलग बताया गया है। पुराणो की कथाओ मे जो भेद है, उसका कारण कल्पभेद बताया गया है। बंगला विश्वकोप मे सब पुराणो की विषय-सूची दी गई है। पुराणो के कई संस्करण उपलब्ध है। कुछ पुराणो का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

ब्रह्म पुराण—

इस पुराण की श्लोक संख्या कुछ पुराणो के अनुसार दस हजार और कुछ के अनुसार १३ हजार है। विषय-सूची भी भिन्न-भिन्न रूप से आई है। किसी संस्करण मे किन्ही कथाओ का विस्तार है और किसी संस्करण मे किन्ही का। देवी भागवत के मतानुसार ब्रह्मपुराण पाँचवाँ पुराण है। इस पुराण मे विस्तारपूर्वक तो श्रीकृष्ण की ही कथा दी गई है, पर कहीं-कहीं शिव और राम की कथाएँ भी है। इस पुराण के चौथे एव तेतीसवे अध्याय में ब्रह्मा का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। परन्तु समस्त जगत की उत्पत्ति सूर्य के द्वारा बताकर उसे ही सब देवताओ से अधिक महत्व दिया गया है। पहले यह पुराण ब्रह्मा माहात्म्य-सूचक माना जाता था, जिसका प्रमाण स्कन्द पुराण मे मिलता है। परन्तु इसी पुराण के अन्त मे २४५व अध्याय के २०वें श्लोक में इसे वैष्णव पुराण माना गया है और इस पुराण मे वैष्णव अवतारो की कथा की विशेषता और जगन्नाथ जी के माहात्म्य का कथन भी है, जो इस बात की पुष्टि करता है कि वह वैष्णव पुराण ही है, बगला विश्वकोष के अनुसार ब्रह्म-पुराण के अन्तर्गत २४५ अध्याय है, जिनमे से प्रमुख अध्याय निम्नलिखित है—

१—मङ्गलाचरण, नैमिषारण्यवर्णन, सृष्टिकथनारम्भ।
२—देवादि की उत्पत्ति, दक्ष द्वारा षष्ठि कन्या-सृष्टि इत्यादि।
३—ब्रह्म द्वारा देवगण का अपने-अपने प्रदेश मे अभिषेक और पृथु चरित्त।
४—मन्वन्तर कथारम्भ, महाप्रलय और अल्पप्रलय कथन।
५ सगर भगीरथ का विवरण गगा का भागीरथी -करण

६ भूगोल मे सप्तद्वीप वर्णन

७ -वर्णन

८—पातालादि-सप्तलोक वर्णन ।

९—रौरवादि नरक, स्वर्ग-नरक व्याख्या ।

१०—कृष्ण-द्वैपायन सवाद ।

११—पार्वती-स्वयवर-कथन, स्वयवर मे देवादि का आगमन, शिव-पार्वती विवाह ।

१२—दक्षयज्ञारम्भ, उमामहेश्वर सवाद, दक्ष यज्ञ भग, शिव को यज्ञ भाग आदि ।

१३—विष्णुकृत सृष्टि वर्णन इत्यादि ।

१४—कृष्ण की स्नान विधि और स्नान माहात्म्य ।

१५—विष्णुलोक वर्णन ।

१६—रावण द्वारा कुबेर पराभव और कुबेर द्वारा शिव स्तुति ।

१७—पुरुरवा-उर्वशी सवाद, सरस्वती को ब्रह्मा का शाप और स्त्री-स्वभाव-वर्णन ।

१८—कृष्ण चरितारम्भ तथा कृष्ण सम्बन्धित अनेक कथाएँ ।

१९—वाराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, दत्तात्रेयावतार, जामदग्न्यावतार दाशरथि-रामावतार, श्रीकृष्णावतार और कल्कि अवतार वर्णन ।

२०—महाप्रलय वर्णन और कलिगत भविष्य-कथन ।

केवल श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कथाएँ ही इस पुराण के लगभग पैंतीस अध्यायों में फैली हुई है। बँगला विश्वकोष की सूची से बम्बई में छपे सस्कृत ब्रह्मपुराण की विषय सूची कुछ भिन्न है।

पद्म पुराण—

पद्म पुराण के वर्तमान रूप मे पाँच खंड है—(१) सृष्टि खंड, (२) भूमि खड, (३) स्वर्ग खंड (४) पाताल खंड और (५) उत्तर खड। सृष्टि खंड में ८२, भूमिखड मे १२५ स्वर्ग खंड में ३९, पाताल खंड में ११३ तथा उत्तरखड में २८२ अध्याय हैं। पाताल खड मे श्रीकृष्ण चरित दिया गया है, तथा उत्तर खड मे अवतारों के वर्णन, अनेक माहात्म्य और फिर कृष्ण चरित दिया हुआ है। इसी खड के तीसरे अध्याय से उन्नीसवे अध्याय तक जालन्धर का उपाख्यान है, जिसे खड मे ९८वें अध्याय से १०६ अध्याय तक पुन. ज्यो का त्यो दुहराया गया है।

पद्म पुराण मे प्राय: ५५००० श्लोक हैं, पर ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पद्म पुराण के श्लोकों की संख्या ५९००० है। विष्णु पुराण की सूची के अनुसार इस पुराण का सब पुराणों मे दूसरा स्थान है। इस पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति हिरण्मय पद्म से बतलाई गई है। इस लिए इस पुराण को बुधजनपाद्म भी कहा जाता है। ससार की उत्पत्ति हिरण्मय पद्म से हुई है, इसकी पुष्टि सृष्टि खंड के ३६वे अध्याय से भी होती है, जिसमे हिरण्मय पद्म की कथा है, तथा ससार की उत्पत्ति का सविस्तार उल्लेख है। सृष्टि खंड के प्रथम अध्याय के ५४ से ६०वे श्लोक तक जो वर्णन है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासदेव ने पद्मपुराण के इन ५५००० श्लोकों को पाँच पर्वों मे विभक्त किया था

(१) पौष्कर पर्व (२) तीर्थ पर्व (३) प्रभूत दानकारी राजगण विवरण (४) वंशानुचरित तथा (५) मोक्षतत्व और सर्वज्ञ का निरूपण। प्रथम पर्व में नौ प्रकार से सृष्टि का वर्णन किया गया है एव पितृगण, देवता, मुनियों आदि की कथा है। द्वितीय पर्व मे सप्तद्वीप, सप्तसागर, पर्वतो आदि का उल्लेख है। तृतीय पर्व में रुद्रसर्ग और दक्ष शाप आदि का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग मे वशानुकीर्तन एव राजगण की उत्पत्ति है एवं पचम एव अन्तिम पर्व के अन्तर्गत मोक्षशास्त्र का परिचय आता है। इन पर्वो का समर्थन नारद पुराण से भी होता है। इस समस्त पुराण में वैष्णव सप्रदायों की विशेषताये भी मिलती है। पद्म पुराण के मुख्य रूप से दो सस्करण प्राप्त होते है। (१) गौडीय सस्करण एव (२) दाक्षिणात्य सस्करण। इन दोनो सस्करणो के विषय क्रम मे अन्तर है तथा अध्याय सख्या मे भी अन्तर है। पद्म पुराण में वैष्णव-सम्प्रदाय की विशेष-विशेष बाते मायावाद निंदा, तामस-पुराण वर्णन, पखडी लक्षण, ऊर्ध्व-पुण्डादि वैष्णव चिह्न धारण आदि भी दी गई है। पद्म पुराण मे शैव, पाशुपति, बौद्ध, जैन, एव प्रच्छन्न बौद्ध शास्त्रो को तामस बताया गया है। इन मतो की निन्दा भी की गई है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, और ब्राह्म इन छः पुराणो को राजस घोषित किया गया है। तथा वैष्णव, नारदीय, भागवत, गरुण, पाद्म और वाराह ये छै पुराण सात्विक बताये गये हैं इस भाँति अठारहों पुराणों का पद्म पुराण मे तामस, सात्विक और राजस रूप से विभाजन कर दिया गया है। पद्म पुराण के अन्तर्गत लगभग ६८ और छोटे छोटे ग्रन्थ भी आ जाते हैं, जिनकी कथाये उसी से सम्बन्धित है।

विष्णु-पुराण —

विष्णु पुराण में छै. अंश है। प्रथमांश में २२, द्वितीयांश मे १६, तृतीयांश में १८, चतुर्थांश मे २४, पचमांश मे ३८ तथा छठे अंश मे ८ अध्याय हैं। इन छै अंशो के पश्चात् विष्णुधर्मोत्तर खंड है। चौथे अंश के १५ वे अध्याय से श्री कृष्ण के जन्म का तथा पंचमांश मे उनकी लीलाओ का वर्णन है। चतुर्थ अंश के शेष भाग में विभिन्न वशावलियो का उल्लेख है। कुछ वंशावलियाँ प्रथम अंश मे भी है।

प्रायः सभी पुराण इस बात मे एक मत है कि पुराणों मे विष्णु पुराण का तृतीय स्थान है। देवी-भागवत पुराण ही एक ऐसा पुराण है, जिसने विष्णु पुराण को दसवाँ स्थान दिया है। विष्णु पुराण के अन्तर्गत अनेक छोटी-छोटी पोथियाँ है, जिनमे निम्नलिखित मुख्य है—कन्या कृष्ण माहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्ण-जन्माष्टमी-व्रतकथा। जड-भरताख्यान, देवी-स्तुति, महादेव स्तोत्र, विष्णु-पूजन, सूर्य-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र आदि। विष्णु पुराण के श्लोको की संख्या २३००० मानी जाती है। वर्तमान रूप मे जो विष्णु पुराण मिलता है, उसके श्लोको की संख्या ब्रह्मोत्तर खड के मिला देने पर भी, केवल १६००० ही होती है। इसके अन्तर्गत (जो विष्णु पुराण से ली गई मालूम होती हैं) जो पोथियाँ आती हैं, उनके विषय में ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनमे विष्णु पुराण के खोये हुए ७००० श्लोक ही हैं कुछ लोग इन्हें आधुनिक भी बताते हैं

शिव

(२) रुद्र सहिता जिसमे सृष्टि खड सती खड पार्वती खड कुमार खड युद्ध खड ये पाँच खड है, एव १८७ अध्याय हैं।

(३) शतरुद्र संहिता। इसमें ४२ अध्याय हैं।
(४) कोटिरुद्र संहिता, जिसमें ४३ अध्याय हैं।
(५) उमा सहिता, जिसके अन्तर्गत ५१ अध्याय है।
(६) कैलास सहिता, जिसमे २३ अध्याय है। तथा
(७) वायवीय सहिता, जिसमे पूर्व और उत्तर दो खड हैं एव ७६ अध्याय हैं।

शिव पुराण मे शिव के उपाख्यानो का ही आधिक्य है। केवल रुद्र संहिता के ५४वें अध्याय, शतरुद्र-सहिता के २६, ३७ और ४१वे अध्याय मे तथा उमा संहिता के प्रथम तीन अध्यायों मे साधारण रूप से कृष्ण का उल्लेख है, जो प्राय. शिव भक्ति के प्रसग मे ही आ गया है। वायवी सहिता में भी पुत्र प्राप्ति की कामना से शिव के पास श्रीकृष्ण के जाने का उल्लेख है।

इस शिव पुराण मे २४००० श्लोक है। परन्तु पं० रामनाथ शैव ग्रन्थ विशारद ने सन्देह-भेदिका में शैव महापुराण के दो ग्रथो का उल्लेख किया है।

एक शिव पुराण में एक लाख श्लोक है, तथा उसमे विद्येश्वर, रौद्र, वैनायक, औम, मातृपुराण, एकादश रुद्र, कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीय एव धर्म ये बारह सहिताएं हैं। कहा जाता है कि ये एक लाख श्लोक भगवान शकर द्वारा रचित हैं। पं० रामनाथ शैव ने अपनी इसी भूमिका के अन्त मे लिखा है कि इसी एक लक्ष श्लोक वाले शिव पुराण का सक्षिप्तीकरण व्यास जी ने २४००० श्लोकों के रूप में किया। कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि शिव पुराण और वायु पुराण एक ही पुराण के नाम हैं, पर उनका ऐसा सोचना गलत है। दोनो पुराण भिन्न है। उनकी श्लोक सख्या, विषय क्रम आदि सब भिन्न हैं। भगवान् शकर के चरित तथा उनसे सम्बन्धित कथाओ से ही शिव पुराण आच्छादित है।

श्रीमद्भागवत-महापुराण—

इस पुराण का विस्तार से विश्लेषण आगे के अध्यायो मे हुआ है।

वायु-पुराण—

कुछ लोग शिव पुराण और वायु पुराण को एक ही समझते है। बहुधा वायु पुराण का नाम विकल्प की तरह आता है। बंगला विश्वकोष में ऐसा ही लिखा है। पर शिव पुराण के अन्तर्गत हम बता आये है कि दोनो पुराण नितान्त भिन्न है। वायु पुराण में ११२ अध्याय हैं, तथा १०९५१ श्लोक है। इस पुराण मे देश-देशान्तर एव अनेक द्वीपों का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त राजवशों का वर्णन भी है। इस पुराण के अन्तिम आठ अध्यायो मे गया का माहात्म्य वर्णित है। सर्ग, प्रतिसर्ग, वश और मन्वन्तर आदि का उल्लेख भी वायु पुराण मे कहीं-कही कर दिया गया है

कालि

गया है धनुर्वेद गान्धर्ववेद आयुर्वेद अर्थशास्त्र वेदान्त तथा अठारह विद्याओं का इसमें वर्णन किया गया है रामायण महाभारत हरिवंश आदि का भी सार है। दर्शनों के विषयों को भी पुराणकार ने नहीं छोड़ा है। पुराण के अन्त मे काव्याङ्ग वर्णन भी बड़ा अच्छा किया गया है।

कौमार व्याकरण के नाम से एक छोटा सा व्याकरण, एकाक्षर कोष तथा लिंगानुशासन भी अग्नि पुराण मे दिया हुआ है। हिन्दू साहित्य, संस्कृति और सभ्यता के दृष्टिकोण से अग्नि पुराण का महत्त्व बहुत अधिक है। इसमें प्राचीन संस्कृति, साहित्य और सभ्यता आदि का ज्ञान बड़ी सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। यदि इसे हिन्दू-संस्कृत का विश्वकोष कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी। इस पुराण के बारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण के अवतार की कथा दी गई है। इसकी श्लोक संख्या पन्द्रह हजार से कुछ अधिक ही है।

नारदीय-महापुराण—

इस पुराण में दो खंड है। पूर्व खंड और उत्तर खंड। पूर्व खंड में १२५ और उत्तर खंड में ८२ अध्याय हैं। इस भाँति समस्त पुराण में २०७ अध्याय हैं। इस पुराण की विशेषता है कि इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त मे श्लोको की संख्या दी हुई है। नारद पुराण के अनुसार इस पुराण मे २५००० श्लोक होने चाहिये। परन्तु अध्यायों के अन्त में दिये गये श्लोको की संख्या को जोड़ने पर १८११० श्लोक ही आते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण का कुछ अंश (लगभग ७००० श्लोक) तो अवश्य ही लुप्त हो गये हैं। कार्तिक-माहात्म्य, दत्तात्रेय स्तोत्र, पार्थिवलिंग-माहात्म्य, यादवगिरि-माहात्म्य, श्रीकृष्ण माहात्म्य, संकट-गणपति-स्तोत्र, मृग व्याध कथा इत्यादि अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ नारद पुराण के ही अंग प्रतीत होते हैं। बृहन्नारदीय-पुराण तथा लघुबृहन्नारदीय पुराण के नाम से भी दो ग्रन्थ छपे है।

नारदीय महापुराण वैष्णव पुराण है। इसमें प्रायः सभी पुराणों की संक्षिप्त विषय सूची श्लोक रूप मे दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि इस पुराण का यह अंश तो कम से कम अवश्य ही पुराणो के बाद का है।

ब्रह्म-वैवर्त-महापुराण—

यह पुराण भी वैष्णव पुराण है। इसके अर्धभाग मे तीन खंड हैं।

१—ब्रह्म खंड जिसमे ३० अध्याय हैं।

२—प्रकृति खंड जिसमे ६७ अध्याय हैं तथा

३—गणपति खंड, जिसमे ४६ अध्याय है।

इस पुराण के शेष अर्धभाग मे श्रीकृष्ण जन्म खंड का पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध है। इन दोनो मे क्रमशः ५४ और ७६ अध्याय है। इसमें भी प्रत्येक अध्याय के अन्त मे श्लोक संख्या दे दी गई है। इस पुराण के भी दो संस्करण मिलते है। गौड़ीय एवं दाक्षिणात्य। कुछ पुराणों में इसे सौर पुराण भी कहा गया है, किन्तु विषय की दृष्टि से यह पूर्णतः वैष्णव पुराण ही ज्ञात होता है। स्कन्द पुराण के अनुसार यह पुराण सूर्य भगवान की महत्ता का प्रतिपादन करता है। मत्स्य पुराण, यह ब्रह्मा की मुख्यता की ओर इशारा करता है। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्वयं ब्रह्म-वैवर्त-पुराण मे विष्णु की ही महत्ता प्रतिपादित है। शिव पुराण श्रीमद्भागवत आदि पुराणों मे इसकी श्लोक संख्या १८ हजार लिखी है

कृष्ण स्तोत्र गगा स्तोत्र अलकार दानविधि अहिशकुहि माहात्म्य आदि रत्नेश्वर माहात्म्य एकादशी माहात्म्य गणेश कवच परशुराम प्रति शकरोपदेश मुक्तिक्षेत्र माहात्म्य राधा-उद्धव सवाद, श्री गोष्ठी माहात्म्य, काशी-केदार-माहात्म्य आदि छोटे-छोटे ग्रन्थ भी ब्रह्म-वैवर्त पुराण के ही अन्तर्गत आते है।

मत्स्य, शिव और नारदीय पुराणों मे इस पुराण के विषयो का जो क्रम दिया गया है, वह इसके क्रम से मेल नही खाता। ऐसा ज्ञान होता है कि उत्तरोत्तर परिवर्तन और परिवर्धन के कारण इस पुराण का स्वरूप परिवर्तित हो गया है। इसके ब्रह्म खंड मे श्रीकृष्ण को परमात्मा और समस्त जगत का कारण माना है। कृष्ण-जन्म खंड मे श्रीकृष्ण से सम्बन्धित लीलाओं का उल्लेख किया गया है।

स्कन्द-पुराण—

स्कन्द पुराण पुराणो मे सबसे बड़ा है। इसमे इक्यासी हजार एक सौ श्लोक बताये जाते है। इसकी अनुक्रमणिका 'नारदीय पुराण' मे मिलती है। प्राचीन भारतवर्ष का इसमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है जो इसे भौगोलिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण प्रमाणित करता है। असंख्य तीर्थों का वर्णन भी इसमे दिया गया है। स्कन्द पुराण, नारदादि पुराणों के अनुसार 'शैव पुराण' है। परन्तु इसके अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि इसमे अन्यान्य सम्प्रदाय वालों का भी योग है। इस पुराण मे अनेक माहात्म्य दिये हुए हैं। इस पुराण का प्रचार दक्षिण में वहुत अधिक है। उत्तर भारत मे श्री सत्यनारायण व्रत कथा का बड़ा माहात्म्य है। प्रत्येक पोथी के अन्त मे 'इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे' आदि दिया हुआ है। स्कन्दपुराण के इतने विशालकाय होने से यह अनुमान होता है कि सत्यनारायण व्रत कथा माहात्म्य की भाँति सहस्रों अन्य माहात्म्य आदि की पुस्तके जो स्कन्द पुराण से ही उद्धृत मानी जाती है, वास्तविक स्कन्दपुराण भी हो सकती है। विश्व कोशकार ने इस प्रकार की साठ-सत्तर पुस्तको का नाम दिया है। भारत के दक्षिणी भाग के समस्त मन्दिरों तथा तीर्थों के माहात्म्य स्कन्दपुराण के ही अन्तर्गत समझे जाते है। स्कन्द भगवान को सुब्रह्मण्य नाम से दक्षिण के प्राय सभी प्रदेशों मे पूजा जाता है। वहाँ सत्यनारायण के मन्दिर भी है।

वराह-पुराण—

इस वराह पुराण मे अध्यायो की संख्या २१८ हैं। उसके अनुसार श्लोक संख्या भी २४००० होती है। पर श्लोक लगभग १०००० ही मिलते है। नारदादि कई पुराणों मे लिखा है कि वराह पुराण में मनुष्य-कल्प की कथा वर्णित है।

चातुर्मास्य माहात्म्य, त्र्यम्बक-माहात्म्य, भगवद्गीता माहात्म्य, विमान-माहात्म्य, वेंकट-गिरि माहात्म्य आदि छोटी छोटी अनेक पोथियाँ वराह पुराण की ही अग है।

मार्कण्डेय-पुराण—

आज जिस रूप में मार्कंडेय पुराण प्राप्त है, वह निर्विवाद रूप से मौलिक ही समझा जाता है। इसकी अध्याय सख्या १३४ है। तथा श्लोक संख्या ९००० है। परन्तु उपलब्ध प्रतियों मे केवल ६९०० श्लोक ही मिलते है। नारदीय पुराण में इसकी जो विषय-सूची दी हुई है उसके अनुसार ३१ वें के इक्ष्वाकु चरित तुलसी चरित

रामकथा कुश वंश, सोमवंश, पुरुरवा, नहुष और ययाति का वर्णन, यदुवंश, श्रीकृष्ण की लीलाएँ, द्वारिका चरित, सारव्या कथा, प्रपञ्चसत्व और मार्कण्डेय चरित भी दिया गया है। इस पुराण की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह साम्प्रदायिक प्रभावों से मुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध लोग भी इस पुराण का आदर करते थे। मार्कण्डेय पुराण का प्रमुख अंश 'दुर्गा सप्तशती' है, जो हिन्दू-मात्र के घर मे बडी पवित्र मानी जाती है। प्रत्येक घर से नवरात्रियों मे इसका पाठ होता है। पुराण के अठहत्तरवे अध्याय से नव्वे वे अध्याय तक इसका अंश है। मार्कण्डेय पुराण का केवल 'दुर्गा सप्तशती' वाला अंश ही अलग से प्रकाशित हुआ है।

वामन-पुराण—

इसमे ९५ अध्याय एवं दस सहस्र श्लोक है। नारद पुराण की विषय सूची से मिलता जुलता ही यह पुराण है। मत्स्य पुराण में लिखा है कि जिस पुराण मे चतुर्मुख ब्रह्मा ने त्रिविक्रम वामन के कथा प्रसंग में त्रिवर्ग विषयक कथन किया है, और फिर शिवकल्प का वर्णन किया गया है वह दस सहस्त्र श्लोको वाला वामन पुराण है। वामन पुराण मे विशेषत: दुर्गा, पार्वती और शिव के उपाख्यान हैं। नारद और पुलस्त्य के संवाद ही इसमे मिलते है। कर्क चतुर्थी-कथा, कापज्ज्वली-व्रत-कथा, गंगा मानसिक स्नान, गंगामाहात्म्य-दधि-वामन स्तोत्र, वराह माहात्म्य आदि कई छोटे छोटे ग्रंथ वामन पुराण के अन्तर्गत ही आते है।

कूर्म-पुराण—

कूर्म पुराण पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध दो भागो में विभाजित है। प्रथम भाग मे ५३ तथा उत्तरार्ध मे ४६ अध्याय है। इसकी श्लोक संख्या सत्तरह हजार बताई जाती है, परन्तु वर्तमान कूर्म पुराण में केवल ६ हजार श्लोक ही प्राप्त है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कूर्म पुराण के कुछ अंश तंत्र-ग्रन्थो में मिला दिये गये है। इस पुराण में यदुवंश का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रो की कथा हैं।

मत्स्य-पुराण—

मत्स्य पुराण की अध्याय संख्या २९० है। अन्तिम अध्याय मे सम्पूर्ण मत्स्यपुराण की कथा आदि विषयो की क्रम-बद्ध सूची मात्र है। केवल इसी अध्याय के देख लेने से यह ज्ञात हो जाता है कि मत्स्य पुराण मे क्या लिखा है। नारदीय पुराण के अनुसार मत्स्य पुराण के श्लोकों की संख्या पन्द्रह हजार है, पर रेवा माहात्म्य, श्रीमद्भागवत आदि के अनुसार इसके श्लोको की संख्या १४००० ही है। इस पुराण मे मनुजी और मत्स्य जी के ——— है देवताओ एव देवमन्दिरो की पूजा अर्घपाद्य आदि विविध प्रकार की दान विधियाँ एव आदि है को प्राय प्राचीन एव मौलिक माना जाता है

रेवा माहात्म्य आदि के अनुसार यह सख्या उन्नीस हजार है इस पुराण में प्रत-कर्म प्रेत-योनि, प्रेत-श्राद्ध, यम-यातना, नरक आदि का उल्लेख विशेष रूप से है। १४४ वे अध्याय मे श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओ का भी उल्लेख है। गरुड-पुराण के आचार काड मे श्रीकृष्ण की रुक्मिणी, सत्य भामा आदि आठ पत्नियो तथा गोपियो का नाम तो है, पर राधा का नाम कही भी नही है। यह वडे आश्चर्य की बात है। ब्रह्म कांड के अन्तर्गत हव्यवाह की कन्या नीला, भद्रा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवन्ती, सोमपुत्री आदि को तपस्याओं का उल्लेख भी है।

त्रिवेणी-स्तोत्र, पंचपर्व माहात्म्य, विष्णुधर्मोत्तर, वैंकटगिरि माहात्म्य, सुन्दरपुर माहात्म्य आदि अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ गरुण पुराण के ही अङ्ग बताये जाते है।

ब्रह्माण्ड-पुराण—

इस पुराण में १०९ अध्याय हैं तथा लगभग बारह हजार श्लोक है। ब्रह्माण्ड पुराण मे ही ललितोपाख्यान है। विश्वकोष मे लिखा हुआ है, कि ब्रह्माण्ड पुराण में से रामायणी कथा, जिसके कारण कि इसका महत्व है, 'अध्यात्म रामायण' के नाम से अलग कर ली गई है। वैसे तो राम की कथा अन्य पुराणो मे भी है, पर अध्यात्म रामायण मे राम कथा का अधिक विस्तार है। बीसवें अध्याय मे श्री कृष्ण के आविर्भाव एव उनसे सम्बन्धित कथाओ का समावेश है। नारदीय पुराण की सूची मे रामायण की चर्चा नही है। इससे यह अनुमान होता है कि परशुराम की कथा के बाद ही राम की कथा रही होगी, जिसे रामायण के रूप मे अलग कर लिया गया होगा।

ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तर्गत अग्नीश्वर, अञ्जनाद्रि, अनन्तशयन, अर्जुनपुर, अष्ट-नेत्र स्थान, आदिपुर, आनननिलय, कठोरगिरि, कालहस्ती, कामाक्षी विलास, कार्तिक, कावेरी, कुम्भकोण, गोदावरी, गोपुरी, क्षीरसागर, गोमुखी, चम्पकारण्य, ज्ञानमण्डप, नन्दगिरि, लक्ष्मी-पूजा, नरसिह, शिवगगा, कन्ची, श्रीरग, गणेशकवच, हनुमत कवच आदि छोटे-छोटे ग्रन्थ भी आते है।

देवी-भागवत-पुराण—

देवी भागवत पुराण मे भागवत के समान ही बारह स्कन्ध तथा १८००० श्लोक हैं। श्री मद्भागवत और देवी भागवत के विषय में इस बात का मतभेद है कि दोनो मे से महापुराण कौन सा है? अन्य महापुराणो में जहाँ कही भी चर्चा आयी है, वहाँ केवल 'भागवत' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। श्री मद्भागवत के जितने भी सस्करण है उनमे से किसी में भी सम्पादको ने उसे महापुराण सिद्ध करने का प्रयत्न नही किया है, पर देवी भागवत पुराण के प्रत्येक सस्करण मे उसे महापुराण प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है। कुछ भी हो, विषय के महत्व की दृष्टि से प्राय दोनों ही बराबर प्रतीत होते हैं। श्रीमद्भागवत मे विष्णु भक्ति का उत्कर्ष है, तथा देवीभागवत पुराण मे परमात्मा की पराशक्ति का उत्कर्ष है। कुछ पुराणों के प्रमाणो से तो देवीभागवत पुराण उपपुराण ही ठहरता है। पर शाक्त ग्रन्थो तथा तन्त्र ग्रथो से ही सिद्ध होता है इस पुराण के चतुर्थ स्कन्ध में भी श्रीकृष्ण की कथा आई है

लिङ्ग पुराण

लिग पुराण को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है पूर्वार्द्ध मे १०८ अध्याय एव उत्तरार्द्ध मे ५५ अध्याय हैं। रेवामाहात्म्य, श्री मद्‌भागवत, नारदीय पुराण, मत्स्य पुराण आदि के मतानुसार लिगपुराण ग्यारहवाँ पुराण है। इसमें ग्यारह हजार श्लोक है। मत्स्यपुराण और नारद पुराण के अनुसार लिग पुराण में अग्निकल्प की कथाएँ होनी चाहिये। परन्तु प्राय लिगपुराण मे ईशान कल्प की कथाएँ है।

अरुणाञ्चलमाहात्म्य, गौरी कल्याण, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्ष-माहात्म्य, सरस्वती स्तोत्र आदि अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ लिंग पुराण के ही अंग माने जाते हैं।

भविष्य-पुराण—

भविष्य पुराण भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागो मे विभाजित हैं। पूर्वार्द्ध मे १४१ और उत्तरार्द्ध में १७१ अध्याय हैं। यह पुराण भी महत्वपूर्ण पुराणो में से एक है। 'विश्व-कोष मे चार भविष्य पुराणों का उल्लेख आया है। प्रथम मे १३३ दूसरे में २८७ (तीसरे की अध्याय सख्या अप्राप्य) तथा चौथे मे १९९ अध्याय है। नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मुद्रित 'भविष्य पुराण' मे पहले और चौथे भविष्य पुराणो का सग्रह ही पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप में है। नारद पुराण में जो सूची दी गई है उस सूची से चारो मे से एक भी भविष्य पुराण पूर्ण रूप से नही मिलता।

भविष्य पुराण की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे शाक द्वीपी मग-ब्राह्मणो का वर्णन है। इसमे उनकी संस्कृति और सभ्यता का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनको लाने वाले कृष्ण पुत्र साम्ब कहे जाते हैं। वर्णन से ज्ञात होता है कि जरथुस्त्र के पूर्व या उन्ही के समकालीन सूर्योपासक आर्य जातियाँ भारतवर्ष से पश्चिम प्रदेशो मे रहती थी। इन मग-ब्राह्मणो का रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि पारसियों से मिलते जुलते है। आज भी फारसी साहित्य में मगो के आचार्यो का नाम "पीरे-मुगां" सैंकडो स्थानों पर पाया जाता है। यह सब वर्णन बड़ा महत्वपूर्ण है, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह पुराण बड़े महत्व का हुआ। तीसरे भविष्य पुराण मे 'उद्‌भिज्ज विद्या' का उल्लेख है। जो आधुनिक वैज्ञानिको के लिए बड़ा महत्वपूर्ण और ज्ञातव्य विषय है। इस पुराण मे अनेक माहात्म्य और अनेक प्रकार के दान आदि का विधान है।

हरिवंश-पुराण—

हरिवशपुराण महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है। कुछ आलोचक इसे महाभारत के बाद की रचना मानते है। हरिवश पुराण विभिन्न पर्वो मे विभाजित है। पूर्वार्द्ध में हरिवंश पर्व जिसमे पचपन अध्याय है तथा विष्णुपर्व जिसकी अध्याय संख्या ८१ है। उत्तरार्द्ध मे १२८ अध्याय एवं इसी के अन्तर्गत भविष्य पर्व मे १३५ अध्याय है। हरिवश पुराण मे विस्तार पूर्वक विष्णु भगवान का चरित, श्री कृष्ण की कथा तथा व्रज आदि मे की गई उनकी विभिन्न क्रीड़ाओं का मनमोहक वर्णन है। विष्णु सम्बन्धी कथाओं का भी बड़े विस्तार से उल्लेख किया गया है। हरिवंश पर्व मे मन्वन्तरो का वर्णन, मनु का वर्णन, वाराह उत्पत्ति की कथा- एव दैत्यो और देवताओ के युद्ध आदि का उल्लेख है। इसी पर्व के ३४ व में वृष्णि-वश वर्णन है और ३५ व में श्री कृष्ण जन्म वर्णन है विष्णु

पव में श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कथाये हैं, एव भविष्य पव में दत्यो और देवताओ का युद्ध समुद्र मन्थन, विष्णु सम्बन्धी कथाये एव कुछ अवतारो आदि का वर्णन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हरिवंश पुराण की गणना उप-पुराणो मे ही है।

जैन और बौद्ध पुराण—

जैन और बौद्धों की सख्या भारत में जिस अनुपात से है, उसी अनुपात से उनके ग्रन्थों की भी उपलब्धि होती है। वास्तव मे साहित्य तो इनका विशाल है, पर उसका प्रचार कम है। जैन और बौद्धो के पुराण भी मिलते है। जैनो के पुराण पचलक्षण नही होते, अपितु वे तो प्राचीन कथाओ को ही पुराण कहते है। जैनो के चौबीस महात्मा तीर्थंकर कहे जाते हैं। दिगम्बर जैनियों ने इन्हीं चौबीस तीर्थंकरो की कथा के प्रसंग मे चौबीस महापुराण रचे है।

(१) आदि पुराण—इसमे प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की कथाये है। (२) अजितनाथ पुराण (३) सम्भवनाथ पुराण (४) अभिनन्दी पुराण (५) सुमतिनाथ पुराण, (६) पद्म-प्रभ पुराण (७) सुपार्श्व पुराण (८) चन्द्र-प्रभ पुराण (९) पुष्पदन्त पुराण (१०) शीतलनाथ पुराण (११) श्रेयांश पुराण (१२) वासुपूज्यका पुराण (१३) विमलनाथ पुराण (१४) अनन्तजित पुराण (१५) धर्मनाथ पुराण (१६) शान्तिनाथ पुराण (१७) कुण्डनाथका पुराण (१८) अरनाथ पुराण (१९) मल्लिनाथ पुराण (२०) मुनिसुव्रत पुराण (२१) नेमिनाथ पुराण (२२) नेमिनाथका पुराण (२३) पार्श्वनाथका पुराण (२४) सम्मति पुराण।

रविषेण का पद्म पुराण, जिनसेन का अरिष्टनेमि पुराण, जिसे हरिवश भी कहा जाता है, और आदि पुराण तथा गुणभद्र का उत्तर पुराण, प्रधानत इन्ही चारो प्रमुख पुराणो का पाठ करने से दिगम्बर जैनियो का पौराणिक महत्त्व जाना जा सकता है। इन्हीं चारों पुराणों का आधार लेकर पीछे के जैन कवियो ने नाना पुराणो की रचना की। विश्वकोष से ज्ञात होता है कि दक्षिण के जैन समाज मे प्राचीन कर्णाटकी भाषा में भी अनेक पुराण मिलते है। जैनियों के इन पुराणो में विशेषतः तीर्थंकरो का ही वर्णन है।

बौद्ध-पुराण—

जैन पुराणो की भाँति बौद्ध पुराण भी है, पर उनकी सख्या कम ही है। नेपाली बौद्धो मे स्वतन्त्र बौद्ध पुराणो का प्रचार है, पर प्राचीन बौद्ध ग्रथों मे पुराणों का कोई उल्लेख नही मिलता। आज के नेपाली बौद्ध नौ पुराण मानते है, जिन्हें 'नवधर्म' भी कहा जाता है। पुराण निम्नलिखित है—

१—प्रज्ञापारमिता पुराण—इसमे आठ हजार श्लोक है।

२—गण्डव्यूह पुराण—इसकी श्लोक संख्या बारह सौ है और इसमें सुधनकुमार का चरित वर्णित है।

३ पुराण इसमें तीन हजार श्लोक हैं तथा जप द्वारा समाधि की विधि वर्णित है।

७—बुद्ध वा पुराण इसकी श्लोक संख्या सात हजार है इसमे बुद्ध भगवान का चरित विस्तार पूर्वक वर्णित है

८—सुवर्णप्रभा पुराण—इसमे सरस्वती एवं पृथ्वी की कथा है, तथा इनके द्वारा बुद्ध की पूजा का उल्लेख है।

९—दशभूमीश्वर पुराण—इसके श्लोको की संख्या दो हजार है। इसमे दस भूमियों का विस्तार से वर्णन है।

इन नौ पुराणो के अतिरिक्त बृहत और मध्यम नाम से दो स्वयम्भु पुराण भी है। इन पुराणो में नैपाल के इन प्रसिद्ध तीर्थो, स्वयभुव क्षेत्र तथा स्वयभुव चैत्य का वर्णन है।

इस भाँति जैन और बौद्धो के पुराण मिलने तो है पर न तो उनकी संख्या ही अधिक है, और न ही वे सब विषयो से सम्बन्धित ही है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पुराणो का दृष्टिकोण उत्तरोत्तर बदलता गया और धर्म विश्लेषण तथा अवतार चर्चा उनका प्रधान विषय बन गया। पुराणो ने महाभारत के अनन्तर भागवत धर्म की विशिष्ट प्रतिष्ठा हुई तथा सस्कृत वाङ्मय मे श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना से यह प्रतिष्ठा पूर्णता को पहुँची। भागवत धर्म का मूल अहिंसा का भाव है और इसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु भगवान् है। भागवत धर्म के तत्व और विष्णु भक्ति की भावना हमे वेदो से ही मिलने लगती है। भगवान् का विष्णु रूप वैदिक साहित्य मे पूर्णरूप से प्रतिष्ठित है उदाहरण के लिए निम्नलिखित मन्त्रो को देखिए—

य आपिर्नित्य वरुण प्रिय. सन्
त्वामागासि कृणवत् सखा ते।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन भुजेम
यन्धिष्मा विप्र. स्तुवते वरूथम्॥ ऋ० सं० ७।८८।६

तमु स्तोतार: पूर्व्य यथाविद
ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विविक्तन
महस्ते विष्णो सुमति भजा महे॥ ऋ० स० १।१५६।३

ऋग्वेद मे विष्णु को सौर देवता माना गया है। निरुक्ति मे विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति सूर्यपरक ही की गई है।

अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा—

यास्क निरुक्ति १२।१९

यदा रश्मिभिरति शयेनाय व्याप्तो भवति, व्याप्नोति वा रश्मिभिरयं सर्वम्, तदा विष्णुरादित्यो भवति। दुर्गाचार्य २।३

विष्णु के पराक्रम का वर्णन ऋग्वेद मे स्पष्ट रूप से किया गया है।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्
समूढमस्य पासुरे—ऋग् १।२२।२७
तद् विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय·।
दिवीव ऋग् १ २२ २०

प्रतद् विष्णु स्तवते वीयरण
मृगो न भीम. कुचरो गिरिष्ठा —ऋग् १।१५४।२

यह भी एक विचित्र बात है कि विष्णु का सम्बन्ध वैदिक साहित्य में गायों के साथ विशेष रूप मे देख पडता है और उन्हे इसी सम्बन्ध से गोप संज्ञा दी गई है, विष्णुर्गोपा श्रदाभ्यः। ऋग्वेद १। २२। १८

तथा

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै।
यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः।। ऋग्वेद १। १५४। ६

ब्राह्मणो तथा उपनिषदो मे भी विष्णु का महत्व कम नही है। विष्णु को यज्ञ का समानार्थक माना गया है।

यज्ञो वै विष्णु

पुराणो मे तो विष्णु के नाना अवतारों को व्यवस्थित रूप ही दे दिया गया। वामन बराह, मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के ही नाना अवतार माने गये है। ब्राह्मणों के हाथ मे पड कर पुराणो का विषय ही बदल गया। और धर्म का व्यापक प्रचार ही उनका मूल उद्देश्य बन गया। ब्रह्म का स्वरूप भी बदला, सत्य रूप और ज्ञान रूप अनन्त ब्रह्म प्रेम रूप बन गए। लगभग आधे पुराणो का सम्बन्ध भागवत धर्म से जोड़ा गया कुछ पुराणो का तो नामकरण ही विष्णु के अवतारो पर हुआ तथा कुछ मे विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा चरित्र का विवेचन हुआ। अन्य पुराणो में भी किसी न किसी रूप मे विष्णु अथवा उनके अवतारो को महत्व दिया गया। भगवान विष्णु के चरित्र चित्रण की दृष्टि से नारद, ब्रह्मवैवर्त, पद्म, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत बड़े महत्वपूर्ण पुराण है इन पाँचों पुराणो मे भी सबसे ऊँचा स्थान श्रीमद्भागवत का है। दूसरा स्थान विष्णु पुराण का कहा जा सकता है क्योंकि वैष्णव सिद्धान्तों के मूल तत्त्व हमें इसी पुराण मे प्राप्त होते है। विष्णु भक्ति का व्यावहारिक पक्ष पद्म पुराण मे विशेष रूप से बताया गया है। श्री मद्भागवन विष्णु भक्ति का चरमोत्कर्ष है। वास्तव मे भागवत धर्म का पूर्ण ज्ञान श्री मद्भागवत के अनुशीलन के बिना संभव नही है इसलिए आगे के अध्यायो मे हमने इस ग्रन्थ में भागवत का ही विभिन्न दृष्टियो से विवेचन किया है। भगवान विष्णु के अवतारो में कृष्णावतार ही सर्वोपरि कहा जा सकता है। मध्य युग तक आते आते विभिन्न परिस्थितियों के कारण भक्ति का एक व्यापक आन्दोलन उठा। भागवत धर्म के सम्बन्ध में उस आन्दोलन से परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। तीसरे अध्याय मे हम भागवत धर्म के इसी भक्ति आन्दोलन पर विचार करेंगे। यह भक्ति आन्दोलन विक्रम की सोलहवी शताब्दी मे पूर्णता को प्राप्त हुआ। इसके मूल मे वैष्णव धर्म की भावना ही रही है।

भागवत धर्म और भक्ति आन्दोलन

विक्रम की १६ वीं शताब्दी विश्व के इतिहास मे एक विशिष्ट महत्व रखती है। प्राय सम्पूर्ण संसार की भाषाओं के साहित्य में इस शताब्दी मे एक विशेष क्रान्ति हुई। धार्मिक भावना को लेकर वह साहित्य सर्जना उस समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक की परम्पराए निहित है। मानवता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का यह अद्भुत उपाय था। अन्त' और बाह्य साधनाओं का जैसा सुन्दर सामंजस्य इस शताब्दी के साहित्य मे दीख पडा वैसा पहले कभी प्रस्तुत नही हो सका और न ही आज तक सभव हो सका है। भारतीय साहित्य का यह अद्भुत युग था। साहित्य धर्म और नीति की त्रिवेणी का पावन तीर्थराज इसी शताब्दी में सभव हो सका। विभिन्न युगों के अभेद स्तरो के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई अनेक दिशाओ से उल्टी-सीधी वह कर आने वाली विविध विचार धाराओं को आत्मसात् करती हुई, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की सिद्धान्त-सार-सुधा से प्राणियों के अन्त'करण को तृप्त करती हुई भारतीय साधना की इस त्रिवेणी ने साहित्य-सागर को इतना लबालब भर दिया कि आज भी उसकी तरल-तरगो में मज्जन और अवगाहन करने से चिरशान्ति प्राप्त होती है।

भारतीय साहित्य में इतनी उदारता, इतनी मानवता, इतना स्थायित्व और इतनी सर्वांगीणता का एक मात्र कारण केवल वैष्णवता है। भारतवर्ष को धर्म प्राण देश कहा गया है। यहाँ धर्म के नाम पर अनेक पाखण्डो का प्रचार भी हुआ। वास्तव में धर्म का एक मात्र प्रतिमान मानवीय वृत्तियों का परिष्कार और समाज का उन्नयन है।

जिस धर्म के द्वारा मानव वृत्तियों का परिष्कार होता है जिससे हृदय मे सत्य, शील और सौंदर्य की प्रतिष्ठा होती है, सरसता, स्निग्धता, सहिष्णुता और मधुरता का संचार होता है वही धर्म उदार है। इसलिए वैष्णव धर्म अवश्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा जा सकता है। जाति-पाँति के बन्धन से परे सामाजिक भेद-भावों को तोड़ कर मानव मानव को एक धरातल पर खड़ा करने वाला यह वैष्णव धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का प्रतिफल है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। अनेक विदेशियों ने इस धर्म को स्वीकार कर गौरव और गर्व का अनुभव किया। हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुलकस, आभीर, यवन, खस आदि जातियो के पुरुष भी इस धर्म ध्वज के आश्रय मे पवित्र माने गए है। श्री मद्भागवत में स्पष्ट निर्देश है—

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द पुलकसा ।
आभीर-कंका-यवना: खसादय ॥
येऽन्येत्र पापा' यदुपाश्रयाश्रया: ।
शुध्यन्ति तस्यै प्रभविष्णवे नम'

वसुधैव कुटुम्बकम्' इस धर्म का मूलमन्त्र है, अहिंसा इसका आधार है, और मानवता मे ईश्वरत्व का आरोप इसकी साधना है। अपनी विकृत अवस्था में वैष्णव धर्म चाहे जैसा रहा हो, पर उसने अपने मूल मन्त्र के आधार को और साधना को नही छोडा। मानव मात्र के कल्याण की भावना से अनुप्राणित यह वैष्णव धर्म मगलात्मक मनोहर कला का स्रष्टा रहा है।

वैष्णव धर्म को अनेक नामों से अभिहित किया गया है। उनमें भागवत नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। वैदिक काल से लेकर आज तक का धर्म का इतिहास एक प्रकार से भागवत धर्म का इतिहास है। यह नामकरण कब हुआ यह विचारणीय विषय नही है, पर इस भागवत धर्म के तत्व वेदो मे भी मिलते है, इसमें सन्देह का स्थान नही। महाभारत धार्मिक क्रान्ति की आधार शिला है जिस पर समाधिस्थ होकर मनुष्य भागवत धर्म की विभिन्न परम्पराओ का साक्षात्कार कर सकता है। वैष्णव धर्म और भारतीय संस्कृति का यह पहला विश्व कोष है। शान्ति पर्व के नारायणीयोपाख्यान मे इस भागवत धर्म का बडा सुन्दर विवेचन हुआ है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की धार्मिक क्रान्तियो का सुन्दर समन्वित रूप नारायणीयोपाख्यान मे प्रस्तुत किया गया है। भागवत धर्म वैदिक तत्वज्ञान को सर्व-जन सुलभ करने का सुन्दर उपाय प्रस्तुत करता है। वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आर्य और निषाद संस्कृतियों का सुन्दर सुखद सगम भागवत धर्म है। श्री मद्भगवद्गीता मे इस धर्म का सार संगृहीत है। भागवत धर्म की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत भू पर फहराती रही। बौद्ध धर्म के आगमन से फिर विषमतायें उत्पन्न हुई, जो शताब्दियों तक समानान्तर चलती रही। धर्म मे फिर एक बडी क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। बौद्ध धर्म निवृत्तिपरक था और भागवत धर्म प्रवृत्ति परक। इस निवृत्ति और प्रवृत्ति के अन्तर को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयास हुए। बौद्ध धर्म की महायान शाखा उन्ही प्रयत्नो में एक भागीरथ प्रयत्न कहा जा सकता है। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय मे जन साधारण के कल्याण के कुछ समान मार्ग निकाले गये जो केवल नाम भेद मे शताब्दियो तक चलते रहे। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायो ने इन प्रयत्नो में योगदान दिया। हमारा पुराण साहित्य इसी युग की कृति है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि वैष्णव, शैव, ब्राह्म, सौर आदि सब पुराणों मे एक ही भावना मिलती है, केवल नाम का भेद है। इतना ही नही जैन और बौद्ध पुराण भी उसी भावना से अनुप्राणित है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने रघुवंश में लिखा है—

> बहुधाप्यागमैर्भिन्ना: पन्थान: सिद्धिहेतव ।
> त्वय्येव निपतंत्यौघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥

ईसा के आविर्भाव के लगभग धर्म क्षेत्र मे एक और बडी क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति सभवत: उस समय हुई जब शको और हूणों के आक्रमण उत्तरी भारत पर होने लगे थे। इस क्रान्ति का इतिहास अभी तक अन्धकार मे है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि भागवत के मूल स्तम्भ यादव या सात्वत लोग शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। उनके साथ साथ बहुत से जैन और बौद्ध धर्मानुयायी भी दक्षिण मे पहुँचे और दक्षिण देश को उन्होंने अपने धर्म प्रचार का क्षेत्र बनाया ।

मे इस विषय पर बड़ा विवाद है कि सात्वत लोग उत्तरी भारत को छोड़ कर दक्षिण मे कब आए। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसग में सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बतलाया गया।[1]

के० एस० आयंगर ने 'परम सहिता' की भूमिका मे और 'सात्वत' नामक लेख मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला है और बताया है कि जब मागध जरासध ने सात्वतो पर आक्रमण किया तो वे शूरसेन प्रदेश छोड़कर भारत के पश्चिमी समुद्र तट और दक्षिण मे जाकर बस गए। डा० कृष्ण स्वामी आयंगर ने यही निर्देश किया है कि द्रविड़ देश के अनेक राजाओ ने जो अपनी वश परम्परा सात्वत वशीय कृष्णचन्द्र से बताई है उसका मूल कारण यही है। यदि ऐतरेय ब्राह्मण का रचना काल हम दशम शताब्दी ईसा पूर्व माने तो हमे यह भी मानना पड़ेगा कि दशम शताब्दी ईसा पूर्व से भी बहुत पहले सात्वत लोग दक्षिण में जा चुके थे। सात्वतों के सम्पर्क से सम्भवत भागवत धर्म पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। हमारा अभिप्राय यहाँ भागवत धर्म का इतिहास प्रस्तुत करना नही है, हम केवल यह बतलाना चाहते हैं कि यह भागवत धर्म सम्पूर्ण भारतवर्ष मे फैल गया था और कई शाखाओ मे विभक्त हो गया था। शको और हूणो ने भी इस धर्म को स्वीकार किया जिसके प्रमाण आज भी उपलब्ध होते है। बेसनगर का शिला लेख और घोसुन्दी का शिला लेख इस तथ्य के प्रमाण है। भागवत धर्म के उपास्य महाभारत काल से ही वासुदेव रहे है जो स्वय विष्णु और नारायण रूप है। विष्णु के वासुदेव रूप मे भी भागवत के विग्रह की कल्पना पूर्ण हुई जान पड़ती है। षाड्गुण्यविशिष्ट विग्रह को ही भगवद्विग्रह वासुदेव कहा गया है।

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वर्य वीर्य-तेजांस्यशेषत ।
भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयै गुणादिभि. ।

पाञ्चरात्र का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के शान्ति पर्व मे हुआ है। फिर इसकी व्याख्या अनेक पञ्चरात्र ग्रन्थो मे अनेक प्रकार से की गई है। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए शकराचार्य ने भी पञ्चरात्र मत का उल्लेख किया है।[2] उन्होंने इस मत का कुछ अंश त्याज्य और कुछ उपादेय माना है। परन्तु आगे के वैष्णवाचार्यो ने पञ्चरात्र मत की एक परम्परा सिद्ध की है और उसका सम्बन्ध वेद से जोडा है। कुछ भी हो, वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य बड़ा महत्व पूर्ण है। इस मत की अनेक सहिताएं आदि उपलब्ध होती है। कपिंजल साहित्य मे २१५ सहिताओ का उल्लेख है। बहुत सी सहिताओ की रचना उत्तर मे हुई और बहुत सी की दक्षिण में। इन सहिताओ का तिथि-निर्णय बडा दुस्तर कार्य है। मुख्य रूप से इन सहिताओ मे ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यादि विषयों का विवेचन हुआ है। ब्रह्म माया और जीव का भी बडे विस्तार से विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों ही भाव स्वीकार किये गए है। सगुण रूप मे भगवान षाड्गुण्य विग्रह वाले है। इन षड् गुणो मे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और शेष शक्ति आदि ५ गुण ज्ञान से सम्बद्ध है। भगवान की शक्ति लक्ष्मी है जो दो रूप धारण करती

१ ऐतरेय ब्राह्मण ८'३'१४
२ शारीरक भाष्य २ ४ ४५ सूत्र

है क्रिया शक्ति और भूति शक्ति। इन ६ गुणो मे से दो दो गुणो की प्रधानता होने पर ३ व्यूहो की सृष्टि होती है अर्थात् ज्ञान और बल की प्रधानता से संकर्षण ऐश्वर्य और वीर्य की प्रधानता से प्रद्युम्न तथा शक्ति और तेज की प्रधानता से अनिरुद्ध। वासुदेव को मिलाकर इन्हे चतुर्व्यूह कहा जाता है। पाञ्चरात्र मत मे अवतार भावना का वैशिष्ट्य है। विभव को अवतार कहा गया है जो संख्या मे ३९ माने गये है। जीव भी भगवन्मय ही है। जिसके माध्यम से भगवान् इस विश्व मे लीला करते है। सृष्टि स्थिति, विनाश, निग्रह तथा अनुग्रह भगवान् का सुदर्शन चक्र है। निग्रह शक्ति के कारण जीव के वास्तविक आधार ऐश्वर्य तथा ज्ञान का तिरोभाव हो जाता है। यह निग्रह-शक्ति ही अविद्या, महामोह, महातमिस्र, हृदय ग्रन्थि आदि कहे जाते है। इन्ही से बधकर जीव मलयुक्त और सबन्ध हो जाता है। जीव के कष्टो से आर्द्र होकर भगवान् की कृपा का आविर्भाव होता है जो अनुग्रह शक्ति कहलाती है, जिससे जीव का कल्याण होता है और जिसके अवलम्बन से उसे परम धाम की प्राप्ति होती है। इस अनुग्रह की प्राप्ति को ही पाञ्चरात्रमत मे साधना मार्ग कहा है। उसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय शरणागति और प्रपत्ति है। जिसका पारिभाषिक नाम 'न्यास' है और यह एक मानसिक भावना है। साधना की पूर्ति पर जीव को ब्रह्म-भावापत्ति होती है। जिसको प्राप्त कर वह परमधाम मे भगवान् के साथ विचरण करता है। पाञ्चरात्रमत मे भावना-पद्धति के भेद से अनेक आगम और संहिताओ का निर्माण हुआ, परन्तु मूल भावना एक ही रही। पाञ्चरात्र मत में वैखानस आगमों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

पाञ्चरात्र मत वैष्णव सम्प्रदाय का ही एक रूप है। दक्षिण मे इस सम्प्रदाय का जब इतना शास्त्रीय विवेचन हो रहा था और इतनी संहिताओ का निर्माण हो रहा था, बौद्ध, जैन, शैव और शक्ति सम्प्रदाय भी अपने-अपने सिद्धान्तो के प्रचार और निर्माण मे संलग्न थे। शैवो की आचार्य परम्परा वैष्णवो की आचार्य परम्परा के समान पुष्ट नही थी, इसलिए उसका प्रचार जन-आन्दोलन के रूप मे था। वास्तव मे शैव-सन्तों से ही भक्ति-आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप मिला। इन शैव सन्तों की संख्या ६४ मानी गई है। जिनमे माणिक्कवाचक, सम्बन्धवागीश और सुन्दर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सन्तो के गीत आज भी सुरक्षित है। इन संग्रह ग्रन्थो मे देवरम् और तिरुवा-चकम् नामक संग्रह महत्त्वपूर्ण है। इन शैव सन्तो के समकक्ष वैष्णव सन्त भी अपने हृदय की पुकार लेकर जनता जनार्दन के सम्मुख उपस्थित हुए। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन इनका उद्देश्य नही था। इनकी दृष्टि में भगवान् के दरबार मे जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नहीं था। सम्भवत शास्त्रीय-भक्ति-निरूपण की प्रतिक्रिया मे इन अलवार भक्तो ने अपनी आवाज जनता मे उठाई और अपने हृदय के सच्चे उद्गारों से मानव मात्र को प्रभावित किया इनके उद्गार आज भी नालायिर प्रबन्धम् में सुरक्षित हैं। इनके गीत वेदग्रन्थो के माने जाते हैं

है कि ये आचार्य 'उभय-वेदान्ती' कहलाते हैं। यहा से भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात समझना चाहिए। इससे पूर्व भक्ति का प्रचार आन्दोलन के रूप मे नही था। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे एक और भी महत्वपूर्ण घटना थी। ९वी शताब्दी मे स्वामी शकराचार्य ने जाति-पाँति की संकीर्ण परिधि को हटाने और सामाजिक विषमता दूर करने और बौद्धमत के विकृत रूप के निष्कासन का भगीरथ प्रयत्न किया था। बौद्ध और जैन मत के मूल-सिद्धान्तो की सगति अद्भुत तर्क शैली के द्वारा उन्होने वैदिक धर्म से सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा के प्रभाव से चतुर्दिक् प्रचलित बौद्ध एव जैन मत का खण्डन कर अपने मत की स्थापना की। यह परम्परागत दोषो को दूर कर समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का सराहनीय कार्य था। दूसरी क्रान्ति के कारण जो प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग का एकीकरण हुआ था वह कालान्तर मे समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। इसलिए उन्होंने श्रुति, स्मृति, वेद विहित वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करके निवृत्ति मार्ग के वैदिक सन्यास धर्म को कलिकाल मे पुनर्जन्म दिया। अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए उन्होने परमार्थ दृष्टि से ब्रह्म को सगुण स्वीकार नही किया था। माया मिथ्यात्व के कारण उपासना गौण हो गई। शकर के विचारों का प्रवाह देश के सभी प्रान्तो और भाषाओ मे बडे वेग से प्रवाहित हुआ। समस्त वैष्णव सम्प्रदायो पर शकर का आतक जम गया। इसलिए परवर्ती वैष्णवाचार्यो के लिए एक समस्या बन गई कि समाज धर्म की पुन स्थापना किस प्रकार की जाय, परन्तु मानव की स्वाभाविक रागात्मिका भक्ति-भावना के ऊपर धर्म का वह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के प्रस्तरो को फोड़कर निर्झरिणी के रूप मे फूट निकला।

शकर के मायावाद का प्रचार सम्पूर्ण भारत मे हो चुका था, पर साथ ही साथ भक्ति के बीज के लिए भी उपयुक्त भूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। नवीं शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक का भारतवर्ष का धार्मिक इतिहास भक्ति-आन्दोलन का इतिहास है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे आचार्य-युग कह सकते है। इस युग के आचार्य वैष्णव आचार्य कहलाए। समस्त वैष्णव सम्प्रदायो मे परम आचार्य श्रीकृष्ण माने गए है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने चार शिष्यो को वैष्णव तत्त्व का उपदेश दिया था जिसका उल्लेख पद्म पुराण मे इस प्रकार है—

> श्री ब्रह्मरुद्र सनका वैष्णवा. क्षितिपावना: ।
> चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात् ।

'प्रमेय-रत्नावली' मे इन चारो सम्प्रदायो के प्रवर्तक-आचार्यो का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

> रामानुज श्री: स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुख ।
> श्री विष्णुस्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन ।

इस प्रकार रामानुजाचार्य श्री सम्प्रदाय के, मध्वाचार्य ब्रह्म सम्प्रदाय के, विष्णु स्वामी रुद्र सम्प्रदाय के और श्री निम्बार्काचार्य सनक सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। श्री रामानुजाचार्य पहले वैष्णव आचार्य है जिन्होने मायावाद के विरोध मे भक्ति के सिद्धान्त की शास्त्रीय प्रतिष्ठा की। इनके प्रयत्नो से वैष्णव धर्म का सम्पूर्ण भारतवर्ष मे—विशेषतया दक्षिण प्रदेश मे खूब प्रचार और प्रसार हुआ। इनके सम्प्रदाय का नाम विशिष्टाद्वैत हुआ। चित्, अचित् और ईश्वर तीन पदार्थो मे चित् को ये भोक्ता जीव मानते हैं अचित् को भोग्य जगत्

और ईश्वर को अन्तर्यामी परमेश्वर। इनके मत में निर्गुण मत की कल्पना ही असम्भव है। निर्गुण ब्रह्म का अर्थ केवल इतना ही है कि वह प्राकृत तथा लौकिक गुणों से रहित है ईश्वर चित्, अचित् का नियमन करता है इसलिए विशेष्य कहलाता है। जीव, जगत् नियम्य होने से विशेषण कहलाते है। विशेष्य की सत्ता पृथक् रूप से सिद्ध है विशेषण की नहीं इस प्रकार विशेषणों से युक्त विशेष्य की एकता आचार्य जी स्वीकार करते है, इस तरह यह सिद्धान्त अद्वैत होता हुआ भी विशिष्टाद्वैत है। आचार्य जी ने शंकर के मायावाद का युक्ति पूर्वक खण्डन किया और बताया कि जब जगत् कर्त्ता ब्रह्म नित्य है तो कारण रूप जगत अनित्य किस प्रकार हो सकता है। जीव और ब्रह्म मे भी उन्होने अंश-अंशी भाव माना है। तत्त्वमसि जैसे महा वाक्य की व्याख्या आचार्य जी ने बड़े विचित्र ढंग से की। तस्य त्वमसि (दासः)। इस प्रकार भगवान् और जीव का सम्बन्ध इन्होंने सेव्य-सेवक रूप मे माना जिसे शेष शेषी भाव भी कहा गया है। नारायण इसके उपास्य हुए। अपने स्वामी नारायण को आत्म-समर्पण करना ही जीव के लिए सबसे बड़ी साधना है। उसमे उन्होने दास्य भाव की भक्ति को महत्त्व दिया और 'प्रपत्ति को भक्ति का सार बताया'। प्रपत्ति द्वारा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है और भगवत्कृपा से नारायण की।

दक्षिण भारत का दूसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदाय है जिसके प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। इस सम्प्रदाय के द्वारा भक्ति-भावना को विशेष बल मिला। वस्तुत व्यवहार पक्ष मे यह भक्तिवादी सम्प्रदाय है और अध्यात्म पक्ष मे भेदवादी या द्वैतवादी। रामानुजाचार्य ने मायावाद का खण्डन करते हुए भी अपना सम्बन्ध अद्वैतवाद से नही तोडा था। अद्वैतवेदान्त का खण्डन माध्वमत के आचार्यो ने भी खुल्लमखुल्ला रूप से किया। माध्वमत के सिद्धान्तो का सार इस प्रकार है—

> श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्य जगत् तत्त्वतो।
> भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभाव गता।
> मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनम्।
> ह्यक्षादित्रितय प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरिः।

इस सम्प्रदाय का प्रचार दक्षिण भारत—विशेषकर कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रदेश—मे हुआ। उत्तर भारत मे बगाल इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बना। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय इसी का बँगला रूप है। कहा जाता है कि ब्रज मण्डल को इतना गौरव इसी सम्प्रदाय के कारण प्राप्त हुआ है।

सनक सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य निम्बार्क (११६२ ई०) माने जाते है। निम्बार्क वैष्णवो का प्रचार-स्थल वृन्दावन रहा। गोवर्द्धन के पास निम्बग्राम आज भी उनका तीर्थ स्थान है। इस सम्प्रदाय को कुछ विद्वान् सभी वैष्णव सम्प्रदायो मे प्राचीनतम मानते हैं। वास्तव मे अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में तो शकर के मायावाद का खण्डन किया गया हैं किन्तु इस सम्प्रदाय मे मायावाद का खण्डन नहीं हुआ। इसका सिद्धान्त द्वैताद्वैत कहलाता है। निम्बार्काचार्य के सिद्धान्त बड़े सूक्ष्म और सरल है। केवल दस श्लोको में उनके सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। इन्होने भी प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। ये सबसे पहले आचार्य थे जिन्होंने उत्तर भारत मे की भक्ति का प्रचार किया

रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी का इतिहास अभी तक अन्धकार में है। कहा जाता है कि भगवान् के साक्षात् दर्शन करने की उत्कट इच्छा से स्वामी जी ने घोर तपस्या की और उसके सफल न होने पर अन्न-जल छोड़ दिया। सातवें दिन भगवान् श्याम-सुन्दर ने वेणु-वादन करते हुये शृंगारयुत किशोर मूर्ति में आपको दर्शन दिए और बाल-कृष्ण रूप में उन्हें उपदेश दिया। तभी से ये बालकृष्ण की उपासना करने लगे। विष्णु स्वामी का समय कोई कोई विद्वान् तो ईसा से छटी शताब्दी पूर्व मानते है। इस सम्प्रदाय के आचार्य बिल्वमगल ने महाप्रभु वल्लभाचार्य को स्वप्न में विष्णु स्वामी की शरण में आने का उपदेश दिया था। विष्णु स्वामी के ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, और वे अपनी ह्लादिनी संविन् के द्वारा आश्लिष्ट है, माया उनके अधीन रहती है। ईश्वर के नृसिंह रूप को इस सम्प्रदाय में महत्व दिया गया है, पर कहा जाता है कि विष्णु स्वामी नृसिंह तथा गोपाल दोनों के उपासक थे। रुद्र सम्प्रदाय को नवीन स्फूर्ति और शक्ति महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से प्राप्त हुई। महाप्रभु के उपास्य कुल देवता गोपाल कृष्ण थे। इन्होंने भक्ति-सिद्धान्त की बड़े व्यवस्थित ढग से व्याख्या की, और वैदिककाल से चली आती हुई भक्ति परम्परा का शास्त्रीय ढग से उन्नयन किया। उनकी सिद्धि और आध्यात्मिकता से न केवल तत्कालीन समाज ही प्रभावित हुआ, अपितु दिल्ली के मुसलमान बादशाह सिकन्दर लोदी ने भी उनके प्रभाव में आकर अपने दृष्टिकोण को बदल दिया। कृष्णदेव राय की विशाल सभा का कनकाभिषेक वल्लभ-सम्प्रदाय की महत्त्वपूर्ण घटना है। शकर के मायावाद का खण्डन अभी तक कोई आचार्य नहीं कर सका था। विष्णु स्वामी के सम्प्रदाय को नवीन साँचे में ढालकर इसका नाम उन्होंने शुद्धाद्वैत रखा। आचार्य शंकर के अद्वैत से भिन्नता प्रकट करने के लिए ही उन्होंने 'शुद्ध' विशेषण लगाया। शकर ने मायायुक्त ब्रह्म को जगत् का कारण माना था। परन्तु इन्होंने शुद्ध ब्रह्म को जगत् का कारण माना। ब्रह्म का परिणाम रूप ही जगत् और जीव की सत्ता का कारण है। शकर ने निर्गुण ब्रह्म को सगुण ब्रह्म की अपेक्षा महत्ता प्रदान की, परन्तु महाप्रभु जी ने ब्रह्म के दोनों रूपों को सत्य माना, वह एक ही समय में निर्गुण भी रहता है और सगुण भी। यही उसका विरुद्ध धर्माश्रयत्व है। इसीलिए वह कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ है। वह अविकृत और अविकारी होते हुए भी भक्तों पर कृपा करने के लिए परिणामशील होता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वय पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हैं। जब वे अपनी आत्मा में आन्तर रमण करते है तब आत्मानन्द कहलाते है। बाह्य रमण की इच्छा से जब वे अपनी शक्तियों का प्रकाशन करते है तब पुरुषोत्तम कहलाते है। और इसी रूप में वे आनन्दमय अगणितानन्द और परमानन्द कहलाते है। आचार्य वल्लभ का यह सिद्धान्त परम्परागत सभी भक्ति-सम्प्रदायों के मेल में है इसमें कोई सन्देह नहीं। पाञ्चरात्र-मत की यह सर्वश्रेष्ठ व्याख्या कही जा सकती है। भगवान् अपनी शक्तियों से वेष्टित होकर व्यापी वैकुण्ठ में नित्य लीला करते हैं। यह व्यापी वैकुण्ठ विष्णु धाम से भी ऊपर है और गोलोक भी इसका अंश मात्र है। भगवान् की शक्तियाँ भी पुष्टि, गिरा, कान्त्या आदि उनके अधीन रहती है। लीला के निमित्त वे सपरिवार इस लोक में उतरते है। तब व्यापी वैकुण्ठ ही इस लोक में विराजता है और उनकी वे शक्तियाँ भी, स्वामिनी चन्द्रावली, राधा, यमुना आदि के रूप में अवतीर्ण होती है। श्रुतियाँ इस रस का आनन्द लेने के लिए गोपियों के रूप में अवतीर्ण होती है। यह लीला नित्यरूप में आविर्भूत होती है।

आचार्य वल्लभ का दार्शनिक सिद्धान्त क बिलकुल अनुकूल है।

जिस प्रकार भगवद्गीता मे ब्रह्म के तीन स्वरूप हे आधिभौतिक आध्यात्मिक और आधिदैविक इसी प्रकार इनके मत मे भी जगत् क्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम ब्रह्म के तीन परिणाम है अक्षर ब्रह्म मे आनन्दांश का कुछ तिरोधान रहता है। और परब्रह्म मे आनन्द पूर्ण रहता है। अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति विशुद्ध ज्ञान के द्वारा होती है जबकि परब्रह्म की प्राप्ति का साधन एकमात्र भक्ति है।

पुरुष: स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। गीता ८।२१

पुरुषोत्तम के अधिकारी केवल भक्त ही है। जीव रूप में भी भगवान् स्वय ही आते है। इसमे केवल भगवान् की इच्छा ही कारण है आनन्दादि अंशों का तिरोधान हो जाता है। ऐश्वर्य के तिरोधान से दीनता, यश के तिरोधान से हीनता, श्री के तिरोधान से आपत्ति-भाजनता, ज्ञान के तिरोधान से देहाध्यासता होती हे। जीव का आविर्भाव ब्रह्म से इस प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिग। भगवान् के अविकृत चिन्तन से जीव का आविर्भाव होता है और उनके अविकृत सदेश से जड का। जीव मे केवल आनन्द का तिरोधान है और जड़ मे चित् और आनन्द दोनो का। आनन्दांश के तिरोधान होने से ही जीव का सम्बन्ध अविद्या से हो जाता है और उसकी सज्ञा ससारी हो जाती है। पहले यह विशुद्ध रहता है। भगवान् की कृपा से ससारी जीव मे जब आनन्द का आविर्भाव होता है तो वह स्वयं मुक्त होकर सच्चिदानन्द हो जाता है। भगवत्कृपा का साधन ही पुष्टि मार्ग है। इस प्रकार महाप्रभु भी अविकृत परिणामवाद को मानने वाले है अर्थात् निर्गुण सच्चिदानन्द ही अविकृत भाव से जगद्रूप मे परिणत हो जाते है। आचार्य चरण जगत् की उत्पत्ति और विनाश नही मानते। केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही मानते है। जगत् और ससार का आचार्य चरण ने बडा सूक्ष्म भेद किया है। भगवान् के सदश से प्रादुर्भूत पदार्थ जगत है, परन्तु अविद्या के कारण जीव के द्वारा कल्पित व्यावहारिक पदार्थ ससार है। जगत् जीव और ईश्वर की भाँति नित्य है। साधना-पक्ष मे महाप्रभु जी ने शास्त्र सम्मत वैदिक मार्ग का प्रवर्तन किया और उन्होने सभी परम्पराओं का समन्वय बडे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया। पुष्टि मार्ग, प्रवाह मार्ग और मर्यादा मार्ग तीनो मार्गो की सुन्दर विवेचना करते हुए आचार्य जी ने सभी भक्ति पद्धतियो का सुन्दर विवेचन किया मर्यादा मार्ग को वे वैदिक मार्ग बताते है जो अक्षर ब्रह्म की वाणी से उत्पन्न हुआ है। परन्तु पुष्टिमार्ग साक्षात् पुरुषोत्तम के शरीर से ही निःसृत हुआ है। इसलिए मर्यादा भक्ति मे फल की इच्छा रहती है। इस मार्ग का भक्त सायुज्य भक्ति को अपना ध्येय मानता है। परन्तु पुष्टि मार्गी केवल भक्ति चाहता है। वास्तव में पुष्टि मार्ग जैसा सुलभ और सरल मार्ग अभी तक दूसरा नही था। वर्ण, जाति, देश, सम्प्रदाय आदि भेदों से परे जीव मात्र के लिए कलिकाल मे आनन्द प्राप्ति का यही एक मात्र साधन है।

पुष्टि मार्गीय भक्ति का आचार्य जी ने बड़े विस्तार से शास्त्रीय विवेचन किया है। इस मार्ग मे भक्त को किसी साधन की अपेक्षा नही रहती।

'निस्साधन भजनीये, भावतनौ मे मतिर्भूयात्'।

—नवनीताष्टक

भक्तो पर कृपा करने के लिए ही भगवान् अपनी लीला करते हैं। लीला उनकी विलास की इच्छा मात्र है।

लीला नाम विलासेच्छा -सुबोधिनी भाग ३ स्कन्ध

अनुग्रह भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विलास है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। यही भगवान् के आविर्भाव का प्रयोजन है। भगवान् के अनुग्रह से ही रागानुगा भक्ति की प्राप्ति होती है। उस अनुग्रह की सिद्धि सेवा, एकान्त निष्ठा तथा शुद्ध अनुराग से होती है। वह सेवा तीन प्रकार की है— तनुजा, वित्तजा एव मानसी। अनुग्रह बिना उत्कट प्रेम के सभव नही। इस उत्कट प्रेम का परिचय विरह के द्वारा ही होता है, इसलिये पुष्टि सम्प्रदाय में विरह भावना का बडा महत्व है और उसके लिए गृह-त्याग भी करना पडता है। भगवत्-प्रेम की प्राप्ति के लिए भक्त को तीन अवस्थाओं मे होकर गुजरना पड़ता है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। प्रेम की इन तीनो श्रेणियो का विवेचन आचार्य चरण ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। आज के पीडित मानव के लिए पुष्टिमार्ग का आचरण रामबाण हो सकता है। ब्रह्म सम्बन्ध के पीछे एक बडा व्यवहारी दर्शन है। इसका विधान आचार्य चरण के सिद्धान्त-रहस्य नामक स्तोत्र मे बताया है। गुरु आत्म-निवेदन मन्त्र से ब्रह्म सम्बन्ध कराता है। कहा जाता है कि यह आत्म-निवेदन मत्र स्वय श्री कृष्ण जी ने आचार्य जी को बताया था।

भगवत् अनुग्रह की चर्चा प्राचीन ग्रन्थो मे भी मिलती है। 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्य'।' तथा तमक्रतु पश्यति वीतशोको' धातु प्रसादात् महिमानमात्मनः' आदि श्रुति वाक्य इस बात का उद्घोष करते है कि भगवत् कृपा का सिद्धान्त बहुत पुराना है।

श्री, ब्रह्म, रुद्र एवं सनक इन चार सम्प्रदायों का पुनरुत्थान दक्षिण मे हुआ। श्री सम्प्रदाय की प्रचार भूमि विशेष रूप से दक्षिण रही, पर उत्तर में भी रूपान्तर से इसका प्रचार हुआ और भक्ति के प्रचार मे इस सम्प्रदाय ने अपना विशिष्ट योग दान दिया।

ब्रह्म तथा सनक सम्प्रदायों का भी उत्तर भारत मे अपना विशिष्ट स्थान है। परन्तु रुद्र सम्प्रदाय का पुष्टि सम्प्रदाय नाम से प्रचार और प्रसार उत्तरी भारत मे बहुत अधिक हुआ। इन सभी सम्प्रदायो ने भक्ति-आन्दोलन को जन-आन्दोलन बनाने का महत्त्व-पूर्ण कार्य किया है। इस आन्दोलन की व्यापकता और त्वरित गति से प्रभावित होकर ही सभवतः पाश्चात्य विद्वानों ने इसे 'बिजली की चमक' बताया है। सभी भारतीय भाषाओ के साहित्य को समृद्ध और प्राणवान् बनाने का श्रेय इस आन्दोलन को है। १० वी शताब्दी से लेकर १८ वी शताब्दी तक भारतीय साहित्य की मूल प्रेरणा इन्ही सम्प्रदायो से अनुप्राणित होती रही है। भक्ति-आन्दोलन के जन-आन्दोलन के स्वरूप का विवेचन करने से पूर्व हम यह बतलाना आवश्यक समझते है कि दक्षिण की भाषाओ के साहित्य को किस प्रकार इस वैष्णव धर्म ने समृद्ध किया है। कहने की आवश्यकता नही कि वैष्णव धर्म के प्रभाव से सभी भाषाओ का साहित्य सौदर्य और माधुर्य से ओत-प्रोत हो गया। जीवन की दिशाएँ बदल गई और साहित्य मे वह सरसता, मधुरता, लालित्य, शिवत्व और सौन्दर्य आ गया जिनके कारण वैष्णव साहित्य सदा के लिए अमर हो गया। आश्चर्य है कि आज भी वही साहित्य सुन्दरतम है। सूर और तुलसी की तुलना का कोई दूसरा कवि अभी तक हिन्दी में नही हो सका है। तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, बगला, आसामी, उडिया मराठी गुजराती हिन्दी आदि का वैष्णव साहित्य आज भी इन भाषाओं के साहित्य का हृदय-स्थानीय है

तमिल साहित्य मे यद्यपि शव साहित्य की प्रधानता है, परन्तु भावना वही वैष्णव धर्म की है। वैष्णव भक्त आलवारो की रचनाएं कम महत्वपूर्ण नही। ये रचनाएं आज भी तमिल वेद के नाम से पुकारी जाती है। सुप्रसिद्ध आलवार भक्त विष्णु स्वामी का 'दिव्य-प्रबन्धम्' आज भी तमिल साहित्य की विशिष्ट निधि है। कहना न होगा कि तेलुगु साहित्य का भी वैष्णव-भक्ति-साहित्य आज अनुपमेय है। महाकवि पोताना का भागवत पुराण तेलेगु का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसी प्रकार और कितने ही ग्रन्थ तेलुगु साहित्य मे रत्नरूप से विराजमान है। कृष्णदेव राय का विष्णु चित्तीय काव्य और महाकवि वेदना और तिमन्ना के काव्य तेलुगु साहित्य के अलंकार है। कन्नड़ भाषा मे भी वैष्णव साहित्य की कमी नही है। रामानुजाचार्य के प्रभाव से कन्नड भाषा मे ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जिसके कारण वह युग कन्नड भाषा का 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। कुमार व्यास, कुमार बाल्मीकि तथा चाटु विठ्ठलनाथ के प्रसिद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त उन वैष्णव-सन्तों का, जो दास नाम से साहित्य मे विख्यात है, साहित्य भी बहुत ही उच्च कोटि का है। पुरंदरदास कनकदास, विठ्ठलदास, वेकटदास, विजयदास, तथा कृष्णदास के पद आज भी चिर नवीन है। लक्ष्मीश का जैमिनि भारत एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मलयालम भाषा मे भी वैष्णव काव्यो का प्राचुर्य है। इस दृष्टि से सम्भवत. मलयाली साहित्य सबसे अधिक सम्पन्न है। त्रावणकोर के महाराजा का रामचरित एक महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसी प्रकार चेरुस्सेरी नम्बद्री की कृष्ण गाथा काव्य और तुञ्चन कवि का भागवत बड़े महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। पोन्तान कवि अपने समय के गोस्वामी तुलसीदास कहे जा सकते है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भक्ति-आन्दोलन बिजली की चमक की भाँति सारे भारतवर्ष मे फैल गया। दक्षिण के वैष्णव आचार्यो का प्रभाव उत्तर मे भी बहुत व्यापक रहा, पर इसका अभिप्राय यह नही है कि उत्तर भारत, मध्यभारत अथवा पूर्वी भारत मे भक्ति आन्दोलन का श्री गणेश दक्षिण के वैष्णव आचार्यो के द्वारा ही हुआ हो। उत्तर भारत में पौराणिक धर्म का प्रचार पहले ही से था। शैव भक्ति का प्राधान्य था। कृष्णावतार तथा रामावतार की भी व्यापकता थी। दशावतार-चरित सम्बन्धी तो कई ग्रन्थ उपलब्ध होते है। पृथ्वीराज रासो का दसम वास्तव मे दशावतार चरित ही है, राम और कृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्राय लोक-परक था। दक्षिण के आचार्यो के सम्पर्क से उसमे नई शक्ति आ गई और वह ईश्वरोन्मुख हो गया। लीला-गान की परम्परा के उदाहरण उत्तर-भारत के साहित्य में मिलते है। यह लीला-गान की परम्परा भागवत परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न थी। अपभ्रंश-साहित्य मे हमे कृष्ण-लीला सम्बन्धी अनेक गेय पद प्राप्त होते है। सिद्धो और नाथों ने जिस गेय परम्परा को अपनाया, वह अवश्य वैष्णव धर्म मे रही होगी और यह परम्परा सम्पूर्ण उत्तर-भारत मे प्रचलित थी। जयदेव का गीत-गोविन्द भागवत वाली परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न परम्परा का है। विद्यापति और चण्डीदास के पद जयदेव की परम्परा के है। नाथ सिद्ध पश्चिमी भारत मे अड्डा जमाए थे तो बौद्ध-सिद्धो की प्रचार भूमि पूर्वी भारत था। काश्मीर मे शैव मत का बोल बाला था। संभवतः बौद्ध-सिद्धो के प्रभाव से बंगाल में सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। बौद्धो का सहजभाव सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय मे बहुत बातों मे मिलता जुलता है वज्रयानी सिद्धो ने महासुख की उपलब्धि के लिए अनेक उपायों का वर्णन

किया है। नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धो की शब्दावली भी बहुत कुछ मिलती-जुलती है सहजयान वज्रयान का ही दूसरा नाम है। सहजावस्था की प्राप्ति मे ही ये सिद्धि की पूर्णता मानते है। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय मे सहज शब्द की व्याख्या को बिल्कुल बदल दिया था। ये लोग रागानुगा प्रेमाभक्ति के अनुयायी बने और प्रेम को परमात्मा का सहजगुण या सहज रूप बतलाया। इसी प्रेम के द्वारा मनुष्य सहज भाव प्राप्त कर सकता है। रूप जब स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तभी मनुष्य सहज भाव को प्राप्त होता है। मनुष्य के अन्तर्गत भागवत का आध्यात्मिक तत्त्व ही स्वरूप है और जो निम्नतर भौतिक तत्त्व है वह रूप है। रूप पर स्वरूप के आरोप मे पार्थिव प्रेम को अपार्थिव रूप मे परिणत करना होता है, किन्तु बिना रूप की सहायता के स्वरूप की उपलब्धि नही हो सकती। इसीलिए अपार्थिव प्रेम की अनुभूति के लिए ये परकीया प्रेम को महत्त्व देते है। सहज रूप मनुष्य को प्रेमा भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। तभी उसमे शुद्ध सत्त्व की प्रतिष्ठा होती है और वह समभाव को प्राप्त होता है। सहजिया सम्प्रदाय की साधना का गूढ तत्त्व यह है कि पुरुष स्वयं को स्त्री समझकर भगवान् की उपासना करे। ऐसा करने से वह यौन सम्बन्ध का परित्याग कर सकता है। इस सम्प्रदाय में भगवान् आनन्द, माधुर्य और सौन्दर्य के उत्स हैं। राधाकृष्ण प्रकृति और पुरुष है। इनमे आश्रयाश्रयी भाव है। सहजिया सम्प्रदाय एक तान्त्रिक मार्ग कहा जा सकता है परन्तु शुद्ध तान्त्रिक मत से साधना पक्ष मे इसकी पर्याप्त भिन्नता है।

मध्वाचार्य के सम्प्रदाय का बंगाल पर बडा प्रभाव पडा था जिसके फलस्वरूप बंगाल में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा चली। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय मे सख्य, दास्य तथा वात्सल्य भावों को भी उपासना मे उपादेय माना है किन्तु सहजिया वैष्णव केवल माधुर्य भाव की उपासना को ही श्रेष्ठ समझते है। गौडीय वैष्णवों में तो परकीया तत्त्व को सिद्धान्त रूप से ही स्वीकार किया था पर सहजिया वैष्णवों ने इस तत्व को व्यावहारिक रूप भी दिया। वास्तव मे सहजिया वैष्णवो के सिद्धान्त बौद्ध सहजयान के सिद्धान्तो से बहुत मिलते-जुलते हैं। चण्डीदास की उपास्य वाशुली देवी वज्रयानियो की वज्रधात्वीश्वरी का ही दूसरा रूप है। सहजिया सम्प्रदाय के अतिरिक्त बंगाल मे आउल, बाउल, साईं, दरवेश आदि कई सम्प्रदायो का भी प्रचार था। बाउल तो सहजिया वैष्णवो से भी एक कदम और आगे थे। सहजिया लोगो का प्रेम राधा और कृष्ण दो व्यक्तियो की अपेक्षा रखता है जबकि बाउलो का प्रेम 'मनेर्मानुम' के प्रति होता है। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अलौकिक प्रेमपात्र है। उसे उसी के प्रति प्रेम करना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बंगाल की गौडीय शाखा माध्व सम्प्रदाय की ही एक शाखा कही जा सकती है, पर इसका व्यावहारिक पक्ष माध्व सम्प्रदाय से भिन्न है। चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को भक्ति क्षेत्र मे एक चमत्कार समझना चाहिए। इस भक्ति आन्दोलन के युग मे उत्तर भारत के वैष्णवाचार्यो मे चैतन्य महाप्रभु का नाम अग्रगण्य है। यह एक विचित्र घटना है कि चैतन्य महाप्रभु की कर्म-भूमि बंगाल ही रही पर उनके सम्प्रदाय का ब्रजभूमि से विशेष सम्बन्ध रहा। वास्तव मे चैतन्य मत का शास्त्रीय विवेचन ब्रजभूमि मे ही हुआ। माध्वमत के अनुयायियो मे माधवेन्द्रपुरी, गौडीय सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय के बीच सेतु का कार्य करने वाले हैं चैतन्य महाप्रभु इन्हीं के पट्ट शिष्य

ईश्वरपुरी के शिष्य थे, यद्यपि दीक्षा उन्होंने केशव भारती से ली थी। भक्ति के प्रचार और प्रसार में चैतन्य महाप्रभु ने बड़ा योग दान दिया। उन्होंने भारतवर्ष के सभी विख्यात तीर्थ स्थानों की यात्रा की। दक्षिण के तीर्थों के दर्शन से इनकी प्रवृत्ति वृन्दावन के उद्धार की ओर झुकी। वैष्णव धर्म के प्रचार में इन्हें नित्यानन्द जैसे सहयोगी मिले और दोनों ने मिलकर समस्त उत्तरी भारत को विशेषकर बंगाल को भक्ति स्रोत से आप्लावित कर दिया। ब्रज, विशेषकर वृन्दावन के उद्धार का श्रेय बहुत कुछ चैतन्य महाप्रभु को है। यह विषय यद्यपि अभी तक विवादास्पद बना हुआ है फिर भी वृन्दावन के उद्धार में चैतन्य महाप्रभु का जो योग दान है वह कम महत्व का नहीं है। माधवेन्द्रपुरी उनसे पहले वृन्दावन में गोपाल की मूर्ति स्थापित कर चुके थे, चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन के उद्धार के लिए अपने दो प्रधान शिष्यों को भेजा। ये दो भक्त थे लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भाचार्य। चैतन्य के सहयोगियों में अद्वैताचार्य का नाम भी उल्लेखनीय है। चैतन्य मत को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय चैतन्य के शिष्य षट् गोस्वामियों को है जिनके नाम हैं रूप सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ ट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी।

माध्वमत की शाखा होने पर भी चैतन्य मत का दार्शनिक दृष्टिकोण स्वतंत्र है। माध्व सम्प्रदाय का मूलाधार द्वैतवाद है जबकि चैतन्य का अचिन्त्य भेदाभेद। अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण परमतत्त्व है और उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान् में न भेद होता है और न अभेद। उनका सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है, चैतन्यमत में प्रेम को ही महान् पुरुषार्थ माना गया है और यह प्रेमाभक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अतिरिक्त पाँचवाँ पुरुषार्थ है। गौडीय वैष्णवों के सम्बन्ध में एक बात यह भी विचारणीय है कि उन्होंने साहित्य जगत् में भक्ति को रस की कोटि तक पहुँचाया। 'भक्ति रसामृत सिन्धु' भक्ति रस का सुन्दर ग्रन्थ है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य पाँच भावों से भगवान् कृष्ण की भावमयी गोलोक लीला सम्बन्ध रखती है। रति की निम्न कोटि शान्त में है और चरमोत्कर्ष माधुर्य में। यह माधुर्य भाव-रति तीन प्रकार की बताई गई है; साधारणी रति, समञ्जसा रति और समर्था रति। इनमे समर्था रति सर्वोपरि है जिसका एकमात्र लक्ष्य भगवान् का ही आनन्द है। उसके लिए भक्त मर्यादा का भी उल्लघन कर सकता है। गोपीभाव इस रति का दृष्टान्त है। यह गोपी-भाव ही अपने उत्कर्ष में राधा भाव पर पहुँच जाता है। गौडीय वैष्णवों के इस रतिभाव में और पुष्टि सम्प्रदाय के ब्रह्म सम्बन्ध में इतना साम्य है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव बंगाल के अतिरिक्त उत्कल में भी पड़ा। यों तो उत्कल भक्ति भावना का पहले से ही केन्द्र रहा है। पर जगन्नाथ जी के मन्दिर के निर्माण के पश्चात् तो यह प्रदेश वैष्णव भक्ति का महत्त्वपूर्ण पुण्य स्थल बन गया। भगवान् जगन्नाथ के आविर्भाव को कथा नारद पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कन्द पुराण तथा कपिल संहिता आदि ग्रन्थो मे मिलती है। दास ब्रह्म का उल्लेख शाङ्खायन ब्राह्मण मे भी मिलता है, कुछ इतिहासकारों का कथन है कि इस प्रदेश में शवरों का राज्य था। इसलिए यहाँ लकड़ी की मूर्ति बनाई गई। कुछ भी हो, जगन्नाथ जी की पूजा इस प्रदेश मे प्राचीन काल से होती आई है। अनेक बार उत्कल के मन्दिरों पर विदेशियों के आक्रमण हुए है और उनके ध्वंस चिह्नमात्र अवशिष्ट रह गए है। ह्वेनसाग ने अपनी यात्रा के प्रसग मे इस तथ्य की ओर संकेत किया है। इस प्रदेश के मन्दिरो और मूर्ति कला के सम्बन्ध मे यह बात लक्ष्य करने की है कि यहाँ

वष्णव धर्म के मा यम से कई संस्कृतियो का संगम हुआ है चैतन्य महाप्रभु ने राजा प्रताप रुद्र (१५०३ ई० के समय मे नीलाचल क्षेत्र को अपना प्रचार क्षेत्र बनाया और तभी से इस क्षेत्र का महत्त्व बढ़ गया। पुरी के सम्बन्ध मे इतिहासकारो का यह भी मत है कि यहाँ की जगन्नाथ की मूर्ति पर बौद्ध प्रभाव है। इसमे कोई सन्देह नही कि उत्कल प्रान्त बौद्धो का अड्डा रहा है। कटक जिले के रत्नगिरि नामक स्थान में आज भी बौद्ध महाविद्यालय पुष्प गिरि के भग्नावशेष मिलते है और स्थान स्थान पर अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, आर्यतारा आदि बौद्ध देवता पाए जाते हैं। साँची से प्राप्त धर्म ग्रंथो से इस मूर्ति की बडी समानता है। कुछ लोगो का कहना है कि जगन्नाथ जी की रथ यात्रा भी बौद्ध प्रभाव का फल है। उडिया की कुछ पुस्तकों मे जगन्नाथ जी बुद्ध के ही रूप माने गए है। जगन्नाथ जी को हम पूरा बौद्ध विग्रह तो मानते है पर इसमे हमे कोई सन्देह नही है कि यहाँ के विधि-विधान, वास्तु कला, मूर्ति कला आदि इस बात को प्रमाणित करते है कि जगन्नाथपुरी मे शबर, बौद्ध और ब्राह्मण संस्कृतियो का सुन्दर समन्वय हुआ है। वैष्णव धर्म उत्कल प्रान्त मे बहुत प्राचीन काल से प्रचलित था। इसके प्रमाण कुछ शिला लेखो से मिलते है। हाथी गुफा का शिला लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चैतन्य के प्रभाव से उत्कल साहित्य मे पाँच महान् वैष्णव कवि हुए जो पच सखा कहे जाते है—बलरामदास, अनन्तदास, यशवन्तदास, जगन्नाथदास और अच्युतानन्ददास। इन सखाओ ने उडिया भाषा मे अनेक ग्रन्थ रचे और ये सखा चैतन्य महाप्रभु के लीला परिकर माने जाते है। उन्होने प्रेमाभक्ति का प्रचार इस प्रदेश में किया। इनके उपदेश सन्तों की ही भाति थे और इनका दर्शन कबीर आदि सन्तों के दर्शन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इन्होंने ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो रूपो का निरूपण किया है किन्तु परम तत्त्व निराकार शून्य को माना है। इनके सिद्धान्तो मे वैष्णव, तान्त्रिक और बौद्ध तत्त्वो की त्रिवेणी दर्शनीय है। बगाल मे आगे असम प्रदेश मे भी महाप्रभु चैतन्य के वैष्णव धर्म का प्रभाव पडा। असम प्रदेश प्राचीन काल से शाक्तों का गढ़ रहा है। कामाख्या पीठ कामरूप मे ही है। वैष्णव धर्म की यह बडी भारी विजय थी कि शाक्त प्रभाव वाले देश मे आज भी इतनी बडी संख्या मे वैष्णव पाये जाते है। वैष्णव धर्म का प्रचार यहाँ शकरदेव और माधवदेव ने किया। शकरदेव महापुरुष कहलाते थे, इसलिए उनसे प्रचारित धर्म को आज भी महाधर्म या महापुरुष धर्म कहते हैं। सिद्धान्त रूप से तो ये अद्वैतवादी थे और आचरण रूप मे पूर्ण भक्त। इनका भक्ति रत्नाकर और भक्ति रत्नावली ग्रथ बडे अद्भुत है। असमियाँ भाषा मे असंख्य कीर्तन पदो की रचना शकरदेव ने की। कुछ ग्रन्थ ब्रजबुलि मे लिखे गए। हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन भक्ति भाव की दृष्टि मे ब्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही है।

वैष्णव धर्म के ऐतिहासिक विवेचन मे महाराष्ट्र के वैष्णव पथों का उल्लेख भी आवश्यक है। महाराष्ट्र का बड़ा पुराना वैष्णव पथ महानुभाव या मान भाव या महात्मा पथ है। गुजरात मे इसे अच्युत पंथ कहते है और पंजाब मे जयकृष्ण पथ। इस पथ के अनुयायी अपनी सभी बातो को गोपनीय रखने मे विश्वास रखते है। लोकमान्य तिलक ने इस पथ को प्रकाश मे लाने का कुछ प्रयत्न किया। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाडे, प्रसिद्ध लेखक भावे और यशवन्त पाण्डे ने इस पथ के विषय में सराहनीय कार्य किये हैं। प्रत्येक बात को गुप्त रखने की भावना के कारण इस पथ के अनुयायियो को यहाँ कुछ अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। एक कहावत भी प्रसिद्ध है करणी कसावाची बोलणी इस पथ व उपास्य देवता श्रीकृष्ण

और दत्तात्रय हैं। कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण बने जिनसे ये हिन्दू धर्म विरोधी समझे जाने लगे थे, परन्तु अब परिस्थिति कुछ बदल रही है। इस पंथ का उदय तेरहवीं शताब्दी में हुआ और इसके आद्य आचार्य गोविन्द प्रभु माने जाते हैं, परन्तु पंथ का प्रवर्तन श्री चक्रधर द्वारा हुआ और प्रचार उनके शिष्य श्री नागदेवाचार्य द्वारा। इस पंथ में स्त्री और पुरुष दोनों को ही सन्यास की दीक्षा दी जाती है। इस पंथ के कतिपय लीलापरक ग्रन्थ मराठी भाषा में मिलते हैं। कुछ मंगल गीत भी हैं। हिन्दुओं की जाति व्यवस्था के विरोध में इस पंथ का उदय हुआ था। इनका सिद्धान्त हरि द्वैताद्वैत की ओर है और भक्ति भावना योग से समन्वित। श्री मद्भगवद्गीता इनका मान्य ग्रन्थ है और इन पंथ के आचार्यों ने श्रीमद्भगवद् गीता की कई टीकाएँ लिखी हैं। इस पंथ का प्रचार पंजाब और अफगानिस्तान तक हुआ और मराठी भाषा का प्रचार सुदूर प्रदेशों में हुआ।

महाराष्ट्र का वास्तविक वैष्णव सम्प्रदाय 'वारकरी पंथ' कहलाता है। इस पंथ के उपास्य विट्ठलदेव जी हैं जो कृष्णचन्द्र के बाल रूप हैं। पण्ढरपुर इनका तीर्थ स्थान है जहाँ एक ईंट पर खड़े हुए विट्ठल जी की मूर्ति है और साथ ही रुक्मिणी जी भी विद्यमान हैं। विट्ठल शब्द की व्याख्या विद्वानों ने कई प्रकार से की है। संस्कृत के विद्वान् इनका विग्रह इस प्रकार करते हैं—विदा ज्ञानेन, ठान् शून्यान्, लाति गृह्णाति इति विट्ठल.। कोई कोई विट्ठल को विटस्थल का अपभ्रंश मानते हैं अर्थात् ईंट पर खडा होने वाला और किसी ने विष्णु का अपभ्रंश विठोबा माना है। सन्त तुकाराम जी के अनुसार वि गरुड और ठोबा वाहन, इस प्रकार विठोबा की व्युत्पत्ति की है। इस पंथ को मालकरी पंथ और भागवत पंथ भी कहते हैं। तुलसी की माला इस पंथ का विशिष्ट चिह्न है। विठोबा का ही दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। इस पंथ के मान्य ग्रन्थ भागवत और भगवद्गीता हैं। महाराष्ट्र प्रान्त की भक्ति भावना बडी पुरानी है पर पण्ढरपुर में विट्ठल जी का आविर्भाव पुण्डरीक के समय में हुआ। सन्त ज्ञानदेव ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया और उन्होंने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका लिखी। पाण्डुरंग की उपासना तो और भी पुरानी ठहरती है। शंकराचार्य ने अपने पाण्डुरङ्गाष्टक में पुण्डरीक के लिए पाण्डुरङ्ग के आविर्भाव का संकेत किया है। कुछ भी हो इस मत का प्रचार ज्ञानदेव जी के समय से अधिक हुआ। इस मत में अद्वैतवाद के साथ कृष्ण भक्ति का अच्छा सामञ्जस्य हुआ है और साथ ही नाथ योग भावना का भी पूर्ण सम्मिश्रण इस मत में दीख पडता है। ज्ञानदेव को आज भी लोग सिद्ध योगी मानते हैं। ज्ञानदेव के साथ-साथ नामदेव का नाम भी उल्लेखनीय है। नामदेव ने सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य किया है। नामदेव का कबीर की वाणियों से बहुत साम्य है। इनके कारण महाराष्ट्र प्रान्त में भागवत सम्प्रदाय बहुत व्यापक हुआ और अनेक सन्त इसके प्रचार में प्रवृत्त हुए। इन सन्तों में सब जाति के लोग थे। विसोबा जोगी थे और गोरा कुम्हार, सावता माली, चोखा कम्हार, सेना नाई, नरहरि सुनार जैसे सन्त इसी सम्प्रदाय की देन हैं। साथ ही साथ कई भक्तिनें भी हो गई हैं। जिनमें जनाबाई, कान्हूपात्रा, सखूबाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पंथ की सन्त परम्परा में एक नाथ (१५३३ ई०) बडे प्रसिद्ध हैं। इनके विषय में कितनी ही अलौकिक घटनाएँ आज भी महाराष्ट्र में प्रचलित हैं। इनका नाथ-भागवत एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनका रुक्मिणी स्वयंवर और भाव रामायण भी भक्ति के श्रेष्ठ ग्रन्थों में गिने जा सकते हैं सन्त तुकाराम भी इस के महनीय व्यक्ति थे ये अभंग मराठी साहित्य के रत्न माने जाते हैं तथा भक्तों के

शिरोमणि तुकाराम शिवाजी के समकालीन थे। इस मत में अन्य भी बहुत से सन्त हुए है जिन्होंने अपनी अमर-वाणी में मराठी साहित्य को समृद्ध किया। वारकरी मत में चार सम्प्रदाय माने जाते है—चैतन्य, स्वरूप, आनन्द और प्रकाश। इन चारो सम्प्रदायो मे कोई तात्विक भेद नहीं है। वारकरी पथ पूर्ण रूप से वैदिक है और वर्णाश्रम धर्म मे आस्था रखता है। सिद्धान्त रूप मे अद्वैतवाद का पक्षपाती होता हुआ भी व्यवहार पक्ष में यह सगुण-भक्ति का पोषक है। तुलसी की माला और एकादशी व्रत का माहात्म्य इस मत में बहुत अधिक है। तुकाराम जी ने अपने मत का सार शिवाजी के पास इस प्रकार लिख कर भेजा था -

आम्हीं तेणे सुखी म्हाडा विठ्ठल विठ्ठलमुखी।
कण्ठी मिरवा तुलसी व्रत करा एकादशी।

इस पंथ मे भक्ति और ज्ञान दोनो का सुन्दर समन्वय हुआ है। युगल उपासना मे राधा के स्थान पर रुक्मिणी को रक्खा गया है जिससे यह मत लोक सग्रही हो गया। महाराष्ट्र मे वारकरी सम्प्रदाय के अतिरिक्त रामदासी सम्प्रदाय का भी प्रचार है जिसके प्रवर्तक शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी थे। इस सम्प्रदाय में समाज की ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्रकार की उन्नति को महत्व दिया गया है। स्वामी जी के प्रसिद्ध ग्रथ दासबोध मे इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। स्वामी जी के उपास्य राम थे और उन्होंने रामभक्ति मे ब्रह्म-ज्ञान और कर्म-काण्ड दोनो का सामञ्जस्य किया।

महाराष्ट्र प्रान्त की भाँति गुजरात में भी स्वतंत्र रूप से वैष्णव धर्म का विकास हुआ। ऐतिहासिक तथ्यो से यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि गुजरात मे भागवत धर्म का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। गुजरात के दो वैष्णव पीठ प्रसिद्ध है—द्वारका और डाकोर जी। द्वारका मे तो शङ्कराचार्य जी ने आठवी शताब्दी मे ही अपना पीठ स्थापित किया था। तेरहवी शताब्दी से तो गुजरात मे वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत ही अधिक बढ गया था। मध्य युग मे राधाकृष्ण की भक्ति के प्रचार का श्रेय नरसी मेहता और मीराबाई को है। जब से पुष्टि मार्ग का प्रचार गुजरात मे हुआ तब से तो मानों गुजरात भक्ति का पीठ ही बन गया और समस्त गुजरात मे श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति फैल गई। गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग के प्रचार के लिये छै बार गुजरात की यात्रा की।

यहाँ प्रसग वश वृन्दावन के कुछ वैष्णव सम्प्रदायो की चर्चा भी आवश्यक है।

वैष्णवाचार्यों के प्रभाव से ब्रजभूमि में परिनिष्ठित सम्प्रदायो के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्प्रदाय भी प्रचलित हुए। यह पहले कहा जा चुका है कि वृन्दावन में निम्बार्क सम्प्रदाय सब से पुराना है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे सब से पहले राधा जी को इतना महत्व मिला था। उनके सम्पर्क से वृन्दावन मे कुछ भक्तों ने कुछ परिवर्तन के साथ राधा की भक्ति-भावना का प्रचार किया। कुछ विद्वानो का मत है कि ऐसे सम्प्रदायो का प्रचलन वृन्दावन में चैतन्य के प्रभाव से हुआ। राधा के सम्बन्ध में निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायो मे मौलिक भेद यह है कि निम्बार्क सम्प्रदाय में तो राधा के स्वकीयात्व को ही महत्व दिया गया है जब कि गौडीय सम्प्रदाय मे इस भाव की पूर्ण स्पष्टता नही है। श्री जीव गोस्वामी ने परकीयात्व को केवल रस विशेष के पोषण के लिए ग्रहण किया था पर उज्ज्वल नीलमणि के टीकाकार श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस भाव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया है हमे तो ऐसा लगता है कि वृन्दावन के इन

छोटे-छोटे सम्प्रदायो पर निम्बार्क वल्लभ और चैतन्य सभी सम्प्रदायो का प्रभाव है वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय का तो निम्बार्क मत की ही एक शाखा मान सकते हैं। इस शाखा के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास जी थे। इसमें गोपी भाव का वैशिष्ट्य है। सखी सम्प्रदाय मे सिद्धान्त पक्ष पर बल नहीं दिया गया है इसका केवल साधना पक्ष ही महत्वपूर्ण है। इस सम्प्रदाय की उपासना सखी भाव की है। स्वामी हरिदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के उपासक थे और उनकी ललित लीलाओ का दर्शन सखी भाव से किया करते थे। सगीत कला मे निपुण होने के कारण वे अपने सगीत के द्वारा ही राधाकृष्ण की उपासना करते थे। हरिदास जी की पदावली मे उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो का विवेचन है। उनके पदो का एक सग्रह केलिमाला नाम से विख्यात है। इस सम्प्रदाय के भक्तो ने, जो टट्टी सस्थान के भक्त कहलाते हैं, माधुर्य और प्रेम से भरे अनेक पदों की रचना की हैं। हरिदास जी से लेकर आज तक टट्टी सस्थान के भक्तो की परम्परा चली आ रही है।

राधा को केन्द्र मानकर वृन्दावन का दूसरा सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय है। उसके प्रवर्तक श्री हित हरिवश जी थे जो मुरली के अवतार माने जाते है। हितहरिवश जी भी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे और उन्होने कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा रानी को ही अपनी उपासना में अधिक महत्व दिया है। इनकी उपासना मधुर भाव की उपासना कही जा सकती है। राधा की अनन्य उपासना, राधा की चाकरी ही उनकी भक्ति भावना का मुख्य तत्त्व है, इस तत्त्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इन्होने भी अध्यात्म पक्ष का विवरण कम दिया है। इनको उपासना मे विरह भावना का महत्त्व नही है। वह केवल संयोग पक्ष को ही लेकर चलती है। स्वामी जी के राधानिधि और हित चौरासी ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त आशास्तव, चतुश्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधा तत्र ग्रन्थ भी उन्हीं के बताए जाते है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के पोषकों मे हितहरिवश जी के पश्चात् श्री हरिराय जी व्यास का नाम उल्लेखनीय है। ये वास्तव में हित हरिवश जी के ही समकालीन थे और आगे चलकर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य कहलाए। व्यास जी के दो ग्रन्थ प्राप्त होते है जिनमे एक सस्कृत का ग्रन्थ नवरत्न अप्रकाशित है और दूसरा ग्रन्थ 'व्यास वाणी' प्रकाशित हो चुका है। भक्ति भावना की दृष्टि से इनके पद परमोच्च कोटि के हैं जो भक्ति भावना से ओत-प्रोत हृदय के उद्गार कहे जा सकते है। राधाकृष्ण की लीला का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है। व्यास जी के अनन्तर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्यो में ध्रुवदास जी का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होने चालीस से अधिक ग्रन्थ लिखे। भक्त नामावली नामक उनका ग्रन्थ बड़ा महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ मे उन्होने बहुत से भक्तों का परिचय दिया है। इन्होने हित हरिवंश के सिद्धान्तो का पूर्ण विवेचन किया है और अपने मत की साधना प्रणाली को बड़ा गूढ एव रहस्यमय बताया है। इस मत की उपासना का तत्त्व सब सम्प्रदायों से विलक्षण है। नित्य मिलन को ही इन्होने विशेष महत्व दिया है। इस मिलन में भी विरह सदृश उत्कण्ठा रहती है। स्वकीया, परकीया, विरह-मिलन तथा स्व-पर भेद से रहित नित्य विहार रस ही इस सम्प्रदाय का इष्ट तत्त्व है। इस सम्प्रदाय को वास्तव मे रस सम्प्रदाय कहा जा सकता है। राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व के प्रतीक है। श्री राधा जी सर्वत्र प्रकृति रूप में व्याप्त है। वही सखियो के रूप में हैं और वही गोपियो के साथ मे ' प्रत्येक जीव प्रेम रूपा गोपी है। अपने स्वरूप को भूलकर ही जीव नाना प्रकार के कष्ट भोगता है इसलिए उसे अपने स्वरूप का

अनुसधान करना चाहिय उनके कृष्ण निगु ण सगुण से परे है और ईश्वरो के भी ईश्वर हैं आदि पुरुष और नारायण के भी कारण है सब अवतारो के मूल है और स्वय रस रूप हैं।

१८८५ केवल एक ही है। लीला और क्रियाओ के अनुसार उसके दो भेद हो गए हैं। इस तत्व का नाम ही श्री राधावल्लभलाल है जो वृन्दावन में नित्य विहार करते हैं। उनके नित्य विहार के परिकर के चार अग है—श्री राधा, श्री कृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियाँ परन्तु मूल भूल तत्त्व एक ही है। श्री वृन्दावन दिव्य धाम है जहाँ यह नित्य विहार होता है। यह नित्य-विहार प्रेम-केलि मात्र है। युगल किशोर एक प्रेम के ही दो रूप हैं। प्रेम तत्त्व निर्वचनीय है और एक होकर भी अनेक रूपो मे विलास करता है।

वृन्दावन के इन सम्प्रदायो ने भी वैष्णव भक्ति भावना के प्रचार और प्रसार मे बडा योग दिया और हिन्दी के भक्ति-साहित्य सरोवर को प्रेमामृत से लबालब भर दिया। कृष्ण भक्ति का प्रचार भक्ति-आन्दोलन के युग में वैष्णव धर्म का प्रधान अग रहा है। उत्तर भारत में यह भक्ति आन्दोलन जितना सफल हुआ सभवत दक्षिण में उतना न हो सका। इसके कई कारण थे। उत्तरी भारत मे राजनैतिक परिस्थितियो के कारण भक्ति भावना के प्रचार के उपयुक्त वातावरण बन चुका था। वैष्णव धर्म के मूलाधार राम और कृष्ण अवतारों की जन्म-भूमि उत्तर में ही थी। सिद्धों और नाथो ने उत्तर भारत की भूमि को अपने शुष्क सम्प्रदायों से इतना रौंद डाला था कि प्रत्येक भावुक भक्त किसी सरस और शीतल पवन के झोके की प्रतीक्षा में था। इसके अतिरिक्त दक्षिण में शैव धर्म का प्रचार होने के कारण वैष्णव धर्म के प्रचार के अवसर कम थे वहाँ वैष्णवो को शैवो से लोहा लेना पडता था। शैवो की भक्ति भावना वैष्णवो से कम सरस नही थी। शैव धर्म का प्रचार उत्तर मे भी था, पर उसका प्रचार करने वाला उतर मे कोई ऐसा आचार्य नही हुआ जो उनकी सामयिक सार्वभौम सत्ता स्थापित करने में समर्थ होता। पौराणिक मत भी रूढियो से ग्रस्त था। धर्म लोकधर्म न रहकर व्यक्ति धर्म होता जा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ और पाखण्ड का प्रचार था। सूफी सन्त जनता मे अपने प्रेम का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत की इन परिस्थितियो के सकेत हमे तत्कालीन रचनाओं मे पर्याप्त मात्रा में मिल जाते है। उत्तर भारत के वैष्णव धर्म के आन्दोलन का विवेचन करते समय यह बात नही भूल जानी चाहिये कि इस धर्म का बीजारोपण सर्व प्रथम काशी में ही हुआ था और वैष्णव धर्म के उपास्य कृष्ण न होकर राम थे। कबीर के नाम से एकसाखी प्रचलित हैं—

भक्ति द्राविड ऊपजी लाए रामानन्द
परगट करी कबीर ने सात दीप नौ खण्ड।

यह साखी प्रामाणिक हो या न हो, पर इसमे सन्देह नही कि स्वामी रामानन्द जी का वैष्णव भक्ति के प्रचार में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भारत मे विष्णु भक्ति के प्रचार के दो स्थान थे—काशी और मथुरा। काशी राम-भक्ति के प्रचार का केन्द्र थी और मथुरा कृष्ण-भक्ति के प्रचार का। स्वामी रामानन्द जी की जन्म-तिथि का प्रश्न अभी तक विवादास्पद है। भण्डारकर और ग्रियर्सन ने उनका जन्म सन् १२९९ मे माना है और ये दोनों ही महानुभाव उन्हे रामानुजाचार्य से चतुर्थ आचार्य मानते है। डा० ताराचन्द ने रामानन्द को रामानुज की परम्परा मे बाईसवाँ मानकर उनका जन्म चौदहवी शताब्दी के अन्त में माना है उनकी मृत्यु तिथि के

सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार मानते है मण्डारकर इनका देहावसान सन् १४११ मे मानते हैं। कुछ भी हो, स्वामी रामानन्द जी राम भक्ति के सर्व प्रथम आचार्य माने जाते है और कहा जाता है कि वे दक्षिण से ही राम भक्ति को उत्तर मे लाए थे। वास्तव मे राम भक्ति के सदर्भ मे रामानन्द की अपेक्षा उनके गुरु राघवानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रचार का कार्य चाहे रामानन्द जी ने किया हो, पर सिद्धान्त-निरूपण की आधार शिला का न्यास स्वामी राघवानन्द जी के कर कमलो द्वारा ही हुआ था। वे दक्षिण तथा उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलनो के सयोजक व्यक्ति कहे जा सकते है। नाभादास जी ने अपने 'भक्तमाल' मे राघवानन्द जी और रामानन्द जी दोनो का ही उल्लेख किया है। अनन्त स्वामी-रचित 'हरिभक्ति-सिन्धुबेला' मे राघवानन्द जी का स्मरण इस प्रकार किया गया है—

वन्दे श्री राघवाचार्य रामानुजकुलोद्भवम् ।
याम्यादुत्तरमागत्य राममत्र प्रचारकम् ॥

राघवानन्द जी की साधना योग और भक्ति के समन्वित रूप मे थी। उत्तर-भारत मे उस समय नाथ-योगियो का जोर था और योग-समन्वित भक्ति ही सफल हो सकती थी। स्वामी जी ने अपनी भक्ति साधना मे हठयोग तथा वैष्णव भक्ति का पूर्ण सामञ्जस्य प्रस्तुत किया। आगे चलकर उनकी भक्ति पद्धति को उनके शिष्य रामानन्द जी ने जन-आन्दोलन का रूप दिया। रामानन्द जी के शिष्य दो कोटि के थे—एक तो सुधारवादी और दूसरे प्राचीन भक्ति-परम्परा के भक्त। रामानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक दन्त-कथायें प्रचलित है। उनके ग्रन्थो के सम्बन्ध मे भी मतभेद है। 'वैष्णव मताब्ज भास्कर" ही उनका एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ माना जा सकता है। सामाजिक और धार्मिक परिस्थि-तियों के कारण स्वामी रामानन्दजी ने रामभक्ति को नवीन साँचे मे ढालकर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री शकराचार्य का ज्ञान और निवृत्तिपरक अद्वैतवाद साधारण जनता को सान्त्वना देने मे असमर्थ सिद्ध हो चुका था। आचार्य कुमारिल के कर्म मार्ग तथा प्रवृत्ति पथ से भी लोग ऊब चुके थे। नाथ-पथियों का योग मार्ग वैयक्तिक साधन के कारण सकुचित होता जा रहा था। भगवान् के परोक्ष अथवा अन्तर्यामी रूप आर्त-समाज के दुख निवारण मे असमर्थ थे। धार्मिक क्षेत्र मे अध्यात्म और वेद-वाद के नाम पर जनता को ठगने वाले पाखडियो की कमी नही थी। इस प्रकार ज्ञान, कर्म और भक्ति—तीनो के ही स्वरूप धुंधले हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति मे, शील, शक्ति और सौन्दर्य-समन्वित पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य झाँकी दिखाने का सुन्दर प्रयास स्वामी रामानन्द जी ने किया। स्वामी जी समन्वय वादी थे। भक्ति के क्षेत्र मे उन्होने जाति-पाँति को कोई महत्त्व नही दिया। इनके सुधारवादी शिष्य छोटी जातियो के ही व्यक्ति थे, जिनकी सख्या लगभग छै थी। उस समय जब भारतीय समाज मे जाति प्रथा का इतना महत्त्व था, रामानन्द जी का यह अद्भुत साहस बडा ही सराहनीय था।

स्वामी जी की दृष्टि बडी ही उदार और व्यापक थी। वे सबसे पहले आचार्य थे, जिन्होंने भक्ति का द्वार अन्त्यजों तक के लिये समान भाव से मुक्त कर दिया था। इन्होंने लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर सीताराम को अपना इष्ट देव स्वीकार किया क्योंकि लक्ष्मी-नारायण क्षीर सागर में शयन करने के कारण साधारण मानव की पहुँच से बहुत दूर पडते थे

इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी तक यह भक्ति आन्दोलन पूर्ण रूप से जन आन्दोलन बन गया। इस आन्दोलन के नेताओं ने संस्कृत के स्थान पर प्रान्तीय भाषाओं को अपने प्रचार का माध्यम बनाया, जिसके फलस्वरूप प्रान्तीय भाषाओं का साहित्य बड़ा समृद्ध और शक्तिशाली बन गया जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। राम और कृष्ण के पावन चरितों को लेकर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। रामचरित को लेकर लिखने वाले भक्त कवियों ने अवधी भाषा को ही विशेष रूप में अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जबकि कृष्ण धारा के कवियों ने ब्रज-भाषा को अपनाकर अपने मधुर काव्य की रचना की। ब्रज भाषा ने वैष्णव सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बाँधने का महनीय कार्य किया। यह भक्ति आन्दोलन भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिन्दी, की साहित्य-सर्जना में बड़े महत्त्व का है। हमने यहाँ राम भक्ति आन्दोलन की बात केवल प्रसंगवश ही कही है। हमारा अभिप्राय कृष्ण भक्ति आन्दोलन की ही पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करना है। कृष्ण-भक्ति आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भागवत का उल्लेख बड़ा आवश्यक है। कृष्ण-भक्ति के सभी सम्प्रदायों को श्रीमद्भागवत से प्रेरणा मिली है और सारा कृष्ण-भक्ति साहित्य किसी न किसी रूप में श्रीमद्भागवत से प्रभावित है। इसलिए श्री मद्भागवत के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

भागवत पुराण के सम्बन्ध में भागवत कार लिखते हैं—

> निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
> शुकमुखादमृतद्रव संयुतं
> पिबत भागवतं रसमालयं
> मुहुरहो रसिका भुवि भावुका:
>
> —भागवत १ । १ । २

चैतन्य और वल्लभ दोनों सम्प्रदायों में भागवत की विशेष मान्यता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो अपने 'तत्त्व दीप निबंध' में भागवत को चतुर्थ प्रस्थान माना है—

> वेदा: श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
> समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥
>
> —त० नि०, श्लोक ७

हमारी दृष्टि में कृष्ण भक्ति आन्दोलन को इतना व्यापक बनाने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को है। उन्होंने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसका आधार भी भागवत को ही स्वीकार किया है। पुष्टि भक्ति का नामकरण भी उन्होंने भागवत के ही आधार पर किया। सिद्धान्त रहस्य नामक ग्रन्थ की विवृत्ति में हरिराय जी ने लिखा है कि पुष्टि, मर्यादा और प्रभाव भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती है। प्रवाह भक्ति का प्रतिपादन तो वेद और पुराणों में हुआ है तथा मर्यादा एवं पुष्टि भक्ति के प्रतिपादन के उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। पुष्टि मार्ग में भक्ति को ही सर्वोपरि माना है। श्री वल्लभाचार्य जी ने 'तत्त्व दीप निबन्ध के' भागवतार्थ प्रकरण में सब स्कन्धों और अध्यायों को प्रकरणों में विभाजित किया है और उनके भाँति-भाँति से अर्थ लिए हैं। छठे स्कन्ध को उन्होंने पुष्टि स्कन्ध बताया है और पुष्टि भक्ति का सूत्र इसी स्कन्ध से ग्रहण किया

है इस स्कन्ध मे पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्वो का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर का है

इस प्रकार श्रीमद्भागवत मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन की प्रेरणा का मूल स्रोत रहा है। इसलिए सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे भागवत का महत्व स्वीकार किया गया है। पुष्टि-सम्प्रदाय मे भागवत की विविध प्रकार से व्याख्या करके वैष्णव भक्ति के सभी तत्त्वो की सगति भागवत से लगाई गई है। विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में बाह्य रूप से चाहे जितना वैषम्य हो, उनके मूल तत्वो मे कोई बडा भारी भेद नही है। सभी वैष्णव सम्प्रदाय भगवन्तत्त्व को सगुण और साकार मानते हैं पर उसके मूल मे निर्गुण और निराकार ब्रह्म भी विद्यमान रहता है। भगवान् भक्तो पर अनुग्रह करने के लिए अपनी लीला का विस्तार करता है और अपने भगवद्धाम मे विग्रह धारण करता है जो छः गुणो से युक्त है। भगवान् स्वभाव से ही स्वामी, विभु और शेषी हैं जबकि जीव स्वभाव मे ही दास, अणु और शेष है। प्राय सभी वैष्णव सम्प्रदायो मे इन सिद्धान्तो की मान्यता है। भक्ति के मूल तत्त्व भी सब सम्प्रदायो मे एक से है। ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों ही धर्माङ्गो को महत्व प्रदान किया गया है। पर ज्ञान और कर्म अग रूप से आते है और भक्ति अगी रूप मे। कर्म चित्त-शुद्धि का साधन है और ज्ञान आत्मबोध का हेतु। परम तत्त्व की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही होती है और वह भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है। भक्ति साधन रूपा भी है। प्रायः सभी कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायों मे साध्यभक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। शरणागति भी सभी सम्प्रदायों में मान्य है और भगवान् के अनुग्रह को सभी ने सर्वोपरि माना है। मुक्ति के प्रकार वैष्णव सम्प्रदायों में अलग और साध्य रूपा अलग माने अवश्य गए है परन्तु मूल भावना सर्वत्र एक ही है। सभी सम्प्रदायों ने शकर के मायावाद का खण्डन किया है। ईश्वर जीव और जगत् के सम्बन्ध मे वैष्णव सम्प्रदायों की मान्यताएँ कुछ अलग-अलग हैं। चैतन्य महाप्रभु भगवान् मे अचिन्त्य शक्ति मानकर अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। आचार्य वल्लभ माया सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म मे विश्वास रखते हैं। मध्वाचार्य जीव और ईश्वर मे द्वैतभाव मानते हैं। और रामानुजाचार्य चित् तथा अचित् को भगवान् के ही विशेषण मानकर उभय विशिष्ट ब्रह्म की कल्पना करते है। निम्बार्काचार्य अवस्था भेद से चित् और अचित् को ईश्वर से भिन्न और अभिन्न मानकर भेदाभेद सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। भगवान् की लीला के सम्बन्ध मे भी मतभेद है। यह मतभेद वास्तव में भगवान् के गुणो की कल्पना पर आधृत है। लक्ष्मीनारायण अथवा सीताराम मे ऐश्वर्य गुण की प्रधानता के कारण उनके भक्त दास्य भक्ति मे विशिष्ट आस्था रखते हैं। आगे चलकर सीताराम की उपासना मे भी माधुर्य भाव और सखी भाव की कल्पना कर ली गई। यद्यपि कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के भक्तों मे माधुर्य भाव पर विशेष बल है, परन्तु उनकी उपासना पद्धति मे भी सूक्ष्म भेद विद्यमान हैं। निम्बार्क मत मे सख्यभाव की प्रधानता है तो वल्लभाचार्य के मत मे वाल भाव की। शृङ्गार और माधुर्य-भावना दोनो ही मतो में है। चैतन्य मे को ही प्रधानता दी गई है। मे तो आह्लादिनी शक्ति राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्त्व दिया गया है

के साहित्य की अभिवृद्धि इस आन्दोलन के द्वारा हुई परन्तु ब्रजभाषा मे तो इस आन्दोलन ने मानो चार चाँद ही लगा दिए कही ब्रजभाषा के नाम पर तो कही ब्रजबुलि के नाम पर विशाल भक्ति-साहित्य की सर्जना हुई। खेद है कि आज हिन्दी के विद्वानो का उस ब्रज भाषा-साहित्य की ओर विशेष ध्यान नहीं गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय मे जहाँ एक ओर वैष्णव साधना के सभी तत्त्वों का समावेश था वहाँ दूसरी ओर इसके द्वारा ब्रज भाषा-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वयं भी ब्रजभाषा मे रचनाएँ की। उनकी चौरासी अपराध नाम की एक ब्रजभाषा की रचना प्रकाशित भी हो चुकी है। उन्होने स्वय ब्रजभाषा में चाहे कुछ न लिखा हो पर उनके शिष्यों ने ब्रजभाषा के सँवारने और समृद्ध करने में जो योगदान दिया है वह वास्तव में अपूर्व है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि आचार्य चरण अपने सम्प्रदाय का प्रचार ब्रजभाषा के माध्यम से किया करते थे और इसे वे 'पुरुषोत्तम भाषा' कहते थे। उनकी शिष्य परम्परा मे ऐसे अनेक अज्ञात कवि हैं जिनकी रचनाएँ आज भी अन्धकार के गर्त मे छिपी हुई है। हरिराय जी की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे ऐसे अनेक कवियो का उल्लेख किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय और उसके माध्यम से ब्रजभाषा साहित्य के प्रचार और प्रसार का श्रेय वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को है। उन्होने इस सम्प्रदाय की ठीक प्रकार से व्यवस्था की और पुष्टि मार्गीय सेवा भावना को विस्तार से क्रियात्मक रूप दिया है।

वैष्णव सम्प्रदायो के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि इनमे भक्ति की भावना उत्तरोत्तर बढती गई, भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता गया और शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया। प्रपत्ति अर्थात् शरणागति और समर्पण की भावना को विशेष बल मिला। भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि में केवल ये वैष्णव सम्प्रदाय ही नही थे इनके अतिरिक्त देश का सामान्य वातावरण तथा तज्जन्य अनेक धार्मिक और सामाजिक प्रवृतियाँ थी। इन साम्प्रदायिक मत-मतान्तरो के प्रचारको के अतिरिक्त देश मे एक ऐसा भी वर्ग था जो मनुष्य की सामान्य भाव-भूमि के आधार पर जाति-पाँति के भेद-भाव से परे साम्प्रदायिकता के आवरण को दूर फेंक कर एक ईश्वर की निष्ठा का प्रतिपादन कर रहा था। ऐसे सन्त-महात्मा देश के प्रत्येक प्रान्त मे वर्तमान थे। हृदय की शुद्धि, आचरण की उच्चता और ईश्वरीय प्रेम की विह्वलता को ही प्रधानता देने वाले ये मस्तमौला सन्त जनता की भाषा मे ही अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। हेय का त्याग और आदेय का दान इनकी सरल प्रकृति का प्रमाण है। इस सारे भक्ति-आन्दोलन का मूलतत्त्व प्रेम और प्रपत्ति है। इन मूल तत्त्वो के आधार पर ही श्रीमद्भागवत पुराण की रचना हुई, इसलिए हम इस पुनीत ग्रन्थ को भक्ति-शास्त्र का सर्वस्व कह सकते है। सब पुराणो में इसका स्थान ऊँचा है। भक्ति की अमृतमय सरिता को सारे देश मे प्रवाहित करने वाला यही एक मात्र ग्रन्थ है। मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य और धार्मिक प्रवृत्तियो को समझने के लिए भागवत का अनुशीलन परम है इसलिए आगे के अध्यायों में हम इस महापुराण के विभिन्न पक्षा का अनुशीलन

श्रीमद्भागवत महापुराण

स्वरूप-निर्धारण (बहिस्साक्ष्य)

आज श्रीमद्भागवत जिस रूप मे उपलब्ध होता है उसमे १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय तथा १४६१५ श्लोक है। स्कन्ध तथा अध्यायो की सगति तो प्राय सभी तद्विषयक ग्रन्थो से मिल जाती है परन्तु श्लोक सख्या के विषय मे कुछ गडबडी भी है। श्री नारदीय पुराण, पद्म पुराण, कौशिक सहिता, गौरी तत्र, स्कन्द पुराण, पचरात्र निबन्ध, सात्वत तत्र आदि आदि ग्रथो मे श्रीमद्भागवत का उल्लेख हे तथा विवरण भी हैं। प्राय सभी ग्रन्थों में १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय तथा १८ सहस्र श्लोक सख्या मानी गई है। पद्म पुराण मे श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों का भागवत के बारह अङ्गो के रूप मे वर्णन किया गया है और फिर उसी का विवेचन करते हुए लिखा है--'द्वात्रिशत्त्रिशत च यस्य विलसच्छाखा' अर्थात् भागवत पुराण की ३३२ शाखाएँ सुशोभित है। श्रीमद्भागवत के प्राचीन टीकाकार चित्सुखाचार्य ने भी 'द्वात्रिंशत्त्रिशत पूर्णं-मध्याया' को उद्धृत करके श्रीमद्भागवत के ३३२ ही अध्याय माने है। सम्भवत इसी आधार पर कुछ आचार्यो ने श्रीमद्भागवत मे तीन अध्याय प्रक्षिप्त माने है। श्री वल्लभाचार्य जी ने दशम स्कन्ध उत्तरार्ध के तीन अध्याय, ८८, ८९ और ९० प्रक्षिप्त माने है और उन्हे निकाल कर ही अपने 'तत्त्वदीप निबन्ध' के 'भावशनार्थ प्रकरण' मे रूपक बाँधा है। इसी प्रकार और भी कई आचार्यों ने दशम स्कन्ध के १२, १३ और १४ वे अध्याय प्रक्षिप्त माने हैं। परन्तु श्री जीव गोस्वामी ने श्रीभागवत षट् सन्दर्भ मे बारहवे अध्याय की टीका के प्रारंभ मे लिखा है, 'जो इन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानते हे उनके ऐसा मानने का कोई कारण नही है क्योकि सब देशो मे वे प्रचलित है और 'वासना भाष्य' सम्बन्धोक्ति, विद्वत्कामधेनु, शुक मनोहरा, परमहस प्रिया' आदि प्राचीन एव आधुनिक टीकाओ मे इनकी व्याख्या की गई है। यदि अपने सम्प्रदाय मे अस्वीकृत होने के कारण ही वे उन्हे अप्रामाणिक मानते है तो दूसरे सम्प्रदायो मे स्वीकृत होने के कारण प्रामाणिक ही क्यो नहीं मानते ? यदि 'द्वात्रिशत् त्रिशत च' को प्रामाणिक माना है तो द्वन्द्वैक्य स्वीकार करके उन पदों का अर्थ ३३५ हो सकता है अर्थात् 'द्वात्रिशत् च त्रिपञ्च-शतानि च' व्याख्या मे ३३५ अर्थ हो जाता है। इस प्रकार ३३५ अध्याय सख्या मानकर तत्तत्पुराणो की सगति लग सकती है। इसी प्रकार १८ हजार श्लोको के विषय मे भी कुछ वाद विवाद है। जैसा कि हम पहले कह चुके है विभिन्न ग्रन्थों मे श्रीमद्भागवत की श्लोक सख्या अठारह हजार मानी गई है।[1] परन्तु आजकल की प्रतियो में जो श्लोक उपलब्ध है उनकी संख्या १४६१५ बैठती है। श्लोकों की सख्या के विषय में आचार्यो का तो मतभेद नही है परन्तु

---

१ 'अथोऽष्टादश साहस्त्रो द्वादश स्कन्ध सम्मित' ॥'

---नारद पचरात्र ज्ञानामृत सार संहिता, द्वितीय रात्र सप्तम अध्याय। अर्थात् "यह ग्रथ १२ स्कन्ध १८ हजार श्लोको में लिखा गया है।"

लगभग ३३८५ श्लोकों की संगति आजकल की प्रतियों में कैसे लगाई जा सकती है ? इसके विषय में बहुमत यही है कि श्रीमद्भागवत एक आशीर्वादात्मक और मन्त्रात्मक ग्रन्थ है और इसमें एक एक श्लोक एक एक पद और एक एक शब्द का मन्त्र की भांति पाठ किया जाता है इसलिये मन्त्र-ग्रन्थ होने के कारण प्रत्येक 'उवाच' को एक श्लोक एवं अध्याय की पुष्पिका को डेढ श्लोक मान लेने पर श्लोक संख्या पूरी हो जाती है। दुर्गा सप्तशती की भाँति श्रीमद्-भागवत के पाठ में 'इति' 'अथ' आदि को छोड़ा नहीं जाता। श्रीमद्भागवत की 'अन्वितार्थ प्रकाशिका' टीका के रचयिता श्री गंगासहाय जी जरठ महोदय ने लिखा है—"मैंने तीन बार श्रीमद्भागवत का अक्षर-अक्षर गिना है। उन्होंने सत्रह हजार नौ सौ साढे अठ्ठानवे श्लोक गिने हैं। इस प्रकार केवल डेढ श्लोक की कमी बैठती है, जो 'उवाच' आदि के पाठ-भेद के कारण हो सकती है। इस प्रकार १८ हजार श्लोक संख्या भी पूरी हो जाती है।

श्रीमद्भागवत की प्राचीनता

श्रीमद्भागवत के रचना काल के विषय में भी बडा विवाद है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भारतीय साहित्य में प्रामाणिक तिथियों के अभाव के कारण पाश्चात्य विद्वानों ने ग्रन्थों के निर्माण काल के विषय में अनेक ऊटपटाँग अनुमान लगाए हैं। उन अनुमानों के सत्यासत्य पर विचार करना न तो हमारा विषय है और न ही इस अवसर पर आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वानों ने श्रीमद्भागवत को विभिन्न कालों की रचना बतलाया है और रासलीला को तो सोलहवीं शताब्दी तक खींच लाए है। उन्होंने श्रीमद्भागवत का रचयिता श्री बोपदेव को माना है जो हेमाद्रि के समकालीन थे और जिनकी प्रसन्नता के लिए बोपदेव ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। हेमाद्रि देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र के मन्त्री थे, जिनका राजत्वकाल सन् १२७१ ई० से १३०९ ई० तक माना गया है। इस प्रकार बोपदेव १३वीं शताब्दी में ठहरते हैं। श्रीमद्भागवत को बोपदेव रचित मानना अन्याय ही नहीं, ऐतिहासिक प्रमाणों की भी अवहेलना करना है। श्री मध्वाचार्य ने भी इस बात का खण्डन किया है।[1] सम्भवतः श्री बोपदेव का 'हरि लीलामृत' ग्रन्थ ही श्रीमद्भागवत के बोपदेव कृत माने जाने का आधार है। यदि हम उन सभी पुराणों को जिनमें श्रीमद्भागवत का उल्लेख है, बाद की रचना माने तो भी भागवत की तिथि बोपदेव से बहुत पहले की ठहरती है। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रायः सभी आचार्यों ने किसी न किसी रूप में श्रीमद्भागवत का उल्लेख किया है। द्वैतवाद के उपर्युक्त प्रसिद्ध आचार्य श्री मध्वाचार्य (१२वीं शताब्दी) ने श्रीमद्भागवत पर 'भागवत तात्पर्य निर्णय' नामक टीका लिखी है। विशिष्टाद्वैत एवं श्री सम्प्रदाय के आचार्य श्री रामानुज (११वीं शताब्दी) ने भागवत का कई ग्रन्थों में उल्लेख किया है और 'वेदार्थ संग्रह' नामक निबन्ध में सात्त्विक पुराणों में श्रीमद्भागवत की गणना की है"।

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी हेमाद्रि से पहले हुए हैं क्योंकि हेमाद्रि ने उनका उल्लेख किया है। श्री श्रीधर स्वामी ने विष्णु पुराण की टीका में चित्सुखाचार्य का उल्लेख किया है। अद्वैत सम्प्रदाय में चित्सुखाचार्य शंकर से तीसरे आचार्य माने जाते हैं। इसलिए श्रीमद् भागवत का रचना काल बोपदेव से बहुत पहले का है। बनारस के 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय में श्रीमद्भागवत की जो हस्तलिखित प्रति सुरक्षित

१ बोपदेव कृतत्वे तु बोपदेव पुरान्वे
कथ टीका कृता

है और जिसके विषय मे महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज का वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ है तथा जिसके एक पृष्ठ का फोटो गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण के 'भागवतांक' मे दिया गया है, उसके आधार पर भागवत की रचना बोपदेव से बहुत पहले की है क्योंकि उस प्रति का लिपिकाल ही १२वी शताब्दी है।

सांख्य कारिका पर माठराचार्य की टीका के आधार पर सिद्ध होता है कि श्रीमद्-भागवत ५वी शताब्दी मे विद्यमान था। इस टीका का अनुवाद परमार्थ नामक बौद्ध पण्डित ने ईसवी सन् ५५७ और ५६९ के बीच किया था। उसने श्रीमद् भागवत के पहले स्कन्ध के छठे अध्याय का ३२ वां तथा ८वे अध्याय का ५२वॉ श्लोक उद्धृत किया है। अनुवाद से कम से कम १०० वर्ष पहले वह टीका लिखी गई होगी।

श्री शंकराचार्य ने स्वयं श्रीमद्भागवत के आधार पर कई ग्रन्थ लिखे है तथा उनकी गुरु परम्परा मे श्री गौड पादाचार्य ने अपने ग्रन्थ मे भागवत का उल्लेख किया है। 'राधा' शब्द का अभाव भी श्रीमद्भागवत की प्राचीनता मे प्रमाण रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। अस्तु यह एक स्वतंत्र विषय है। हमारा प्रयोजन तो केवल यही सिद्ध करना है कि श्रीमद्भागवत बोपदेव से बहुत पहले की रचना है।

श्रीमद् भागवत के पुराण होने मे सन्देह तथा अर्वाचीन काल की रचना होने के भ्रम मे देवी भागवत पुराण भी एक कारण है क्योंकि बहुत से विद्वानो ने १८ पुराणो मे देवी भागवत की गणना की है श्रीमद्भागवत की नही। उन्होने अपने मत की पुष्टि मे प्रमाण भी उपस्थित किये है। श्रीमद्भागवत के रचयिता के विषय मे कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित नही किए जा सकते। 'व्यास' एक ऐसा नाम है जो गद्दी से चलता है, आज भी कथावाचक पंडित प्रायः इसी नाम से प्रसिद्ध होते है। पौराणिक गाथा के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग के अन्त मे भगवान् विष्णु व्यास रूप से अवतीर्ण होते है और जन साधारण के हितार्थ वेदो के चार भाग कर देते है। इस प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक द्वापर मे भिन्न-भिन्न 'व्यास' होते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के २८वे द्वापर मे महर्षि पराशर के पुत्र श्री कृष्ण द्वैपायन ही व्यास हुए।[1]

श्रीमद्भागवत की विभिन्न प्राचीन प्रतियाँ

श्रीमद्भागवत की जो प्रति बनारस गवर्नमेंट संस्कृत कॉलिज के सरस्वती पुस्तकालय मे सुरक्षित है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इसका लेखककाल १२ वी शताब्दी है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी कविराज के कथनानुसार यह अब तक प्राप्त भागवत की सर्वाधिक प्राचीन प्रति है।

लन्दन के इण्डिया ऑफिस की लाइब्रेरी मे श्रीमद्भागवत की अनेक प्रतियॉ सुरक्षित हैं, किन्तु एक भी प्रति समस्त भागवत की नहीं है। विभिन्न स्कन्ध मूल अथवा श्रीधरी आदि टीकाओ सहित विभिन्न लिपियो मे लिखे हुए है। ये प्रतियॉ भोजपत्र, तालपत्र, कागज आदि पर लिखी गई है। नीचे हम उनका संक्षिप्त विवरण दे रहे है।

(क) यह प्रति दो भागो मे है—प्रथम भाग मे प्रथम तीन स्कन्ध सम्पूर्ण और चतुर्थ स्कन्ध दशम श्लोक ६ तक है प्रति का यह भाग १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लिखा

१ दे० विष्णु पुराण ३ २

गया था। द्वितीय भाग मे पचम, षष्ठ और सप्तम स्कन्ध हैं। यह भाग १८५०-६० ई० के लगभग लिखा गया था। इस प्रति की लिपि बगला है और बादामी कागज पर लिखी गई है।

(ख) भागवत चतुर्थ स्कन्ध—यह प्रति उड़िया लिपि में १८ वी शताब्दी मे लिखी गई थी। प्रति शुद्ध नही है किन्तु लेख सुन्दर है। यह प्रति खजूर की पत्तियो पर लिखी गई है और १८६७ की पेरिस प्रदर्शनी मे रखी गई थी।

(ग) भागवत स्कन्ध-५, ६, ७, ८ और नवम—यह प्रति बँगला लिपि में लगभग १६५० ई० मे लिखी गई थी। लिखावट सुन्दर है।

(घ) भागवत स्कन्ध-६, ७, ८, ९, १०, ११ और द्वादश—यह प्रति पुस्तकाकार है और विदेशी कागज़ पर लिखित है। यह 'ग्रथ' लिपि मे १८६५ की लिखी हुई है। भूल से इस प्रति पर 'देवी भागवत पुराण' लिख दिया गया है किन्तु यह प्रति है श्रीमद्भागवत की।

(ङ) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति ताड-पत्रो पर बंगला लिपि मे है। इसका लिपि काल १७ वी शती का उत्तरार्ध है।

(च) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति भी ताड पत्रो पर बँगला लिपि मे है। इसका लिपिकाल १७१२ ई० है। इस पर लेखन काल शकाब्द १६३४ भी लिखा है।

(छ) भागवत दशम स्कन्ध का कुछ अंश—यह प्रति बादामी कागज़ पर बँगला लिपि मे लिखी हुई है। इसका लेखन काल लगभग १८७० है।

(ज) भागवत दशम स्कन्ध अध्याय २७ एव २८, अपूर्ण-श्रीधर कृत दीपिका सहित—यह प्रति कागज़ पर देवनागरी लिपि मे १८ वी शती में लिखी गई थी।

(झ) भागवत दशम स्कन्ध का कुछ अश—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगु लिपि मे १८ वी शताब्दी मे लिखी गई थी। यह प्रति सावधानी से लिखी गई है और प्रायः शुद्ध है।

(ञ) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे लिखी गई है। यह शुद्ध नही है। इसका लिपि काल १८ वी शती है। यह १८६७ मे पेरिस प्रदर्शनी मे रखी गई थी।

(ट) श्रीमद्भागवत—इस प्रति के पृष्ठ खो गये है और यह काफी जीर्ण है। यह खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि में १८ वी शती मे लिखी गई थी।

(ठ) भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय १२ पर्यन्त—यह प्रति खजूर के पत्तो पर नन्दिनागरी लिपि मे १७७३-७४ मे लिखी गई थी। लेखक ने अपना नाम वेकटेश दिया है।

(ड) भागवत (कुछ प्रसगो का संग्रह) यह प्रति बादामी कागज पर पुस्तक लिखी गई है। इसकी लिपि शारदा' और लखन-काल १८वी शती है यह पुस्तक चार वर्गों में है।

(त) भागवत स्कन्ध–४ ५ श्रीधरी टीका सहित यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे है। इसका लिपि काल लगभग १८१० ई० है।

(थ) भागवत स्कन्ध–५–६ श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर लिखी गई है। लिपि उडिया है। लेखन काल सम्भवत: १७५० ई० है। इसके लेखक 'दयानिधि' है। यह प्रति १८६७ की पेरिस प्रदर्शनी मे रखी गई थी।

(द) भागवत स्कन्ध ७—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर की पत्तियो पर उडिया लिपि मे है। इसका लिपिकाल १८ वी शताब्दी और लेखक कोई वैद्यनाथ है। पुष्पिका मे यह श्लोक है—

"श्री श्री कृष्णपदाम्भोजे मतिरस्तु सदा मम।
व्यलेखि सप्तमस्कन्धो वैद्यनाथद्विजेन वै।"

("श्री कृष्ण के चरण कमलो मे मेरी बुद्धि सदा लगी रहे। यह सप्तम स्कन्ध वैद्यनाथ शर्मा ने लिखा।")

(ध) भागवत स्कन्ध ७–८–९—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तों पर तेलुगू लिपि मे लगभग १८१० ई० में लिखी गई।

(न) भागवत स्कन्ध ८, ९—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उड़िया लिपि में १८ वी शताब्दी की लिखी हुई है।

(प) भागवत स्कन्ध १०—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे लगभग १८१० मे किन्ही शकर नारायण द्वारा लिखित है।

(फ) भागवत स्कन्ध ११–१२—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे १८ वी शताब्दी की लिखी हुई है। लिपिकार कोई मधुसूदन हैं।

विभिन्न टीकाएँ

श्रीमद्भागवत एक महापुराण है। इसके आदि मध्य एव अन्त में वैराग्योत्पादक आख्यान हैं। यह भगवान् की लीला कथाओ के अमृत से सन्तो और देवताओं को आनन्दित करने वाला है। समस्त वेदान्तो का सार ब्रह्म और आत्मा की एकता रूप अद्वितीय वस्तु इसका प्रतिपाद्य है। कैवल्य मुक्ति इसके निर्माण का प्रयोजन है (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १२, अ० १३ श्लो० ११-१२)

इस प्रकार श्रीमद् भागवत श्रौत अर्थ का प्रतिपादन करने वाला एक पूर्ण ग्रंथ है। इसके प्रयोजन तथा विषय की विस्तृत विवेचना हम आगे करेंगे।" श्रीमद्भागवत वेद रूप कल्पवृक्ष का सुस्वादु रस रूप फल है। श्रुतियों के अनुकूल श्रीमद्भागवत के भी तीन अर्थ लिए गए हैं। १ याज्ञ २ दैवत और ३ अध्यात्म। यही कारण है कि वैष्णव सम्प्रदाय के सभी आचार्यो ने अपने अपने सम्प्रदाय के अनुकूल श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं सब प्रसिद्ध और मान्य टीका श्रीधरी टीका है जिसके विषय में एक लोकोक्ति

अर्थात् श्रीमद्भागवत का अर्थ व्यास जी और शुकदेव जी ठीक ठीक समझते हैं राजा परीक्षित् के समझने मे सन्देह है परन्तु नृसिंह जी के प्रसाद से श्रीधर पूर्णतया समझते है। श्रीधर ने हनुमत् तथा श्री चित्सुखाचार्य का टीकाकारो के रूप मे उल्लेख किया है। परन्तु ये टीकाएँ अब उपलब्ध नहीं है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधरी टीका को ही माना है और श्री चैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के ७ वें परिच्छेद मे इस बात की पुष्टि भी कई गई है। श्री चैतन्य के अनुयायियों ने श्रीमद्भागवत को आधार मानकर अनेक ग्रंथों की रचना की है।

सुदर्शन सूरि और राघवाचार्य—विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्रीरामानुज की लिखी तो कोई टीका उपलब्ध नही है परन्तु इस सम्प्रदाय के अन्य आचार्यों की टीकाएँ श्रीमद्भागवत पर उपलब्ध है। जैसे श्री सुदर्शन सूरि की 'शुक पक्षीया' टीका और राघवाचार्य की 'भागवत चन्द्र चन्द्रिका' आदि आदि।

मध्वाचार्य—श्री मध्वाचार्य ने 'भागवत तात्पर्य निर्णय' नाम का ग्रंथ लिखा। उनके अनुयायी श्री विजयध्वज तीर्थ ने 'पदरत्नावली' नाम की टीका लिखी है।

शुकदेव—श्री निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रधान ग्रथ भी श्रीमद्भागवत ही है। परन्तु इस सम्प्रदाय वालो की टीकाएँ बहुत ही संक्षिप्त है। इस मत के आचार्य श्री शुकदेव जी की श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्त प्रदीप' नाम की व्याख्या है। वैसे भागवत को आधार मानकर इस सम्प्रदाय में कई रस पूर्ण निबन्ध तथा टीका टिप्पणियाँ लिखी गई है।

श्री वल्लभाचार्य—साम्प्रदायिक टीकाओ मे पुष्टि मार्ग के आचार्य श्रीवल्लभ 'सुबोधिनी' नामक टीका बहुत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं राजस तामस आदि भेद से श्रीमद्भागवत का कई रूपो मे विभाजन किया गया है और इसके प्रकरण बाँधकर नए नए अर्थ किए गए हैं। 'सुबोधिनी' के प्रारम्भ मे श्रीमद्भागवत का वर्णन करते हुए वल्लभाचार्य ने कहा है कि वाक्पति भगवान् वैश्वानर के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के अर्थ-निर्णय की शक्ति और किसी में नही है। भगवान् विष्णु ने शरीर धारण करके व्यास के समान ही कृपा करके मुझे भी आज्ञा दी है। इस कारण व्यास और भगवान् के प्रिय अनेक प्रकार के गूढार्थ में प्रकट कर रहा हूँ।[1]

श्रीवल्लभाचार्य के अतिरिक्त उनके वंशजो ने भी श्रीमद्भागवत पर टीकाएँ लिखी है। इन प्रसिद्ध टीकाओ के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत पर अनेकानेक टीकाएँ हे। विस्तारभय से हम उनका उल्लेख नही करेगे।

श्रीमद्भागवत की साम्प्रदायिक टीकाएँ हमारे लिए साम्प्रदायिक दृष्टि कोण समझने मे सहायक होती है और हम उपासना के उस रूप तक पहुँच जाते है जिसका प्रवर्तन इन विभिन्न आचार्यो ने किया था। इन टीकाओ से तत्कालीन परिस्थितियो का भी ज्ञान हो जाता है।

श्री मद्भागवत-विषय-सार

श्री मद्भागवत के प्रतिपाद्य विषय पर तो हम आगे लिखेगे। यहाँ हम दिखाना चाहते हैं कि का वर्ण्य विषय क्या है नीचे हम भागवत के स्कन्धों का पृथक-पृथक

सक्षिप्त वण्य विषय दे रहे हैं पद्म पुराण म ६ अध्यायो मे श्री मद्भागवत का माहात्म्य दिया गया है। इसका भी यहाँ उल्लेख करते हैं क्योंकि धार्मिक महत्त्व के अतिरिक्त यह माहात्म्य भक्ति के विकास को समझने मे भी सहायक होता है।

पद्म पुराणान्तर्गत भागवत-माहात्म्य[1]

भगवत्कथा श्रवण करने की इच्छा से एक बार शौनक ऋषि ने सूतजी से भक्ति-ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा कहने की प्रार्थना की तब सूत जी ने उन्हे श्री-मद्भागवत की कथा सुनाई थी और भागवत के सप्ताह श्रवण का महत्व बतलाया था। एक बार देवर्षि नारद ने यमुना तट पर भक्ति और उसके दो पुत्रों—ज्ञान और वैराग्य को देखा। वे सभी कलिकाल से महान् दुखी थे। श्री नारद ने सनकादि से उनकी दुःख-निवृत्ति का उपाय पूछा तो उन्होंने उसका एक मात्र उपाय श्रीमद्भागवत की कथा का श्रवण ही बताया। उसके प्रभाव से कलियुग मे नष्ट-प्राय क्षीण-काय भक्ति पुनः अपने पुत्रो से पुष्ट हो गई और विष्णु भक्तो का हृदय उसने अपना स्थान चुन लिया। गोकर्ण नामक एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ने श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाकर धुन्धुकारी नामक पतित ब्राह्मण को प्रेत योनि से मुक्त कर दिया। सनकादि ऋषियो ने नारद को भागवत के सप्ताह पारायण की विधि बताई।

श्री मद्भागवत प्रथम स्कन्ध

एक बार नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियो ने सूत जी से मनुष्य के आत्यन्तिक श्रेय का साधन जानना चाहा तो उन्होने अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप पर ब्रह्म श्री कृष्ण की भक्ति को ही एक मात्र उपाय बताया और श्रीमद्भागवत को उसकी प्राप्ति का साधन बतलाया। सूतजी ने भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य सुनाकर शौनकादि को भगवान् के बाईस (अथवा २४) अवतारो की कथा सुनाई। शौनकादि ने सूत जी से शुकदेव जी द्वारा परीक्षित् के प्रति कथित श्री मद्भागवत की कथा सुननी चाही तो उन्होने बताया कि महाभारत और सत्रह पुराणो की रचना करने पर जब वेदव्यास जी को आत्म शान्ति न मिली तो नारद ने उन्हे भगवान् के निर्मल यश और अलौकिक लीलाओ का गान करने का आदेश दिया। वही श्रीमद्भागवत है। नारद जी ने अपने पूर्व जन्म के चरित का वर्णन कर बताया कि केवल भक्ति ही मनुष्य को आत्मशान्ति प्रदान कर सकती है।

महाभारत के युद्ध मे अश्वत्थामा ने द्रोपदी के सोते हुए पाँचों पुत्रों के सिर काट लिए थे। श्रीकृष्ण की आज्ञा से अश्वत्थामा के मस्तक की मणि केशों सहित उतार ली गई। यही उसका बध समझा गया। युद्ध के उपरान्त पाण्डवों ने अपने आत्मीयो का तर्पण किया। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राज्य पर अधिष्ठित किया। श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित् की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा की। कुन्ती ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध में हुई महान् हिंसा के लिए आत्मग्लानि प्रकट की। युधिष्ठिर अपने कर्त्तव्योपदेश के लिये हस्तिनापुर मे भीष्म के पास कुरुक्षेत्र गये और उनसे समस्त धर्म-रहस्य सुना। भीष्म ने भी कृष्ण स्मरण पूर्वक अपना देह त्याग कर दिया युधिष्ठिर धर्म पूर्वक शासन करने लगे अपने बान्धवो और बहिन सुभद्रा का

प्रिय करने की इच्छा से श्रीकृष्ण कुछ महीने हस्तिनापुर रहे और फिर द्वारका चले गये। वहाँ उनका महान् स्वागत हुआ। पीछे हस्तिनापुर में परीक्षित का जन्म हुआ। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। विदुर जी के उपदेश से धृतराष्ट्र और गान्धारी वन को चले गए। अर्जुन जब श्रीकृष्ण के साथ द्वारका जाकर बहुत दिनों तक हस्तिनापुर से न लौटे तो युधिष्ठिर को बहुत अपशकुन हुए तभी सहसा अर्जुन आ गये। वे बहुत ही विषण्ण मानस थे। उन्होंने युधिष्ठिर को यादवों के संहार और श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन का समाचार सुनाया। तब युधिष्ठिर परीक्षित को राज्य सौंपकर भाइयों सहित स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर परीक्षित ने दिग्विजय किया और वृषभ रूप धर्म और गौ रूप धारिणी पृथ्वी का संवाद सुनकर उन्होंने कलि का दमन किया। दैवात् शमीक ऋषि के गले में मरा हुआ साँप डालने के कारण परीक्षित् को शृंगी ने तक्षक नाग के काटने से सातवें दिन मृत्यु को प्राप्त होने का शाप दे दिया। परीक्षित अपने पुत्र जनमेजय को राज्यभार सौंप कर मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए भगवच्चिन्तन में मग्न होकर गंगा तट पर स्थित हो गये। इसी समय वीतराग अवधूत वेष श्री शुकदेव जी उनके पास आ पहुँचे।

द्वितीय स्कन्ध

परीक्षित् ने शुकदेव जी से अपना श्रेयस्कर कर्तव्य पूछा तो उन्होंने मरण के लिये प्रस्तुत राजा को भगवद् ध्यान की विधि बताई और भगवान् के विराट् रूप का वर्णन किया। साधक भगवान् के स्थूल अंग प्रत्यंगों का चिन्तन करते हुए प्रेम भाव भक्ति योग प्राप्त करे और ब्रह्म में स्थित हो जाय। यदि ब्रह्मलोकादि को जानने की इच्छा हो तो मन और इन्द्रियों को साथ लेकर जाय। इस प्रकार सद्योमुक्ति और क्रम मुक्ति दो सनातन वेदोक्त मार्ग हैं। विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए विभिन्न देवताओं की उपासना का विधान करते हुए शुकदेव जी ने सर्वोच्च स्थान भगवद्भक्ति को ही दिया। परीक्षित् ने भगवान् में मन को एकाग्र कर शुकदेव जी से भगवन्माया से रचित सृष्टि के विधान का क्रम पूछा और शुकदेव जी ने उसका सविस्तार वैज्ञानिक वर्णन किया। भगवान् के विराट् रूप का वर्णन कर भगवान् कच्छप नृसिंह परशुराम आदि लीला अवतारों की कथा कही। नारद जी ने ब्रह्मा जी से भागवत की संक्षिप्त कथा सुनी थी और ब्रह्मा जी ने ब्रह्म कल्प के आरम्भ में साक्षात् नारायण से वही भागवत सुनी थी। वही शुकदेव ने परीक्षित को सुनाई। सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी के तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें अपना परम (वैकुण्ठ लोक) दिखाया और चतुः श्लोकी भागवत का उपदेश दिया। उसी का विशद रूप-सर्ग विसर्ग आदि दश लक्षण सम्पन्न भागवत ब्रह्मा जी ने नारद जी को सुनाया।

तृतीय स्कन्ध

महाभारत युद्ध से पूर्व ही विदुर घर बार छोड़कर तीर्थाटन के लिए निकल गए थे। मत्स कुरुजांगलादि देशों को पार करके वे यमुना तट पर भक्त प्रवर उद्धव से मिले। सब का कुशल क्षेम बताने के अनन्तर उद्धव ने श्रीकृष्ण के बाल चरित तथा अन्य चरित सुनाए। उद्धव जी के कथनानुसार कृष्ण के स्वरूप के गूढ रहस्य जानने के लिए विदुर जी मैत्रेय मुनि से मिले। उनसे विदुर ने अनेक प्रश्न किये और उन्होंने सृष्टि क्रम वर्णन विराट शरीर की उत्पत्ति चेतन मात्र निर्विकार निर्गुण ब्रह्म के साथ क्रिया की संगति विदुर को समझाई और

शेष द्वारा सनकादि के प्रति कथित भागवत पुराण उन्हें सुनाया। ब्रह्मा जी की उत्पत्ति और ब्रह्म कृत भगवत्स्तुति के उपरान्त मैत्रेय ने दश विध सृष्टि, मन्वन्तरादि काल-परिमाण, सृष्टि विस्तार, का वर्णन किया। सनकादि के शाप से भगवत्पार्षद जयविजय दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए। हिरण्याक्ष के चंगुल से भगवान् वराह ने जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया और उस पर ब्रह्मा जी ने विविध सृष्टि की। स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति से कर्दम प्रजापति द्वारा सांख्य शास्त्र के प्रणेता भगवान् कपिल देव का जन्म हुआ। कपिल ने अपनी माता देवहूति को भक्ति योग, प्रकृति पुरुष विवेक, अष्टांग योग और महदादि तत्त्वों की उत्पत्ति का विषय समझाया और अन्त में देह गेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन, मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन और धूम मार्ग तथा अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले लोगों की गति का वर्णन कर उन्होंने भक्तियोग की उत्कृष्टता का ही प्रतिपादन किया जिससे देवहूति को ज्ञान लाभ और मोक्ष पद की प्राप्ति हुई।

चतुर्थ स्कन्ध

मैत्रेय ने विदुर से कहा कि देवहूति के अतिरिक्त स्वायभुव मनु की आकूति और प्रसूति दो कन्याएँ और थी। आकूति का विवाह रुचि प्रजापति और प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से हुआ। दक्ष ने अपनी कन्या सती का विवाह शंकर के साथ किया था। दक्ष कुछ कारण वश शंकर से द्वेष करने लगा था। सती ने पिता द्वारा शंकर के अपमान किये जाने पर प्राण त्याग कर दिया और शंकर ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया। बाद में उन्होंने ही दक्ष को क्षमाकर उसका यज्ञ पूर्ण किया। कन्याओं के अतिरिक्त स्वायभुव मनु के दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने विमाता से अपमानित होकर भगवत्प्राप्ति के लिए वन में जाकर घोर तपस्या की और श्री हरि कृपा से अचल ध्रुव लोक प्राप्त किया। सम्राट् ध्रुव ने अपने भाई उत्तम के वध का बदला लेने के लिए यक्षों से घोर युद्ध किया था अन्त में स्वायभुव मनु ने उन्हें विरक्त किया। ध्रुव के वंश में आगे चलकर क्रूर-कर्मा राजा वेन उत्पन्न हुआ। जब उसके अत्याचारों से सब तंग आगए तो ऋषियों ने अपने हुंकार मात्रा से उसका प्राणान्त कर दिया। उसकी देह के मथन से भगवदंश महाराज पृथु उत्पन्न हुए जिन्होंने पृथ्वी का दोहन किया। पृथु के अश्वमेघ यज्ञ से इन्द्र ने घोड़ा चुरा लिया अतः व इन्द्र को मारने के लिए उद्यत हुए, किन्तु ब्रह्मा जी ने उनके यज्ञों का फल अक्षुक्ष्ण बनाकर इन्द्र से उनकी मैत्री करादी। विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर पृथु को भक्ति का वरदान दिया। पृथु ने अपनी राजधानी में आकर प्रजा जन को आदर्श जीवन का उपदेश दिया और सनकादिक ने पृथु को निश्रेयम् का मार्ग बताया। पृथु ने तपस्या द्वारा ब्रह्म पद की प्राप्ति की। पृथु के वंश में राजा प्राचीन बर्हि के प्रचेता नामक दस पुत्र हुए। सृष्टि के लिए उद्यत प्रचेताओं को भगवान् रुद्र ने भगवान् नारायण के 'योगादेश' नामक स्तोत्र का उपदेश किया। प्रचेतागण उस स्तोत्र का जप करते हुये दस सहस्र वर्ष तक जल में खड़े तपस्या करते रहे। इसी समय नारद ने कर्म में आसक्त राजा प्राचीन बर्हि को आत्मतत्त्व का ज्ञान करने वाला रहस्यमय, प्रतीकात्मक पुरजनोपाख्यान सुनाया पुरजन नामक राजा वास्तव में 'जीव' है और उसका 'अज्ञात' नामक मित्रईश्वर है। 'जीव और ईश्वर' के स्वरूप का दिग्दर्शन कराना ही पुरंजनोपाख्यान का तात्पर्य है। प्रचेताओं ने 'रुद्र गीत' द्वारा संतुष्ट हुए भगवान् हरि की कृपा से पृथ्वी का सार्वभौम

राज्य भोगा तदनन्तर अपने पुत्र दक्ष को राज्य भार सौंप वे विरक्त हो गय और नारद के उपदेश से उन्होंने परमपद प्राप्त किया।

पञ्चमस्कन्ध

मैत्रेय जी से इतनी कथा सुनकर विदुर अपने जाति बन्धुओ को देखने के लिए हस्तिनापुर को चले गए। शुकदेव जी ने परीक्षित् को मनु के दूसरे पुत्र प्रियव्रत का चरित्र सुनाया वे अखण्ड भूमण्डल के एकच्छत्र सम्राट् थे। उनके रथ के पहियो से सप्त सागर बन गए और पृथ्वी सप्त द्वीपो मे विभक्त हो गई। प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रो को एक-एक द्वीप का राजा बना दिया। प्रियव्रत के ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बू द्वीप के राजा थे। उनके नाभि आदि नौ पुत्र थे जो जम्बूद्वीप के नौ वर्षो (भूखण्डो) के राजा थे। भगवान् ने नाभि के यहाँ पुत्र रूप से 'ऋषभावतार लिया। ऋषभदेव अपना राज्य भार पुत्रो को सौंपकर बाद में 'अवधूत हो गए थे। उन्होने अपने पुत्रों को सुन्दर उपदेश दिया। ज्येष्ठ पुत्र भरत' को राज्य देकर वे स्वरूप मे लीन हो गये। भरत बडे भगवद्भक्त थे। एक मृगशावक के मोह के कारण उन्हे मृगयोनि मिली। फिर उन्होने ब्राह्मण कुल मे जन्म लिया और विरक्त होकर 'जड़ भरत' हो गए। सिन्धु-सौवीर देश के राजा रहूगण से उनकी भेंट हुई और उन्होने रहूगण को आध्यात्मिक उपदेश दिया। जड़ भरत ने इस ससार को एक भयकर वन (भवाटवी) का रूपक दिया और फिर उसका स्पष्टार्थ किया। भरत के वंश मे 'गय और विरज नामक अत्यन्त प्रतापी सार्वभौम राजा हुए। राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से प्रियव्रत के रथ के पहियो से बने सप्तसागरो और द्वीपो का परिमाण पूछा और शुकदेव जी ने समस्त भुवन कोश का वर्णन किया। विष्णुपदी (गंगा) का विवरण देकर शुकदेव जी ने शकर कृत संकर्षण देव की स्तुति का वर्णन किया। भिन्न-भिन्न वर्षो का वर्णन करते हुए शुकदेव जी ने बताया कि वहाँ के शासक और निवासी भगवान् के भिन्न-भिन्न रूपो की उपासना करते है। भद्राश्वखण्ड मे भद्रश्रवागण भगवान् की हयग्रीव मूर्ति का, हरिवर्ष के निवासी नृसिह रूप का, केतुनालखण्ड मे कामदेव रूप का रम्यक खण्ड में मत्स्य-रूप का, हिरण्मय खण्ड मे कूर्म रूप का, उत्तर कुरु वर्ष मे वराह रूप का, किम्पुरुष वर्ष मे सीतापति राम का और भारतवर्ष में नर-नारायण रूप का ध्यान और उपासना करते है। फिर प्लक्ष, शाल्मली आदि द्वीपो के प्रमाण, लक्षण, स्थिति और लोकालोक पर्वत का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार आगे सूर्य के रथ और गति, भिन्न-भिन्न ग्रहो की स्थिति और गति, शिशुमार चक्र आदि ज्योतिष्पिण्डों का वर्णन है। फिर अतल, वितल आदि नीचे के सात लोको का वर्णन किया गया है। सबसे नीचे पाताल लोक में अनन्त नामक भगवान् की तामसी नित्य कला है। यही संकर्षण है। नारद ने उनकी स्तुति की है। सबसे अन्त मे तमिस्र अन्धतामिस्र रौरव कुम्भीपाक आदि अट्ठाईस नरको का वर्णन तथा उनमें गिरने वाले लोगो की गति का वर्णन है

लोक म लाने के लिए अपने मठों म निषेध कर दिया। परीक्षित् ने शुकदेव जी से स्वायम्भुव मन्वन्तर में संक्षेप से वर्णित सृष्टि का विस्तृत विवरण सुनना चाहा। शुकदेव जी ने बताया कि जब प्रचेताओ ने समुद्र से निकलकर देखा तो सम्पूर्ण भूमण्डल झाड झखाडो से भरा हुआ था। प्रचेताओ ने सोम की आज्ञा से प्रम्लोचा की कन्या मे विवाह किया। उनके पुत्र दक्ष प्रजापति ने सृष्टि की किन्तु जब वह वृद्धि-गत न हुई तो उन्होने 'हँसगुह्य' नामक स्तोत्र से भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने उन्हे बताया कि दाम्पत्य-धर्म से ही प्रजा-सृष्टि हो सकती है। दक्ष ने अपने हर्यश्व' और 'शवलाश्व' नामक पुत्र गण को सृष्टि की आज्ञा दी किन्तु वे नारद जी के उपदेश से अन्तर्मुख हो गए। दक्ष ने नारद को शाप दे दिया। तब दक्ष ने साठ कन्याएं उत्पन्न की जिनकी सन्तति समस्त लोक मे व्याप्त है। एक बार इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति का अपमान किया जिससे गुरु ने उनका त्याग कर दिया। देवता ऐश्वर्य भ्रष्ट हो गए। उन्होने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाया। विश्वरूप ने 'नारायण कवच' विद्या से देवताओ का गत वैभव पुन लौटा लिया। किन्तु विश्वरूप ने गुप्तरीति से असुरो के पक्ष का भी समर्थन किया था। अतः जब इन्द्र ने विश्वरूप का वध किया तो उन्हे ब्रह्म हत्या लगी और वृत्रासुर का जन्म हुआ। दधीचि ऋषि की अस्थियो से बने वज्र से वृत्र मारा गया। इन्द्र को फिर ब्रह्म हत्या लगी और वे भीत होकर ' सहस्र वर्ष मानसरोवर मे रहे। तब तक नहुष ने स्वर्ग का शासन किया। इन्द्र अश्वमेध द्वारा ब्रह्म हत्या से मुक्त हुए। वृत्रासुर पूर्व जन्म मे राजा चित्रकेतु थे और अत्यन्त भगवत्परायण थे, पार्वती के शाप से आसुरी योनि को प्राप्त हो गये थे। फिर शुकदेव जी ने अदिति और दिति की सन्तानो तथा मरुद्गण की उत्पत्ति का वर्णन किया तथा कश्यप द्वारा दिति को उपदिष्ट पुंसवन व्रत की विधि बताई।

सप्तम स्कन्ध

परीक्षित् ने शुकदेव से पूछा कि समदर्शी भगवान् ने विषम दृष्टि पुरुषों के समान देवो के लिए दैत्यो का वध क्यो कराया, तो शुकदेव जी ने बताया कि काल-क्रम से जब सत्त्व गुण की वृद्धि होती है तो भगवान् सत्त्व-प्रधान देवगणों का उत्कर्ष और रजस्तमः प्रधान असुरो का संहार करते से जान पडते है। शुकदेव ने बताया कि राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की सायुज्य मुक्ति हुई देख युधिष्ठिर ने नारद जी से साश्चर्य प्रश्न किया कि भगवद् वैरी की ऐसी शुभ गति कैसे हुई। नारद ने बताया कि शिशुपाल और दन्तवक्र विष्णु पार्षद जय विजय थे जो सनकादि के शाप से क्रमशः पुनर्जन्म मे हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष और रावण कुम्भकर्ण भी रहे थे। हिरण्यकशिपु ने घोर तपकर ब्रह्मा जी से अजर अमर होने का वर प्राप्त किया और त्रिलोकी का निष्कण्टक राज्य करने लगा। उसका पुत्र प्रह्लाद परम भागवत था। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का वध करना चाहा तो भगवान् ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध कर दिया। प्रह्लाद को राजपद पर अभिषिक्त कर दिया। फिर नारद जी ने युधिष्ठिर को चारों वर्णो तथा स्त्रियो के धर्मो का उपदेश किया। ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रम के नियम बतलाए। यति-धर्मो और गृहस्थ के सदाचारो का निरूपण किया और गृहस्थो के लिए मोक्षधर्म की विस्तृत व्याख्या की।

अष्टम स्कन्ध

हरि कथा शुश्रूषु परीक्षित् ने शुकदेव से स्वायमुव के हुए मन्व
की [illegible]

मुक्त किया था गजेन्द्र ने आत होकर भगवान् की स्तुति की थी गज और ग्राह पूर्व जन्म में क्रमश एक राजा और गन्धर्व थे चाक्षुष मन्वन्तर में असुरों से पराजित देवताओं के पुनरुत्थान के लिए भगवान् ने समुद्र मथन कराया और मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों को अमृत से वंचित कर दिया। इस पर घोर देवासुर संग्राम हुआ, जिसे नारद ने रोका। भगवान् शिव भगवान् के मोहिनी रूप पर मुग्ध हो गए तब भगवत्कृपा से वे मोह पाश से मुक्त हुए।

इसके उपरान्त आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन और मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण है। शुक्राचार्य ने दैत्यराज बलि को विश्वजित् यज्ञ के प्रभाव से इन्द्र पद पर अधिष्ठित कर दिया। तब देव-माता अदिति ने अपने पदच्युत पुत्रों का वैभव पुनः प्राप्त करने के लिए कश्यप जी से प्रसिद्ध पयोव्रत ग्रहण किया। उसके प्रभाव से भगवान् अदिति के यहाँ वामन रूप से अवतरित हुए और बलि से तीन पग पृथ्वी माँगने के व्याज से विश्वरूप धारण कर समस्त पृथ्वी और स्वर्ग दो पगों में ही नाप डाला, तब तीसरे पग का स्थान न मिलने के कारण बलि को बाँध लिया। तब बलि ने आत्म समर्पण कर तीसरा पग शिरोधार्य किया। भगवान् ने उसे देव दुर्लभ सुतल लोक को भेज दिया तथा स्वयं 'उपेन्द्र' पद पर अभिषिक्त हुए। इसके उपरान्त मत्स्यावतार की कथा है।

नवम स्कन्ध

अब परीक्षित् ने वैवस्वत मनु के वंश और उसमें उत्पन्न नृपति गण के चरित्र की शुश्रूषा प्रकट की तो शुकदेव जी ने बताया कि वैवस्वत मनु के पुत्र सुद्युम्न, इक्ष्वाकु, पृषध्र शर्याति आदि हुए। शर्याति की पुत्री सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था। शर्याति के वंशज राजा ककुद्मी की कन्या रेवती का विवाह बलराम से हुआ। मनु के प्रपौत्र महाराज अम्बरीष परम भगवद् भक्त हुए जिनका अहित करने के कारण दुर्वासा को महान् कष्ट उठाना पडा। इक्ष्वाकु के वंश में मान्धाता चक्रवर्ती सम्राट् हुए। उनकी पुत्रियों का विवाह सौभरि ऋषि से हुआ था। मान्धाता के वंशज त्रिशंकु और हरिश्चन्द्र हुए। हरिश्चन्द्र के वंश में सगर हुए। सगर के वंशज भगीरथ गंगा को पृथ्वी तक पर लाने में सफल हुए। भगीरथ के ही वंश में खट्वांग और उनके वंशज दिलीप, रघु, अज, दशरथ और भगवान् राम आदि हुए। यहाँ रामचरित जरा विस्तार से कहा गया है। फिर इक्ष्वाकु वंश के शेष राजाओं का वंश वर्णित है। इक्ष्वाकु के पुत्र निमि हुए जिनके पुत्र जनक हुए, यही मिथिला के राजा हैं। इनके वंश में अनेक राजा हुए। यह सूर्यवंश है। चन्द्रवंश में बुध के पुत्र पुरूरवा हुए। ऋचीक ऋषि के पुत्र जमदग्नि और उनके पुत्र भगवान् परशुराम हुए जिन्होंने सहस्रार्जुन को मारा और पृथ्वी को निःक्षत्रिय बना दिया था। पुरूरवा के वंश में गाधि हुए जिनके पुत्र विश्वामित्र हुए। पुरूरवा के वंश मे नहुष क्षत्र-वृद्ध आदि हुए। नहुष का पुत्र ययाति हुआ और ययाति के यदु, पुरु आदि पुत्र हुए। पुरू के वंश में दुष्यन्त और उनके पुत्र भरत हुए। परोपकारी रन्तिदेव भी भरतवंश में हुए। भरत के वंश में अजमीढ, कुरु आदि हुए। आगे शन्तनु हुए जिनके भीष्म और चित्रांगद और विचित्रवीर्य हुए। दाश कन्या सत्यवती से पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हुए, और उनके पुत्र धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर। पाण्डु के पाँचों पाण्डव हुए और धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि। अर्जुन के सुभद्रा से अभिमन्यु और अभिमन्यु के उत्तरा से परीक्षित् पुत्र हुए। ययाति के पुत्र यदु, अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु, का वंश बड़ा विस्तृत हुआ यदुकुल में वृष्णि, चित्ररथ, देवमीढ आदि हुए। देवमीढ के पुत्र शूर थे और शूर के वसुदेव हुए वसुदेव की पत्नी देवकी थी जिनसे साक्षात् भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

परीक्षित् ने शुकदेव जी से यदुवंश मे उत्पन्न विष्णु (श्रीकृष्ण) के चरित्र सुनाने की प्रार्थना की तो उन्होने कहा कि जब उन्मत्त राजाओ के रूप मे असख्य दैत्यगणो का अत्याचार बढने लगा तो भगवान् ने श्रीकृष्ण रूप से अवतार लिया। कस के भय से श्रीकृष्ण को मथुरा से गोकुल पहुँचा दिया गया। वही उनका प्रारभिक जीवन व्यतीत हुआ और उन्होने अपनी बाल लीलाएँ की। बाल्यावस्था मे ही उन्होने पूतना और तृणावर्त का वध और शकट भजन किया। ऊखल बधन के समय यमलार्जुन का उद्धार किया। वत्सासुर, बकासुर और अघासुर का वध किया। एक समय ब्रह्मा जी ग्वालो और बछडो को चुरा ले गए तब भगवान् ने अपने ऐश्वर्य से उनकी स्वतंत्र रचना करली। ब्रह्मा जी का मोह दूर हो गया और उन्होने कृष्ण की स्तुति की। भगवान् ने धेनुक का वध किया और कालिय नाग से बालको की रक्षा की और ब्रजवासियो तथा गौओ को दावानल से बचाया, प्रलम्बासुर को मारा। वर्षा के पश्चात् शरत्काल मे भगवान् ने वेणुवादन और चीर हरण किया। यज्ञपत्नियो पर कृपा की। इन्द्र का दर्प चूर्ण करने के लिये इन्द्र यज्ञ भग कर गोवर्धन धारण किया। तब इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक किया। नन्द को एक बार वरुण के दूत पकड ले गए तो भगवान् उन्हे छुड़ाकर लाए। शरत्कालीन रात्रियो में भगवान् ने अपना विश्व विमोहन रास किया। बीच से जब भगवान् अन्तर्धान हो गए तो गोपियो ने करुण गीत से उनका आह्वान किया, तब भगवान् ने प्रकट होकर 'महारास' किया। फिर भगवान् ने सुदर्शन नामक विद्याधर का उद्धार किया और शखचूड़ नामक कुबेर सेवक अरिष्टासुर केशी और व्योमासुर को मारा। नारद ने भगवान् की स्तुति की। इसी बीच कस की आज्ञा से अक्रूर राम कृष्ण को मथुरा लिवा लाए। वहाँ कुब्जा पर कृपा की, कुवलयापीठ मारा और अनेक मल्लो के साथ अन्त मे मामा कंस को भी मार डाला। इसके पश्चात् भगवान् का यज्ञोपवीत और विद्याध्ययन हुआ। श्रीकृष्ण ने फिर अपने प्रिय मित्र और मत्री उद्धव को ब्रजवासियों की सान्त्वना के लिए ब्रज मे भेजा। वहाँ गोपियो का प्रेम देखकर वे अपना तत्वज्ञानोपदेश भूले भूले से होकर मथुरा लौट आए। श्रीकृष्ण ने तब हस्तिनापुर मे कौरव पाण्डवों की स्थिति के ज्ञान के लिए वहाँ अक्रूर को भेजा।

दशमस्कन्ध-उत्तरार्ध

कंस की मृत्यु से क्रुद्ध हो जरासध ने मथुरा पर घोर आक्रमण किया किन्तु वह पराजित हो गया। इसी समय श्रीकृष्ण ने द्वारका दुर्ग निर्माण कराया। इस समय कालयवन ने कृष्ण पर आक्रमण किया किन्तु श्रीकृष्ण कौशल से उसे एक गुफा मे ले गए जहाँ सोये हुये मान्धाता पुत्र मुचुकुन्द की दृष्टि से वह भस्म हो गया। यवन सेना को परास्त कर भगवान् द्वारका चले गए। इसके उपरान्त भीष्मक कन्या रुक्मिणी द्वारा विवाह के लिये आहूत होने पर शिशुपाल आदि का पराभव करते हुए उन्होने उससे राक्षस विवाह किया। रुक्मिणी से श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न हुए जिन्होने शम्बरासुर मारा। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक मणि प्राप्त की और जाम्बवती, सत्यभामा आदि ८ महारानियो से परिणय किया, फिर भौमासुर को मार कर सोलह सहस्र एक सौ राज कन्याओं से विवाह किया। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की पुत्री ऊषा से हुआ था। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने शापग्रस्त राजा नृग का उद्धार किया। बलभद्र जी अपने बान्धवो को देखने ब्रज में आए यहाँ उन्होंने द्विविद का वध किया और श्रीकृष्ण ने आकर पौण्ड्रक नामक दुशील राजा को

मारा। जाम्बवती से उत्पन्न कृष्ण-पुत्र साम्ब ने अपने पराक्रम से दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा से विवाह किया उस समय जरासन्ध द्वारा बन्दी राजाओं ने श्रीकृष्ण के पास अपना कष्ट निवारण करने के लिये संदेश भेजा। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते थे अत श्रीकृष्ण भीम द्वारा युक्ति से जरासन्ध का वध करा उनके यज्ञ में सम्मिलित होने इन्द्रप्रस्थ आए। जब यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हुई तो शिशुपाल ने श्रीकृष्ण का अपमान किया। श्रीकृष्ण ने वहीं उसका वध कर दिया। शिशुपाल के मित्र शाल्व से यादवों ने घोर युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने शाल्व दन्तवक्त्र विदूरथ आदि का वध कर दिया। जब महाभारत युद्ध की तैयारी हो रही थी तो बलराम तटस्थ रहने के विचार से तीर्थाटन के लिये निकल गये। नैमिषारण्य में रोमहर्षण द्वारा उनको अभ्युत्थानादि न मिलने के कारण बलराम जी ने उनका शिरश्छेदन कर दिया और उनके पुत्र सूत को वक्ता नियुक्त किया। बलराम ने फिर बल्वल नामक राक्षस का वध किया। जब श्रीकृष्ण द्वारका में सम्राट् थे तो उनके बाल्य-सहपाठी मित्र सुदामा उनसे मिलने आये। श्रीकृष्ण ने उन्हें अतुल समृद्धिशाली बना दिया इसके उपरान्त श्रीकृष्ण सपरिवार सूर्य ग्रहण पर द्वारका से कुरुक्षेत्र आए और गोपों से मिले। वहाँ कृष्ण की पत्नियों—रुक्मिणी आदि ने द्रौपदी को कृष्ण के साथ अपने अपने विवाह की घटनाएँ सुनाई। फिर वसुदेव जी ने देवऋण से मुक्त होने के लिये यज्ञानुष्ठान किया। श्रीकृष्ण ने अपने छहों पूर्व मृत भाइयों को जीवित रूप में माता देवकी को लाकर दिया। सुभद्रा का विवाह जिस प्रकार अर्जुन से हुआ वह शुकदेव ने परीक्षित् को सुनाया। फिर भगवान् ने मिथिला में जाकर जनक बहुलाश्व और श्रुतिदेव को दर्शन और उपदेश दिया। परीक्षित ने शुकदेव से जिज्ञासा की कि गुणमय वेद निर्गुण परमात्मा का प्रतिपादन कैसे कर सकते हैं तब इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये शुकदेव ने परीक्षित् को पूर्व काल में हुए नारद और नारायण का संवाद सुनाया था जिसमें वेद द्वारा भगवान् की स्तुति की गई है। फिर उन्होंने शंकर द्वारा वृकासुर को भस्म करने का वरदान दिया जाने और अन्त में विष्णु द्वारा शंकर की रक्षा और उस दैत्य के स्वयं अपने ही द्वारा भस्म होने की कथा सुनाई और भृगु द्वारा अनुभूत त्रिदेवों में विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने वाला आख्यान सुनाया और अन्त में भगवान् के लीला विहार का वर्णन किया।

एकादश स्कन्ध

महाभारत के उपरान्त भगवान् ने ऋषियों के शाप के बहाने से उच्छृंखल अपने यादव कुल का भी संहार कर डाला। वसुदेव जी ने एक बार नारद से इस भव प्रपंच से मुक्त होने का उपाय पूछा तो उन्होंने राजा विदेह और नौ ऋषभ पुत्रों का प्राचीन संवाद सुनाया। उन ऋषभ पुत्रों ने क्रमशः भागवत धर्म, भक्त के लक्षण, माया, ब्रह्म, कर्म, भगवदवतार, भक्ति हीन पुरुषों की गति और पूजा विधि का वर्णन किया। श्रीकृष्ण ने जब परमधाम जाने का निश्चय किया तो उद्धव भी उनके साथ चलने के लिए आग्रह करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें तत्त्व ज्ञान मयअवधूतोपाख्यान सुनाया। फिर भगवान् ने संसार का मिथ्यात्व निरूपण, बद्ध मुक्त और भक्तों के लक्षण, सत्संगमहिमा, कर्मानुष्ठान, कर्म त्याग की विधि, आत्म तत्त्व बोधक हंसोपाख्यान, ध्यान योग, सिद्धियों, विभूतियों, वर्णाश्रम धर्म, ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग, द्रव्य, देश आदि के गुण दोषों, सांख्य योगादि का सविस्तार वर्णन किया अन्य सुनाने के श्रीकृष्ण ने उद्धव को

बदरिकाश्रम भेज दिया यादव कुल परस्पर युद्ध कर समाप्त हो गया और भगवान् स्वधाम चले गए

द्वादश स्कन्ध

परीक्षित् ने फिर शुकदेव जी से पूछा कि श्रीकृष्ण के निजधाम जाने पर पृथ्वी में किसका वंश हुआ। तब शुकदेव ने बृहद्रथ, नन्दिवर्धन, नन्द आदि भविष्यवर्ती राजाओं के वंश का वर्णन किया। युग धर्मों और कलियुग में हरि नाम संकीर्तन का माहात्म्य तथा प्रलय और परमार्थ का निरूपण किया। इसके पश्चात् तक्षक-दंश से परीक्षित् का देहान्त हो गया और जनमेजय ने सर्प सत्र किया। सूत ने फिर शौनकादि ऋषियों को पुराणादि के लक्षण और मार्कण्डेय ऋषि की कथा सुनाई। भगवान् के अंगों उपाङ्गों और आयुधों का वर्णन करने के बाद श्रीमद्भागवत के विषयों का संक्षिप्त विवरण और विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या बताकर श्रीमद्भागवत का महत्त्व प्रतिपादन करते हुये ग्रंथ की समाप्ति की गई है।

अन्तःसाक्ष्य

वर्ण्य-विषय—

श्रीमद्भागवत के वर्ण्य विषय का सम्यक् निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ एक निश्चित और सुयोजित भक्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक स्कन्ध में एक सिद्धान्त का क्रमिक विकास होता गया है। वह सिद्धान्त है प्रेमलक्षणा भक्ति[1]। यद्यपि भागवत में भक्ति का अत्यन्त विस्तृत और पूर्ण विवेचन है और वैधी-भक्ति, नवधा भक्ति निर्गुण भक्ति[2] आदि का भी साँगोपांग वर्णन है, तथापि साधक का परम श्रेय भगवान् की प्रेमलक्षणा भक्ति से ही सिद्ध होता है, यह बात भागवत में अनेक स्थलों पर दुहराई गई है[3]। कोरे ज्ञान और दार्शनिक दृष्टि एवं यज्ञादि कर्म काण्ड की तो निन्दा की गई है—

> धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
> नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥१–२–८॥
> क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥१०–२३–६
> धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्।
> धिक्कुलं धिक् क्रिया-दाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥१०–२३–३६

श्रीमद्भागवत की प्रमुख विशेषता है—इसकी समन्वय-प्रवणता। इसमें सांख्य, मीमांसा, योग, न्याय, वेदान्त आदि सभी दर्शनों का स्वस्थ समन्वय कर भक्ति में उनका पर्यवसान

---

१ नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत-सेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ श्रीमद्भागवत १–२–१८
अनर्थोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ श्रीमद्भागवत १–१–६

२ श्रीमद्भागवत ३–२–१२

३ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य-प्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥
वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् श्रीमद्भागवत १ २ ६–७

किया गया है कपिल का अपनी माता के प्रति सांख्य शास्त्र के अतिरिक्त अष्टांग योग और भक्ति का बड़े विस्तार से कथन है।[1] सांख्य के आचार्य कपिल ने भी अपने मत को भक्ति में ही पर्यवसित कर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ श्रेय साधन कहा है और मुक्ति से भी गरीयसी ठहराया है। जठरानल जिस प्रकार भक्षितान्न को भस्म कर देता है उसी प्रकार यह भक्ति भी शीघ्र ही कर्म संस्कार के भण्डार रूप लिंग शरीर को नष्ट कर देती है।[2]

विभिन्न दार्शनिक मतों के समन्वय के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में एक ही दर्शन के विभिन्न मतों का भी समन्वय हुआ है। उदाहरणार्थ कपिल के सांख्य शास्त्र के तत्त्वों की विभिन्न संख्याएँ। श्रीमद्भागवत में सांख्य तत्त्वों की अधिकतम संख्या अट्ठाईस कही गई है[3] किन्तु फिर प्रश्न और शंका भी उठाई गई है कि कोई आचार्य छब्बीस, पच्चीस, सात, नौ, छ, चार, ग्यारह, सत्रह, सोलह और कोई तेरह तत्त्व बतलाते हैं, उनकी संगति किस प्रकार बिठाई जाय[4]? किन्तु भागवतकार ने कहा है कि इस विषय में ब्राह्मण लोग जो कुछ कहते हैं वह सभी ठीक है, क्योंकि सब तत्त्व सब जगह अन्तर्भूत हैं। भगवन्माया का आश्रय लेकर कहने वालों के लिए कोई बात कहना कठिन नहीं है।[5]

इस विवरण से इतना तो स्पष्ट ही है कि सांख्य के चार तत्त्वों से अट्ठाईस तत्त्वों तक पहुँचने में विकास क्रम से पर्याप्त समय लगा होगा, और भागवत में उसके विकसिततम रूप का विवेचन है। सम्भवत. नवीं शताब्दी तक समस्त आस्तिक और नास्तिक भारतीय दर्शनों का पूर्ण विकास हो चुका था। श्रीमद्भागवत में समस्त दर्शनों का अन्तिम रूप दृष्टिगोचर होता है।

अतः श्रीमद्भागवत अपने अन्तिम रूप में—अपने सुसंगठित समन्वय प्रवण रूप में—उसके बाद ही प्रस्तुत हुआ। शंकराचार्य (प्रादुर्भाव ८४५ विक्रमीय संवत्) ने अपने समय तक प्रचलित समस्त दार्शनिक मतों का खण्डन कर अद्वैतवाद (वेदान्त) की दिगन्त-व्यापिनी दुन्दुभि बजाई। उस महाप्रभविष्णु युवा सन्यासी के तेज से एकबारगी ही समस्त विश्व के नेत्र चौंधिया गए। भारत में बौद्धों का पराभव तो शंकर की दिग्विजय का ही परिणाम है। इस वेदान्त-केसरी ने अन्य समस्त दर्शनावलम्बी जम्बुकों को पलायित कर दिया, किन्तु इसका समन्वय के साथ प्रतिवाद किया भागवतकार ने। भागवत की भक्ति के घन-निनाद और

---

१ तत्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम्। ३–२५–३१

२ अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा॥ ३–२५–३३

३ कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो।
नवैकादश पञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम॥ ११–२२–१

४ केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पंचविंशतिम्।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे॥
केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश।
एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया।
गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि॥ ११–२२–२–३

५ युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा।
मायां [illegible] वदतां किं नु दुर्घटम्॥ ११–२२–४

विद्युच्छटा ने शंकर के श्रद्धन से शुष्क हृदय-देश का उल्लसित और प्रकाशित कर दिया। शंकर ने अद्वैतवाद का इतना सूक्ष्म और बुद्धिग्राह्य विवेचन किया कि वह केवल वाणी के कथन, मनन और चिन्तन का विषय रह गया। केवल शास्त्र ज्ञानी पंडितजन ही उसके मर्म को समझ सकते थे। आचरण में लाना उनके भी वश की बात न थी। केवल सिद्धान्त ही श्रेयस्कर नहीं होता। एक अच्छा सिद्धान्त जब क्रियात्मक रूप धारण कर जनसाधारण के आचरण में उतर आता है तभी वह ठोस लाभ पहुँचाता है। शंकर में केवल सिद्धान्त पक्ष ही प्रबल था। आचरण पक्ष की दुर्बलता उन्हें स्वयं ही अनुभव होने लगी थी। सम्भवतः इसी-लिए उन्होंने अपने निर्गुण ब्रह्म को उपासना का विषय बताने के लिए उसमें सगुणता का आरोप किया और अनेक भक्ति पूर्ण स्तोत्रों की रचना की। किन्तु उनका वेदान्ती रूप जनता के हृदय में इतनी गहराई से पैठ चुका था कि भक्तरूप उसके सामने नगण्य था। सम्भव है शंकर ने अपने उत्तर जीवन में भक्ति दर्शन के पक्ष को विकसित करने का विचार किया हो, किन्तु युवावस्था में ही उनका तिरोभाव हो जाने से ऐसा न हो सका। आगे चलकर श्रीमद्-भागवत ने ही शंकर के कार्य को पूरा किया। श्रीमद्भागवत एक प्रकार से शंकराचार्य के महान् सिद्धान्त का पूरक ग्रन्थ है।

वस्तुतः महाभारत काल में भी अनेक दार्शनिक मत और सम्प्रदाय पर्याप्त प्रचार पा चुके थे। उनमें से पाँच बहुत प्रसिद्ध थे। महाभारत शान्ति पर्व में भीष्म ने सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद और पाशुपत मतों की चर्चा की है।[1] वेद मत से कुछ विद्वानों का मत केवल वेदान्त है और कतिपय विद्वानों का मत है कि वेद-सम्मत कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड तीनों ही 'वेद' मत से अभिप्रेत है। दूसरा मत ही व्यापकता की दृष्टि से अधिक समीचीन मालूम होता है। सांख्य और योग का वर्णन तो गीता में ही प्रस्तुत है और उससे उक्त दोनों मतों के रूप का ज्ञान हो जाता है। गीता में सांख्य और योग के समन्वय का प्रयत्न किया गया है और दोनों को समान फलदायी बताया गया है।[2] आज सांख्य और योग का प्राचीन रूप तिरोहित हो चुका है और उनका जो परवर्ती रूप विकसित हुआ उसके दर्शन हमें श्री मद्भागवत में होते है। सांख्य के आचार्य कपिल ने अपने मत का पर्यवसान भी भक्ति में ही किया है। आगे चलकर कपिल ने अष्टांग योग का वर्णन किया है। और भगवान् के दिव्य-विग्रह के ध्यान का ही उपदेश दिया है।[3]

पाञ्चरात्र मत तो एक प्रकार से श्रीमद्भागवत का प्रधान मत ही है। भगवान की विधि पूर्वक उपासना का वर्णन पाञ्चरात्रादि तन्त्रों में ही पाया जाता है। उसके अनुसार

---

१ सांख्यं योग: पाञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतम् तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै॥
महाभा० शान्तिपर्व अध्याय ३४९

२ सांख्य योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
श्री मद्भगवद्गीता ५–४

३ यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम्।
काष्ठां भगवतो
श्री मद्भागवत ३ २८ १२

क्रिया याग का आश्रय लेकर मरण धर्मा मानव अमरत्व प्राप्त करता है[1] जिस प्रकार नारदपांचरात्र शाडिल्यसहिता अहिर्बुध्न्य सहिता आदि वैष्णव उपासना के ग्रन्थ है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी पुराण सहिता है पाशुपत मत शैव मत का आद्य रूप है। महाभारत में अर्जुन के भगवान् श्री शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की कथा वर्णित है। पशुपति' भगवान् शिव का ही नाम है। भागवत मे शिव की महिमा अनेक स्थलों पर गाई गई है उन्हें परम भागवत और वैष्णव कहा गया है। शिव ही समस्त विद्याओ के प्रवर्त्तक समस्त प्राणियो के प्रभु और साधु जनो के एक मात्र आश्रय है। वे त्रिलोकी के एक मात्र गुरु है।[2] इस प्रकार श्री मद्भागवत मे समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त मत को भी श्री मद्भागवत में कम महत्व नही दिया गया, अपितु भागवत का चरम प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व निर्गुण ब्रह्म ही है। यद्यपि श्रीमद्भागवत का चरम प्रतिपाद्य जीव के आत्यन्तिक कल्याण का साधन तत्त्व ज्ञान (अद्वैत प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञान) ही है।[3] तथापि इस तत्त्व ज्ञान का अनन्य तम साधन प्रेम लक्षणा भगवद्भक्ति ही भागवत का चरम वक्तव्य है। श्री मद्भागवत में सर्वाधिक प्रवल दार्शनिक मत (वेदान्त) का जिस तर्क पूर्ण किन्तु सरस शैली मे भक्ति के साथ समन्वय किया गया है, वह विश्व-साहित्य मे अद्वितीय है। दशवी शताब्दी से पूर्व ही भक्ति की धारा दक्षिण से प्रवाहित हो चली थी और उसे रामानुजाचार्य के श्री भाष्य और श्री मद्भागवत से बहुत बल मिला शकर ने विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण अपने ग्रन्थो में दिये है किन्तु उन्होंने श्री मद्भागवत का उल्लेख कही नही किया। अत. अनुमान होता है किसी न किसी रूप में भागवत का सभावित अस्तित्व रहते हुये भी अपने वर्तमान रूप मे उस समय प्रस्तुत नही था।

श्रीमद्भागवत का रचना-विधान

ग्रन्थ के रचना विधान को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि इसके स्कन्ध क्रमशः नहीं लिखे गये। इसका तात्पर्य यह कदापि नही कि भागवत विभिन्न व्यक्तियो की रचना है। यह निश्चय ही एक व्यक्ति और उसी के जीवन काल के विभिन्न खडो में लिखी गई रचना है। भागवत की भाषा और शैली से स्पष्ट होता है कि यह अनेक कवियो की रचना नही है। प्रारम्भ से जिस प्रौढ और पाण्डित्य पूर्ण भाषा और व्यास शैली का आश्रय

---

१ अथेममर्थं पृच्छामो भवन्त बहुवित्तमम्।
समस्ततंत्रराद्धान्ते भवान्भागवत तत्त्ववित्॥
तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पते।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः॥
तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रिया योग बुभुत्सताम्।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम्॥
श्री मद्भागवत १२। ११। १, २, ३

२ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्व देहिनाम्। १२, १०, ८
रुद्रं त्रिलोकैक गुरुं ननाम शिरसा मुनिः॥ १२, १०, १४

३ अत्र ब्रह्म पर गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम्।
ज्ञान च ३ प्रोक्त विज्ञानसयुतम् १२ १२ ४

लिया गया है, अन्त तक उसका प्रवाह अक्षण्ण है [1] सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवत के दो स्पष्ट भाग है—

(१) प्रथम स्कन्ध से नवम स्कन्ध और एकादश तथा द्वादश स्कन्ध।

यही वह भाग है जिसमे श्री मद्भागवत का चरम वक्तव्य ज्ञान और भक्ति का समन्वय है।

(२) दशम स्कन्ध—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—इसमे भक्ति के आधार पर भगवान् की लीलाओ का वर्णन है। इस प्रकार २ खण्डो मे यह ग्रन्थ सम्पादित किया गया है। एक विशेष योजना और विचार पद्धति से इन आगे पीछे लिखे गये स्कन्धो का सम्यक् क्रम निर्धारित किया गया है।

एक और ध्यान देने की बात है—पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति। एक ही विषय और तथ्य को अनेक स्थलो मे अनेक बार कहा गया है। उदाहरणत सृष्टि क्रम विकास तथा भगवदवतारो का वर्णन। किन्तु यह सब इस कौशल के साथ किया गया है कि पुनरावृत्ति होते हुए भी नवीनता और सरसता का अनुभव होता है। भागवत के कुछ पुनरावृत्ति विषय ये है—

(१) भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य।

(२) भगवान् के अवतारो का वर्णन।

(३) भगवान् के विराट् रूप का वर्णन।

(४) सृष्टि वर्णन। (जिसमे कई प्रकार की सृष्टि का वर्णन है, जैसे—दशविध सृष्टि, मन्वन्तर वर्णन, महदादि तत्त्व-वर्णन)

(५) वंशानुचरित आदि।

श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे एक बात यह भी विशेष महत्त्व की है कि जहाँ अन्य भारतीय ग्रन्थो—रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणो के अनेक संस्करण प्राप्त होते है वहाँ श्रीमद्भागवत के संस्करण नही हुये है। काफी प्राचीन काल से ही इसका एक मात्र वर्तमान रूप ही प्रतिष्ठित है। इस ग्रन्थ मे विशेष पाठ भेद भी नही है। नारदीय पुराण में श्रीमद्भागवत के जिस रूप का उल्लेख है और प्रत्येक स्कन्ध मे जिन कथाओ का निर्देश है वे सभी वर्तमान भागवत मे ज्यो की त्यो मिलती है। क्षेपकों का आक्षेप भी श्रीमद्भागवत

---

१ प्रारम्भ—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥
तेजो वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥ १, १, १

उपसहार—

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञान-प्रदीपः पुरा।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्भक्ताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्ध विमल विशोकममृत सत्य पर धीमहि १२ १३ १४

मे नही के बराबर है दगम स्कन्ध मे ही कुछ आचार्यों ने प्रक्षिप्त अश माने हैं अन्य स्कन्धो की प्रामाणिकता मे कोई मत भेद नही है। द्वादश स्कन्ध मे अवश्य भविष्यपुराण की परम्परा का अनुसरण कर कलियुग के राजवशो के वर्णन मे भविष्य कथन किए गए है। वास्तव मे यह एक पौराणिक परम्परा है।

भाषा

श्री मद्भागवत की भाषा पर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है कि यह एक ही कवि की रचना है। साथ ही इसकी समास-प्रधान सक्षिप्त कथन शैली और आलंकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य भाषा और शैली में सरलता और स्पष्टता के स्थान पर अलकारिक प्रयोगो, प्रतीक-प्रधान और व्यंजना के गूढ साधनो को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। बाण (७ वी शती) के समय से ही यह प्रवृत्ति बढने लगी थी, जैसा कि कादम्बरी की भाषा और शैली से स्पष्ट है श्रीमद्भागवत मे केवल पद्य रचना ही नही है। अनेक स्कन्धो में अत्यन्त प्रौढ ललित और प्रवाह पूर्ण गद्य भागवत की भाषा को एक नया रूप प्रदान करता है। यह गद्य कादम्बरी के गद्य की स्मृति जगा देता है। वर्णनात्मक प्रसगो मे यहाँ उपन्यास का सा वातावरण निर्मित हो जाता है और अनुमान होता है कि इस प्रकार की रचना कही कथा और आख्यायिका की परम्परा मे तो नही है—

"मधुरपि परेणैव प्रतिसचितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशया शाया उपरराम। श्रीमद्भागवत ५–१–२२

उपर्युक्त उदाहरण में गद्य काव्य की समस्त पदावली और अनुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

दसवीं शताब्दी (राज शेखर का काल) मे यह प्रवृत्ति अपनी सीमा पर पहुँच चुकी थी। छन्दों का वैविध्य भी हो चला था। श्रीमद्भागवत की भाषा अन्य सभी पुराणों से प्रौढ, दुरूह, सक्षिप्त और आलकारिक (Ornate) है। तभी पण्डितों में "विद्यावतां भागवते परीक्षा" वाली उक्ति का प्रचार हुआ। उपमा रूपक और अतिशयोक्ति का बहुल प्रयोग इसे एक सुन्दर काव्य का रूप सहज ही प्रदान कर देता है। यहाँ इसकी काव्यमयी ललित भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

ललित-गति-विलास-वल्गु-हास
प्रणय-निरीक्षण-कल्पितोरुमाना.।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः
प्रकृतिमगान्किल यस्य गोपवध्व ॥ १–९–४०

श्रीमद्भागवत मे जहाँ भगवान् की स्तुतियाँ है, वहाँ उनकी भाषा विचित्र रूप से परिवर्तित हो जाती है और उसमे से एक सुन्दर प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। ऐसे स्थल अनेक है ये स्तुतियाँ इतिवृत्तात्मक मरुभूमि में एक मनोहारी शाद्वल भूमिखण्ड का कार्य करती हैं कुन्ती कृत भगवत्स्तुति मे भाषा का लालित्य और प्रवाह दर्शनीय है

श्रीकृष्ण कृष्ण सख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग
दहनानपवगवीय
गोविन्द गोद्विजसुरातिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ १–८–४३

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि भक्ति के प्रवाह में लिखे गए स्तोत्र-साहित्य की परम्परा श्रीमद्भागवत मे विद्यमान हैं। इस प्रकार का विपुल साहित्य नवी शताब्दी में भक्ति आन्दोलन के समय ही लिखा गया होगा ऐसा अनुमान होता है।

भागवत का रचना-स्थल—

भागवत के अन्त.साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इसका रचना-स्थल दक्षिण भारत है। इसके वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते है। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा-प्राप्त ज्ञात होता है। ब्रज का वर्णन भी श्रुति परम्परा से आया मालूम होना है और उसमें उत्तरी भारत के दृश्य की अपेक्षा दक्षिण भारत का दृश्य ही अधिक प्रतिबिम्बत होता है—

वनौकस' प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युत' ।
जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहा' ॥
क्वचिद्वनस्पति क्रोडे गुहायाँ चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवानुरेमे कन्दमूलफलाशन ॥

—श्रीमद्भागवत १०–२०–२७–२८

भील किरातादि जातियो का निवासस्थान तथा गिरिकन्दराओं का बाहुल्य ब्रजभूमि की अपेक्षा दक्षिण भारत में ही अधिक है यह स्पष्ट ही है। नदी, पर्वतों, घनेवनो, खर्जूर आदि वृक्षों का आधिक्य दक्षिण प्रायद्वीप और विन्ध्याचल के आसपास ही है।

पुष्पों के वर्णन से भी श्रीमद्भागवत का रचना स्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है अनेक स्थलों पर ऐसे ही पुष्पो की नामावली आयी है, जो अधिकतर दक्षिण भारत मे ही पाये जाते हैं—

कच्चित्कुरबकाशोक नाग पुन्नाग चम्पका. ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मित: ॥ १०–३०–६
मालत्यदर्शि व. कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।
प्रीतिं वो जनयन्यात करस्पर्शेण माधव: ॥ १०–३०–८

इस प्रकार कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका आदि पुष्पों के उल्लेख से स्पष्ट है कि इनकी बहुल उत्पत्ति दक्षिण भारत मे ही होती है। कवि को जिन पदार्थो का दर्शन प्रत्यक्ष और सुलभ होता है वे ही उसकी रचनाओं मे वर्णित होते हैं यह नितान्त स्वाभाविक है। अत: श्रीमद्भागवत के विविध वर्णनों और भौगोलिक ज्ञान के आधार पर इसका रचना स्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है।

तिथि निर्णय

समस्त भारत में विभिन्न लिपियो मे श्रीमद्भागवत की जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं तथा भारत की समस्त भाषाओं में इसके जो अनुवाद प्राप्त हुए हैं, उससे श्रीमदभागवत की प्रसिद्धि

प्राचीनता और लोकप्रियता सिद्ध होती है भारतीय ही नहा फारसी अग्रजी आदि विदेशी भाषाओ मे भी इस ग्रन्थ के अनुवाद और तत्तन् लिपियो म इसकी प्रतियाँ उपलब्ध है किन्तु दुर्भाग्यवश इस ग्रन्थ के रचना काल के सम्बन्ध म कोई अन्तिम निर्णय अभी तक नही दिया जा सका है। विल्सन, मैकडानल, कोलब्रुक आदि विदेशी विद्वान् श्रीमद्भागवत को १३वी की रचना मानते है, उनके मत का खण्डन अनेक भारतीय विद्वान् कर चुके है। अधिकतर विद्वानो का मत है कि श्रीमद्भागवत ९वी शताब्दी की रचना है।[1] अलबेरूनी ने 'वासुदेव भागवत' का उल्लेख कर अपनी १८ पुराणो की सूची में श्रीमद्भागवत का स्थान स्पष्ट कर दिया है, क्योंकि श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य भागवत पुराण भी १८ पुराणोंकी सूची मे गिने जाने के लिए उसकी प्रतिद्वन्द्विता मे खडे होने लगे थे। अत श्रीमद्भागवत का समय अल-बेरूनी से इतना पूर्व अवश्य रहा होगा कि इसकी स्थिति स्पृहणीय हो गई थी। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए श्रीमद्भागवत की रचना ८०० ई० से बाद की नही हो सकती। यह तो निर्विवाद है कि भागवत धर्म महाभारत के 'सात्वतधर्म' का ही पर्याय है जिसकी स्थिति चौथी शताब्दी ईसवी मे थी और ५वी शताब्दी में गुप्तों के शासन काल मे जिसका पूर्ण अभ्युदय हुआ था। उसी समय या उसके पश्चात् ही श्रीमद्भागवत की रचना हुई होगी। माठर वृत्ति मे प्राप्त श्रीमद्भागवत के समानान्तर दो श्लोको[2] की चर्चा श्री वी० एन० कृष्णमूर्ति शर्मा ने की है। किन्तु ये श्लोक माठर वृत्ति के परमार्थ पंडित कृत चीनी अनुवाद मे उपलब्ध नही है। माठर वृत्ति का मूलभाग संदिग्ध है। इस अनुवाद का समय छठी शताब्दी है। यदि माठर वृत्ति का रचना काल हम अनुवाद से १०० वर्ष पूर्व मानें जिसके मूल भाग मे उक्त दो श्लोक नही थे, तब श्रीमद्भागवत की उपस्थिति छठी शती के पूर्वार्ध तक सिद्ध नही होती, किन्तु यह भी सम्भव है कि भागवत के परिवर्धित संस्करण मे वे श्लोक बढ गए हो अन्य पुराणों के आकार और विषय की भाँति श्रीमद्भागवत पुराण मे समय-समय पर परिवर्तन हुआ है, किन्तु वे स्थल इतनी सावधानी से सम्मिलित किए गए हैं कि उन्हे पृथक् करना कठिन है। विद्वानो का मत है कि तमिल वैष्णवो के उल्लेख और हूण आदि जातियो के वैष्णव धर्म स्वीकार करने के संकेतों से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवत का रचना काल ५वी शती से पूर्व नही है। ६०० ई० को हम इसकी निम्न सीमा रेखा मान सकते हैं जिसका अन्तिम रूप नवी शताब्दी के उत्तरार्ध तक प्रस्तुत हो चुका था।

---

१ दे०—J B. B R A S, 1935. 144 ff.
Pargiter, 'Ancient Indian Historical Tradition. p 80'

२ श्रीमद्भागवत १—८—५२ और १ ६ ३५

श्रीमद्भागवत के कृष्ण और गोपियां

कृष्ण का ऐतिहासिक विवेचन

कृष्ण (भाव) का विकास—

भारतीय वाङ्मय का कृष्ण पात्र जितना विवादास्पद है उतना सम्भवतः और कोई पात्र नहीं है। इसका एक मुख्य कारण वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य मे कृष्ण और उसके चरित्रो का अस्तित्व है। कुछ पाश्चात्य विद्वानो ने कृष्ण को ऐतिहासिक पात्र ही नही माना है तथा आंग्ल भाषा विशारद अनेक भारतीय भी उन्ही के पद चिह्नो पर चलने मे ही अपना सौभाग्य समझते है और बहुत सी भारतीय वस्तुओ को अभारतीय कहने मे नही हिचकते। इस विवाद का दूसरा कारण कृष्ण के विभिन्न स्वरूप और उनका एक मे समाहार है। गोपाल सहस्र नाम, विष्णु सहस्र नाम तथा पुरुषोत्तम सहस्र नाम आदि अनेक श्लोको में भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नाम गिनाए गये है तथा पुराणो में अनेक देवों की कल्पना कर उनकी स्तुति की गई है तथा प्राय सभी देवों को भगवान् के अवतार या अंश ही माना गया है। इस विषय पर अनेक ग्रन्थो की रचना हो चुकी है और अनेक शोध प्रबन्धों मे पृष्ठ-भूमि के रूप मे इस विषय पर आज भी बहुत कुछ लिखा जा रहा है। इसलिए इस विषय पर बहुत ही सक्षेप मे हम विचार करेंगे।

मैत्रायण्युपनिषद् में ब्रह्म का निरूपण करते हुवे कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र निशाकर, मनु, यम, पृथ्वी तथा अच्युत तुम्हारे ही नाम है।[1] इस प्रकार के ब्रह्म निरूपक अनेक पद हमे वेदों तथा उपनिषदों में मिलते है जिनसे विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित होता है। भागवत धर्म के प्रधान देवता वैदिक काल मे विष्णु रहे है। ब्राह्मण काल के अन्त मे नारायण को परम देवता माना जाने लगा। इस काल की उपासना मे मनुष्य को अखिल व्यापक परोक्ष शक्ति के स्वरूप का अधिक परिचय मिला और उपासना पद्धति मे व्यक्तित्त्व का तथा हृदय का सयोग हुआ। नारायण को नरप्रकृतिस्थ सगुण ब्रह्म कहा गया है। पौराणिक काल मे नारायण और विष्णु की एकता स्थापित हो गई। नारायणीय धर्म के मूल का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है। इस पांचरात्र या नारायणीय धर्म के कई पक्ष थे। भगवान् का जो स्वरूप नर नारायण के रूप मे पूर्व कल्प में प्रकट हुआ था, वह इस कल्प मे वासुदेव कृष्ण के रूप मे प्रकट हुआ अर्थात् इस कल्प में नारायण और वासुदेव कृष्ण एक ही शक्तियुग विशेषो मे अलग अलग नाम हुए। महाभारत में शान्ति पर्व के अन्तर्गत नारायणीयोपाख्यान मे भागवत धर्म की परम्परा बतलाई गई है, जिसके अनुसार इस धर्म का रहस्य विवस्वान् ने मनु को बताया तथा मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को बताया—

---

१ दे० ४।१२।१३

इमं विवस्वते योगं
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥[1]

अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के प्रारम्भ में सूर्य के प्रति कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु के प्रति और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के प्रति कहा।

इसी नारायणीय उपाख्यान में क्षीर समुद्र के मध्य श्वेत द्वीप का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि वहाँ के निवासी वासुदेव भगवान् की उपासना करते थे। इस नारायणीय उपाख्यान की सगति सात्वत संहिता से भी लग जाती है जिसमें भक्तितन्त्र को रहस्याम्नाय और उपासना को क्रियामार्ग कहा है। सात्वत यादव क्षत्रियों का एक वर्ग है और इसी जाति में श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था। जब सात्वतों में वासुदेव की पूजा प्रधान हो गई तो वासुदेव और नारायण को एक ही देवता समझा जाने लगा। इस प्रकार, विष्णु, नारायण और वासुदेव कृष्ण एक हो गए।

इस कल्प के भागवत धर्म के तत्त्वज्ञान में परमेश्वर को वासुदेव, जीव को संकर्षण, मन को प्रद्युम्न तथा अहंकार अनिरुद्ध कहा गया है। इनमें वासुदेव तो स्वयं श्रीकृष्ण का नाम है संकर्षण उनके ज्येष्ठ भ्राता बलराम का नाम है तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध क्रमशः उनके पुत्र एवं पौत्र के नाम हैं। परन्तु भागवत धर्म से वासुदेव का सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ और कब हुआ यह विषय विचारणीय है। सात्वत संहिता में वासुदेव की पूजा का विधान है और इसी क्षत्रिय कुल में कृष्ण का जन्म हुआ था इसलिए सम्भवतः कृष्ण में वासुदेवत्व का आरोप हो गया हो। नारायणीय उपाख्यान में जो नारायण और नारद का संवाद है उसमें श्रीकृष्ण का नाम नहीं है। हाँ महाभारतकार ने कृष्ण को सात्वत धर्म का उपदेष्टा अवश्य कहा है। इस 'वासुदेव' शब्द का कृष्ण से कब समन्वय हुआ यह अभी विवाद का विषय बना हुआ है। श्रीकृष्ण का देवता रूप से वर्णन सबसे पहले हरिवंश पुराण में आया है, जिसका समय भण्डारकर ने सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी माना है[2], परन्तु वासुदेव कृष्ण का सम्बन्ध और भी पुराना है। पाणिनि और पतञ्जलि वैयाकरणों के सूत्र और भाष्य में हमें यह सम्बन्ध मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण को देवकी पुत्र और घोर आङ्गिरस ऋषि का शिष्य बताया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् से आगे जो उपदेश है वह भी गीता के श्लोक से मिलता जुलता है। कौशीतकी ब्राह्मण में भी श्रीकृष्ण और आंगिरस का उल्लेख है। कुछ विद्वान् इन्हीं उल्लेखों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं कि ये ही ऐतिहासिक कृष्ण थे जिनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था और जो घोर आंगिरस ऋषि के शिष्य थे। उन्होंने ही सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना की और उनकी ईश्वर रूप से उपासना होने लगी। निश्चित ऐतिहासिक ब्यौरों के अभाव में हम इस मत को नहीं मान सकते।

वासुदेव और कृष्ण के सम्बन्ध वाली समस्या से भी अधिक गुत्थी गोपाल कृष्ण वाली है, क्योंकि श्रीमद्भागवत में तो वासुदेव कृष्ण और गोपालकृष्ण एक ही हैं। महाभारत में श्रीकृष्ण को वसुदेव नन्दन कई स्थानों पर कहा गया है और द्वारकावासी होने का भी उल्लेख

---

१ दे० श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १, ३

२ दे० Vaishnavism and Shaivism p 37

किया गया है परन्तु प्रामाणिक महाभारत मे न तो गोपालकृष्ण का कही उल्लेख है और न गोकुल वाली कथा का ही समावेश है। हाँ सभा पर्व मे गोकुल वाली कथा का आभास अवश्य मिलता है। यद्यपि भण्डारकर ने तो महाभारत के उतने अंश को प्रक्षिप्त कहकर 'गोपाल' शब्द या 'गोकुल' शब्द की सगति पूर्णतया ही उडानी चाही है, परन्तु पर्याप्त प्रमाणो के अभाव मे हम भण्डारकर की इस मान्यता से कैसे सहमत हो सकते है ? पुराणों मे अवश्य हमें गोपालकृष्ण सम्बन्धी कथाएं मिलती है। कृष्ण चरित को कहने वाले मुख्य पुराण ये है—

ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीमद्भागवत, वायु पुराण, अग्नि पुराण, लिंग पुराण, देवी भागवत और हरिवंश पुराण। ब्रह्म पुराण और विष्णु पुराण मे तो कथाएँ प्राय एकसी है और दोनो मे एक से ही श्लोक मिलते है। विष्णु पुराण मे कही-कही पात्र भेद भी है और ब्रह्म पुराण की अपेक्षा श्लोक सख्या भी कुछ अधिक है। अन्य पुराणों में कथा तो एक ही है, पर श्लोक अलग-अलग है। ब्रह्म वैवर्त में एक नई बात यह है कि उसमें 'राधा' का वर्णन विशेष रूप से हुआ है और राधा को कृष्ण की एक सखी के रूप मे चित्रित किया गया है। वायु पुराण मे भिन्न-भिन्न राजवशों का वर्णन है और उसी प्रसग मे कृष्ण चरित का वर्णन है। हरिवंश पुराण मे, जो महाभारत का ही एक परिशिष्ट है केवल श्रीकृष्ण की ही कथा का वर्णन है। कहा जाता है कि महाभारत मे जो कृष्ण चरित का अभाव है, उसी को पूर्ति करने के लिए हरिवश पुराण का निर्माण हुआ है। इन सभी पुराणो मे कृष्ण चरित की कथा कुछ अन्तर के साथ एक सी ही है। महाभारत मे श्रीकृष्ण का प्रथम उल्लेख द्रौपदी स्वयवर के प्रसग मे आता है, जहाँ कि अन्य राजाओं की भाँति वे भी दिखाए गए है। फिर समय-समय पर कृष्ण के दर्शन होते है किन्तु कोई शृङ्खला बद्ध कृष्ण चरित नही है। महाभारत से केवल इतना ही पता चलता है कि भागवत, सात्वत अथवा ऐकान्तिक धर्म एक ही धर्म के रूप है। शान्ति पर्व में इसका लक्षण इस प्रकार दिया है।

नारायण परो धर्मः पुनरावृत्ति-दुर्लभः।
प्रवृत्ति लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मक ॥[१]

अर्थात् धर्म, नारायण का ही स्वरूप है। प्रवृत्ति-मूलक निवृत्ति-मूलक दोनों ही धर्म नारायण परक है।

फिर आगे चलकर वैशम्पायन जनमेजय से कहते है—

यतीनां चाऽपि यो धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पतः॥

अर्थात् 'जनमेजय गीता मे सन्यासियो का धर्म कहते समय मैंने संक्षेप में इस धर्म का वर्णन पहले तुम से कर दिया है

रचना काल तक यह अभिन्नता स्थापित हो चुकी थी श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कंध मे इन पुराणो के नाम गिनाए गए है, जिससे सिद्ध होता है कि उनकी रचना भागवत से पहले हो चुकी थी। पुराणो की निर्माण तिथि अभी अन्धकार मे है। इसलिए इस विषय पर अधिक नही कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानो ने इन पुराणो के रचना काल के विषय में बहुत सी कल्पनाये की हैं। श्रीमद्भागवत के विषय मे हम पीछे लिख चुके है कि कोलब्रुक, बर्नफ विलसन, आदि प्रारम्भिक यूरोपीय विद्वान् भागवत का रचयिता वोपदेव (१२६०–१३०९ ई०) को मानते है। इस ओर बड़ी खोज की आवश्यकता है।

अब हम गोपाल कृष्ण के विषय मे कुछ पाश्चात्य विद्वानो के मत संक्षेप मे देते है। पाश्चात्य विद्वानो की खोज तथा मत हमें निम्नलिखित पुस्तको से प्राप्त होते है—

१—भण्डारकर-कृत—Vaishnavism, Shaivism & Minor religious Systems.

२—Journal of Royal Asiatic Society के लेख।

३—Indian Antiquary के लेख।

४—Encyclopedia of Religion and Ethics के लेख।

५—पाश्चात्य विद्वानो के कुछ इतिहास ग्रथ।

Vaishnavism, Shaivism and minor religious systems मे भण्डारकर ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गोपाल कृष्ण आभीर नामक जाति के बाल देवता है। वर्तमान अहीर इन्ही आभीरों की सन्तान है। महाभारत मे इन्हे डाकू और म्लेच्छ कहा गया है। केनेडी ने भी इसी प्रकार अपना मत प्रकट किया है तथा वर्तमान जाट गूजरों को उनकी सन्तान माना है। केनेडी ने आभीरो का राज्यकाल पाँचवी छठी शताब्दी माना है। वेबर, ग्रियर्सन, केनेडी तथा भण्डारकर आदि विद्वान् ईसा से पश्चात् आभीरों के बाल देवता श्रीकृष्ण का होना सिद्ध करना चाहते है और अपने विभिन्न लेखो मे उन्होने ऐसा ही दिखाने का प्रयत्न किया है। ऐसा सिद्ध करने से उनका अभिप्राय यह है कि बाल कृष्ण की कथाएँ ईसा की कथाओ का रूपान्तर है। भण्डारकर ने तो यहाँ तक अनुमान लगाया है कि 'कृष्ण' 'क्राइस्ट' का ही रूपान्तर है। कई भारतीय विद्वानो ने पाश्चात्य विद्वानों के इन मतो का खण्डन किया है।

पाश्चात्य विद्वानों का कृष्ण सम्बन्धी मत एकाँगी, पक्षपात-पूर्ण और नितान्त असगत है। 'कीथ' 'मैकडॉनाल्ड आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसका खण्डन किया है और गोपाल कृष्ण की कथाओ को ईसवी सन् से पहले का बताया है। अब और भी पर्याप्त प्रमाण इसकी पुष्टि मे दिये जा सकते हैं कि ईसा से बहुत पूर्व बालकृष्ण की कथाएँ प्रचलित थीं। यदि हम आभीरो से ही की लीलाओ की सगति लगाए तो भा उनका अस्तित्व ईसा से पहले सिद्ध होता है इसके पक्ष मे ये युक्तियाँ दी जा सकती हैं

२ वायु पुराण तथा हरिवंश पुराण में आभीरों का उल्लेख तथा वायु पुराण मे आभीर राजाओ की वंशावली।

३—आभीरो का द्रविड शब्द से सम्बन्ध[१]।

४—भास के नाटको तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थो मे कृष्ण चरित का होना।

५—बाल कृष्ण मे ईसा निरपेक्ष बहुत सी गोपी सम्बन्धिनी कथाओ का सम्बन्ध।

इन सब युक्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोपाल कृष्ण समन्वित वासुदेव कृष्ण का रूप ईसा के बहुत पहले बन चुका था।

केनेडी ने जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी सन् १९०७ के 'कृष्ण, ईसाईमत और गूजर' शीर्षक लेख मे कृष्ण के तीन रूप माने हैं। (१) द्वारका का राजा कृष्ण। (२) सिन्ध उपत्यका का अनार्य वीर कृष्ण जो आधा देवता था और (३) मथुरा का बाल कृष्ण। जैकोबी, भण्डारकर तथा विण्टरनित्ज ने भी इसी प्रकार अपने मत प्रकट किए है। प्रोफेसर विण्टरनित्ज लिखते है—

"It is difficult to believe that Krishna, the friend and Councillor of Pandavas, the herald of the doctrine of the Bhagwat-Gita, the youthtul hero of the cowherds and finally Krishna, the incarnation of God Vishnu was one, and the same person."

अर्थात्—"यह विश्वास करना कठिन है कि पाण्डवो के मित्र और मंत्री, श्रीमद्भगवद्गीता के सन्देशदाता, गोपियों के शृङ्गारी नायक तथा अन्तत विष्णु भगवान् के अवतार, कृष्ण एक ही व्यक्ति थे।"

जैकोबी का कहना है कि ब्राह्मण युग के अन्त में एक श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा हो चुकी थी जिसमें घोर आङ्गिरस के शिष्य देवकी पुत्र और वासुदेव कृष्ण का समावेश था फिर इस कृष्ण मे मथुरा के बाल कृष्ण तथा वृष्णियो के नायक राजपूत कृष्ण आ मिले। जैकोबी लिखते हैं—

"The story of Krishna being son of a Krisna Vasudeo is not true, and the name of father seems to have been developed from his very name Vasudeo."

अर्थात्—'कृष्ण वसुदेव के पुत्र कृष्ण की कथा सत्य नही है और पिता का नाम उनके स्वयं के नाम 'वासुदेव' से विकसित हुआ मालूम पडता है।" इसी प्रकार भण्डारकर लिखते हैं—

"The story of Vrishni prince Vasudeo being brought up in a cow-settlement in iscongruous with his latter career as depicted in Maha-Bharat."

अर्थात्—"वृष्णि राज वासुदेव, जो गोकुल (व्रज) मे लालित हुए थे, की कथा उनके महाभारत में चित्रित आगे के जीवन से मेल नही खाती।"

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि कृष्ण का चरित और व्यक्तित्व कितना विवादास्पद है। वास्तव में "कृष्ण का वर्तमान रूप नाना वैदिक, अवैदिक, आर्य, अनार्य

१ दे० Early History of Vaishnavism (राय चौधरी

धाराओ के मिश्रण से बना है परन्तु फिर भी हम यह नही कह सकते कि कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति नहा है अवतारत्व का आरोप हो जाने पर बहुत सी अतिमानवाय घटनाओ से अवतार का जावन घुल-मिल जाता है। अब हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं—

१—महाभारत में जिस भी कृष्ण का वर्णन है, वह ऐतिहासिक व्यक्ति है तथा महाभारत काल मे ही श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का आरोप हो गया था। इस कृष्ण का सम्बन्ध मथुरा से भी था, और द्वारका से भी। ब्रज की कथाओ का भी कुछ सम्बन्ध कृष्ण से था जिनका आभास हमे शिशुपाल की बातो से मिल जाता है। वसुदेव और देवकी से भी सम्बन्ध महाभारत मे मिलता है।

२—बाल लीलाओ का समावेश अवश्य आभीर जाति अथवा अन्य स्थानीय कारणो से हो सकता है पर उसका मूल ऐतिहासिक कृष्ण के चरित्र मे अवश्य है।

३—श्रीमद्भागवत मे भी कृष्ण के सारे रूपों का एक मे सुन्दर समन्वय है। हाँ, छान्दोग्य उपनिषद् मे जो भी कृष्ण का उल्लेख है केवल उसकी संगति कठिन ज्ञात पडती है और वास्तव में इसी उल्लेख ने अनेक सशयो को जन्म दिया है। वहाँ लिखा है कि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को आङ्गिरस घोर ऋषि ने शिक्षा दी कि जब मनुष्य का अन्तिम समय आवे तो उसे इन तीन वाक्यो का उच्चारण करना चाहिए—(१) ईश्वर! आप अविनश्वर है (२) आप ही एक रहने वाले है। (३) आप प्राणियो के जीवन दाता है। श्रीकृष्ण इस शिक्षा को सुनकर अपिपास होगये—" त घोर आङ्गिरस कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वा वाचाऽपिपास एव स बभूव"[1] श्रीकृष्ण का एकत्व स्थापित करने के लिए इस शका के केवल दो ही समाधान हो सकते हैं—

१—छान्दोग्य उपनिषद् मे वर्णित यह श्रीकृष्ण ऐतिहासिक श्रीकृष्ण से भिन्न हैं। केवल श्रीकृष्ण को अवतारत्व प्रदान करने के अनन्तर ऐतिहासिक श्रीकृष्ण का सम्बन्ध उपनिषद् के श्रीकृष्ण से जोड दिया गया है। अथवा (२) उपनिषद् का वह अंश प्रक्षिप्त है। या उसका सम्पादन कृष्ण के जीवन काल मे हुआ है।

हमने ऊपर ऐतिहासिक श्रीकृष्ण के अवतारत्व का उल्लेख किया है। महाभारत और श्रीमद्भागवत को सामने रखकर हम कृष्ण के अवतारत्व पर विचार करते है। भागवत' कार सब अवतारो मे श्रीकृष्ण की विशेषता दिखलाते हुए कहते है।

"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्" अर्थात् अन्यान्य अवतार भगवान् के अंश हैं किन्तु श्रीकृष्ण स्वय भगवान् है।[2]

हम ऊपर कृष्ण-भाव के विकास में नर नारायण वाली बात कह आए हैं। महाभारत के उद्योग पर्व १६।१५ मे लिखा है कि प्राचीनकाल मे नर और नारायण नामक दो महात्माओ ने गधमादन पर्वत पर घोर तपस्या की थी—

श्रूयते तौ महात्मानौ नर नारायणावुभौ। तपो घोरमनिर्देश्य तप्येते गन्धमादने।[3] यह पर्वत हिमालय का अंग है, और उसी पर बदरिकाश्रम है जो नर नारायण का तपस्या-

१ छान्दोग्य उपनिषद् प्र० ३ ख० १७

२ श्रीमद्भागवत १ ३ २

३ महाभारत उद्योगपर्व १६ १५

स्थान कहा जाता है—वदरीमाश्रम पुण्य गन्धमादन पवत वदर्य्यां तप्तवानुग्र तपो वर्षा युतान्बहून् [1] आज भी सबसे पहले इन्ही नर नारायण ऋषि का स्मरण किया जाता हैं—"नारायण नमस्कृत्य नर चव नरोत्तमम् । महाभारत तथा भागवत आदि पुराणो मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यही नर नारायण ऋषि द्वापर के शेष मे अर्जुन और श्रीकृष्ण रूप से अवतीर्ण हुए । भीष्म पर्व मे लिखा है कि 'वही पुरातन अमित तेज सम्पन्न ऋषि श्रेष्ठ नर नारायण इस मनुष्य लोक मे आविर्भूत हुए है—

नर नारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ॥[2]

फिर उद्योग पर्व मे भी यही बात पाई जाती है ।" ये वीरोत्तम पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण वही नर नारायण ऋषि है—"

नर नारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ॥[3]

फिर वही श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं—हे अर्जुन ! तुम दुर्धर्ष नर हो, मै नारायण हरि हूँ । हम वही नर नारायण ऋषि है और काल क्रम से इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए है—

नरस्त्वमपि दुर्धर्षो हरिर्नारायणो ह्यहम् ।
काले लोकमिम प्राप्तौ नरनारायणावृषी ॥[4]

महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व मे लिखा है—य. स नारायणो नाम देवदेव सनातन । तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेशह । अर्थात्—यह नारायण का अश भूत वासुदेव अपनी लीलाएँ करके नारायण मे ही प्रविष्ट हो गया ।

फिर आगे चलकर श्रीकृष्ण को नारायण का कृष्ण केश कहा है—

"कृष्णो द्वितीयः केशवः सवभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्त [5] अर्थात्—कृष्ण जो भगवान् के कृष्ण केश है और वर्ण से कृष्ण केशव रूप से अवतीर्ण हुए है ।"

श्रीमद्भागवत में इन्ही दोनो बातो की प्रतिध्वनि देखिये—फिर मै अपने अ श भाग से देवकी के गर्भ में प्रवेश करूँगा और नन्द पत्नी यशोदा के गर्भ से तुम जन्म लोगे—"अथाहमंशभागेन देवक्या पुत्रतां शुभे । प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्या भविष्यसि [6] फिर श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे लिखा है—"नारायण के एक कृष्ण और एक शुक्ल केश असुर मर्दित पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्रीकृष्ण और बलराम रूप से अवतीर्ण हुए है—

---

१ महाभारत व० प० ४०–१

२ महाभारत भी० प० ६६, ११

३ महाभारत उद्योग पर्व

४ महाभा० उ० प० ६६, ४६

५ महाभा० स्वर्गा० प० १३७, ३३

६ श्रीमद् भा० १०–२ ε

भूमे सुरतरूवरूथ विमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सित कृष्ण केशः जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ।।"[१] श्रीमद्भागवत में नारायण को पुरुषावतार या आदि अवतार कहा है। प्रथमस्कन्ध के तीसरे अध्याय का पहला ही श्लोक है—"भगवान् ने आदि में लोक सृष्टि की इच्छा से महत्तत्त्वादि सम्भूत षोडश कलात्मक पुरुषावतार धारण किया। फिर एकादशस्कन्ध के चौथे अध्याय के तीसरे श्लोक में लिखा है, "भगवान् ने ही पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश इन पाँच भूतों को अपने आप से अपने आप में सृष्टि की है। जब वे इनके द्वारा विराट् शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें लीला से अपने अंश अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करते हैं, तब उन आदि देव को पुरुष नाम से कहते हैं यही उनका पहला अवतार है।" फिर आगे के श्लोकों में नर नारायण की शक्ति का वर्णन किया है। दशमस्कन्ध के चौदहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक में ब्रह्म-स्तुति में कहा गया है, हे अधीश क्या आप नारायण नहीं हैं? आप अवश्य ही नारायण हैं। क्योंकि आप ही सब जीव समूह के आत्मा और अखिल साक्षी हैं। इसी प्रकार अन्य पुराणों में भी नारायण और वासुदेव कृष्ण की संगति लगाई गई है। इसी प्रकार वैकुण्ठ-वासी चतुर्भुज नारायण (महाविष्णु, श्वेतद्वीप पति विष्णु) नारायण ऋषि तथा वासुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण तथा वृन्दावन विहारी नन्दनन्दन एक ही भगवान् के विभिन्न रूप बताए गए हैं। श्री जीव गोस्वामी ने लघु भागवतामृत के पूर्व पटल में इसका सामंजस्य स्थापित किया है और कहा है कि—'पुराणों में कोई श्रीकृष्ण को नारायण ऋषि कोई वामन, कोई क्षीरोदशायी, कोई सहस्रशीर्षा और कोई वैकुण्ठनाथ नारायण कहता है। ब्रह्माण्ड पुराण ने इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि 'जो वैकुण्ठ में चतुर्भुज नारायण, जो श्वेत द्वीप पति नर नारायण ऋषि हैं वे ही वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण हैं।

ख—श्रीमद्भागवत में कृष्ण के विभिन्न रूप

ऊपर के विवेचन से सिद्ध हो गया कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का व्यापक रूप लिया गया है। सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाभारत, गीता और श्रीमद्भागवत के कृष्ण के रूप में उत्तरोत्तर विकास है। महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें लिखे हुए आख्यानों में ही भगवत्तत्त्व निरूपण हुआ है। यदि उन आख्यानों को अलग-अलग कर दिया जाय तो श्रीकृष्ण का मानवीय रूप ही हमारे सामने आता है। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वानों ने महाभारत में बहुत से अंश प्रक्षिप्त माने हैं। परन्तु उन आख्यानों में जो भागवत धर्म और तत्त्व का निरूपण हुआ है वह बड़ा महत्त्वपूर्ण है। श्रीमद्भगवद्गीता उसी तत्त्व को वैज्ञानिक रूप में समन्वित करके प्रस्तुत करती है। फिर श्रीमद्भागवत में भक्ति की दृढ़ता के लिए इसी तत्त्व की व्याख्या की गई है। श्रीमद्भागवत में आयी हुई पृथु, प्रियव्रत, प्रह्लाद आदि भक्तों की कथाएँ तथा निष्काम कर्म के वर्णनों से यह बात भली भाँति प्रकट हो जाती है कि महाभारत का नारायणीय धर्म और श्रीमद्भागवत का भागवत धर्म आदि में एक ही है, पर दोनों ग्रन्थों में प्रधानता भिन्न सिद्धान्तों की है। उसमें श्रीकृष्ण का रूप लोक रक्षक भी है और लोक रंजक भी। फिर गीता में महाभारत के सिद्धान्तों की व्याख्या है। गीता महाभारत का एक भाग है। दोनों ग्रन्थों को आद्योपान्त पढ़ने से यह बात सिद्ध हो जाती है। निष्काम

१ श्रीमद्भागवत २ ७-२६

कर्म युक्त प्रवृत्ति तत्त्व का ही दोनो मे विवेचन हुआ है। सम्भवत इसीलिए भागवत की रचना हुई और यह सिद्ध किया गया कि भक्ति के बिना निष्काम कर्म सम्भव नही है। भागवत का मुख्य उद्देश्य भक्ति का प्रतिपादन है।

गीता मे भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक अव्यक्त और अमृततत्व माना गया है और परम पुरुष कहा गया है, जिसके दो स्वरूप है, व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी सगुण, सगुण-निर्गुण और निर्गुण तीन भेद किए गए है। कृष्ण उस परम पुरुष के मूर्तिमान् अवतार है और यही कारण है कि गीता मे भगवान् कृष्ण ने अपने विषय मे उत्तम पुरुष का निर्देश स्थान-स्थान पर किया है।[1]

गीता मे भगवान् ने अपना विश्वरूप दर्शन अर्जुन को दिखाया है और उसको यही उपदेश किया है कि अव्यक्त से व्यक्त रूप की उपासना करना अधिक सहज है। इसी प्रकार के विश्वरूप का वर्णन महाभारत मे नारद के सम्बन्ध मे आता है। महाभारत मे शान्ति पर्व में भगवान् ने नारद को अपना रूप बतलाया है।[2] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सिद्धान्त रूप मे महाभारत गीता और भागवत मे परब्रह्म को एक ही रूप दिया गया है। परन्तु महाभारत और गीता मे इतना अन्तर है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण का परब्रह्म से तादात्म्य इतने व्यापक रूप से नही मिलता जितना गीता तथा भागवत मे। महाभारत मे पाण्डव उन्हे अवश्य विष्णु का अवतार मानते थे, परन्तु यह बात सर्वसाधारण नही थी। श्रीमद्भागवत मे कृष्ण का वही स्वरूप है जो गीता मे है, अन्तर केवल इतना है कि गीता मे ज्ञान कर्म और उपासना का सामजस्य स्थापित किया गया है और साथ ही साथ पिण्ड ब्रह्माण्ड के ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्त्वों को भी समझाया गया है। श्रीमद्भागवत मे इन सब का निरूपण विशेष रूप से करके भक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है। श्रीमद्भागवत मे अनेक प्रकार के अवतारों का वर्णन है किन्तु "एते चांशकला. पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्"[3] कह कर कृष्ण को सर्वोपरि भगवान् कहा गया है। पुराणो मे अवतारो की बड़ी सुन्दर व्याख्या है। अवतार तीन प्रकार के माने गए है। १—पुरुषावतार, २—गुणावतार और ३—लीलावतार। भगवान् के चार व्यूह माने गए है श्रीवासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। गुणावतारो मे विष्णु ब्रह्मा और रुद्र माने गए है। लीलावतार २५ माने गए हैं। इनके अतिरिक्त १४ मन्वन्तरावतार होते है जो स्वायम्भुव आदि १४ मन्वन्तरो मे होते है।

श्रीमद्भागवत मे कृष्ण को अवतारी माना है। देवकी ने श्रीकृष्ण की स्तुति मे कहा है—'हे आद्य ! जिसके अश (पुरुषावतार) का अश प्रकृति है, उसके अश (सत्त्वादि गुण) के भाग परमाणु आदि द्वारा इस विश्व की सृष्टि, स्थिति, और प्रलय हुआ करती है, मै आपकी

---

१ गीता अ० ५ श्लोक ८
,, ६ ,, ३१
,, १२ ,, २०
,, १० ,, ४१
,, १५ ,, ७

२ दे० महाभारत शान्ति पर्व अ० ३९ श्लो० २ २८

३ श्रीमद्भागवत १ ३ २८

शरण हूँ[१] गीता मे भी इस प्रकार के वाक्यो का दुहराया गया है जैसे "विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्" अर्थात्— मैं अपनी माया के एक अंश मात्र से इस जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ" तथा मत्त परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय। अर्थात्— 'हे अर्जुन इस विश्व मे मुझ से परे कुछ भी नही है'[२] इस प्रकार गीता तथा भागवत मे भगवान् श्री कृष्ण को ज्ञान, शक्ति बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणो से विशिष्ट माना है। श्रीमद्भागवत मे कुन्तीकृत कृष्ण-स्तुति मे उनका स्वरूप तथा भगवान् के अवतार का प्रयोजन भी बतलाया गया है। अन्त मे कुन्ती कहती है—हे भगवन् कोई लोग कहते है कि आपने पुण्य श्लोक राजा यदु का यश बढाने के लिए ही यदु वंश मे जन्म लिया है इत्यादि।[3] इसके पश्चात् कुन्ती कहती है—जो लोग आपको प्रेम तथा भक्ति-भाव से भरी हुई अद्भुत लीलाओ को वक्ताओं से सुनते है, श्रोताओ को सुनाते हैं तथा स्वयं गाकर और स्मरण करके आनन्दित होते है वे शीघ्र ही उस जन्म मरण रूपी सांसारिक प्रबल प्रवाह के शान्त करने वाले आपके श्री चरण कमलो का दर्शन प्राप्त करते है।[४] श्रीकृष्ण के ब्रह्मरूप की व्याख्या हम अगले प्रकरण में करेंगे।

भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी रूप आ गए हैं जैसे— (१) अद्भुतकर्मा असुर-संहारी श्रीकृष्ण (२) बाल कृष्ण, (३) गोपी-विहारी श्रीकृष्ण (४) राजनीति-वेत्ता कूटनीति-विशारद श्रीकृष्ण (५) योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (६) परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण।

हम मुख्य रूप से श्रीकृष्ण के तीन स्वरूप देखते है—(१) महाभारत के कृष्ण (२) गीता के कृष्ण (३) तथा भागवत के कृष्ण। भगवान् के वीरत्व विधायक स्वरूप के दर्शन महाभारत में, परब्रह्म स्वरूप के गीता मे, तथा रसिकेश्वर स्वरूप के भागवत मे होते हैं। वैसे भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी स्वरूपों का विवेचन हुआ है, परन्तु प्रधानता रसिकेश्वर स्वरूप की है। भगवान् के असुर संहारी राजनीति-वेता तथा कूटनीतिज्ञ स्वरूप का वर्णन हमें दशमस्कन्ध के उत्तरार्ध मे मिलता है। दशम स्कन्ध पूर्वार्ध मे जो असुरो के वध की कथायें है वे भगवान् के बाल रूप की हैं, इसलिए वे श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित मे आती है। कंसवध तक की लीलाएँ बाल लीलाये हैं, किशोरावस्था के कर्म है। उनके राजपद की प्रतिष्ठा जरासन्ध के युद्ध के अनन्तर द्वारका दुर्ग के निर्माण के साथ होती है। गीता की 'परित्राणाय साधूनाम्' वाली उक्ति की चरितार्थता यही से आरम्भ होती है। इस स्कन्ध मे श्रीकृष्ण के पराक्रम को प्रदर्शित करने वाली वीर रस पूर्ण अनेक रोमाञ्चकारी घटनाएँ है। परन्तु बीच-बीच मे अलौकिकता का भी समावेश है। कृष्ण की बाल लीलाओं को छोड़ कर शेष श्रीमद्भागवत को चार भागों मे विभाजित किया जाता है—(१) घटनात्मक, (२) उपदेशात्मक (३) स्तुत्यात्मक तथा (४) गीतात्मक। श्रीमद्भागवत के वे स्थल घटना-प्रधान स्थल है, जो ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन करते है। किन्तु जैसे गोस्वामी तुलसीदास मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम के चरित्र को चित्रित करते हुए राम चरित मानस मे ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नहीं छोडते और उसी भावना से अभिभूत होकर अनजाने

१ श्रीमद्भाग० १०—८५—३१

२ श्रीमद्भगवद्गीता १०—४२

३ ७–७

४ श्रीमद्भाग० प्रथम स्कन्ध अ० श्लो० ३२ ३५ तथा आगे

म राम के चरित म अलौकिकता का समावेश कर जाते है, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भागवत तत्त्व निरूपण के द्वारा भक्तिरस का परिपाक ही है। इसलिये भागवतकार ने इस घटनात्मक स्कन्ध मे भी भगवान् के दिव्य मंगलस्वरूप की कई बार स्तुति कराई है, जैसे भौमासुर के वध के समय, बाणासुर सग्राम के अवसर पर तथा वेद स्तुति आदि मे। इन घटनाओ मे अलौकिक घटनाओं का भी सम्मिश्रण है जैसे स्वर्ग से कल्प वृक्ष लाना, देवकी के मृत पुत्रो को लाना इत्यादि। इन स्थलो पर कवि की प्रतिभा सजग हो उठती है और वह भगवान् के स्वरूप मे इतना तन्मय हो जाता है कि अन्य सब भाव अभिभूत हो जाते है तथा हृदयानुभूति रागात्मिकता वृत्ति के साथ उन स्तुतियों और स्तोत्रो के रूप मे साक्षात् रूप धारण कर लेती हैं। श्रीमद्भागवत मे जहाँ जहाँ भी इन घटनाओ का उल्लेख है, वहीं-वहीं कवि की इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग मे भागवतकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढ़ता ही है।

श्रीमद्भागवत के उपदेशात्मक भाग मे हमे श्रीकृष्ण योगेश्वर उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप मे मिलते हैं। श्री मद्भागवत मे दो प्रकार के उपदेश है। (१) साधारण (२) विशेष। साधारण उपदेश वे है जो साधु महात्मा ने अथवा गुरुजनो या मित्रो ने दिये है। इन उपदेशों का अभिप्राय कर्त्तव्य कर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवद्भक्ति है। विशेष उपदेशो के रूप मे वे स्थल आते है, जहाँ उपदेश विशेष रूप से दिए गये है जैसे उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव के प्रति नारद का उपदेश, चतुश्लोकी भागवत तथा कपिल गीता आदि। ये उपदेश बडे महत्त्वपूर्ण है। क्योकि इनमे दो बातो की व्याख्या हुई है—(१) परम तत्त्व की तथा (२) ज्ञान भक्ति तथा कर्म की।

श्री मद्भागवत का स्तुत्यात्मक भाग भी बडा महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसके द्वारा भी कृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है। ये स्तुतियाँ दो प्रकार की है। (१) सकाम (२) निष्काम। सकाम स्तुतियां वे है जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई है, जैसे कारागार से मुक्त होने के लिए अथवा किसी आपत्ति—दैविक, दैहिक भौतिक तापों—की निवृत्ति के लिए। श्रीमद्भागवत की निष्काम स्तुतियाँ भी दो कोटि की है। (१) वे जिनमे तत्त्व ज्ञान की प्रधानता है (२) वे जिनमे साधन की प्रधानता है। वेद स्तुति तत्त्व ज्ञान प्रधान कही जायगी क्योंकि इसमे सब तत्त्वो का पर्यवसान एक ही तत्त्व मे दिखाया गया है। प्रह्लाद, अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतियाँ साधना प्रधान कही जायेगी, क्योंकि इनमें भक्त मुक्ति की अभिलाषा न कर केवल भगवान के रूप तथा लीला के स्मरण कीर्तन मे आनन्द लेता है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित एक ग्रन्थ 'भागवत स्तुति' मे इस प्रकार की स्तुतियो का संग्रह है।

श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। इन गीतों मे ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप से प्रविष्ट हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतो मे पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है। ये गीत हृदय के वे स्वत प्रवाही स्रोत है जिनका अवरोध कवि नही कर सका है। ये उसकी अन्तरात्मा की व्यथा और अन्तर्वेदना के साक्षात् रूप है। ये गीत प्रेम और विरह के मूर्तिमान स्वरूप है। ऐसे गीतो की संख्या मे अधिक नहीं है। पाँच गीत गोपियो के हैं तथा एक गीत द्वारका की कृष्ण पत्नियों का है ये छः गीत म

आए हैं। दो गीत एकादश स्कन्ध में भी हैं। एक पिंगला का और एक भिक्षुब्राह्मण का। पिंगला का गीत निर्वेद-गीत है जो संसार की कटुता के अनुभव से हृदय में जो व्यथा होती है उसकी अभिव्यंजना करता है। ब्राह्मणभिक्षु के गीत में भी निर्वेद की झलक है क्योंकि वह सात्त्विक और सदाचारी होने पर भी लोगों में अपमानित होता है। कृष्ण की पत्नियों का गीत दशमस्कन्ध के ९०वें अध्याय में है। उनका मन भगवान् की लीला में इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती हैं। उन्हें दिनरात का कोई विवेक नहीं रहता और इस अनिर्वचनीय अवस्था में उनके हृदय से स्वतः भाव निःसृत होने लगते हैं। समस्त प्रकृति उन्हें कृष्णमयी लगती है तथा वे प्रकृति के सब पदार्थों को सम्बोधित करके उनका सम्बन्ध कृष्ण से स्थापित करती हैं। वे यह भी भूल जाती हैं कि कृष्ण उनके पास हैं अथवा नहीं।

गोपी-गीतों का विषय तो वर्णन से परे है। उनके पाँच गीतों में अनुपम प्रेम की झलक है। मानो उनका प्रेम ही स्वयं वाणी के रूप में फूट निकला है। गोपियों के गीत में जो रस है वह अनुवाद में कभी नहीं आ सकता। उसकी कुछ अनुभूति तो मूलपाठ से ही हो सकती है। श्रीमद्भागवत में 'कृष्णस्तुभगवान्स्वयम्' तथा 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' आदि की पूर्णतया सिद्धि हुई है। इस विषय को लेकर पंडितों ने बड़ी विवेचनाएँ की हैं और गीता एवं भागवत के कृष्ण में एकता स्थापित की है। विभिन्न पुराणों में श्रीकृष्ण का पूर्ण अवतार सिद्ध हुआ है और भगवान् शब्द के लक्षणों की संगति श्रीकृष्ण में पूर्ण रूप से लगाई गई है। कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो 'ण'श्च निर्वृति-वाचकः।
विष्णुस्तद्भाव योगाच्च कृष्णो भवति सात्वतः।

अर्थात्—'कृष्ण' शब्द में कृष् शब्द सत्तावाचक है। 'ण' आनन्द वाचक है। इन दोनों का मिला हुआ अर्थ सर्वव्यापक आनन्दमय विष्णु परब्रह्म हुआ। वही सात्वत (यादव) कृष्ण हैं।

श्रीमद्भागवत में सब पुराणों, महाभारत, गीता तथा कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रन्थों में दिए हुए भावों का समन्वय है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण पाण्डवों के सखा हैं जो कुरुक्षेत्र महायुद्ध के नियामक थे और जिनका वीर रूप महाभारत में यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वे गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण हैं जो साधुओं के परित्राण, पापियों के विनाश और धर्म की स्थापना के लिए प्रत्येक युग में अपने को प्रकट करते हैं तथा जो गीता में भक्ति, ज्ञान और कर्म का सामंजस्य स्थापित कर निष्काम कर्म योगी के रूप में उपस्थित हुए हैं। मथुरा और द्वारका के महावीर महायोद्धा राज-राजेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा गोकुल व्रज और वृन्दावन में विहार करने वाले नन्दनन्दन रसिक-शिरोमणि वे गोपाल कृष्ण भी हैं।

हमने पीछे श्रीकृष्ण के 'योगेश्वर' विशेषण का उल्लेख किया है। गीता में तो इस शब्द की आवृत्ति अनेक बार हुई है। परन्तु श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का योगेश्वर रूप पूर्णतया चित्रित किया गया है। महाभारत के द्रोणपर्व में संजय के प्रति धृतराष्ट्र की जो उक्ति है उसे पढ़ने से महाभारत और भागवत के कृष्ण की एकता स्थापित होती है परन्तु वह स्थल अधिकतर विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है। परन्तु जहाँ तक योगेश्वर शब्द का सम्बन्ध है, उस पर किसी को शंका का स्थान नहीं है क्योंकि हम श्रीकृष्ण के योगेश्वरत्व का

सम्बन्ध उसके परब्रह्मत्व मे स्थापित करते है। श्रीमद्भागवत मे योगेश्वर शब्द की आवृत्ति कई बार हुई है। भगवान् की रासलीला को काम-लीला न मानकर योगमयी पवित्र लीला ही माना गया है। महारास के प्रारम्भ मे ही दशमस्कन्ध के ३३वे अध्याय मे लिखा है कि 'सम्पूर्ण योगो के स्वामी श्रीकृष्ण दो दो गोपियों के बीच मे प्रकट होगए और उनके गले मे अपना हाथ डाल दिया। यह उनकी योगमाया का ही फल था कि व्रज के गोप वह समझते थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही है। श्रीकृष्ण ने अपने योगबल से हजारो स्थूल और हजारो सूक्ष्म शरीर निर्माण कर लिए।

योग दर्शन, उपनिषदो तथा अन्य योग-परक ग्रथों मे योग की इस प्रकार की शक्तियो का वर्णन है कि स्वरूपस्थ जीवन-मुक्त योगी यदि अपने प्रारब्ध कर्म को शीघ्र भोगकर समाप्त करना चाहे तो अनेक स्थूल तथा अनेक सूक्ष्म शरीर धारण करके भोग सकता है। श्रीमद्भागवत मे राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से रासलीला के प्रसग में यही प्रश्न किया है कि 'हे ब्रह्मन् श्रीकृष्ण धर्म-मर्यादा के बनाने वाले और उपदेशक थे फिर उन्होने धर्म के विपरीत परस्त्रियों का स्पर्श कैसे किया ? "श्री शुकदेव जी ने परीक्षित् को यही उत्तर दिया कि भगवान् कृष्ण अपने भक्तो की इच्छा से अपना चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करते है। उनमे कर्म बन्धन की कल्पना नही की जा सकती इत्यादि।[1] श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ब्रह्म का निरूपण इसी प्रकार से किया गया है कि तुम स्त्री हो, पुरुष हो, कुमार हो या कुमारी हो अर्थात् तुम्हारे विभिन्न स्वरूप है। भगवान् कृष्ण के योगेश्वर रूप के दर्शन हमे उस स्थल पर भी होते है, जब उन्होने स्वय अपने वंशजो को पाप से आवृत्त देखकर उनका नाश करा दिया। योगेश्वर मोह से आच्छन्न नही होता। उसकी सृष्टि तो मानसी होती है—'मनसा प्रजा असृजन्त' भगवान् कृष्ण भागवत के अनुसार अनन्त कर्म, अनन्त चेष्टा तथा अनन्त लीलाओ के भीतर भी पूर्ण निश्चिन्त, पूर्ण निर्लिप्त रहे और यही उनका योगेश्वरेश्वर पूर्ण स्वरूप है जिसको जानकर मुमुक्षगण संसार सिन्धु संतरण कर सकते है।

महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का विशेष विवेचन किया गया है। परन्तु श्रीकृष्ण की राजनीति दूसरे प्रकार की थी। उनकी राजनीति धर्म का स्वरूप था। अर्थात् जो पापी है, नराधम है, नृशंस है, वह दण्ड का पात्र है। फिर चाहे वह अपना भाई ही क्यो न हो। महात्मा गाँधी ने भी एक बार कहा था कि "यदि आवश्यकता पड़े तो मैं अपने लोगो से भी असहयोग करूँगा।" वास्तव मे जो व्यक्ति प्रकृति के मार्ग मे रोडे अटकाता हो, जो व्यक्ति मानव-कल्याण का घातक हो, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। श्रीकृष्ण ने राजनीति का उपयोग राजधर्म निभाने के लिए किया। वह राजधर्म न्याय और सत्य का पोषक था। यही कारण था कि उन्होने अपने कुटुम्बियों का भी घोर विरोध किया। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण के चरित को इस प्रकार तो चित्रित नही किया गया, जैसे महाभारत मे किया गया है किन्तु भक्ति का पुट देकर और कृष्ण को सर्वेश्वर तथा योगेश्वर मानकर राजनीति के सब विषयो का उल्लेख किया गया है।

कृष्ण लीलाएँ—

अब हमे देखना है कि श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को किस प्रकार चित्रित किया गया है। भागवत के द्वितीय स्कध के सप्तम अध्याय मे भगवान् के लीला

१ \ अध्याय ३३

वतारो की कथा है तथा २६व श्लोक से कृष्ण और बलराम के अवतारो की ओर संकेत है यह वर्णन केवल संकेत रूप में है भगवान् की बाल लीलाओं की सूची तृतीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे तथा अन्य लीलाओं का वर्णन तृतीय अध्याय मे किया गया है। सूक्ष्म रूप से दी हुई लीलाओं का विशद-वर्णन दशम स्कन्ध में है। श्रीकृष्ण के बाल-चरित और गोपी-विहार का स्थल दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। हम संक्षेप से यहाँ उसका वर्णन करेंगे।

भागवत का बालकृष्ण सब कलाओं मे पूर्ण है कोरा उपदेशक नही। वेदान्त सुनाता हुआ भी असुरों का संहर्त्ता महावीर भी मोहन है। वह मुरली बजाता, नाचता गाता और हँसता है। न जाने कितने भक्त उसकी इस बाल-छवि पर मुग्ध है और जिन्होंने उसके स्वरूप की एक झाँकी पर अपना सब कुछ निछावर कर दिया है। ब्रज मे भी कृष्ण का मथुरा वाला रूप-किशोर रूप भक्तों को उतना प्रिय नही है जितना उनका बाल पौगण्ड रूप है। उसी रूप पर उनकी परमासक्ति है। वास्तव मे इसका कारण यह है कि भक्त समुदाय ब्रह्मानन्द से भी ऊँची कक्षा का आनन्द परमानन्द चाहता है। संसार मे सब से नीच, निकृष्ट आनन्द विषयानन्द है। उसमे उत्तम विद्यानन्द है। उसमे महान् आनन्द आत्मानन्द है तथा आत्मरति, आत्म काम, आत्मतृप्त यतिराट् जिस अखण्ड सच्चिदानन्द को अहर्निश प्राप्त करता है वह ब्रह्मानन्द है। यही पराकाष्ठा, परागति और मुक्ति मानी गई है। परन्तु भगवान् के निष्काम उपासक अनन्य प्रेमी भक्त भगवदानन्द की खोज करते है जो केवल आत्मा से ही नही, बुद्धि से मन से तन से और रोम-रोम से अनुभूति में आता है और इसलिए परम दयालु प्रेम धन परब्रह्म परमात्मा सगुण साकार होकर अवतार धारण करता है जिसके साक्षात्कार से ब्रह्म-सुख सर्वांगीण होकर प्राप्त होता है। इसलिए यह आनन्द परमानन्द है और ब्रह्मानन्द से विलक्षण है। भागवत का बाल कृष्ण ही परमानन्द है। ब्रज का ब्रह्म परमानन्द है। जैसे जगत् की ८४ लाख योनियो मे ब्रह्म व्यापक है वैसे ही ८४ कोस ब्रज में वेदान्त का परम सिद्धान्त ब्रह्म परमानन्द नाच रहा है। भागवत में कई स्थलों पर इस परमानन्द की ओर संकेत हुआ। इस परमानन्द की प्राप्ति भक्त को प्रभु से पृथक् रहकर सेवक रूप मे ही होती है। इसी से वह कैवल्य मुक्ति स्वीकार न कर भजनानन्दी ही बना रहता है। भागवत मे वर्णित भगवान् कृष्ण की लीला मे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सभी भाव भरे है। परन्तु मुख्य रूप से भगवान् के प्रेम विह्वल भक्तों की परमानन्दता ही है।

इन बाल लीलाओं को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते है। १—बाल चरित, २—अलौकिक कर्म, ३—और गोपी-विहार अथवा रास-क्रीडा। श्रीमद्भागवत में इन तीनों का वर्णन बडे विस्तार और भावुकता के साथ किया गया है। भक्ति नामक भाव को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर भक्ति रस मे परिणत करना ही उन स्थलो का उद्देश्य है। भगवान् के दिव्य मंगल स्वरूप को तीन गुणों से विभूषित किया जा सकता है। अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य तथा अनन्त शील। इस त्रिविधात्मक आनन्त्य-विशिष्ट भगवत्स्वरूप की जैसी प्रतिष्ठा हम श्रीमद्भागवत मे देखते हैं वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति का आधार श्रद्धा है और श्रद्धा मे इष्ट के महत्त्व की स्वीकृति निहित है। श्रद्धा का पूर्व भाव आकर्षण है जिसका स्थैर्य प्रेम पर अवलम्बित है। इस लिए भक्ति नामक भाव की सत्ता हम प्रेम के बिना नही मानते। यदि हम प्रेम को भक्ति का प्रथम सोपान कहे तो अत्युक्ति न होगी प्रेम नामक भाव सौन्दर्य से जागृत होता है और यदि वह ...-विशिष्ट है तो प्रेम की सत्ता स्थिर

हो जाती है प्रेम नामक भाव में आत्म-समर्पण का भाव निहित है और सौन्दर्य में नव -शालिता

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः'' उस अनन्त सौन्दर्य में यदि अनन्त शक्ति का समावेश हो तो जिसमें क्षमा दया उदारता आदि गुणों का संनिवेश रहता है तथा जो व्यभिचरित नहीं होता, वहाँ प्रेम उत्कर्ष को प्राप्त होता हुआ लक्षित होता है और आत्मसमर्पण की भावना द्विगुणित हो जाती है। अब यदि सौन्दर्य में कुछ शक्ति का भी समावेश हो, ऐसी शक्ति जिसके मूल में निग्रह-अनुग्रह की क्रियाओं का समावेश हो, ऐसी शक्ति जो अनन्त हो तथा जिसका उपयोग 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' हो, तो उस शक्ति के प्रति, जो शील समन्वित सौन्दर्य युक्त है, भक्त की भावना एक-निष्ठ हो जाती है और उसके आत्म-समर्पण का भाव लोक तथा वेद की मर्यादा का अतिक्रमण करता हुआ ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जो लोकोत्तर तथा लोकातीत है। इसी लोकोत्तर तथा लोकातीत स्थिति का उत्पन्न करना भागवतकार का प्रयोजन है। हम तो कृष्ण भक्ति को प्रेमाश्रित ही मानते है। भगवान् कृष्ण के लोक-रंजन और लोक-रक्षक दोनों रूपों की प्रतिष्ठा श्रीमद्भागवत में हुई है। भगवान् के सौन्दर्य के चित्र भागवत में बिखरे पड़े है। उन चित्रों को खींचता हुआ भी कवि भगवान् के उस स्वरूप को नहीं भूलता जिसका चित्र उपस्थित करना उसका उद्देश्य है। नन्दालय की लीला गाते हुए कवि कहता है, 'भगवान् कृष्ण समस्त जगत् के एकमात्र स्वामी है। उनमें ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य, सभी अनन्त है। वे जब नन्द बाबा के व्रज में प्रकट हुए उस समय उनके जन्म का महान् उत्सव मनाया गया उसमें बड़े बड़े और मंगलमय बाजे बजाए गए।[1] भगवान् को लीलाओं का वर्णन करते हुए उनके विश्वेश्वर अनन्त रूप की धारणा भागवतकार के मन में है। इन बाल लीलाओं के बीच में जो भगवान् की संहार-लीलाएँ है वे भी उनके उसी रूप की प्रतिष्ठा करने वाली है, जिनसे भक्तों के प्रेम की वृद्धि होती है[2]—"य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्। शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥" अर्थात् जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण की इस 'पूतना वध' नामक बाल लीला का श्रद्धा पूर्वक श्रवण करता है उसे भगवान् के चरणों में भक्ति प्राप्त होती है।" आठवें अध्याय में नामकरण संस्कार, घुटनों के बल चलना, माता पिता का प्रसन्न होना आदि का वर्णन है। भागवतकार ने कृष्ण और बलदेव दोनों की बाल लीलाओं का वर्णन साथ साथ किया है। कृष्ण-चरित तथा उनका व्यक्तित्व सारे स्कन्ध में पूर्णतया व्याप्त है और हम किसी भी पात्र का अध्ययन कृष्ण के सम्बन्ध के बिना नहीं कर सकते क्योंकि सबके भावों के आधार वे ही है। यों तो गोपियों का संकेत दशम-स्कन्ध के प्रारम्भ में ही उनके अवतार की चर्चा करके किया गया है तथा कहीं कहीं उन्हें श्रुतिरूपा बताया है परन्तु भौतिक रूप से कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध कृष्ण के कुछ बड़ा होने पर ही होता है। वेणुलीला, गोपी आदि के आध्यात्मिक संकेतों का विवरण हम आगे देंगे। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण गोपियों के आकर्षण के विषय बने है। गोपियाँ यशोदा माता को उपालम्भ देने के लिए आती है क्योंकि कृष्ण गाय दुहने का समय न होने पर भी उनके बछड़ों को खोल देते हैं और जब वे डाँटती है तो वे ठठा-ठठा कर हँसते है। सारा दही बानरों को बाँट देते है। बच्चों को रुलाकर भाग जाते है इत्यादि। इस प्रकार

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अ० ५, श्लोक १३—१६

२ अ० ६ श्लोक ४४

गोपियाँ कहती जाती हैं और श्रीकृष्ण के भय चकित नेत्रों से युक्त कमल मुख को देखती जाती हैं। उनकी यह दशा देख कर नन्दरानी यशोदा जी उनके मन का भाव ताड लेती हैं और उनके मन मे स्नेह और आनन्द की बाढ आजाती है और वे इस प्रकार हँसने लगती है कि अपने प्यारे कन्हैया को उलाहना भी नहीं दे पाती, डाँटना तो अलग बात रही। पद्मपुराण के पातालखण्ड में ऐसे बहुत से ऋषियों का वर्णन है, जिन्होने अनेक कल्प कठिन तपस्या करके गोपी रूपो को प्राप्त किया था। पद्मपुराण के अतिरिक्त अन्य पुराणों मे भी गोपियों के अवतारो की चर्चा है। कुछ गोपियाँ भगवान् के नित्य परमधाम मे अभिन्न रूप से नित्य निवास करने वाली नित्यसिद्धा गोपियाँ है। कुछ साधन सिद्धा है, कुछ पूर्वजन्म की देव कन्याएँ है। कुछ श्रुतियाँ है, कुछ तपस्वी ऋषि है, कुछ अन्य भक्त-जन। इनके अतिरिक्त मिथिला की गोपी, कौशल की गोपी, अयोध्या की गोपी, पुलिन्द गोपी, रमा, वैकुण्ठ आदि श्वेत द्वीप की गोपियाँ, जालधरी गोपी आदि गोपियों के अनेक यूथ थे जिनको बडी तपस्या करके भगवान् से वरदान पाकर गोपी रूप मे अवतीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार और भी बहुत सी गोपियो के पूर्व जन्म की कथाएं पुराणो मे बिखरी पडी है।

हम पहले कह चुके है कि श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ मे तीन प्रकार की लीलाओं का समावेश है। बाल, पौगण्ड और कैशोर। इनमे पहले दो प्रकार की लीलाएँ ब्रज मे हुई तथा तीसरी मथुरा मे। कृष्ण की बाल लीलाओं मे प्रधानता यशोदा के वात्सल्य, कृष्ण का नटखटपन, तथा गोप गोपिकाओं का विनोद सम्मिलित है। माखन-चोरी की लीला इसी काल की है। इस माखन-चोरी-लीला का वर्णन, अनेक प्रकार से किया गया है और उसके दार्शनिक अर्थ लगाए गये है। मृत्तिका-भक्षण वाली लीला भी इसी बाल्यकाल की है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी अलौकिक लीलाएँ हैं। जो श्रीकृष्ण ने पाँच वर्ष की अवस्था तक की। इन बाल लीलाओ मे श्रीमद्भागवतकार ने भगवान् के अवतारत्व को स्थान-स्थान पर प्रधानता दी है। जिसके कारण इन लीलाओ मे अलौकिकता का पुट इतना अधिक है कि कहीं-कहीं वे अस्वाभाविक सी लगती है। बीच-बीच मे जब नन्द यशोदा अथवा गोपियाँ बालक कृष्ण की भगवान् रूप मे स्तुति करने लगती है तो साधारण पाठक को वह रसानुभूति नहीं होती, जो सूरसागर के अध्ययन में बालक श्रीकृष्ण के मानवीय चित्रण पढने मे होती है। भागवत का वर्णन शास्त्रीय ढंग का है उसमे मनोवैज्ञानिकता भी नहीं है जो स्वतंत्र तथा शास्त्र निरपेक्ष वर्णन मे होती है। बात यह है कि भागवत मे शुकदेव जी ने परीक्षित् को श्रीकृष्ण का चरित सुनाया है, जिसके कारण परीक्षित् द्वारा अनेक शकाएँ उन लीलाओं के तारतम्य को तोड देती है। श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का स्थल गोकुल है किन्तु जब बडे बूढे गोपो ने देखा कि उस महावन में बडे-बडे उत्पात होने लगे है तो उन्होने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। वृन्दावन मे उनकी पौगण्ड लीलाओं का वर्णन है। वृन्दावन मे हमे भगवान् कृष्ण के गोपाल रूप के दर्शन होते है। यशोदोत्सग-लालित नन्दनन्दन अब गोपाल हैं। यहाँ आने पर वे गाय और बछडे चराने लगे है। परन्तु अभी तक उनको गौओं को लेकर दूर जाने की आज्ञा नहीं थी, इसी गोचारण के समय भागवतकार ने ब्रह्मा जी द्वारा वत्सहरण लीला का वर्णन किया है जिस लीला को आधार मानकर कुछ आचार्यों ने कृष्ण चरित के दोषों का परिहार किया है। भागवतकार ने १५वें अध्याय के आरभ मे लिखा है कि जब   और श्रीकृष्ण ने पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष मे प्रवेश किया

तब उन्हें गौए चराने की स्वीकृति मिल गई वे अपने सखा ग्वाल बालो सहित गौए चराते हुए वृंदावन मे जाते और अपने चरणो से वृंदावन को पावन करते श्रीकृष्ण की इस गोचारण-लीला का वर्णन भागवतकार ने बडी सुन्दरता से किया है परन्तु बीच बीच मे उनकी अलौकिक लीलाओ का समावेश किया है। गोपियों का सम्बन्ध साधारण रूप से आया है। विशेषकर उन स्थलो पर जब श्रीकृष्ण अपनी अलौकिक लीला करते है तो गोपियाँ उनकी ओर आकृष्ट होती हैं तथा उनका प्रेमभाव बढता जाता है।

२०वे अध्याय में वर्षा और शरद्ऋतु का वर्णन श्रीमद्भागवत में उच्चकोटि का हुआ है। इसमें प्रकृति के सुन्दर चित्रण हैं, यह वर्णन गोस्वामी तुलसीदास के वर्षा वर्णन की भाँति उपदेशात्मक भी है। सम्भव है गोस्वामी जी ने अपने प्रकृति वर्णन का सूत्र यहाँ से लिया हो। बादलो का गर्जन सुनकर मेढक इस प्रकार टर्र टर्र करते है, जैसे गुरु की आज्ञा पाकर ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते हो। वर्षा और शरद्ऋतु का वर्णन श्रीमद्भागवत की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करना है क्योंकि प्रकृति की इस रम्य स्थली मे श्रीकृष्ण ने उस वेणु गीत का आरम्भ किया जिसका विश्लेषण आचार्यो ने अनेक प्रकार से किया है। वास्तव मे श्रीकृष्ण का रसिक शिरोमणि रूप यही से आरंभ होता है। यही रसिक शिरोमणि गोपाल रासलीला मे रति नागर हो गए है। बाल रूप मे कृष्ण गोपियों को मुग्ध करते थे। माखन चोरी मे निकटतम सम्बन्ध स्थापित किया और अलौकिक लीलाएँ करके गोपियों के प्रेम को स्थायित्व प्रदान किया। अब वेणुगीत से उस प्रेम मे रसात्मकता भी भर दी। सगीत ने उस प्रेम को गुदगुदाया और वशी की ध्वनि सुनते ही उन्हे श्रीकृष्ण की मधुर चेष्टाओ, प्रेम पूर्ण चितवन, भृकुटियो के सकेत तथा मधुर मुस्कान आदि की याद हो आई और वे मन से भगवान् के पास जा पहुँची। इस वेणु का नाद व्यापक नाद है। इसके दार्शनिक तत्त्व का विवेचन हम आगे करेंगे। इस सम्बन्ध में एक बात यह उल्लेखनीय है कि गोपियों ने उनकी मुरली का वर्णन अनेक प्रकार से किया है और सूत्र रूप से उन बातो की ओर सकेत किया है जिनका आधार लेकर सूर ने मुरली से अनेक अठखेलियाँ की है।

चीर हरण

अब गोपियो का प्रेम परिपक्व हो रहा है और श्रीकृष्ण को पतिरूप मे प्राप्त करना चाहती हैं। ब्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करती है। यहाँ भागवतकार ने गोपियो मे विवेक किया है क्योंकि पहलीबार हमे गोपियो के सम्बन्ध मे 'कुमारी शब्द का प्रयोग मिलता है। "जब हेमन्त ऋतु आई उसके पहले ही महीने मे नन्दबाबा के व्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करने लगी। वे केवल हविष्यान्न ही खाती थीं।[१] भागवतकार ने इन गोपियो को कुमारिका सज्ञा देकर मर्यादा की रक्षा की है। दशमस्कन्ध के २१वे अध्याय में ऐसा वर्णन आया है कि भगवान् की रूप-माधुरी, वशी-ध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गईं। २२वें अध्याय मे वे उसी प्रेम की शान्ति प्राप्त करने के लिए साधन मे लगगई हैं। इसी अध्याय मे आकर भगवान् ने उनकी साधना पूर्ण की है। यही चीरहरण लीला का प्रसग है। इस चीरहरण लीला के विषय मे भी अनेक दार्शनिक विश्लेषण हैं। व्रज-कुमारिकाएँ निरावरण रूप से श्रीकृष्ण के सामने नही जारही थी। उनमे थोडी झिझक थी। उनकी यही झिझक दूर

१ श्रीमद्भागवत अ० २ श्लोक १

करने के लिए—उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करने के लिए—उनका आवरण भंग कर देने की आवश्यकता थी उनका यह आवरण रूप चीर हरलेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्ण ने किया। इत्यादि.........। अनेक रूप मे इस चीरहरण लीला की व्याख्या की गई है। इस लीला के अन्त मे श्रीकृष्ण उन कुमारियो से कहते है कि अब तुम अपने घर लौट जाओ। आने वाली शरद रात्रियो मे तुम मेरे साथ विहार करोगी।[1] इस श्लोक मे भागवतकार ने रास लीला की ओर सकेत किया है। आनेवाली शरद्ऋतु की रात्रियो तक श्रीकृष्ण ने कई लीलाएँ की जिनमे गोवर्धन लीला मुख्य है। गोवर्धन लीला के समय भागवतकार ने कृष्ण की आयु सात वर्ष की बतलाई है।

रास लीला

दशमस्कन्ध २९वें अध्याय से ३३वें अध्याय तक के पाँच अध्याय भागवत मे 'रास पचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध है। रास लीला को लेकर विभिन्न आचार्यो ने बडी-बडी बौद्धिक क्रीडाएँ की हैं और भाँति-भाँति से उनका दार्शनिक विवेचन किया है। इसके दार्शनिक पक्ष का विवेचन हम आगे करेगे। कुछ विद्वानो ने भागवत में रास पंचाध्यायी को प्रक्षिप्त माना है और ग्रन्थ की पूर्वापर-सगति से यह सिद्ध किया है कि रास पचाध्यायी भागवत का विषय नही है अपितु किसी सम्प्रदाय के आचार्य ने इसका समावेश भागवत मे कर दिया है। दण्डी स्वामी श्री सहजानन्द सरस्वती ने 'कल्याण' के 'श्रीकृष्णाङ्क' मे 'श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण चरित्र' नामक लेख लिखा था उसमें उनका कथन है—काशी मे 'सरस्वती' नाम की जो लाइब्रेरी है उसके भूतपूर्व 'लाइब्रेरियन प० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी से एक बार लेखक की बातें इस सम्बन्ध में हुई थी। उस समय उन्होने बताया था कि एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में रखी हुई एक बहुत ही प्राचीन हस्तलिखित श्रीमद्भागवत की प्रति मिलती है जिसमें रास पचाध्यायी नही है जो बोपदेव से बहुत पहले की है।"

इस रास प्रसग मे भागवतकार ने प्रकृति की सजगता और उसका गोपियो से तादात्म्य बडी सुन्दरता के साथ दिखाया है। प्रकृति उद्दीपन का कार्य कर रही थी। सयोग शृंगार का पूरा साज प्रस्तुत था। गोपिकाएँ अपने कार्य कलाप को ज्यो का त्यो छोडकर वशी-नाद को सुनते ही उस प्रेम यात्रा के पथ पर अग्रगामिनी होगईं। स्वजन तथा लोकमर्यादा उनके मार्ग में बाधक न होसके। गोपियो की यह आतुरता, आत्मा की परमात्मा से मिलने की आतुरता थी। प्रकृति का पुरुष से सयोग था। साधक के लक्ष्य की पूर्ति थी। भागवतकार ने इस प्रसंग मे भौतिक और अभौतिक का, प्राकृत और अप्राकृत का बडा सुन्दर समन्वय किया है। एक ओर शृंगार का नग्न चित्रण इस रास लीला में है और दूसरी ओर भगवान् के दिव्य मगलस्वरूप की झलक है। परीक्षित् द्वारा प्रश्न किए जाने पर शुकदेव जी ने यह उत्तर दिया है कि भगवान् प्रकृति सम्बन्धी वृद्धि, विनाश प्रमाण प्रमेय और गुण गुणी भाव से रहित है। वे अचिन्त्य, अनन्त, अप्राकृत, परम कल्याण स्वरूप और गुणो के एकमात्र आश्रय हैं। उनकी लीलाओ का प्रयोजन इतना ही है कि जीव उनके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे। भगवान् से केवल सम्बन्ध होजाना चाहिये वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो क्योकि वृत्तियाँ उस सम्बन्ध से भगवन्मय हो जाती है और उनका परिष्कार हो जाता है। इसी सम्बन्ध की ओर सकेत ———— का लक्ष्य है।

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय २२ श्लोक ७

भगवान् कृष्ण अपने अनुपम विभूति स्वरूप गोपियो को अपने वाकचातुर्य मे मुग्ध करते है और मर्यादा का उपदेश देकर माया की अनेक कल्पनाओ द्वारा उन्हे घर लौट जाने को कहते है किन्तु गोपिया अनन्य भाव से कृष्ण मे अनुरक्त हो चुकी थी आत्मा को परमात्मा की झलक मिल चुकी थी। अब भक्त को माया का आवरण प्रिय नही था। भक्त के सारे सम्बन्ध भगवान् मे हो चुके थे। गोपियाँ कृष्ण के वचनो से बडी दुखित होती है और अपने हृदय की वेदना भाँति-भाँति से प्रकट करती हैं। श्रीकृष्ण उनकी व्यथा और व्याकुलता से भरी वाणी को सुनकर दयार्द्र होकर उनकी इच्छाओ को पूर्ण करने के लिए उनसे क्रीडा प्रारम्भ करते है परन्तु भक्तो के सर्वस्व भगवान् भक्तों की अहङ्बुद्धि को सहन नही कर सकते। इसलिए उस अहभाव को दूर करने के लिए जो गोपियो मे उत्पन्न हो गया था, श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो जाते है। अहता और ममता का त्याग भक्ति का सबसे बडा साधन है। गोपियाँ ममता का त्याग कर चुकी थी। अब यह अहता का त्याग था। भगवान् के अन्तर्धान होने पर गोपियो का हृदय विरह की ज्वाला मे जलने लगा। यह विरह वर्णन बडी उच्चकोटि का हुआ है, प्रेम की पराकाष्ठा—तन्मयता—के चित्र हमे यहाँ मिलते है। प्रेम से उन्मत्त हुई गोपिया प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ मे कृष्ण के विषय मे पूछती है। विरह की सब दशाओ का वर्णन विस्तार के साथ यहाँ हुआ है। यहाँ उन्माद की वह दशा दिखाई गई है जब विरही अपनी सत्ता को ही भूल जाता है। गोपियों के हृदय की व्यथा को देखकर करुणानिधि भगवान् का हृदय द्रवित होता है और वे गोपियो के आश्वासन के लिए अपने चरण चिह्नो का लक्ष्य उन्हे करा देते है। उन चरण-चिह्नो के साथ-साथ गोपियाँ ब्रजवल्लभ को खोजती है।

इसी स्थल पर भागवतकार ने उस प्रच्छन्न स्वरूपा सखी का उल्लेख किया है जिसे बाद मे 'राधा' नाम से अभिहित किया गया है। श्रीकृष्ण के साथ किसी ब्रज युवती के चरण चिह्न को देखकर गोपियाँ आपस मे कहने लगी, "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गई हो, वैसे ही श्यामसुन्दर के साथ उनके कन्धो पर हाथ रखकर चलने वाली किस बडभागिनी के ये चरण चिह्न है? अवश्य ही वह सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की 'आराधिका' होगी। इसलिए इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्याम सुन्दर ने हमें छोड दिया है और इसे एकान्त मे ले गए हैं।"[1] इसके आगे भागवतकार ने इस गोपी का वर्णन और चलाया है और गोपियो द्वारा विविध रूप से उसका वर्णन कराया है। इतना ही नही बल्कि एक स्थल पर गोपी के पैरो को अदृष्ट तथा कृष्ण के चरणो को बालू मे धँसे दिखाकर गोपियो को इस कल्पना को भी जन्म दिया है कि कृष्ण ने अपनी प्रेयसी को कन्धे पर चढा लिया होगा। फिर उस गोपी के प्रसंग मे श्रीकृष्ण भगवान् के अन्तर्धान होने का भी वर्णन है और फिर वह गोपी भी विरहिणी की भाँति दिखाई गई है। वास्तव मे विरह-भाव प्रेम की परीक्षा का काल है। यह वह साधना है जिसमे प्रेम की तपश्चर्या पूर्ण होती है। अब ये विरहिणी गोपियाँ उस अन्यतमा गोपी से मिलकर भगवान् की खोज करने लगी, और सब मिलकर कृष्ण के गुणों का गान करने लगी। यह 'गोपिकागीत' उनके विरह की चरमावस्था है। इसमें उनके हृदय के वे उद्गार है जिनसे उनकी तन्मयता, एकाङ्गिता और आत्म-समर्पण के भाव फूटे पड़ते है। उनकी अन्तर्वेदना से अश्रुओ के रूप मे प्रवाहित होने लगी है। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण उनकी साधना को पूरी समझ कर प्रकट हुए। यही भक्ति की पूर्ण

१ अध्याय श्लोक २७—

सिद्धि थी। भगवान् का सान्निध्य था। सान्निध्य का फल है परमानन्द की प्राप्ति, जिसके लिए भगवान् उन्हे यमुना के किनारे ले आए। अब गोपियाँ पूर्णकामा हैं और उनके हृदय की सब आधि-व्याधि मिटगई है। यहाँ भागवतकार ने सात गोपियो का वर्णन किया है जो सिद्ध योगियो के समान परमानन्द मे लीन हुई। किसी-किसी ने इन सात गोपियो को गणना परक न मान कर सख्या परक माना है अर्थात् भागवत में आए हुए 'एका' तथा 'काचित्' शब्दों का कोई-कोई अर्थ किया है। फिर भगवान् कृष्ण ने गोपियो को प्रेम का महत्त्व समझाया है और उन्हे सबसे बडी प्रेम पात्राओ के रूप मे ग्रहण किया है। वे कहते हैं—मेरी प्यारी गोपियो ! तुमने मेरे कारण घरगृहस्थ की उन बेड़ियों को तोड डाला है जिन्हे बडे-बड़े योगी-यती भी नही तोड पाते। मुझसे तुम्हारा सम्बन्ध निर्दोष है। यदि मैं अमरशक्ति से तुम्हारे त्याग और प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तोभी नही चुका सकता।[1]

इसके अनन्तर श्रीमद्भागवत में उस महारास का उपक्रम होना है, जिसको हम 'महामिलन' कह सकते हैं। प्रत्येक गोपी भगवान् कृष्ण के सान्निध्य का अनुभव करती है। दो-दो गोपियो के मध्य मे कृष्ण प्रकट हो गए और उनके गले मे अपना हाथ डाल लिया। भागवतकार ने बडे आलकारिक ढग से इस महारास का भौतिक रूप दिखाया है। रास के अन्त मे थकान दूर करने के लिए जलक्रीडा का वर्णन है। देवताओ के द्वारा पुष्पवृष्टि और स्तुति कराकर कवि ने इस लीला के अलौकिक पक्ष की ओर सकेत किया है। फिर भगवान् ने उसी शरद् रात्रि मे जिसमे अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत होगई थी, अपनी प्रेयसी गोपियो के साथ विहार किया। भागवतकार यहाँ भी एक चेतावनी देता है कि यह भगवान् के चिन्मय संकल्प की ही चिन्मयी लीला है जिसमे काम-भाव को उन्होने अपने अधीन कर रखा था।[2] परीक्षित् द्वारा प्रश्न किए जाने पर शुकदेव जी ने भगवान् को परब्रह्म स्वरूप बताते हुए साथ-साथ यह भी कह दिया है कि सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर, कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं परन्तु अग्नि की भाँति उन तेजस्वी पुरुषो को कोई दोष नही होता।"—

"तेजीयसां न दोषाय वन्हे: सर्वभुजो यथा।"[3]

शुकदेव जी ने यह भी समाधान किया है कि व्रजवासी गोप कृष्ण की योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि उन की पत्नियाँ उनके पास ही है। गोपी विहार-विषयक यह चिन्मय रास-विलास गोपियों के प्रेम का उत्कर्ष है। अब गोपियाँ भगवन्मय हो चुकी हैं। चीरहरण लीला मे तो केवल अविवाहित गोपियाँ ही थी, परन्तु इस रास लीला मे वे नित्य सिद्धा गोपियाँ भी थी जो लोकदृष्टि मे विवाहिता थी। इस प्रकार भागवत मे स्वकीया और परकीया का प्रश्न उपस्थित नही होता क्योकि शुकदेव जी ने परीक्षित् के उत्तर मे स्पष्ट कर दिया है कि गोपी, गोपियो के पति उनके पुत्र, सगे सम्बन्धी और जगत् के समस्त प्राणियो के हृदय मे आत्मारूप से जो प्रभुस्थित है, वही श्रीकृष्ण है। गोपियो मे परकीया भाव अवश्य था। परकीया भाव मे तीन बाते होती हैं। १—अपने प्रियतम का निरन्तर चिन्तन, २—मिलन की उत्कण्ठा, ३—दोष-दृष्टि का अभाव। स्वकीया और

---

१ दशमस्कन्ध अध्याय ३२, श्लोक २२
२ अध्याय २६ श्लोक २६
३ अध्याय ३३ श्लोक ३०

परकीया के इस विषय को लेकर बड़ा साम्प्रदायिक वाद-विवाद है। श्रीमद्भागवत में इस वाद-विवाद के लिए स्थान नहीं है। भागवत की गोपियों में परकीया भाव उतना ही माना जा सकता है कि स्वकीया में जो एक विशेष महत्त्व का भाव रहता है, जिसको सकाम भाव कह सकते है, वह इन गोपियों में नहीं है।

रासपञ्चाध्यायी पर अब तक अनेक भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी है। किसी ने इसे काम पर विजय बताया है, किसी ने भगवान् का दिव्य विहार बताया है और किसी ने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। इन पक्षों का सांकेतिक विवेचन हम अगले प्रकरणों में करेंगे। अब गोपियाँ कृष्णमय हो चुकी है और उन्हें ससार मे कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। उनकी सारी दिनचर्या कृष्णमयी है। भगवान् कृष्ण जब जगल में गौओं को चराने के लिए चले जाते है तो उनका मन भी कृष्ण के साथ चला जाता है और वे अपना समय भगवान् के यशोगान मे बिताती है। इस प्रकार से अनेक चित्र भागवतकार ने भागवत मे चित्रित किए हैं। 'युगलगीत'[1] मे गोपियों की दस प्रकार की चेष्टाओ का वर्णन है।

श्रीकृष्ण की इन पौगण्ड लीला मे शृ गार-रस के सयोग पक्ष का विशद विवेचन हुआ है। अब कृष्ण १० वर्ष के हो चुके हैं और उनकी किशोर लीला का प्रारम्भ होता है। किशोर लीला का प्रारम्भ मथुरा-गमन से मानना चाहिये। इसका प्रारम्भ भागवत मे दशमस्कन्ध के २९ वें अध्याय मे किया गया है। इससे पहले भागवतकार ने श्वफल्क नन्दन अक्रूर के भक्ति-भाव का बडा सुन्दर और भावपूर्ण वर्णन किया है। कृष्ण के मथुरा जाते समय गोपियो की वेदना का भी बड़ा हृदयस्पर्शी वर्णन भागवतकार ने किया है। उस समय गोपियों के करुणक्रन्दन को सुनकर पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाते है। गोपियाँ अनेक प्रकार से कृष्ण को उपालम्भ भी देती है और कहती है कि इस नन्द-नन्दन को नए-नए लोगो से नेह करने की चाट पड़गई है। श्रीकृष्ण ने उनको सान्त्वना देने के लिए, 'मैं आऊँगा' ऐसा प्रेमसदेश भेजा। कृष्ण के मथुरा-गमन को पढ़कर तुलसी के राम वनगमन की याद आजाती हैं। अब यहाँ से श्रीकृष्ण की मथुरा लीला आरम्भ हो जाती है। इस मथुरा लीला मे कृष्ण का असुर-निकन्दन तथा भक्तोद्धारक स्वरूप आता है जिसका विवेचन हम पहले कर चुके है।

भ्रमरगीत

संयोग वर्णन के अतिरिक्त भागवतकार ने गोपियों का विरह वर्णन भी किया है जिसे 'भ्रमरगीत' के नाम से पुकारा जाता है। यह भ्रमरगीत गोपियों के वियोग काल का ही वर्णन नहीं है वरन् यह शृ गार पक्ष का वह विप्रलम्भ पक्ष है जिसके बिना शृंगार रस अपूर्ण है और भक्ति रस विकलाग। भागवत के भ्रमरगीत का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है। अपने माता पिता और गोपियो को विरह वेदना से मुक्त करने के लिए अपने भाई उद्धव को कृष्ण ब्रज मे भेजते हैं। उद्धव जी भी उनके आदेश को सुनकर गोधूलि-वेला मे ब्रज मे पहुँचते है। ब्रज के बडे-बडे सुन्दर चित्र भागवतकार ने उपस्थित किए हैं। नन्द आदि गोपों ने कृष्ण के चरित उद्धव के सम्मुख प्रस्तुत किए और उनकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उद्धव जी गोधूलि के समय ब्रज मे पहुँचे थे। वे रात्रि भर नन्द जी को समझाते रहे कि श्रीकृष्ण प्रधान पुरुष है और बलराम उनकी प्रकृति। वे अजन्मा और

---

१ अध्याय ३५

गुणातीत हैं तथा भक्तो के लिए अवतार धारण करते हैं वे अपने ही नहीं अपितु सबके है। इस प्रकार बात कहते कहते रात्रि व्यतीत हो जाती है। प्रात:काल जब ब्रजागनाओ ने देखा कि नन्द बाबा के द्वार पर सोने का एक रथ खडा है तो वे अनेक प्रकार की कल्पनाएं करने लगीं। परन्तु जब नित्य कर्म से निवृत्त होकर उद्धव जी उनकी ओर गए तो वे व्यग्य पूर्ण वचनो से उन पर उतर पड़ी। अब वे कृष्ण को ब्रजनाथ न कह कर यदुनाथ कहती हैं और कहती है कि उनके लिए नन्द गाँव मे क्या आकर्षण है। अब हमारे पास क्या रखा है। जब तक अपना मतलब नही निकल जाता तभी तक प्रेम का स्वाँग किया जाता है। भृङ्गो का पुष्पो मे और पुरुषो का स्त्रियो से ऐसा ही स्वार्थ सम्बन्ध होता है। इस प्रकार की अनेक व्यग्य पूर्ण उक्तियाँ गोपियो के मुख से निकलती है। उन्हे श्रीकृष्ण की सारी बाते याद आ गई और उनमे से एक एक को याद कर वे फूट-फूट कर रोने लगी। प्रवासी प्रिय के सन्देश से पुरानी स्मृति का सजग होना स्वाभाविक है। वे श्रीकृष्ण की मिलन-लीलाओ का स्मरण करने लगी। इतने मे ही किसी गोपी ने देखा कि एक भ्रमर गुनगुना रहा है। गोपी ने समझा कि रुष्ट समझ कर मानो कृष्ण ने उन्हें मनाने के लिए उस भ्रमर को दूत बना कर भेजा है। वे भौरे से इस प्रकार कहने लगी—"अरे भ्रमर! तू कपटी का सगा है अत तू भी कपटी है। तेरे अन्दर जो पीला रग है वह श्री कृष्ण के हृदय की जो वनमाला है, हमारी सपत्नियों के वक्ष से मसली हुई है, उसका है। तू स्वय भी किसी कुसुम से प्रेम न कर यहाँ से वहाँ उडा फिरता है। जैसे तेरे स्वामी हैं वैसा ही तू है। मधु पति श्रीकृष्ण मथुरा की मानिनी नायिकाओ को मनाया करे, उनका वह कुकुम रूप प्रसाद जो यदुवंशियो की सभा मे उपहास के योग्य है, अपने ही पास रखे। जैसा तू काला है वैसे वे भी है। तू हम लोगो के समक्ष श्रीकृष्ण के गुणो का गान क्यों करता है? हम तो वनवासिनी है, तेरी चापलूसी हमारे सामने नहीं चल सकती। तेरे स्वामी बडे कृतघ्न तथा विश्वासघाती है। राम रूप में उन्होंने वाली को व्याध के समान निर्दयता से मारा शूर्पणखा को विरूप किया। बलि को छला। उनका स्वभाव तो कौए जैसा है। अनिच्छा होते हुए भी हम उनकी चर्चा करती रहती है।" इस प्रकार अनेक उक्तियाँ गोपियो के मानस से अनेक स्रोतो के रूप में नि सृत होती है। अन्त मे वे भ्रमर से पूछती है—अच्छा तुम यह तो बताओ कि श्रीकृष्ण सुख से तो हैं। वे हमें कभी याद करते है? क्या वे कभी यहा फिर आवेगे? इत्यादि। उद्धव गोपियो के व्यंग्य भरे क्रन्दन को सुनकर उन्हे सान्त्वना देते हैं और उनकी भक्ति की प्रशसा करते हुये भगवान् कृष्ण का सन्देश उन्हें सुनाते हैं। यह सन्देश बड़ा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप को व्यक्त करता है। भगवान् का सन्देश है—"मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ। सबमे अनुगत हूँ। इसलिए मुझसे तुम्हारा वियोग कभी नही हो सकता। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में पाँचो तत्त्व व्याप्त है, उन्ही से सब वस्तुएं बनी है, वैसे ही मैं भी मन, प्राण, पंचभूत इन्द्रियो और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमे है और मैं उनमे हूँ। आत्मा माया और माया के कार्यों से पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। तुम शरीर से दूर रहने पर भी मन से मेरी सन्निधि का अनुभव करो।"[1] अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का यह सदेश सुनकर गोपियों को बडा आनन्द हुआ। उनके सदेश से उन्हे श्रीकृष्ण के स्वरूप और उनकी एक एक लीला याद आने लगी। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रिय सदेश को सुनकर

---

१ श्रीमद्भा० दशम स्कन्ध अध्याय ४७ श्लोक २६ ३७

उनकी विरह व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित मान चुकी थीं। उद्धव भी गोपियो की प्रेम-विकलता, तन्मयता और प्रेम-चेष्टाओ को देख कर प्रेम-विभोर हो गये और गोपियो की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।" इस पृथ्वी पर केवल गोपियो का ही जीवन सफल है। इन्हें श्रीकृष्ण के स्वरूप की प्राप्ति हो गई है। वे धन्य हैं। भगवद्वाणी श्रुतियाँ और उपनिषद् भगवान् के स्वरूप को खोजते है, किन्तु इन्हे तो साक्षात् भगवान् ही प्राप्त हो गये हैं।" अन्त मे वे गोपियो की चरण-धूलि की कामना करते है। इस प्रकार कई महीने ब्रज मे रहकर उद्धव जी ने मथुरा-प्रस्थान किया। चलते समय का दृश्य भी एक अद्भुत दृश्य था। ब्रज की गोपियाँ भगवान् के चरणो में रति चाहती है, मुक्ति नही। उद्धव ने मथुरा पहुँच कर श्रीकृष्ण को ब्रजवासियो की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया।

भागवत के भ्रमरगीत का आधार लेकर अनेक कवियो ने बडी सुन्दर सुन्दर रचनायें की है। भागवत के भ्रमरगीत मे दो बाते उल्लेखनीय हैं। (१) गोपियो के हृदय की अवस्था का चित्रण। (२) ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य। जहाँ तक गोपियों के हृदय की व्यथा का सम्बन्ध है, उसका आधार तो गोपियो का वह प्रेम है, जो भक्ति रस का स्थायी भाव है। गोपियों का यह विरह व्यापक विरह है। सारी प्रकृति उस विरह से व्यथित प्रतीत होती है। सयोग में जो प्राकृतिक चित्र दृश्य, मनोहर और सुखद प्रतीत होते थे। वियोग मे वे ही दृश्य भयावने से प्रतीत होते है। इस भ्रमर गीत की यह एक विशेषता है कि सारे वृन्दावन धाम को गोपियाँ कृष्ण के विरह मे कृष्णमय ही देखती हैं। वास्तव मे यही विरह की चरमावस्था है। भक्ति और ज्ञान का सामञ्जस्य भी इस भ्रमर-गीत मे अच्छा हुआ है। भागवतकार का उद्देश्य इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियों की आत्मा के रूप मे स्थिर करना है। इसीलिए उद्धव के उपदेश से गोपियों को कुछ शान्ति मिली। भगवान् श्रीकृष्ण ने यही प्रयत्न उस समय भी किया, जब वे पर्व के समय द्वारका से कुरुक्षेत्र आए और ब्रज के नन्दादि गोप और गोपियाँ उनसे मिलने आई थी। उस समय भगवान् के उपदेश की स्मृति से गोपियों का जीव कोष और लिंग शरीर नष्ट हो गया और वे सर्वदा के लिए भगवान् को प्राप्त हो गईं। इस प्रकार भागवतकार एक ओर उद्धव जी द्वारा गोपियों के हृदय मे ज्ञानस्थिति कराता है तो दूसरी ओर उनकी भक्ति की उनके द्वारा सराहना ही नही कराता बल्कि उद्धव का ब्रजभूमि मे महीनों निवास कराकर भक्ति का वैशिष्ट्य भी प्रतिपादित करता है।

भागवत के कृष्ण के इतने विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते है—

१—भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी रूपो का विवेचन हुआ है परन्तु उनकी बाल लीलाओं को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। श्रीकृष्ण का चरित प्रायः सभी स्थलों पर अतिमानवीय है यही कारण है कि मे श्रीकृष्ण का चतुर्व्यूह रूप मे चित्रित हुआ है और बलदेव का उनके साथ प्राय सयोग रहा है

उत्तर देना भी कठिन है। इसमे भगवान् के विविध स्वरूपो का वर्णन है—निर्विशेष, सविशेष, निराकार, साकार—इन सब का एक ही सूत्र मे समन्वय किया गया है—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"। भागवत मे पुराणो के भी सब लक्षणों का यथावत् पालन हुआ है।

३—भागवत में गोपियो का वर्णन भी बड़े शास्त्रीय ढग से है। जिसके कारण उनके प्रेम की धाराओ मे स्थान-स्थान पर बाँध से लगे प्रतीत होते है। यदि हम रास पचाध्यायी को प्रक्षिप्त मानें तो गोपियो का चरित ही विकलाङ्ग हो जाता है। भागवत मे राधा की केवल कल्पनामात्र है। न तो उसका कही नामोल्लेख है और न विशद चित्रण ही। यशोदा मे यद्यपि वात्सल्य भाव के दर्शन होते हैं, तथापि उसका चित्रण इतना थोडा है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सामने नही आ पाता। भागवतकार यशोदा के पूर्वजन्म की कथा कहकर तथा यशोदा पर कृष्ण की अलौकिकता प्रकट करके उस स्वाभाविक वात्सल्य में ठेस सी पहुँचा देता है। भागवत में यशोदा के चरित का उतना मनोवैज्ञानिक विस्तार भी नही जितना होना चाहिये था। यशोदा की अपेक्षा नन्द के वात्सल्य का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है।

श्रीमद्भागवत के दार्शनिक सिद्धान्त

क—श्रीमद्भागवत एक महापुराण है—

श्रीमद्भागवत, भागवत धर्म का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। भागवत धर्म पर वर्तमानकाल में जो ग्रन्थ उपलब्ध है उनमे गीता के अतिरिक्त मुख्य ग्रन्थ ये है—

१—महाभारतान्तर्गत नारायणीय उपाख्यान, २—अनेक पाँचरात्रसंहिताएँ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, ३—श्रीमद्भागवत पुराण, ४—नारदपचरात्र तथा ५—नारद भक्ति सूत्र। इनके अतिरिक्त साम्प्रदायिको के और भी कई ग्रन्थ है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्यो ने विशेषकर 'रूप' और 'सनातन' ने भागवत भक्ति पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे है। परन्तु इन सब ग्रन्थो में श्रीमद्भागवत ही सर्वोच्च कोटि का ग्रन्थ है। यहाँ हम सब ग्रन्थो का विवेचन कर केवल श्रीमद्भागवत पर ही प्रकाश डालेगे।

भागवत पुराण की रचना का उद्देश्य, जैसा कि स्वयं भागवतकार ने लिखा है, यह है कि जब व्यास जी ने देखा कि महाभारत में नैष्कर्म्य-प्रधान धर्म का जो निरूपण किया गया है, उसमे भक्ति का यथावत् वर्णन नही है तो उनका मन उदास हुआ और उन्होने नारद की प्रेरणा से भागवत की रचना की।[1] इसलिये इस उक्ति से श्रीमद्भागवत भक्ति प्रधान ग्रन्थ ठहरता है। नारद पांचरात्र मे भी भक्ति का प्राधान्य है और उसमें भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, विष्णु पुराण तथा गीतादि ग्रन्थो का उल्लेख है। नारद सूत्र और शाण्डिल्य सूत्र बहुत बाद की रचनाएँ है 'पाँचरात्र संहिताएँ' सिद्धान्त और आचरण दोनों पर बल देती है पर उनमे क्रिया-पक्ष की ही प्रधानता है। इसलिए भागवत को ही भागवत धर्म का सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ कहा गया है। भागवत के मंगलाचरण के प्रथम तीन श्लोकों में यह सकेत है कि श्रीमद्भागवत वेदान्तार्थ तथा ब्रह्म सूत्रों का भाष्य है। पहले श्लोक में 'सत्य पर धीमहि' कहागया है अर्थात् भागवतकार ग्रन्थ रचना के पहले भगवान् के उस सत्य स्वरूप का ध्यान करते हैं, जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होती है क्योकि वह सभी सद्रूप पदार्थो मे अनुगत है और सभी असत् पदार्थो से पृथक् है। वह जड नही चेतन है, परतन्त्र नही स्वय प्रकाश है, जो ब्रह्म तथा हिरण्यगर्भ नही प्रत्युत उन्हे अपने संकल्प से ही जिसने वेदज्ञान दिया है, जिसके सम्बन्ध मे बडे-बडे विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं। जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियो मे जल का, जल मे स्थल का और स्थल में जल का भ्रम होता है वैसे ही जिसमे यह त्रिगुणमयी जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत हो रही है और जो अपनी स्वय प्रकाश ज्योति से सर्वदा माया और माया कार्य से मुक्त है।

फिर दूसरे श्लोक में कहा गया है कि इस भागवत महापुराण मे मोक्षपर्यन्त फल की कामना से रहित परम धर्म का निरूपण हुआ है। तीसरे श्लोक मे कहा गया है कि यह

१ श्रीमद्भागवत अध्याय ४ ५

श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है श्रीशुकदेव रूपी शुक (तोते के मुख का सम्बन्ध हो जाने से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है इसमे छिलका गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नही है। यह मूर्तिमान् रस है। जब तक शरीर मे चेतना रहे, तब तक इस दिव्य भागवत रस का निरन्तर पान करते रहो। इन तीनो श्लोको मे ही भागवत का तत्त्व आ गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को समस्त श्रुतियो का सार कहा गया है। आचार्य वल्लभ ने भागवत की समाधि भाषा को वेद, ब्रह्मसूत्र और गीता की भाँति ही प्रामाणिक माना है। भागवत में ही भागवत का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार कहा गया है। इसके आदि मध्य और अन्त मे वैराग्य उत्पन्न करने वाली बहुत सी कथाएँ है उनके सेवन से सत्पुरुषों और देवताओं को बड़ा आनन्द मिलता है। यह समस्त उपनिषदो का सार है। यह ब्रह्म और आत्मा का एकत्व प्रतिपादक ग्रन्थ है। यही श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माण का प्रयोजन है एकमात्र कैवल्य मोक्ष।[1] फिर आगे कहा गया है कि जो इस वेदान्त सार रूप भागवत के रस से तृप्त हो जाता है, वह फिर और कही नही रम सकता।

श्रीमद्भागवत की प्रतिपादन शैली पक्षपात शून्य है। यही कारण है कि स्कन्दपुराण, गरुडपुराण आदि मे भागवत की बड़ी प्रशंसा की गई है। पाचरात्र निबन्धों में भी भागवत का बड़ा मान देखा जाता है। नारद पाचरात्र मे भागवत की बड़ी प्रशंसा की गई है।[2] सात्वत तंत्र के द्वितीय पटल मे भगवदवतारों का परिगणन करते हुए शुकावतार का प्रयोजन यही बताया गया है कि वह वेदो के सार भूत भागवत तत्त्व को सुनाएँगे, जिससे कलियुग के व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। सम्भवतः इसलिए वल्लभाचार्य ने अपने 'तत्त्वदीप निबन्ध' मे लिखा है—

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि, व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिः भाषा व्यासस्य, प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

अर्थात् "वेद, गीता ब्रह्मसूत्र और भागवत यह प्रमाण चतुष्टय है।"

ग्रन्थ के उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति का विवेचन करने से यही निर्णय होता है कि ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित परब्रह्म स्वरूप नैष्कर्म्य का आविष्कार करने के लिए ही श्रीमद्भागवत का प्रकाश हुआ है। भागवत मे शुकदेव ने परीक्षित् से ब्रह्म स्वरूप मे स्थित होने का आदेश दिया है—"तुम इस प्रकार चिन्तन करो कि मैं सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मै ही हूँ। इस प्रकार तुम अपने आप को अपने वास्तविक एकरस अनन्त, अखण्ड, स्वरूप में स्थिर करलो। उस समय अपनी विषैली जीभ लपलपाते हुए और तुम्हारे पैरो को डसते हुए तक्षक की भी तुम्हे कोई परवाह नही होगी। तुम इस शरीर को तो क्या सारे विश्व को भी अपने से पृथक् न देखोगे।"[3] इसके अनन्तर परीक्षित् कहते है कि "आपके उपदेश से मेरा अज्ञान नष्ट होगया है और आपने मुझे भगवान् के परम कल्याणमय स्वरूप का दर्शन करा दिया है[4] इस प्रकार

१ श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२, अध्याय १३. श्लोक ११, १२
२ नारद पाञ्चरात्र, ज्ञानामृतसार संहिता, द्वितीय रात्र, अध्याय ७
३ भागवत १२ स्कन्ध. अ० ५, श्लोक ११. १२
४ भागवत १२ स्कन्ध अ० ६ श्लोक ७

भागवत श्रवण के अनन्तर परीक्षित् ब्रह्मभूत महायोगी, निसग और छिन्न भिन्न सशय हो जाते हैं। भागवत मे इस परम तत्त्व का नाम कही परमात्मा और कही श्रीकृष्ण रूप मे अधिकारी अपने भावानुरूप ग्रहण कर लेता है। हम पहले कह चुके हैं कि भागवत श्रौत अर्थ का प्रतिपादक ग्रथ है और जिस प्रकार श्रुतियों के यज्ञादि अर्थ होते हैं उसी प्रकार श्रीमद्भागवत के भी तीन अर्थ होते हैं। श्रीमद्भागवत की टीकाओ का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। हम कह आए है कि श्रीमद्भागवत एक महापुराण है और उसमें भगवान् के विविध रूपों का वर्णन हुआ है। भागवत के अनुसार यह पुराण ब्राह्म कल्प के आरंभ में स्वय भगवान् ने ब्रह्मा जी को सुनाया था। ब्रह्मा जी ने इस दस लक्षण वाले पुराण को नारद के प्रति कहा। नारद ने व्यास को सुनाया और व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को सुनाया। अन्त मे शुकदेव ने राजा परीक्षित् के प्रति कहा। प्रस्तुत भागवत शुकदेव और परीक्षित् का सवाद है। शुकदेव ने कहा है कि—इस भागवत पुराण मे, सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस विषयो का वर्णन है। इनमे जो दसवाँ आश्रयतत्त्व है उसी का ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए कही श्रुति से कही तात्पर्य से और कही दोनो के अनुकूल अनुभव से महात्माओं ने अन्य नौ विषयों का बड़ी सुगम रीति से वर्णन किया है। इस प्रकार ईश्वर जीव जगत् और माया इन सबकी विस्तृत व्याख्या श्रीमद्भागवत मे हो गई है। अब हम सक्षेप मे इन दस विषयों का वर्णन करते है।

भागवत में सर्ग विसर्गादि के लक्षण

१—सर्ग—ईश्वर की प्रेरणा से गुणो में क्षोभ होकर रूपान्तर होने से जो आकाशादि पचभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ अहंकार और महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसको सर्ग' कहते है। 'सर्ग' का अर्थ है 'सृष्टि' जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत मे कई रूपों मे आया है। द्वितीय स्कन्ध के पाँचवे अध्याय में भागवतकार ने सृष्टि का वर्णन किया है। वहाँ भगवत्तत्व को प्रधानता देते हुआ लिखा है कि ब्रह्म नारायण की दृष्टि से प्रेरित होकर सृष्टि रचना करते हैं। माया के गुणो से रहित श्रीभगवान् को रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण, द्रव्य ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर सृष्टि स्थिति और प्रलय के लिए कर्त्तापन के अभिमान से बाँध लेते हैं। मायापति भगवान् के एक से बहुत होने की इच्छा करने पर अपनी माया से अपने स्वरूप मे स्वयं प्राप्त काल-स्वभाव को स्वीकार कर लेते है। भगवान् की शक्ति से ही काल ने तीनो गुणो मे क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभाव ने उन्हे रूपान्तर दे दिया और कर्म ने महत्तत्व को जन्म दिया। रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि का जो विकार हुआ उससे ज्ञान क्रिया और द्रव्यरूप तम. प्रधान विकार हुआ वह अहंकार कहलाया। विकार को प्राप्त हो यह अहकार तीन प्रकार का होगया—वैकारिक, तैजस और तामस। यह क्रम से ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है। तामस अहंकार मे विकार होने से आकाश, आकाश मे विकार होने से जल और जल मे विकार होने से पृथ्वी उत्पन्न हुई। वैकारिक अहंकार से मन की और इन्द्रियों के दस अधिष्ठातृ देवताओ की उत्पत्ति हुई। दिशा, वायु सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। तेजस अहकार के विकारो से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं और ज्ञान-शक्ति रूप बुद्धि और क्रिया शक्ति रूपी प्राण भी उत्पन्न हुए। फिर भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर ये तत्त्व एक दूसरे से मिलगए और भाव स्वीकार करके इन्होंने व्यष्टि समष्टि रूपपिण्ड ब्रह्माण्ड का रचना की

उसी ब्रह्माण्ड रूप अण्डे से विराट पुरुष की उत्पत्ति हुई इस विराट पुरुष की कल्पना भागवतकार ने बड़ा सुन्दर रूप बाँधकर प्रस्तुत की है और विराट् पुरुष की सारी विभूतियों का वर्णन किया है।[1] सूत्ररूप से सृष्टि की उत्पत्ति का यही प्रकार भागवत में है। सृष्टि के क्रम का विस्तार भी दिया गया है।[2]

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वेदों, उपनिषदों, दर्शन तथा पुराणों में अनेक प्रकार की प्रक्रियाएं मिलती है। परन्तु इस विषय में तीन मत बहुत प्रसिद्ध है--आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनो में परिणामवाद स्वीकार किया गया है। परिणामवाद मानने वाले कई आचार्य है, जिन्होने इसको कई रूपों में स्वीकार किया है। मध्वाचार्य परमात्मा से प्रकृति को सर्वथा भिन्न मानते हैं इसलिए वे प्रकृति को ही जगत् का कारण मानते है। रामानुजाचार्य प्रकृति, जीव और ईश्वर इन तत्त्वों को मानते हुए भी सबको ब्रह्म ही कहते है। इसलिए उनके मत से ब्रह्म ही अंग विशेष में प्रकृति रूप में परिणत हो जाता है और वही जगत् बनता है। शंकर ने विवर्तवाद माना है सत्य वस्तु में वास्तविक परिवर्तन को परिणाम कहते है और अवास्तविक होने पर भी भ्रम से दीख पड़ने वाले परिवर्तन को विवर्त्त कहते हैं। इसी विवर्त्त को माया कहते हैं, जो वास्तव में कोई तत्त्व नही। उनके सिद्धान्त में सृष्टि आदि का वर्णन अध्यारोप दृष्टि से अपवाद के द्वारा परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके उसी स्वरूप में स्थित होने के लिए है।

श्रीमद्भागवत में इन तीनों ही वादों की संगति लगाई जा सकती है। अव्यक्त से व्यक्त होना, एक से अनेक होना, निराकार से साकार होना, सूक्ष्म का स्थूल होना सृष्टि है। यह परिणाम प्रकृति का है। भागवत में अनेक स्थानों पर माया और प्रकृति को एकार्थक बताया गया है। अनेक स्थलो पर भगवान् की इच्छा को ही प्रकृति कहा है। प्रकृति जीव और विविध कार्यों के रूप में स्वयं भगवान् ही प्रकट होते है। उसमे प्रविष्ट न होने पर भी प्रविष्ट से प्रतीत होते है। वे स्वयं ही अपने आप को अपने आप में अपने आप से ही सृष्ट करते हैं। वे ही स्रष्टा, सृष्टि और सृज्य है। उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नही। दीख पडने वाली विभिन्नता मायिक एवं असत् है। जैसे स्वप्न में कुछ न होने पर भी बहुत कुछ दीखता है, वैसे ही दृश्य न होने पर भी दृश्यमान हो रहा है। इस प्रकार के अनेक वचन श्रीमद्भागवत में मिलते है। इससे जान पड़ता है कि सभी प्रकार के सृष्टिक्रम भागवत को अभिमत है। भागवत में परमाणुओं के संयोग से ही सृष्टि का वर्णन मिलता है।[3] एक स्थान पर शुकदेव कहते है कि श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से सगुण का ही निरूपण करती है, परन्तु विचार करने पर उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलता है। भगवान् ने जीवों के लिए बुद्धि इन्द्रिय मन और प्राणों की सृष्टि की है। इनके द्वारा वे स्वेच्छा से अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष का अर्जन कर सकते है।[4] अर्थात् प्राणों के द्वारा जीवन धारण, श्रवण आदि इन्द्रियों द्वारा महावाक्य आदि का श्रवण, मन के द्वारा मनन और बुद्धि के द्वारा निश्चय करने पर श्रुतियों के तात्पर्य निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार हो सकता है। इसलिए करुणा सागर भगवान् अज्ञान की निद्रा में सोते हुए जीवों को पुरुषार्थ के लिए और मोक्ष के लिए

---

१ भागवत द्वितीयस्कन्ध, अध्याय ६

२ ,, तृतीय स्कन्ध, अ० ५, १०, २६

३ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय ११

४ श्रीम स्कन्ध १० अध्याय ८७ श्लोक २

जगाते हैं। भाव की दृष्टि से सृष्टि की उत्पत्ति रमण करने के लिए है जैसा कि श्रुति में कहा है

"स एकाकी नारमत ततो द्वितीयमसृजद् स रन्तुनैच्छत्" अर्थात् "उसे अकेला अच्छा नहीं लगा। इसलिए उसने दूसरे की सृष्टि की, क्योंकि वह रमण करना चाहता था।"

ज्ञान-दृष्टि से भी सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। अर्थात् यह प्रतीतिमात्र प्रतिक्षण अपने भावाभाव के साक्षी चिन्मात्र अधिष्ठान का बोध कराया करता है। विभिन्न कल्पों के भेद से भी सृष्टि वर्णन मे भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार सृष्टि का यह विषय बडा व्यापक है।

२—विसर्ग—विसर्ग का लक्षण भागवतकार ने यह दिया है कि उस विराट् पुरुष से उत्पन्न ब्रह्मा जी द्वारा जोकि भिन्न चराचर सृष्टियो का निर्माण होना है उसका नाम 'विसर्ग' है अर्थात् प्रकृति के गुण वैषम्य से जो विराट् सृष्टि होती है उसका नाम तो 'सर्ग' है तथा विराट् के अण्ड से ब्रह्मा के द्वारा जो व्यष्टि सृष्टि अथवा विविध सृष्टि होती है, उसका नाम 'विसर्ग' है। यह विसर्ग सृष्टि ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होती है। श्रीमद्भागवत मे ब्रह्मा की इस मानसिक सृष्टि का भी बडा विस्तृत वर्णन है। पहले तो द्वितीय-स्कन्ध के दशम अध्याय मे भागवतकार ने विराट् पुरुष के स्थूल रूप का वर्णन किया है जो बाह्य रूप से पाँचो तत्त्व, अहकार, महत्तत्त्व और प्रकृति इन आठ आवरणो से घिरा हुआ है। वास्तव मे भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म व्यक्त और अव्यक्त रूप माया रचित है। अत विद्वान् पुरुष इन दोनों ही रूपों को स्वीकार नही करते। भागवत मे उन दस प्रकार की सृष्टियो का वर्णन है जिसके कर्त्ता ब्रह्मा है।[१] फिर आगे वश और मन्वन्तरादि का काल विभाग वर्णित है और यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि भगवान् हरि ही ब्रह्म के रूप से प्रत्येक कल्प के आदि में रजोगुण से व्याप्त होकर स्वय ही जगत् के रूप मे अपनी रचना करते है। उसी स्कन्ध मे महदादि विभिन्न तत्त्वो की उत्पत्ति बताई गई है जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य कारण रूप है तथा स्वय निर्विशेष होकर भी समस्त विशेष धर्मों का आश्रय है। उस प्रधान नामक तत्त्व को ही प्रकृति कहते है। पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ, चार अन्त करण और दस इन्द्रियाँ इन चौबीस तत्त्वों के समूह को विद्वान् प्रकृति का कार्य मानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच महाभूत है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँच तन्मात्राएँ है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाद, उपस्थ और वायु ये दस इन्द्रियाँ है। मन, बुद्धि, चित्त और अहकार इन चार के रूप में एक ही अन्त करण अपनी सकल्प, निश्चय चिन्ता और अभिमान रूपा चार प्रकार की वृत्तियो से लक्षित होता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषो ने सगुण ब्रह्म के सन्निवेश स्थान इन चौबीस तत्त्वो की सख्या बताई है। इसके बाद 'काल' को पच्चीसवाँ तत्त्व माना गया है। कुछ लोग काल को पुरुष से भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुष का प्रभाव अर्थात् ईश्वर की सहारकारिणी शक्ति कहते हैं। इस प्रकार जो अपनी माया के द्वारा सब प्राणियो के भीतर जीवरूप से और बाहर कालरूप से व्याप्त है, वे भगवान् पच्चीसवे तत्त्व है।

ब्रह्मा की इस मानसिक सृष्टि का वर्णन श्रुतियो मे महाभारत मे तथा पुराणों मे भी आया है। मनुस्मृति मे भी मानसिक सृष्टि का वर्णन है। यह 'विसर्ग' भगवान् के सर्वोत्कृष्ट

---

१ श्रीमद्भागवत स्कन्ध २ अध्याय १०

ज्ञान सर्वोत्कृष्ट शक्ति और सर्वोत्कृष्ट क्रिया का बोधक है श्रीमद्भागवत में इस तत्त्व का वर्णन इसलिए हुआ है कि लोग इसके द्वारा आश्रयभूत भगवान् को ढूंढ निकालें और प्राप्त करें।

२—स्थान—स्थान का लक्षण भागवत में 'स्थितिर्वैकुण्ठविजय'[1] कहकर बताया गया है। तात्पर्य है कि प्रतिपद नाश की ओर बढ़ने वाली सृष्टि को मर्यादा में स्थिर रखने मे भगवान् विष्णु की जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम स्थान है। सृष्टि वर्णन के पश्चात् उसकी स्थिति का वर्णन होना चाहिये। अर्थात् एक ब्रह्माण्ड मे कितने लोक, उनमे कौन-कौनसी मर्यादाये है, लोकों का विस्तार कितना है और उनका धारण किस प्रकार होता है। इत्यादि बाते 'स्थान' प्रकरण मे आती है। भागवत के पाँचवें स्कन्ध के चौबीसवे अध्याय मे इन लोको का वर्णन है। यहाँ ऋषियों ने अनेक वर्षों तक योग साधना करके विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होकर सूक्ष्म तत्त्वों और स्थानो का अनुभव प्राप्त किया था। उन्होंने समाहित बुद्धि से उनका नामकरण भी किया है। जम्बू द्वीप के नव वर्षों मे से एक 'भारतवर्ष' है। ब्रह्माण्ड में चौदह लोक है। उनमे भूर्लोक भी एक है जिसमे सात द्वीप हैं जिनमे एक जम्बू द्वीप है। पाँचवे स्कन्ध के उन्नीसवे अध्याय मे भारतवर्ष का वर्णन है। विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण में भी इनका बड़े विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। भागवत मे तीन प्रकार की स्थितियो का वर्णन है। पृथ्वी लोक की स्थिति, ऊर्ध्व लोक की स्थिति और अधोलोक की स्थिति पृथ्वी लोक मे चार प्रकार के स्थान हैं। मनुष्य लोक, नर लोक, प्रेत लोक और पितृ लोक। मनुष्य लोक मे चार प्रकार के शरीर हैं। उद्भिज्ज स्वेदज, अण्डज, और जरायुज। इस प्रकार भागवत में लोक-लोकान्तर का वर्णन करके उस सर्व नियन्ता परमेश्वर की शक्ति का वर्णन किया गया है।

पोषण—

पोषण का लक्षण बताते हुए भागवत कार ने कहा है—"पोषणं तदनुग्रह"[2] अर्थात् अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टि में भक्तो पर भगवान् की जो कृपा होती है, उसका नाम 'अनुग्रह' है। श्रीमद्भागवत मे भगवान् के अनुग्रह की अनेक कथाये है। वास्तव मे यह तत्त्व श्रीमद्भागवत मे उतना ही व्याप्त है, जितना 'आश्रय' तत्त्व। परन्तु फिर भी जिस प्रकार अन्य तत्त्वो का भागवत मे वैज्ञानिक रूप से विभाजन है उसी प्रकार पोषण तत्त्व भागवत के छठे स्कन्ध मे विशेष रूप मे कहा गया है। हम पीछे दिखा चुके है कि पंचम स्कन्ध में 'स्थान तत्त्व' का विवेचन है। इसलिए उस क्रम से छठे स्कन्ध मे 'पोषण' का विशेष रूप से विवेचन है। इस स्कन्ध मे मनुष्य देवता और दैत्य तीनो पर ही भगवान् के अहैतुक अनुग्रह का दिग्दर्शन कराया गया है। यहाँ परीक्षित् शुकदेव से पूछते है कि हे महाभाग! अब मै वह उपाय जानना चाहता हूँ जिसके अनुष्ठान से मनुष्य को अनेकानेक भयंकर यातनाओं से पूर्ण नरक मे न जाना पड़े।[3] शुकदेव जी ने परीक्षित् को यही कहा है कि भगवान् की शरण मे रहने वाले भक्त जन विरले ही होते है। केवल भक्ति के द्वारा वे अपने सारे पापो को इस प्रकार भस्म कर देते है जैसे सूर्य कुहरे को। पापी आदमी

---

१ श्रीमद्भा० स्क० २ अध्या० १० श्लोक ४

२ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अध्याय १० श्लोक ४

३ षष्ठ स्क० १ श्लो ६

की जगी शुद्धि भगवान् को आत्म समर्पण करने और उनके भक्तों का सेवन करने से होती है, वसी तपस्या आदि के द्वारा नहीं होती। जगत् में भक्ति का यह पथ ही सब श्रेष्ठ, भय-रहित, और कल्याणमय है। इस मार्ग पर भगवत्परायण सुशील साधु जन चलते हैं।[1] भागवत के इस स्कन्ध में भगवान् के अनुग्रह का बड़ा व्यापक और विशद विवेचन है। इस स्कन्ध की विशेषता यह है कि इसमें मनुष्य, देव, और दैत्य सभी पर भगवान् के अनुग्रह को प्रदर्शित किया गया है। मनुष्यों में 'अजामिल' का आख्यान है। अजामिल जैसे पापी ने मृत्यु के समय पुत्र के बहाने भगवान् का स्मरण किया और उसे वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई। इसलिए शुकदेव परीक्षित् से कहते हैं कि बड़े बड़े पापों का सर्वोत्तम और अन्तिम तथा पाप वासनाओं को भी निर्मूल कर डालने वाला प्रायश्चित यही है कि केवल भगवान् के गुणों और नामों का कीर्तन किया जाय। इसी में संसार का कल्याण हो सकता है।[2] इसी प्रकार भगवान् ने देवताओं में इन्द्र पर अनुग्रह किया है। जब ब्रह्म-हत्या ने देवराज इन्द्र का पीछा किया और वे उसके भय से दिशाओं और आकाश में भागते फिरे तब अन्त में सत्य के परम पोषक भगवान् का ध्यान करने से उनके पाप नष्ट हुए। दैत्यों में वृत्रासुर पर भी इसी प्रकार भगवान् ने अनुग्रह किया। वृत्रासुर ने भगवान् का प्रत्यक्ष अनुभव किया और भगवान् की प्रार्थना की है।[3] इसी प्रार्थना को आधार मानकर पुष्टि सम्प्रदाय वालों ने अपनी पुष्टि भक्ति का प्रासाद खड़ा किया है जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

५—ऊति—पोषण के वर्णन के अनन्तर स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब भगवान् का अनुग्रह देव दनुज और मानवों के कष्ट दूर करने वाला है तथा 'अहैतुक' है तो संसार के जीव इस दुःख पारावार में क्यों डूबते उतराते रहते हैं। इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए भागवत में 'ऊति' का वर्णन हुआ है। "ऊतयः कर्मवासना"[4] अर्थात् जीव की वे वासनायें जो कार्य के द्वारा उसे बन्धन में डाल देती हैं, 'ऊति' नाम से ही कही जाती है। कर्म बन्धन के कारण ही जीव भगवान् को भूल जाता है। वासना दो प्रकार की होती है, शुभ और अशुभ। श्रीमद्भागवत के ७ वें स्कन्ध में इन वासनाओं का बड़े विस्तार से वर्णन है। इस स्कन्ध के छठे अध्याय में प्रह्लाद ने असुर बालकों को जो उपदेश दिया है, उसका सार यही है कि आसक्ति ही हमारे बन्धन का कारण है और वासना ही हमारे गले की रस्सी है। समर्पण ही सबसे बड़ी उपासना है। वासनाओं के चक्कर में पड़ा हुआ मनुष्य विभिन्न योनियों में भ्रमता है। हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के उपाख्यानों में इस सम्बन्ध में यही सिद्ध किया गया है। फिर उसमें मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म का विवेचन करके अन्त में मोक्ष धर्म का निरूपण किया गया है जिसका भाव यही है कि आसक्ति और वासनाओं का त्याग ही सच्ची मुक्ति है।

६—मन्वन्तर—"मन्वन्तराणि सद्धर्मः"[5] अर्थात् मन्वन्तरों के अधिपति जो भगवद्-भक्ति और प्रजा पालन रूप शुद्ध धर्म का अनुष्ठान करते हैं उसे मन्वन्तर कहते हैं।

---

१ श्रीमद्भागवत स्क० ६ अध्या० १ श्लो० १५, १६, १७

२ ,, ,, ,, ,, ,, ,, २ ,, ३१, ३२

३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ११

४ स्कन्ध २ १० श्लो० ४

५ स्क० २ अ० १० श्लो० ४

मन्वन्तर वास्तव में एक काल परिमाण है मनुष्य वर्षों के हिसाब से ४३२०००० वर्षों की एक चतुर्युगी होती है और ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्मा का एक दिन है और इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की एक रात्रि होती है। इसी हिसाब से जब ब्रह्मा के १०० वर्ष हो जाते है तो उनकी आयु पूर्ण हो जाती है। ब्रह्मा के एक दिन मे १४ मनु बदल जाते है। वर्तमान श्वेत वाराह कल्प में स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामक छ मनु व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान मनु सातवें 'वैवस्वत मनु' है। इनके बाद सात मनु और होंगे जिनके नाम है—सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि और इन्द्र सावर्णि। प्रत्येक मनु के समय मे विशेष देवता, उनके पुत्र इन्द्र, महर्षि और भगवान् के अवतार हुआ करते है। इन सब का वर्णन भागवत में बड़े विस्तार के साथ किया गया है। अष्टम स्कन्ध मे इन मन्वन्तरों का विशेष वर्णन है। मन्वन्तरों की गणना को वैज्ञानिक बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे भी इस गणना का उल्लेख है और विभिन्न पुराणों मे भी यही गणना मिलती है।

७—ईशानुकथा—"अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्। सतामीशकथा' प्रोक्ताः नानाख्यानोपबृंहिता।[1] अर्थात्—भगवान् के विभिन्न अवतारों और उनके प्रेमीभक्तों के विविध आख्यानों से युक्त कथाएँ 'ईशानुकथा' कहलाती है। इस सृष्टि का प्रवाह परम्परा से सतत् प्रवहमान जीवों को ऊपर उठने के लिए भगवान् का आश्रय ही एकमात्र साधन है। इसलिए भागवत मे ईशानुकथा का विशेष वर्णन है। भागवत के प्रथम स्कन्ध मे कुन्ती की स्तुति मे भगवान् के अवतार के अनेक कारण और उसके समर्थन मे अनेक युक्तियाँ दी गई हैं। स्थान-स्थान पर अवतारों की सूची, उनके चरित और महिमा का वर्णन किया गया है, जिनके श्रवण से अन्तःकरण शुद्ध होता है और हृदय भगवन्मय हो जाता है। भागवत के नवम स्कन्ध में भगवान् और उनके भक्तों की कथाएँ विशेष रूप से दी गई है। वैसे भागवत मे स्थान-स्थान पर भक्तों के चरित्र दिए हुए हैं।

८—निरोध—"निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सहशक्तिभिः।"[2] अर्थात् जब भगवान् योग निद्रा स्वीकार करके शयन करते है तब इस जीव का अपनी उपाधियों सहित उनमे लीन हो जाना निरोध कहलाता है। परमात्मा के अतिरिक्त जो कुछ स्थावर और जंगमात्मक जगत् दृश्यमान है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार लेकर भगवान् उसकी विपरीत गति का निरोध तो करते ही रहते है, परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ जाता है तब भगवान् नवीन रूप से सात्त्विक सृष्टि करने के लिए जगत् का प्रलय किया करते हैं। भागवत मे प्रलय का विस्तार से वर्णन किया गया है।[3] प्रलय चार प्रकार का होता है। नित्य नैमित्तिक प्राकृत और आत्यन्तिक। नित्य प्रलय के दो अर्थ है, एक तो संसार मे जो नित्य क्षय हो रहा है, वह नित्य प्रलय है और दूसरा जब नित्य प्रति निद्रा के समय सारी सृष्टि अज्ञान मे विलीन हो जाती है। किसी भाव विशेष का अनुभव नहीं होता तो उसे नित्य प्रलय कहते है। नैमित्तिक प्रलय भी दो प्रकार का होता है—एक आंशिक और दूसरा पूर्ण नैमित्तिक। एक मन्वन्तर समाप्त होने पर अथवा कभी-कभी भगवान् की इच्छा से मन्वन्तर के बीच मे ही जब समस्त पृथिवी

---

१ श्री मद्भागवत स्कन्ध २- अ० १०- श्लोक ५
२ ,, ,, ,, ,, ६
३ ,, ,, १२ अ० ४

जलमग्न हो जाती है और भूर्लोक, स्वर्लोक सब विच्छिन्न हो जाते हैं, परन्तु महर्लोक आदि ज्यों के त्यों बने रहते हैं तब आंशिक प्रलय होता है। जब एक कल्प के अन्त में ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर वे अपनी सृष्टि को लेकर घोर निद्रा में सो जाते हैं, तो पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। प्राकृत प्रलय में ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाती है और यह ब्रह्माण्ड सर्वथा प्रकृति में विलीन हो जाता है। सृष्टि के समय रहने वाले लोकों की कल्पना और स्थिति भी नहीं रहती तथा जिस अवस्था का तर्क के द्वारा अनुमान करना असम्भव है, उसी अवस्था का नाम प्राकृत प्रलय है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनों की शक्तियां काल के प्रभाव से क्षीण हो जाती हैं और विवश होकर अपने मूल रूप में विलीन हो जाती हैं।

आत्यन्तिक प्रलय का कोई समय नहीं है। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवण मनन निदिध्यासन रूप अन्तरंग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूप का ध्यान करता है, तभी संसार का आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। जब जीव विवेक के खड्ग से मायामय अहंकार का बन्धन काट देता है तब यह अपने एक आत्म स्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है।

पुराणों के अतिरिक्त दर्शन में भी प्रलय का अस्तित्व स्वीकृत किया गया है। प्राचीन नैयायिकों ने खण्ड प्रलय और महाप्रलय नाम के दो प्रलय माने हैं। वे जन्य द्रव्य के अधिकरण मात्र के अभाव को खण्ड प्रलय कहते हैं और जन्य भाव के अधिकरण मात्र के अभाव को महा प्रलय कहते हैं। सांख्यवादियों के अनुसार प्रकृति में दो प्रकार के परिणाम होते हैं। एक स्वरूप परिणाम दूसरा विरूप परिणाम। सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण जब स्वरूप में स्थित होते हैं, अर्थात् सत्व सत्व में, रज रज में और तम तम में, तब प्रलय हो जाता है और जब वे विकृत हो जाते हैं अर्थात् उनमें वैषम्य हो जाता है तब विरूप परिणाम के कारण सृष्टि उत्पन्न होती है।

६—मुक्ति—भागवतकार ने आत्यन्तिक प्रलय को मोक्ष का स्वरूप बतलाया है। जैसे प्रलय महाप्रलय स्वभाव से ही प्रकृति में होते रहते हैं, वैसे आत्यन्तिक प्रलय नहीं होता। इसकी प्राप्ति भगवत्तत्व ज्ञान से अभिन्न भगवत्-प्रेम की प्राप्ति होने पर अथवा भगवत्प्रेम से अभिन्न भगवत्तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर ही मोक्ष मिल सकता है। सभी जीव एक साथ मुक्त नहीं हो सकते किन्तु मुक्त होने में समय का व्यवधान भी नहीं है। वेदान्त की दृष्टि से मुक्ति केवल एक ही प्रकार की है—वह है कैवल्य मुक्ति जिसकी प्राप्ति अविद्या के नाश से ही सम्भव है। कारण यह है कि अविद्या ही अनेक प्रकार के नामों और रूपों को उत्पन्न करके उनकी कामना से भटकाने वाली है। अविद्या का नाश पराविद्या अथवा परम ज्ञान से हो सकता है। ज्ञान का उदय अन्तःकरण की शुद्धि से होता है। अन्तःकरण की शुद्धि निष्काम कर्म उपासना आदि से होती है। मुक्ति का लक्षण भागवत में इस प्रकार लिखा है —

मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।[1] अर्थात् अज्ञान कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्म भाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा में स्थिर होना ही मुक्ति है। इसी को हम कैवल्य मुक्ति कह सकते हैं। भागवत के द्वितीय स्कन्ध में क्रम-मुक्ति और सद्योमुक्ति का वर्णन है। सांसारिक पदार्थों से विरक्त हो जाने पर अपने हृदय

१ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अ० १० श्लोक

मे विराजमान स्वत. सिद्ध आत्म स्वरूप परम प्रियतम परम सत्य भगवान् का जब भक्त प्रेम और आनन्द से दृढ निश्चय करके भजन करता है तो जन्म मृत्यु के चक्कर मे डालने वाले अज्ञान का नाश हो जाता है।[१] और वह मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। श्रीमद्-भागवत मे पाँच प्रकार की मुक्ति मानी गई है—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। भगवान् के नित्य चिन्मय धाम मे रहना सालोक्य मुक्ति है, उनके समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है भगवान् के समीप रहना सामीप्य मुक्ति है। भगवान् के समान रूप प्राप्ति कर लेना सारूप्य और उनके चरणो में समा जाना सायुज्य मुक्ति है। श्री मद्भागवत् मे इन पाँचो प्रकार की मुक्तियो के अनेक उदाहरण है। परन्तु श्रीमद्भागवत मे मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। जो भगवान् के सच्चे प्रेमी है मुक्ति की इच्छा नहीं रखते। वे भगवान् के प्रेम को मुक्ति से ऊँचा मानते है।

न्याय और वंशेषिक दर्शनों मे प्रमाण प्रमेय आदि षोडश द्रव्य अथवा द्रव्य गुण कर्म आदि सप्त पदार्थो के ज्ञान से एकविशति प्रकार के दुखो का ध्वस होकर मुक्ति सिद्ध होती है। सॉख्य दर्शन मे प्रकृति और पुरुष के विवेक से पुरुष का अपने असग रूप मे स्थिर हो जाना ही मुक्ति बताया गया है। योग दर्शन मे विवेक के साथ ही साथ मुक्ति के लिये समाधि की आवश्यकता भी स्वीकृत हुई है। भक्ति दर्शन में भगवत्कृपा को ही मुक्ति का हेतु माना गया है। क्योकि भक्ति को अमृत रूप बताया है। पूर्व मीमासा दर्शन स्वर के अतिरिक्त और किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नही करता। श्री मद्भागवत मे इन सब शास्त्रो के सिद्धान्तो को अपनाया है केवल पूर्व मीमासा का मत ही नही के तुल्य है। इन सब शास्त्रो से परे भागवत मे एक और स्थिति बताई गई है जो वास्तविक मुक्ति है। वह स्थिति है 'निरपेक्ष-स्थिति' अर्थात् साधक यह विचार ही नही करता कि कौनसी मुक्ति वाछ-नीय है अथवा मुक्ति का क्या स्वरूप है।

१०—आश्रय तत्त्व—आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परंब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥
योऽध्यात्मिकोऽय पुरुष सोऽसावेवाधि दैविक।
यस्तत्रोभयविच्छेद पुरुषो ह्याधिभौतिक॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितय तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय'॥[२]

अर्थात् इस चराचर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते है वह परब्रह्म ही आश्रय है। शास्त्रो मे उसी को परमात्मा कहा है। जो नेत्र आदि इन्द्रियो का अभिमानी द्रष्टा जीव है वही इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता सूर्यादि के रूप मे भी है और जो नेत्र गोलक आदि से युक्त दृश्य देह है वही उन दोनों को अलग-अलग करता है। इन तीनो में यदि एक का भी अभाव हो जाय तो दूसरे को उपलब्धि नही हो सकती। जो इन तीनो को जानता है वह परमात्मा ही सबका अधिष्ठान और आश्रय तत्त्व है।

भागवत मे नारायण को कृष्ण से निम्न कोटि का माना गया है। सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए भागवतकार लिखते है—जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्ड को फोडकर निकला

१ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अध्याय २ श्लोक ६
२ श्रीमद्भागवत स्क० २ अ० १० श्लोक ७—६

तब वह अपने रहने का स्थान ढूंढने लगा और स्थान की इच्छा से उस शुद्ध संकल्प पुरुष ने अत्यंत पवित्र जल की सृष्टि की विराट पुरुष रूप नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नार पड़ा और अपने उत्पन्न किए 'नार में वह पुरुष एक हजार वर्षों तक रहा इसी कारण उसका नाम नारायण हुआ।[1] श्री मद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय यही आश्रय-तत्त्व है। अन्य नौ विषयों का वर्णन इसी की सिद्धि के लिये किया गया है। आश्रय शब्द का अर्थ जीवों के शरण लेने योग्य भगवान् अथवा व्यक्त, अव्यक्त आभास और निरोध का अधिष्ठान निरपेक्ष साक्षी ब्रह्म है। जैसाकि पहले कहा गया है श्री मद्भागवत का उद्देश्य भक्ति में भक्त को प्रतिष्ठित करना है तथा सर्ग विसर्ग आदि के वर्णन द्वारा भगवान् की अनन्त महिमा तथा ब्रह्म की साक्षिता का बोध करा कर उसके स्वरूप में स्थित कर देना है।

यों तो भागवत के प्रत्येक स्कन्ध में आश्रय का निरूपण किया गया है तथापि सगुण साकार रूप आश्रय का दशम स्कन्ध में, तथा निर्गुण निराकार आश्रय का १२ वे स्कन्ध में विशेष निरूपण हुआ है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध के नवे अध्याय में भगवान ने स्वयं ब्रह्मा को अपने रूप का ज्ञान दिया है। जिन चार श्लोकों में स्वरूप का वर्णन है उन्हें चतुःश्लोकी कहा जाता है ये श्लोक ३२, ३३, ३४, ३५ है इनका सारांश यह है—

"सृष्टि के पूर्व केवल मैं ही मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था और न सूक्ष्म और न इन दोनों का कारण अज्ञान। जहाँ पर सृष्टि नहीं है वहाँ मैं ही मैं हूं और इस सृष्टि के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा वह भी मैं ही हूँ ॥३२॥

वास्तव में न होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चन्द्रमाओं की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मण्डल के नक्षत्रों में राहु की भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती उसे मेरी माया समझना चाहिये ॥३३॥

जैसे प्राणियों में पञ्चभूत रचित छोटे छोटे शरीरों में आकाशादि पंच महाभूत उन शरीरों के कार्य रूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश भी करते हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारण रूप से विराजमान रहने के कारण प्रवेश भी नहीं करते वैसे ही उन प्राणियों के शरीर की दृष्टि से मैं उनमें आत्मा के रूप से प्रवेश किये हुए हूँ और आत्म दृष्टि से अपने अतिरिक्त कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥३४॥

"यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं. इस प्रकार निषेध की पद्धति से और 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार' इस अन्वय की पद्धति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है, यही वास्तविक तत्त्व है, जो आत्मा और परमात्मा का तत्त्व जानना चाहते है उन्हें केवल इतना ही जानने की आवश्यकता है। ३५।

इसी आश्रय तत्त्व की विवेचना भागवत में स्थान-स्थान पर हुई है। श्रीमद्भगवद्गीता में जिस ब्रह्म का निरूपण हुआ है उसी का प्रतिपादन भागवत में हुआ है। १२ वे स्कन्ध में

१ श्रीमद्भागवत स्क० २ अध्याय १० श्लोक १० ११

इस तत्त्व की बड़ी विस्तृत विवेचना हुई है इसी प्रकार ११वें स्कध में मुक्ति और बन्धन से परे जिस तत्त्व का उपदेश किया गया है वह यही तत्त्व है

भागवत मे ब्रह्म के विषय मे तीन बातों को प्रधानता दी है.—

१—अधिष्ठानता, २—साक्षिता, ३—निरपेक्षिता।

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये उस पुरुष के तीन रूप हैं। आध्यात्मिक पुरुष का अर्थ है नेत्रादि इन्द्रियो का अभिमानी जीव, आधिदैविक पुरुष का अर्थ है नेत्रादि इन्द्रियो का अधिष्ठातृदेवता और आधिभौतिक पुरुष का अर्थ है नेत्रगोलक आदि वाला स्थूल शरीर। ये तीनो सापेक्ष हैं। इन तीनो के भाव और अभाव को देखने वाला आत्मा इनका निरपेक्ष साक्षी है। जागृत, स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओं मे विश्व तेजस तथा प्राज्ञ के रूप मे उनका अनुभव करने वाला एव मूर्च्छादि अवस्था मे उनके अभाव का अनुभव करने वाला और समाधि अवस्था मे उनसे परे रहने वाला आत्मा ही आश्रय है। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण और ब्रह्म को एक ही माना गया है। ब्रह्मसूत्र के ब्रह्म, गीता के पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण एक ही वस्तु हैं। श्रीमद्भागवत मे इस कृष्णरूप ब्रह्म के विषय में लिखा है—

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥[१]

अर्थात् तत्त्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द रूप ज्ञान को ही तत्त्व कहते है। उसको कोई 'ब्रह्म' कोई 'परमात्मा' नाम से पुकारते हैं। प्रथम स्कन्ध मे 'नारायण' 'वासुदेव' 'सात्वतपति' और 'कृष्ण' आदि सभी ब्रह्म के नाम आगए है। भागवत के अनुसार भगवान् मे शरीर और शरीरी का भेद नही है। जीव अपने शरीर से पृथक् होता है। शरीर उसका ग्रहण किया हुआ है और वह उसे छोड़ सकता है। परन्तु भगवान् का शरीर जड़ नहीं चिन्मय होता है। उसमे हेय और उपादेय का भेद नही होना। वह सम्पूर्णतः आत्मा ही है। शरीर की भाँति भगवान् के गुण भी आत्मस्वरूप ही होते है। जीवो के गुण तो प्राकृत होते है और वे उनका त्याग कर सकते है। भगवान् का शरीर और गुण जीवो की ही दृष्टि मे होते है, भगवान् की दृष्टि में नहीं। भगवान् तो निज स्वरूप मे—समत्व मे स्थित रहते है क्योंकि वहाँ गुण और गुणी का भेद नही। इस प्रकार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म स्वरूप 'आश्रयतत्त्व' है।

श्रीमद्भागवत में प्रायः सभी दर्शनों का समन्वय और सामजस्य हो जाता है। यही कारण है कि भागवत सब सम्प्रदायो मे मान्य है।

माया

श्रीमद्भागवत मे 'माया' का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति और विस्तार का वर्णन करते हुए भागवतकार ने स्थान-स्थान पर माया का उल्लेख किया है। परन्तु एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय में माया का सविस्तार वर्णन है। राजा निमि ने भगवत्प्रेमी योगीश्वर अन्तरिक्ष जी से प्रश्न किया[२], हे भगवन् ! मैं विष्णु भगवान् की उस माया का स्वरूप जानना चाहता हूँ, जो बड़े-बड़े मायावियो को भी मोहित कर

१ श्रीमद्भागवत स्क० १, अध्याय २, श्लोक ११
२ एकादश स्कन्ध अध्याय ३

देनी है। इस पर योगीश्वर ने उत्तर दिया, हे राजन् भगवान् की माया स्वरूप से अनिर्वचनीय है इसलिए उसके कार्यों के द्वारा ही उसका निरूपण होता है। आदि पुरुष परमात्मा जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते है, और उनके विषय भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासको की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पंच भूतो के द्वारा देव, मनुष्य आदि नाना प्रकार के शरीरों की सृष्टि करते हैं। उसी शक्ति को माया कहते है। इस प्रकार पंच महाभूतो के द्वारा बने हुए प्राणि-शरीरो मे उन्होने अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किया और अपने को ही पहले एक मन के रूप में और उसके बाद पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय इन दस रूपो मे विभक्त कर दिया तथा उन्ही के द्वारा विषयो का भोग करने लगे। यह देहाभिमानी जीव अन्तर्यामी के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करता है और पंचभूतो के द्वारा निर्मित इस शरीर को आत्मा अपना स्वरूप मानकर उसी मे आसक्त हो जाता है। यही भगवान् की माया है। भगवान् की इस माया का कार्य-क्रम बड़ा विस्तृत है। मनुष्यों के आवागमन मे यह कारण है। प्रलय भी इसी के कारण होता है। यह माया सृष्टि, स्थिति और संहार करने वाली त्रिगुणमयी है। इस प्रकार भागवत मे माया भगवान् की एक शक्ति के रूप में कही गई है। इसके सत् और असत् दोनो ही रूप है। भागवत मे वर्णित माया के स्वरूप मे दर्शनो मे दिये हुए सभी लक्षणो का समन्वय और सामजस्य हो जाता है।

श्रीमद्भागवत की लीलाओं का आध्यात्मिक पक्ष तथा प्रतीकार्थ—

हम पहले कह चुके है कि श्रीमद्भागवत को प्रायः सभी सम्प्रदायो ने आधार माना है और अपने अपने सिद्धान्तों के अनुकूल उसकी व्याख्या की है। भगवान् की त्रिविधात्मक शक्ति का स्रोत तो विष्णु-पुराण से लिया गया है, परन्तु ब्रह्म के स्वरूपो का विस्तार और समन्वय श्रीमद्भागवत से ही लिया गया है। वैष्णव धर्म में श्रीमद्भागवत को प्रामाणिक माना गया है। विशेषकर बंगाल के सभी वैष्णव सम्प्रदाय भागवत को लेकर चले है। वेदान्त सूत्रो की व्याख्या भी भागवत मे मानी जाती है। भक्ति का भी प्रधान स्रोत श्रीमद्भागवत है। इसलिए श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीलाओं का दार्शनिक रूप दियाजाना स्वाभाविक ही है। भागवत की लीलाओ को लेकर चैतन्य महाप्रभु के शिष्य वृन्दावन के गोस्वामियो ने बड़े रूपक बाँधे हैं। 'सनातन गोस्वामी' के 'वृहद् भागवतामृत' तथा 'रूप गोस्वामी' के लघु भागवतामृत मे कृष्ण लीलाओ के अध्यात्म पक्ष पर विचार किया गया है। लघु भागवतामृत में अवतारों का बड़ा विशद विवेचन है और रूप गोस्वामी ने कृष्ण को पूर्ण अवतार माना है। इसके पश्चात् इस ग्रन्थ मे कृष्ण लीलाओ को नित्य लीला माना गया है। 'जीव गोस्वामी' के श्रीकृष्ण सन्दर्भ में इस विषय को विस्तार से कहा गया है। भगवान् की नित्य लीला प्रकट और अप्रकट दोनों रूपो मे रहती है। प्रकट लीला में भगवान् भक्तों के सम्मुख प्रकट होते है। यह लीला भगवान् की शक्ति ही का कार्य है। प्रकट लीला मे भगवान् वृन्दावन, मथुरा और द्वारका मे विहार करते है। परन्तु नित्य लीला में अपने नित्य धाम वृन्दावन में रहते है। वृन्दावन मे उनका केवल द्विभुज रूप है और वह केवल अपनी शक्ति स्वरूप एक गोपी से विहार करते है। मथुरा में वासुदेव हो जाते है। द्वारका मे उनके 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' रूप हो जाते है। वे यशोदा के नित्य पुत्र है और देवकी के पुत्र वे प्रकट लीला मे ही होते हैं वृन्दावन से उनका वियोग

कभी नहीं होता वृन्दावन उनका गोलोक है इस प्रकार भागवत के उदाहरण दे देकर कृष्ण के पूर्णावतार होने की बात कही गई है इस प्रकार जीव गोस्वामी के सन्दर्भों मे कृष्णतत्व का विवेचन किया गया है . श्रीकृष्ण सन्दर्भ मे जीव गोस्वामी ने लीला के अध्यात्म-पक्ष पर बडे विस्तार के साथ विचार किया है तथा अनेक धर्म ग्रन्थों से उदाहरण देकर अपने मत की पुष्टि की है। लीला को दैवी शक्ति का ही एक स्वरूप बताया है और उसके 'प्राकृत' और 'अप्राकृत' दो भेद भी किये है। 'श्रीमद्भागवत से उद्धरण देकर लीला का नित्यत्त्व सिद्ध किया गया है। वृन्दावन मे कृष्ण का वियोग केवल प्राकृत लीला में है जो केवल स्थूल वियोग के रूप मे माना गया है। सूक्ष्म रूप से प्राकृत लीला में भी वृन्दावन से उनका नित्य सम्बन्ध है। प्राकृत लीला का यह नित्य सम्बन्ध दो प्रकार का बताया है 'आविर्भाव' और 'अगति'। अप्राकृत लीला मे वृन्दावन से कृष्ण का नित्य सम्बन्ध रहता है। वृन्दावन मे ही माधुर्य भाव की पूर्णता बताई गई है। इस माधुर्य भाव मे कृष्ण का ऐश्वर्य, क्रीडा, वेणु तथा स्वरूप सम्मिलित है।

रूप गोस्वामी के लघु भागवतामृत मे भक्तो की कोटियाँ गिनाई गई हैं तथा पद्म पुराण और श्रीमद्भागवत का आधार लेकर भक्ति-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् कृष्ण के स्वरूप की भाँति उनके परिकरो का भी पूर्ण विवेचन है। द्वारका तथा मथुरा मे भगवान् के परिकर यादव है तथा वृन्दावन और गोकुल मे गोप गोपियाँ। ये परिकर भी कृष्ण की भाँति प्राकृत और अप्राकृत है। गोकुल और वृन्दावन में गोप-गोपियों का सम्बन्ध नित्य सम्बन्ध है जिनमें अलौकिकता का भाव है। जीव गोस्वामी ने कृष्ण और गोपियो के सम्बन्ध को शुद्ध सात्विक सम्बन्ध माना है और 'जार बुद्धि' का विश्लेषण इसी रूप मे किया है।

चैतन्य महाप्रभु के शिष्यो ने वैष्णव सम्प्रदाय को शास्त्रीय रूप देने मे बहुत योग दिया है। यो तो वृन्दावन के छ गोस्वामी उनके शिष्य थे, और सभी का इस विषय मे पूरा-पूरा योग है। परन्तु 'सनातन' 'रूप' और 'जीव' का कार्य बडा महत्वपूर्ण है। जिस समय ये वैष्णव धर्म सम्बन्धी इस महत्वपूर्ण कार्य को कर रहे थे, उस समय ब्रज मे अन्य सम्प्रदाय भी कृष्ण भक्ति मे योग दे रहे थे। सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी सहोदर थे और जीव गोस्वामी उनके भ्रातृज। सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी ने १५ वी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे ग्रन्थ लिखने प्रारम्भ किये और १६ वी शताब्दी के मध्य तक उनका यह लेखन कार्य चलता रहा। वृन्दावन के प्राय सभी सम्प्रदाय उनसे प्रभावित हुए। कृष्ण लीला का अध्यात्म-पक्ष प्राय' चैतन्य सम्प्रदाय से लिया गया है। कहीं कहीं थोडा सा अन्तर किया गया है। वल्लभ सम्प्रदाय मे भागवत को बहुत महत्व दिया गया है तथा वेद, गीता और ब्रह्मसूत्रो की भाँति श्रीमद्भागवत की प्रामाणिकता स्वीकार की गई है। वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को समाधिभाषा कह कर व्यवस्थित रूप से उसे प्रस्थान चतुष्टय मे सम्मिलित कर लिया है।

'तत्त्वदीप निबन्ध' का सर्व निर्णय काव्य प्रकरण तथा विशेषकर भागवतार्थ प्रकरण दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका तथा 'सुबोधिनी' मे श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत का रहस्य प्रतिपादित किया है। उन्होने सात प्रकार के अर्थ भागवत मे बताए है। चार प्रकार के अर्थ भागवतार्थ प्रकरण मे तथा तीन प्रकार के अर्थ सुबोधिनी मे हुए है। भागवतार्थ प्रकरण मे चार प्रकार के अर्थ ये है (१) समस्त ग्रन्थ का संक्षेप में रहस्य (२) ग्रन्थ

के बारह स्कन्धो में कौन से स्कन्ध में क्या रहस्य है। (३) किस स्कन्ध मे कितने प्रकरण है उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है और उनका क्या रहस्य है। (४) किस प्रकरण में कौन-कौन से अध्याय है और उनमे प्रत्येक अध्याय का क्या अर्थ है। अध्यायों मे वरिणत भिन्न-भिन्न उपाख्यानो की परस्पर क्या सगति है और उनका क्या अर्थ है। उन्होने सुबोधिनी नाम्नी टीका मे जिन अर्थो का विवेचन किया है, वे ये है। (१) मूल श्लोको का अक्षरार्थ, (२) प्रत्येक वाक्य के अर्थ और शब्दो का रहस्य, (३) प्रत्येक पद के अन्तर्गत अक्षरों का अर्थ। दशम स्कन्ध को सारे ग्रन्थ का रहस्य होने के कारण वल्लभाचार्य ने उसे हृदय माना है। अर्थात् यह भगवान् के हृदय का साक्षात् प्रतिबिम्ब है। सम्पूर्ण ग्रन्थ भगवान् का मूर्तिमान स्वरूप है। पहला स्कन्ध अधिकार स्कन्ध है। दूसरा 'साधन स्कन्ध' है। ये दोनो भगवान् के चरण युगल है। तीसरा 'सर्ग स्कन्ध' और चौथा विसर्ग स्कन्ध भगवान् के बाहु युगल है। पाँचवाँ 'स्थान स्कन्ध' और छठा शोषण स्कन्ध भगवान् की जाँघ है। सातवाँ ऊति स्कन्ध' भगवान् की दाहिनी हथेली, आठवाँ 'मन्वन्तर कथा स्कन्ध' और नवाँ 'ईशानुकथा स्कन्ध भगवान् के स्तन है। दशम 'निरोध स्कन्ध' एकादश 'मुक्ति स्कन्ध' मस्तक तथा द्वादश 'आश्रय स्कन्ध' भगवान् की बाँई हथेली है। दशम स्कन्ध के अध्यायो की भी सगति श्री वल्लभाचार्य ने लगाई है। अन्तिम तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानकर उन्होने केवल सतासी अध्याय माने है और सारे स्कन्ध को पाँच प्रकरणों में विभाजित किया है। जन्म प्रकरण, तामस प्रकरण, राजस प्रकरण, सात्विक प्रकरण और गुण प्रकरण। इनमे तामस प्रकरण सबसे विस्तृत है। वल्लभाचार्य ने इस प्रकरण मे आध्यात्मिकता का पूर्ण रूप से आरोप किया है। तामस प्रकरण के चार अन्तर्विभाग है, प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल। 'युगल गीत' तक का विषय उन्होने तामस प्रकरण मे माना है। भगवान् कृष्ण को पूर्णावतार मान कर वल्लभ सम्प्रदाय में भी उनके चार व्यूह माने गये है। वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध। इन चारों के कार्य अलग-अलग है। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का इन्होने दो जगह अवतार माना है। श्री वासुदेव देवकी के यहाँ तथा श्रीनन्द यशोदा के यहाँ, दोनों जगह श्रीकृष्ण का जन्म व्यूह सहित ही है। कही व्यूह के कार्य से प्राकट्य है, कही स्वरूप से प्राकट्य है नन्द यशोदा के यहाँ तीन रूप कार्य से प्रकट है। वसुदेव देवकी के यहाँ चारों व्यूह स्वरूप से प्रकट है। अर्थात् भगवान् ने ब्रज में अपने व्यूहो का स्वरूप छिपा रखा है, किन्तु व्यूहों का कार्य किया है। मथुरा मे भगवान् ने अपने व्यूहो का स्वरूप भी प्रकट किया है और कार्य भी किया है। अतएव भगवान् ने वसुदेव जी के यहाँ अपने चतुर्भुज रूप का दर्शन कराया है।

श्रीहरिरायजी के 'स्वरूप निर्णय' में कृष्ण के सयोग विप्रयोगात्मक शृंगार रस रूप स्वरूप की व्याख्या विस्तार से की गई है तथा गोपियो के वास्तविक रूप को भी बताया गया है। गोपियाँ नित्य सिद्धा श्रुति रूपा और अग्नि कुमार स्वरूपा बताई गई हैं। इस प्रकार भगवान् की लीलाओ को आध्यात्मिक रूप दिया गया है।

प्रतीकार्थ :

राधा, गोपी, मुरली तथा रास

राधिका भगवान् की आह्लादिनी शक्ति है चतन्य मे राधा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है चैतन्य महाप्रभु का राधा और कृष्ण का सयुक्त रूप माना गया है

वल्लभाचार्य के सिद्धान्त ग्रन्थों में राधा का इतना विवेचन नही है, जितना उनके पश्चात् लिखे गये सम्प्रदाय ग्रथों मे। सम्भवत यह प्रभाव चैतन्य तथा निम्बार्क सम्प्रदायो का हो। निम्बार्क सम्प्रदाय मे युगल रूप की उपासना की जाती है। 'भागवत सदर्भ' मे जीव गोस्वामी ने राधिका को भगवान् की स्वरूप शक्ति माना है। यह स्वरूप शक्ति भगवान् के विभिन्न लीला-स्थानो पर विभिन्न स्वरूप धारण करती है। मथुरा तथा द्वारका मे इस स्वरूप शक्ति का नाम 'महिषी' है जो सोलह हजार रानियो के लिए आया है इन सोलह हजार मे से आठ पट्ट महिषी है। वृन्दावन मे भगवान् की स्वरूप शक्ति व्रज देवियो के रूप मे प्रकट हुई हैं तथा जो भगवान् की आह्लादिनी शक्ति राधिका के शरीर से ही उत्पन्न हुई हैं इस प्रकार राधिका को जीव गोस्वामी ने बहुत प्रधान स्थान दिया है। 'प्रीति सदर्भ' मे राधिका को प्रेमोत्कर्ष पर माना है। राधा को सर्वश्रेष्ठ भक्त अथवा परिकर के रूप मे लिया गया है। जीवगोस्वामी ने भगवान् की अन्यतम सखी को राधा ही माना है।

हम पहले लिख चुके है कि गोपिकाओ के विषय मे पुराणो तथा उन पर आधृत वैष्णव सम्प्रदायो में इसी प्रकार के आरोप किए गए है। पद्म पुराण मे गोपियो के सम्बन्ध मे यही कहा गया है कि वे श्रुति स्वरूपा तथा मुनिस्वरूपा है।[1] भागवत में इस प्रकार के अनेक सकेत है, और विभिन्न पुराणो मे उनकी कथाएँ बिखरी पडी है, जिनका सकेत हम पहले कर चुके है। वास्तव मे भगवान् के समान ही गोपियाँ भी परम रसमयी तथा सच्चिदानन्दमयी है। साधना की दृष्टि मे भी उन्होंने न केवल जड शरीर का त्याग कर दिया है अपितु, सूक्ष्म शरीर से प्राप्त होने वाले स्वर्ग तथा कैवल्य से अनुभव होने वाले मोक्ष की भी उपेक्षा कर दी। भागवतकार ने लीलामय कृष्ण का त्रिविध प्रकार माना है। कुरुक्षेत्र मे श्रीकृष्ण पूर्ण सत् और ज्ञान शक्ति प्रधान है। द्वारका और मथुरा मे श्रीकृष्ण पूर्ण चित् और क्रिया प्रधान है। इसलिये लीला को हम 'Playing in the infinite' (अनन्त क्रीडा) कह सकते हैं।

भगवान् कृष्ण की सभी लीलाओ मे अध्यात्म का आरोप किया गया है। श्रीमद्भागवत मे इस अध्यात्म तत्त्व का निर्देश स्थान-स्थान पर मिलता ही है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् की सारी लीलाएँ प्रच्छन्न रूप मे किसी न किसी उद्देश्य को लेकर की जा रही थी। गोप-गोपिकाएँ आदि सभी प्रच्छन्न रूप में असाधारण अथवा अतिमानव थे। यहाँ तक कि असुर भी किसी विशेष प्रयोजन से उस लीला पुरुषोत्तम नटवर के सम्पर्क मे आते थे। माखन-चोरी, उलूखल-बन्धन, दामोदर-लीला, चीरहरण लीला, वेणुवादन आदि सब पर ही आध्यात्मिक आरोप हुए हैं। गोपियो के पूर्व जन्म की कथाएँ तो पुराणो मे भरी पड़ी है। इन गोपियो ने भगवान् के लिये कल्पो तक साधना करके गोपी-तन प्राप्त किया था और उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये ही भगवान् ने लीलाएँ की थी। श्रीमद्भागवत मे दशम स्कन्ध के ३२ वे अध्याय के २२ वे श्लोक मे स्वय भगवान् ने गोपियों से कहा है—

"हे गोपियो, तुमने लोक परलोक के सारे बन्धनों को काट कर मुझ से निष्कपट प्रेम किया है, यदि मै तुम मे से प्रत्येक के लिये अलग अलग अनन्त काल तक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नही चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। तुम अपने साधु स्वभाव से ऋण रहित मान कर और भी ऋणी बनादो।"

१ पद्म पुराण पाताल खण्ड अ० ४२

चार चरण लीला और रासलीला को साम्प्रदायिकों ने बड़ा महत्त्व दिया है और वेणु से भगवान् कृष्ण का अविच्छिन्न सम्बन्ध दिखाया है इनके ऊपर भी हम थोड़ा सा विचार करेंगे।

सुबोधिनी में वल्लभाचार्य ने दशम स्कन्ध के पाँच प्रकरण माने हैं। जैसाकि हम पहले कह चुके है, तामस प्रकरण उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस प्रकरण में ज्ञानादि साधनों से रहित भक्तों का श्रीकृष्ण ने उद्धार किया है। वेणुगीत का विषय इसी तामस प्रकरण के अन्तर्विभाग प्रमेय प्रकरण में आया है। पहले प्रकरण में प्रभु अपने निःसाधन भक्तों के निरोध के लिये उन्हें प्रेमदान देते हैं, फिर प्रमेय में वही प्रेम विकसित होकर आसक्ति रूप बन जाता है और साधन में भक्ति मार्गीय साधन द्वारा वह व्यवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस अवस्था में शुद्ध भक्ति का फल प्रभु के साथ रमण अर्थात् रास लीला होती है। इस प्रकार वल्लभाचार्य ने तामस प्रकरण के चार अन्तर्विभागों की परस्पर संगति दिखाई है। उन्हें भक्ति की चार अवस्थाएँ अर्थात् स्नेह, आसक्ति, व्यसन और तन्मयता कहा जा सकता है। वेणुगीत व्रज भक्तों की आसक्ति के बहिर्गमन कराने का प्रयास है। संगीत, काव्य और भक्ति सभी दृष्टियों से वेणुगीत का बड़ा महत्त्व है। इस सूत्र को ग्रहण करके हिन्दी, मराठी और गुजराती के कवियों ने न जाने कितने काव्य लिखे हैं।

भक्ति मार्ग का अति उत्तम सिद्धान्त इस गीत में गूँथा गया है। इसमें भगवान् स्वयं अपने शब्द द्वारा चराचर सृष्टि को तल्लीन करते हैं। संगीत का महत्त्व और प्रभाव जगत् के सम्पूर्ण साहित्य में बताया गया है। ग्रीक साहित्य में Oxphense का वर्णन है, जो संगीत के प्रभाव से चराचर जगत् को हिला देता, वायु के वेग को रोक सकता और पर्वतों को गति दे सकता था। मिल्टन ने अपने 'पैराडाइज लॉस्ट' में भी यही लिखा है कि जब ईश्वर ने इस सृष्टि की रचना की तो उसने पहले बिखरे हुए महाभूतों को संगीत के द्वारा एकत्र किया और सृष्टि की रचना की। ड्राइडन इसी बात को अपने 'सेन्ट असीलिया' की प्रार्थना में दिखलाता है कि संगीत में केवल वस्तु के सृजन करने की ही नहीं किन्तु लय करने की भी शक्ति है। स्टीवेन्सन ने अपने 'पैन्स् पाइप्स्' नामक लेख में वंशी बजाते हुए पैन अर्थात् प्रकृति देव की कल्पना की है। भागवतकार ने भी इसी प्रकार वेणुगीत में संगीत को अलौकिक शक्ति का परिचय कराया है। सूरदास ने मुरली सम्बन्धी इतने पद लिखे है कि वह अलग खण्ड काव्य का रूप धारण कर सकते हैं।

वेद में भगवान् के दो स्वरूप बतलाए गए हैं। नाम और रूप। वेणु गीत भगवान् के नामात्मक स्वरूप का बोध कराता है। 'वेणु' शब्द में 'व' 'इ' 'अणु' इस प्रकार तीन अक्षर हैं। 'व' का अर्थ ब्रह्म सुख, 'इ' का अर्थ काम का सुख, और 'अणु' का अर्थ है 'तुच्छ'। अर्थात् जिस सुख के सामने सांसारिक तथा आध्यात्मिक सुख 'अणु' अर्थात् तुच्छ हो जाते है उसे 'वेणु' कहते है। वेणु में सात छेद है। उनमें से छः छेद तो भगवान् के ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्य के द्योतक है एवं सातवां उपर्युक्त ६ धर्मों से युक्त अप्राकृत देहधारी स्वयं भगवान् का बोध कराता है। श्रीवल्लभाचार्य ने अपनी सुबोधिनी टीका में वेणुगीत का बड़े विस्तार से अर्थ किया है और सारे ही गीत को उन प्रभु में आसक्ति द्वारा निरोध सिद्ध कराने के लिए बताया है इस गीत के कुल बीस श्लोक हैं पहले श्लोक में वर्णित वृन्दावन प्रवेश दूसरे में वेणु कूजन ये गोपियों की आसक्ति को उद्दीप्त

करने वाले हैं। 'वृन्दा' का अर्थ है भक्ति और 'वन' का अर्थ है प्रवेश अतः वृन्दावन का अर्थ हुआ भक्ति का प्रवेश। अपने स्वरूप के प्रति गोपियों की आसक्ति कराने के लिए भगवान् भी ज्ञान और कर्म को छोड़कर भक्ति के प्रदेश में प्रवेश करते हैं। इसलिए पहले श्लोक में वृन्दावन प्रवेश का वर्णन है। वहाँ प्रवेश करके भगवान् गोपियों को अलौकिक साधन से आसक्ति का दान करते हैं। इस प्रकार पहले दो श्लोकों का स्थान और साधन की अलौकिकता बतलाकर तीसरे श्लोक में आसक्ति जागृत होने पर गोपियाँ भगवान् के स्वरूप और लीला का वर्णन करती हैं। यह वर्णन विद्या अर्थात् स्वरूप और लीला के ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। इसलिए फिर विद्या का वर्णन है। वल्लभाचार्य ने विद्या के पाँच प्रकार माने हैं। सांख्य, योग, तप, वैराग्य और भक्ति। 'रस घन प्रभु ही मेरे सर्वस्व हैं' इस निश्चय का नाम ही सांख्य है। अन्तःकरण की वृत्ति मात्र का प्रभु में लगा रहना ही 'योग' है। भगवान् के विरह में ताप और क्लेश का अनुभव करना 'तप' है। एक प्रभु को छोड़कर अपर वस्तु में चित्त का न जाना ही 'वैराग्य' है। ऐसी आसक्ति जिसमें लेशमात्र भी आसक्ति न हो भक्ति कहलाती है। इस विद्या के फल प्रभु हैं तथा उन प्रभु के स्वरूप का वर्णन वेणु गीत में दिया गया है।[1] वेणु गीत का तात्पर्य भक्तिमार्ग की स्थापना में है। भागवत में वेणु गीत में वेणु का प्रभाव बतलाते हुए लिखा है—

"अस्पन्दन गतिमतां पुलकस्तरूणाम्"[2] अर्थात् बाँसुरी की तान से मनुष्यों की तो बात ही क्या सभी चलने वाले पशुपक्षी और जड़ नदी आदि स्थिर हो जाते हैं, तथा अचल वृक्षों को भी रोमाञ्च हो आता है।

चीर हरण लीला के विषय में भी अनेक प्रकार से आध्यात्मिकता का आरोप किया गया है। यद्यपि श्रीकृष्ण की आयु चीर हरण लीला के समय केवल आठ नौ वर्ष की थी और उस समय कामोत्तेजना का प्रश्न उपस्थित नहीं होता परन्तु आध्यात्मवादी लोग इन लीलाओं को भौतिक रूप में नहीं देखते। वे तो कृष्ण को आत्मा के रूप में देखते हैं और गोपियों को वृत्तियों के रूप में। वृत्तियों का आवरण नष्ट होना ही 'चीर हरण लीला' है और उनका आत्मा में रम जाना ही 'रास' है। गोपियाँ ब्रह्मानुभवकारिणी भक्तिसाधिका हैं। अनेक जन्मों के पुण्य-फल स्वरूप उन्हें परमात्मा श्रीकृष्ण प्राप्त हुए हैं। उनकी अहं बुद्धि को छुड़ाने के लिए भगवान् ने यह लीला की और इसलिए भगवान् अन्त में गोपियों से कहते हैं—

"यानाबला व्रज सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः॥[3]

अर्थात् 'हे कुमारियो! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गई है। तुम आने वाली शरद् रात्रियों में मेरे साथ विहार करोगी। इसी उद्देश्य से तुमने यह व्रत और कात्यायनी देवी की पूजा की थी।

---

१ श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध वेणु गीत श्लोक ७–२०
२ वही श्लोक १९
३ " " अध्याय २२ श्लोक ७

भगवान् ने चीर हरण लीला मे गोपियो की साधना को पूर्ण किया है। गोपियाँ कृष्ण के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण चाहती थीं परन्तु उनके समर्पण मे कमी थी। वे निरावरण रूप से श्रीकृष्ण के सम्मुख नही जारही थी। उनमें कुछ झिझक थी। उनकी साधना को पूर्ण बनाने के लिए उन्हे निरावरण करना आवश्यक था। भक्ति की दृष्टि मे भी वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति में है और रागात्मिका भक्ति की परिणति पूर्ण आत्मसमर्पण मे है। गोपियो ने वैधी भक्ति का अनुष्ठान किया था और उनका हृदय रागात्मिका भक्ति से परिपूर्ण था। चीर हरण लीला से पूर्ण आत्मसमर्पण का कार्य सम्पन्न हुआ। गोपियों की इस दिव्य लीला का जीवन उच्चकोटि के साधक के लिए आदर्श जीवन है। श्रीकृष्ण जीव के एकमात्र प्राप्तव्य- साक्षात् परमात्मा है। उनकी यह लीला अपार और अप्राकृत है। श्रीकृष्ण उनके वस्त्रो के रूप मे उनके समस्त संस्कारो के आवरण अपने हाथ में लेकर पास ही कदम्ब के वृक्ष पर चढ़कर बैठ गए। गोपियाँ जल मे थी। वे जल मे सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् से मानो अपने को प्रच्छन्न समझ रही थीं। यह उनकी भूल थी। इसी का सुधार श्रीकृष्ण करना चाहते थे। हम ससार के अगाध जल मे आकण्ठ मग्न है और भगवान् को भूल गये है। भगवान् यही बतलाते हैं कि भक्तो। सस्कार शून्य होकर निरावरण होकर, माया का परदा हटाकर मेरे पास आओ। तुम्हारा मोह का परदा मैंने छीन लिया है अब तुम परदे के मोह में क्यों पडे हो। यह परदा ही तो परमात्मा और जीव के बीच बड़ा व्यवधान है यह केवल भगवत्प्रेम से ही दूर हो सकता है। भगवान् के सम्पर्क से यह परदा भी प्रसाद रूप हो जाता है। यही चीर हरण लीला का आध्यात्मिक पक्ष है।

रास लीला के विषय मे भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है। रास लीला की व्याख्या भी कई प्रकार से की गई है। ब्रज लीला की पराकाष्ठा रास लीला में है। आत्माराम श्रीकृष्ण की आत्मा राधिका है। वशी उनकी प्रेम रूपिणी है। जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्ब के साथ क्रीडा करता है उसी प्रकार कृष्ण ने बहुधा विभक्त आत्मा-रूपिणी ब्रज गोपिकाओं के साथ रास लीला करने के लिए सुखमयी रजनी मे सुन्दर यमुना पुलिन पर प्रेम वंशी के शब्द से सकेत ध्वनि की। 'रास' शब्द का मूल 'रस' है, और रस स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ही है। 'रसो वै स'। जिस दिव्य क्रीड़ा में अनेक रस एक ही रस मे होकर अनन्त अनन्त रस का आस्वादन करे, एक रस ही रस समूह के रूप मे प्रकट होकर स्वय आस्वाद्य आस्वादक लीला धाम और विभिन्न आलम्बन एव उद्दीपन के रूप मे क्रीडा करे उसका नाम रास है। विश्व की नियम बद्ध गति को भी रास कहा गया है। विश्व मे गति ही प्रधान है। यह गति नियम बद्ध होती है। इसी नियम बद्ध गति से विश्व का प्रादुर्भाव और इसी में विलय है जो इसका रहस्य समझता हुआ इसमे प्रवृत्त होता है वही इसके सच्चे आनन्द का अनुभव कर सकता है। भगवान् अपने मधुर आह्वान से प्रत्येक व्यक्ति को रास के लिए बुलाते है जो अपना अहभाव छोड कर इस ओर अग्रसर होता है वही इस आनन्द की प्राप्ति करता है।

योग की दृष्टि से भी रास का महत्त्व इसी प्रकार समझा जा सकता है। अनाहत नाद ही भगवान् श्रीकृष्ण की वशी ध्वनि है। अनेक नाडियाँ ही गोपिका है। कुल कुण्डलिनी ही राधा है और मस्तिष्क का सहस्र दल कमल ही वह वृदावन है जहाँ आत्मा और

का सुखमय मिलन होता है जहं पहुंचकर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा का सम्पूर्ण शक्तियां सुरम्य रास रचती हुई नृत्य किया करता है आचार्य वल्लभ ने रास पंच याची को समाधि भाषा मे लिखा कहा है। अत. इसका रहस्य अनेक दृष्टियो स समझा जा सकता है। भगवान् कृष्ण आनन्दानुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति है और यह रास परमउज्ज्वल रस का एक प्रकार है। साम्प्रदायिकों ने रास को केवल एक रूपक या कल्पना मात्र ही नही माना है बल्कि उसे सत्य स्वीकार किया है। भेद केवल इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री पुरुषो का मिलन न था। उसके नायक थे सच्चिदानन्द-विग्रह पूर्णतया स्वाधीन और निरकुंश स्वेच्छाचारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन और उनकी नायिका थी स्वय उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिका और उनकी काय व्यूह रूपा घनीभूत मूर्तियाँ श्री गोपीजन। इसलिए उनकी यह लीला अप्राकृत थी। शुकदेव जी ने परीक्षित् के प्रश्नों के उत्तर मे इस बात का समर्थन किया है।[१]

रास लीला को एक वैज्ञानिक स्वरूप भी दिया गया है। एक मुख्य केन्द्र के आकर्षण के अनुसार उसके चारो ओर गतिमान् श्रुतियो की जो गति होती है उसे 'रास' कहते हैं। जैसे सौर जगत् मे सूर्य केन्द्र है उसके आसपास ग्रह और उपग्रहो की मण्डली है जो अपने केन्द्र सूर्य के आकर्षणानुसार अपनी विशेष गति से गतिमान् है। उनकी यह गति उनकी रास लीला है। सौर जगत् की ही भाँति मनुष्य के अन्दर भी रास-लीला हुआ करती है। मनुष्य के शरीर में उसका हृदय केन्द्र है और विभिन्न अंग उससे शक्ति लाभ करते हुए समग्र शरीर की रक्षा के लिए अपने-अपने जो कर्तव्य करते है, वह भी एक रास-लीला है। इसी प्रकार विश्व रूप वृत्त मे भगवान् श्रीकृष्ण परम केन्द्र है, प्रकृति उसकी परिधि है और जीवात्मा गण इस प्राकृतिक चक्र में पडकर अपने केन्द्र को बिलकुल भूल गए है। पीछे ज्ञान के द्वारा उनकी आत्मविस्मृति दूर होती है और ये जीवात्मा रूप सरल रेखाएँ परिधि को त्याग कर अपने केन्द्र से आकृष्ट होकर केन्द्र की ओर जाती हैं। यह अपने केन्द्र की ओर आना ही विश्व की आध्यात्मिक रास लीला है जो नित्यप्रति होती रहती है। इसी नित्य रास लीला का अभिनय व्रज में रासोत्सव के रूप में किया गया यह अभिनय गोपी रूप जीवात्माओ का अपने परमकारण परमात्मरूप श्रीकृष्ण के साथ युक्त होना था। यह आत्मा और परमात्मा का मिलन था न कि दो स्थूल शरीरो का। इसलिए इस रास लीला मे प्रवेश करने का अधिकार उसी को है जिसने प्राकृतिक नानात्व की वासना और ममता तथा स्वकीय अहभावरूप पुरुषभाव को सर्वथा त्याग दिया है और अपनी आत्मा को भगवान् की शक्तिमात्र मानकर उनकी दी हुई वस्तु उन्ही को समर्पित करने के लिए सदा लालायित रहता है। यही गोपी भाव है। इस गोपी भाव मे पगे हुए अपने भक्त के बिना भगवान् को चैन नही पड़ता और जब यथासमय वे उसका आह्वान करते है तो दोनो का मिलन होता है जिसे रास-लीला कहते है। रास-लीला को भगवान् श्रीकृष्ण ने भविष्य के भक्तो के हितार्थ बाह्य रूप मे भी अभिनय करके दिखलाया जहाँ गोपियाँ आत्मसमर्पण की मूर्तियाँ थी और भगवान् श्रीकृष्ण स्वय परमेश्वर थे। यह आत्मा परमात्मा का मिलन बाहर से बाँह पकडने के समान है जिससे दोनो मुक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार श्री भगवान् ने रास-लीला मे गोपियों के हाथो को अपने हाथों में लेकर उनसे नृत्य कराया, उसी प्रकार समर्पित-आत्मा भक्त की सारी चेष्टाएँ और क्रियाएँ भगवान् के द्वारा ही सचालित होती है।

१ श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ३३ श्लोक १२ १६

दोनों की भावगति एक हो जाती है। उनका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्त्व नही रहता। भगवान् उसका निमित्त रूप से विश्व लीला में विश्व हितार्थ यंत्रवत् उपभोग करते हैं। यही रास-लीला का यथार्थ भाव और रहस्य है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्ति ग्रन्थ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आचार्य-चरणशङ्कर के अद्वैत ने बुद्धि-पक्ष को इतने उत्कर्ष पर पहुँचा दिया कि उसके अवलम्ब के विना हृदय-पक्ष का विवेचन सम्भव ही नही था। श्रीमद्भागवत मे उसी अद्वैत सिद्धान्त को भक्ति की परिधि मे बाँधने का सुन्दर प्रयास किया है। साथ ही साथ भागवतकार का दृष्टिकोण समन्वय परक रहा है। इसलिए प्राय: सभी दर्शनो के मूल तत्त्वो का विवेचन किसी न किसी रूप में इस महनीय ग्रन्थ मे हो गया है। किसी एक दार्शनिक सिद्धान्त का विवेचन भागवतकार का लक्ष्य नही है। यही कारण है कि ब्रह्म, जीव और माया के विषय मे भागवतकार की कोई निश्चित और सुनियोजित धारणा खोजना कठिन कार्य है। इस प्रकार के समन्वयात्मक प्रयास भारतीय वाङ्मय मे पहले भी होते रहे है। वास्तव मे प्रस्थानत्रयी के ग्रन्थ इसी परम्परा के है। श्रीमद्भागवत मे पुराणत्व का समावेश होने से उसका रूप बदल गया है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, कहकर भागवतकार निर्गुण और सगुण के विरोध को बड़ी सफाई से बचा देता है।

'श्रीमद्भागवत में भक्ति'

श्रीमदभागवत एक अलौकिक ग्रन्थ है। इसमे वर्णाश्रम धर्म, मानव-धर्म, कर्मयोग, अष्टाङ्ग योग-ज्ञान योग और भक्ति-योग आदि भगवत्-प्राप्ति के सभी साधनों का बडा विशद वर्णन है; परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके है कि इस महापुराण मे भगवद्भक्ति का ही विशेषरूप से निरूपण है। भागवत का प्रयोजन ही भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना है। जैसा कि हम अभी देखेंगे। ग्रन्थ के आदि मध्य और अन्त मे भक्ति का ही विवेचन हुआ है। भागवत के माहात्म्य मे भक्त के कष्ट की निवृत्ति के लिये ही भागवत की रचना बताई है। भक्ति का विषय बडा व्यापक तथा महत्त्व-पूर्ण है। वैदिक काल से लेकर पौराणिक युग तक भक्ति अनेक स्वरूपों में दिखाई देती है। भक्ति के विकास का विषय बडा ही विस्तृत है जो हमारे प्रस्तुत निबन्ध के बाहर की वस्तु है। हम बहुत सक्षेप मे भक्ति का विकास दिखाने का प्रयास करेंगे।

भक्ति का विकास

भारतीय धर्म पद्धति मे लोक धर्म के तीन अवयव है, कर्म, ज्ञान, और उपासना। प्राचीन काल से ही ये तीनों अवयव भारतीय धर्म-साधना में प्रतिष्ठित हैं। वास्तव मे ये तीनों ही मानव जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं। परन्तु देश काल की परिस्थितियों के अनुकूल इनमे से कभी एक का प्राबल्य रहता है तो कभी दूसरे का। इनके अनुपात को सुव्यवस्थित और सुमर्यादित बनाना ही भारतीय धर्म साधना की मौलिकता रही है। वैदिक काल मे हमें तीनों अवयवों के दर्शन होते हैं। वेदो मे प्राकृतिक शक्तियो को दैवी रूप दिया गया है और उनकी उपासना के अनेक मन्त्र वेदो में मिलते हैं। ज्ञान पक्ष मे सब देवताओ को एक ही ब्रह्म के नानारूप बताया गया है।

> इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
> एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु।
>
> ऋग्वेद १—२। १६४—६४

एक ओर वेदो मे जहाँ इस प्रकार ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा है दूसरी ओर द्रव्य-यज्ञ का भी विधान है जो एक प्रकार से उपासना का ही बाह्यरूप है। बहुत से काम्य और नैमित्तिक यज्ञो का विधान वेदो मे है। देवताओ के निमित्त इन यज्ञो का विधान हुआ है और इनके साथ साथ वैदिक ऋषियो ने अपनी सहृदयता और भावुकता का भी परिचय दिया है जो देवताओ की स्तुति, नदियाँ, ऊषा इत्यादि के सम्बन्ध में सौन्दर्य भावना और शुद्ध अनुराग द्वारा प्रेरित रमणीय उक्तियो के रूप मे प्रकट हुई है। वैदिक काल मे ही ब्रह्म की निराकार

उत्पन्न हो चुकी थी ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे ईश्वर की भावना पुरुष के रूप मे

की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे इसी भावना को और विशेष रूप दिया गया है जहाँ यह कल्पना पुरुष नारायण के रूप मे हो गई है। यह कहा जा सकता है कि मन्त्र काल या वैदिक काल मे परमेश्वर की विभिन्न शक्तियो का साक्षात् करके उनको एक समष्टि शक्ति के रूप मे ग्रहण किया गया और फिर ब्राह्मण काल मे बुद्धि और कल्पना के बल पर उस शक्ति के स्वरूप का परिचय दिया गया। शतपथ ब्राह्मण मे इस प्रकार के अनेक विधान मिलते है जहाँ पुरुष नारायण की कल्पना की गई है। इसे हम ज्ञान और उपासना का योग कह सकते है अथवा बुद्धि और हृदय की समन्वित क्रिया। उपनिषदो मे भी इस प्रकार की भावना स्पष्ट लक्षित होती है, जैसे ब्रह्म को अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय देखना उसे अपनी अन्त. सत्ता के बाहर वाह्य-जगत् में देखने का विधान है—

अन्न ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।

तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली।

इसी अन्नोपासना की पद्धति से ब्रह्म की भावना विष्णु रूप में प्रतिष्ठित हुई। ब्रह्म के भिन्न-भिन्न प्रतीक माने गये। मत्र काल की समष्टि शक्ति बुद्धि और कल्पना का योग पाकर अनेक नाम रूपो मे सामने आई। इसलिए उपनिषद् काल में दो मार्ग दिखाई देते है, (१) निवृत्ति परिज्ञान मार्ग—वृहदारण्यक तथा कठोपनिषद् आदि मे तथा (२) कर्म परिज्ञान मार्ग ईशावास्यादि उपनिषद् मे। इसी कर्म परिज्ञान मार्ग से भक्ति मार्ग का विकास हुआ। इस मार्ग मे बुद्धि और हृदय दोनो का सयोग है। वृहदारण्यक उपनिषद् मे आया है कि ब्रह्म के मूर्त्त और अमूर्त्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और चल दोनो ही रूप है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् मे आत्मा को अणु से अणु और महान् से महान् बताया है।

अणोरणीयान् महतोमहीयान्,
आत्मा गुहायां निहतोऽस्य जन्तो:। (श्वेत० ३–२०)

उपनिषदों मे इस प्रकार की अनेक कथाएँ है जिनमें ब्रह्म के मूर्त्त और अमूर्त्त दोनो ही रूपों की व्याख्या की गई है, और अन्त मे उसे मूर्त्त और अमूर्त्त दोनो ही से परे बताया है। याज्ञवल्क्य ने उसे नेति नेति कहा है जो अव्यक्त का विश्लेषण है, 'नेति नेति हो वाच याज्ञवल्क्य'। वृहदारण्यक २–१ में गार्ग्य बालाकि ने अजात शत्रु को पहले ब्रह्म को मूर्त्त बतलाया है। फिर अमूर्त्त और फिर अन्त मे दोनो से परे उसकी सत्ता बतलाई है। उपनिषदो मे विशुद्ध तत्त्व ज्ञान के लिए ब्रह्म को निर्गुण और अव्यक्त कहा गया है पर उपासना के लिए उसका सगुण रूप ही सामने रक्खा गया है। तात्त्विक रूप मे ब्रह्म की भावना एकत्व विशिष्ट ही थी जैसे—

त्व ब्रह्मा त्व च वै विष्णुस्त्व रुद्रस्त्व प्रजापति:।
त्वमग्निर्वरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्व निशाकर:॥
त्वं मनुस्त्वं यमश्च त्व पृथ्वी त्वमथाच्युत:।
स्वार्थे स्वाभाविकेऽर्थ च बहुधा तिष्ठते दिवि

परन्तु उपासना के लिए उसको सगुण और व्यक्त माना गया किसी एक व्यक्ति को उस अव्यक्त का प्रतीक मान कर उस पर आस्था रखना विधि ठहराई गई। वैदिक काल की पूजा जो केवल द्रव्य यज्ञ द्वारा ही सम्पादित होती थी और जिसमे भय लोभ या कृतज्ञता के ही भाव रहते थे, अब कुछ परिष्कृत हुई क्योंकि ब्रह्म के स्वरूप का कुछ बोध हुआ और उस पूजा ने श्रद्धा समन्वित उपासना का रूप धारण किया तथा द्रव्य-यज्ञ का स्थान अब ज्ञान-यज्ञ ने लिया जिसका अभिप्राय बुद्धि और हृदय का योग है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार यह यज्ञ-विद्या घोर अङ्गिरस द्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को वतलाई गई। द्रव्य यज्ञ से इस ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता का उल्लेख श्रीमद्भगवद् गीता में भी है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञ. परतप।

गीता ४—३३

इस यज्ञ मे ज्ञान और कर्म दोनो का समन्वय है। मन की बोध वृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनो सम्मिलित है। धीरे-धीरे मन की रागात्मिका वृत्ति को प्रधानता मिलती गई और भागवत धर्म की प्रतिष्ठा हुई। विष्णु नारायण वासुदेव कृष्ण आदि विभिन्न स्वरूप उस ब्रह्म के हुए। इसका विवेचन हम दूसरे प्रकरण मे कर चुके है। श्रीकृष्ण भागवत धर्म के मुख्य आधार रहे है। प्रारम्भ में कृष्ण मे लोक रञ्जक और लोक रक्षक दोनो रूपो का समन्वय था। धीरे-धीरे कृष्ण का लोक रक्षक रूप तिरोहित होता गया और केवल ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति बढ़ती गई जो अत्यन्त घनिष्ट प्रेम का आलवन हो सके। श्रीमद्भागवत इसी प्रवृत्ति का मधुर फल है जिसमे भागवत की माधुर्य विभूति को प्रधानता दी गई है। गीता मे भक्ति का कर्म-ज्ञान-समन्वित रूप है परन्तु भागवत मे तो कर्म और ज्ञान से अलग भक्ति का ही एक स्वतन्त्र क्षेत्र तैयार किया गया है। इस भक्ति के स्वतन्त्र क्षेत्र का विवेचन भी पूर्ण रूप से हुआ है। शाण्डिल्य सूत्र, नारद सूत्र, तथा नारद पञ्चरात्र आदि मे भक्ति के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। सभवत ये तीनो ही ग्रन्थ भागवत के बाद के है। शाण्डिल्य सूत्र पहले का हो सकता है। नारद पचरात्र मे यत्र-तन्त्र का भी समावेश है परन्तु श्रीमद्भागवत मे ज्ञान या स्वरूप बोध के लिए तत्त्व चिन्तन की स्वाभाविक पद्धति ही स्वीकृत है। आगे चलकर वैष्णव सम्प्रदायो ने इस भक्ति पद्धति को और भी महत्त्व प्रदान किया। भागवत को आधार मानकर साम्प्रदायिक आचार्यो ने भक्ति का विशाल भवन उपस्थित किया। इन सम्प्रदायो मे भक्ति को शास्त्रीय रूप देने वाले दो ही सम्प्रदाय है, चैतन्य सम्प्रदाय तथा वल्लभ सम्प्रदाय। चैतन्य सम्प्रदाय के रूप गोस्वामी ने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रन्थ लिखकर भक्ति रस की स्थापना की। इन ग्रन्थो को हम भक्ति रस शास्त्र भी कह सकते हैं। इनमे भक्ति रस की विवेचना आलकारिक ढग से हुई है। वल्लभ सम्प्रदाय मे भी वल्लभाचार्य ने स्वय भक्ति को पुष्टिमार्गीय रूप देकर उसकी विशद विवेचना की है। उनके बाद विट्ठलनाथ जी के समय मे भक्ति का स्वरूप और भी व्यापक तथा वैज्ञानिक हुआ। इन सम्प्रदायो के भक्ति ग्रन्थो मे यद्यपि मुख्य रूप से ब्रह्म सूत्र श्रीमद्भगवद् गीता तथा कुछ पुराण ही आधार है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद पञ्चरात्र तथा नारद भक्ति सूत्र आदि भक्ति परक ग्रन्थों का भी इन्होंने पूरा-पूरा उपयोग किया है वास्तव में इन दोनो ही ों में भागवत की नवधा भक्ति के अतिरिक्त प्रेमाभक्ति को विशेष महत्त्व दिया है

भक्ति की व्याख्या

भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु मे क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनाया है जिसका अर्थ है भगवान् का सेवा प्रकार। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है, 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है—शाण्डिल्य भक्ति सूत्र भक्ति चन्द्रिका, सम्पादक श्री गोपीनाथ कविराज पृष्ठ ५। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति का लक्षण इस प्रकार बताया है—

(१) सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा (२) अमृत स्वरूपा (३) यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति, (४) यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति (५) यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति। अर्थात्—वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी है। जिस परम प्रेम रूप और अमृत रूप भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है। जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न किसी वस्तु मे आसक्त होता है और न उसे विषय-भोगों की प्राप्ति मे उत्साह होता है तथा जिसको प्राप्त करके मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम बन जाता है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

> स वै पुंसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
> अहैतुक्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा सुप्रसीदति॥ १–२–६

अर्थात् मनुष्यो के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान् श्रीकृष्ण मे भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी जिसमे किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति की बडी विस्तृत व्याख्या की गई है, इस ग्रन्थ के चार विभाग है, पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर। पूर्व विभाग मे चार लहरी हैं। प्रथम लहरी मे सामान्य भक्ति का स्वरूप बताया गया है और उसे उत्तमा भक्ति से, जो अन्याभिलाष शून्य आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन स्वरूपा है, भिन्न बताया है। दूसरी लहरी मे साधना भक्ति का स्वरूप बताया है और साधना भक्ति के वैधी और रागानुगा दो भेद बताये हैं। तृतीय लहरी मे भाव भक्ति का विवेचन है और चतुर्थ में प्रेम भक्ति का।

वल्लभाचार्य ने शास्त्रार्थ प्रकरण मे भक्ति का लक्षण इस प्रकार कहा है—

> माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक.।
> स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥
> त० दी० नि० ज्ञानसागर बम्बई श्लोक ४६ पृष्ठ १२७।

अर्थात् भगवान् मे माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ और सतत स्नेहो ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सरल उपाय नही है। इन सभी लक्षणों में दो बातो पर जोर दिया गया है— (१) ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम तथा (२) अन्य सासारिक वस्तुओ से वैराग्य। और भी अनेक आचार्यों ने भक्ति के लक्षण किए हैं परन्तु हमारा अभिप्राय तो केवल श्रीमद्भागवत की भक्ति का प्रदर्शन है। की भक्ति का हम तीन प्रकार स निरूपण करेंगे

(१) श्री मद्भागवत में विशुद्ध भक्ति २) में नवधा भक्ति तथा (३) श्री मद्भागवत में प्रेमा भक्ति।

श्रीमद्भागवत में विशुद्ध भक्ति

जैसा कि हम पहले कह चुके है श्रीमद्भागवत के आदि मध्य और अन्त मे भक्ति का ही वैशिष्ट्य है। प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय मे भागवतकार ने भक्ति का स्वरूप बतलाया है, फिर बारहवे स्कन्ध के अन्त मे कहा गया है, 'देवताओं के आराध्यदेव सर्वेश्वर आप ही हमारे एकमात्र स्वामी और सर्वस्व है, अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि बार-बार जन्म ग्रहण करते हुए भी आपके चरण कमलों में हमारी भक्ति बनी रहे। जिन भगवान् के नामो का सकीर्तन सारे पापो को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान् के चरणो मे आत्म-समर्पण तथा प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दु:खो को शान्त कर देती है उन्ही परम तत्त्व रूप श्रीहरि को मै नमस्कार करता हूँ।"

भागवत स्कन्ध १२ अध्याय १३ श्लोक २२, २३

इस प्रकार भागवतकार भक्ति की परिभाषा से ग्रन्थ का प्रारम्भ करता है और भक्ति की प्रार्थना पर ही समाप्त करता है। बीच-बीच में भक्ति के अनेक विवेचन भागवतकार ने किए है। श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अध्यायो का विषय एक प्रकार से भक्ति ही है। तृतीय स्कन्ध के २५वे अध्याय मे भक्ति योग की महिमा का वर्णन और २९ वें अध्याय मे भक्ति का मर्म बतलाया गया है। चतुर्थ और पञ्चम अध्याय मे भगवान् की भक्ति का क्रियात्मक स्वरूप है जो स्तुति और स्तोत्रो से प्रकट होता है। षष्ठ स्कन्ध को भक्ति का केन्द्र बताया जाता है क्योकि उसमे नर देव और दैत्य सभी पर भगवान् ने अनुकम्पा की है। सप्तम स्कन्ध भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद के आख्यान द्वारा भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करता है। अष्टम तथा नवम स्कन्ध में भी भागवतकार ने भक्ति का महत्त्व प्रदर्शित किया है। दशम स्कन्ध तो भगवान् कृष्ण की लीलाओं का स्कन्ध होने के कारण साक्षात् भक्ति का स्वरूप ही है। फिर एकादश स्कन्ध मे भागवतकार ने भक्ति की पूर्णरूप से व्याख्या की है। अब हम भागवत के भक्ति-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य स्थलों का निर्देश करेंगे। एकादश स्कन्ध के १४वें अध्याय मे भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते हैं, "उद्धव ! मेरी बढी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान, न धर्म, न वेदो का स्वाध्याय न तप और न दान ही करा सकता है। मैं सन्तो का प्रिय आत्मा हूँ, एक मात्र श्रद्धा सम्पन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ है। दूसरो की तो बात ही क्या कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डालादिकों को भी मेरी भक्ति पवित्र कर देती है, मनुष्य मे सत्य और दया से युक्त धर्म हो तथा तपस्या से युक्त विद्या भी हो, परन्तु मेरी भक्ति न हो तो वे धर्म और विद्या उनके अन्त:करण को पूर्णरूप से पवित्र नही कर सकते। मेरे प्रेम से जब तक शरीर पुलकित नहो हो जाता, हृदय द्रवित नही हो उठता, आनन्द के आँसुओ की झड़ी नही लग जाती तब तक ऐसी मेरी भक्ति के बिना अन्त:करण कैसे शुद्ध हो सकता है। भक्ति के आवेश में जिसकी वाणी गद्-गद् हो गई है, चित्त द्रवित हो गया है जो कभी रोता है कभी हँसता है, कभी सकोच छोड़कर ऊँची आवाज से गाने लगता है और कभी नाच उठता है एसा मेरा भक्त स्वय पवित्र है इसमे तो कहना

ही क्या वह तीनो लोको को पवित्र कर देता है जिस प्रकार अग्नि से तपाए जाने पर सोना मैल को त्याग कर अपने स्वच्छ स्वरूप को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार मेरे भक्तियोग के द्वारा आत्मा भी कर्मवासना से मुक्त होकर मुझ भगवान् को प्राप्त हो जाता है।"[१] भगवान् स्वय इस प्रकार के भक्तो के पीछे-पीछे फिरा करते है जैसा कि हमने इसी अध्याय मे कहा है, मैं उन भक्तों के पीछे-पीछे सदा इसलिए फिरा करता हूँ कि उनकी चरणरज से पवित्र हो जाऊँ।[२] नवे स्कन्ध मे भी भगवान् ने अपने को भक्तो के अधीन होने की घोषणा की है। वे दुर्वासा जी से कहते है हे दुर्वासा! मैं सदैव भक्तों के अधीन हूँ, मुझे तनिक भी स्वतन्त्रता नही है, मेरे सीधे-सादे सरल भक्तो ने मेरे हृदय को अपने हाथ मे कर रक्खा है, भक्त जन मुझे प्यार करते है और मै उनको। ब्रह्मन्! अपने भक्तों का एकमात्र आश्रय मै ही हूँ, इसलिए अपने साधुस्वभाव भक्तो को छोडकर न मैं अपने आप को चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मी को ही, जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण धन, इहलोक और परलोक को छोडकर मेरी शरण आगए है उन्हे छोडने का सकल्प भी मै कैसे कर सकता हूँ। जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत से सदाचारी पति को वश मे कर लेती है वैसे ही मेरे साथ अपने हृदय को प्रेमबन्धन से बाँध रखने वाले समदर्शी साधु भक्ति के द्वारा मुझे अपने वश मे कर लेते हैं। मेरे अनन्य प्रेमी भक्त सेवा से ही अपने को परिपूर्ण-कृतकृत्य-मानते है। मेरी सेवा के फलस्वरूप जब उन्हे सालोक्य, सारूप्य आदि चारो मुक्तियाँ प्राप्त होती है तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नही चाहते। फिर समय के फेर से नष्ट हो जाने वाली वस्तुओ की तो बात ही क्या? दुर्वासा जी! मैं आपसे और क्या कहूँ मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय है और उन प्रेमी भक्तो का हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नही जानते और मै उनके अतिरिक्त और कुछ नही जानता[३]।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।[४]

अर्थात्—अनन्य भक्ति के द्वारा हे अर्जुन! मुझे प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है, तत्त्व से जाना जा सकता है तथा एकीभाव से जाना जा सकता है। इसी प्रकार गीता के दशम अध्याय मे भी यही कहा गया है कि मेरे भक्त निरन्तर मुझ मे मन लगाने वाले, मुझ मे ही अपने प्राणो को अर्पण करने वाले मेरी भक्ति की चर्चा द्वारा आपस मे मेरे भाव को जानते हुए और मेरा कथन करते हुए सदा सन्तुष्ट होते है और मुझ मे ही निरन्तर रमण करते हैं। ऐसे निरन्तर ध्यान मे लगे हुए और प्रेम-पूर्वक मुझे भजने वाले भक्तों को मै वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते है। भगवान् की भक्ति से काम क्रोधादि दोष स्वय ही नष्ट हो जाते है और भक्त साधु और धर्मात्मा हो जाता है जैसा कि छटे स्कन्ध में शुकदेव जी कहते है, 'जो मोक्ष के स्वामी भगवान् श्री हरि की भक्ति करता है वह तो अमृत के समुद्र मे खेलता है छोटी तलैया मे भरे गन्दे जल के सदृश किसी भी भोग मे या स्वर्गादि मे उसका मन कभी चलायमान नही होता।[५] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी एक चौपाई मे कहा है—

१ भागवत ११—१४, २०—२५
२ भागवत ११—१४—१६
३ भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ४—६३—६८।
४ गीता ११।५४
५ भागवत ६ १२ २१

बसहि भगति मनि जिहि उरमाहीं खल कामादि निकट नहि जाहीं

इसी प्रकार गीता मे भी आया है।

> अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
> साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ॥
> क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्ति निगच्छति।
> कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त. प्रणश्यति ॥[१]

अर्थात्—यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझ को निरन्तर भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है क्योकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चय जान, मेरा भक्त नष्ट नही होता।

श्रीमद्भागवत की यह विशेषता है कि इसमे ज्ञान वैराग्य और भक्ति से युक्त नैष्कर्म्य का आविष्कार किया गया है तथा भक्ति सहित ज्ञान का निरूपण हुआ है। श्रीमद्भागवत के तीसरे, चौथे, सातवे और बारहवें स्कन्धों में जहाँ कही ज्ञान का प्रसग आया है वहाँ बड़ी युक्ति और अनुभव की भाषा मे निर्गुण तत्त्व का विवेचन हुआ है। ज्ञान की अन्तरग साधना में श्रवण, मनन निदिध्यासन को विशेष स्थान देने पर भी, 'न तत्रोपायसहस्राणाम्' इत्यादि कहकर भक्ति को ही मुख्य माना है इसका कारण यह है कि ज्ञान का आविर्भाव होने के लिए शुद्ध अन्त.करण की आवश्यकता होती हैं और भगवत काम रूप भक्ति अन्य समस्त कामनाओ को नष्ट करने का कारण होने से अन्त.करण शुद्धि का प्रधान साधन है। ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य भागवतकार ने प्रथम स्कन्ध में भगवत् स्वरूप निरूपण में किया है,

> वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
> ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥[२]

ये तीन नाम पृथक्-पृथक् तत्त्वो के नही है। यह एक ही परमतत्त्व की दृष्टि भेद के अनुसार त्रिविध अनुभूतिमात्र है। ज्ञानरश्मि के उदय काल में भगवत् तनु का जो आलोक साधक के शुद्ध सात्विक हृदय पटल पर प्रतिफलित होता है उसे ही ब्रह्म कहते है। यही आलोक पुञ्ज जब विश्वरूप से साधक के हृदयाकाश में प्रतीत होता है तब उसे परमात्मा नाम से कहते है। योगीजन इसका प्रदेशमात्र अर्थात् अँगूठे के समान दीपकलिका के समान दर्शन करते हैं और इसे जगत् का अन्तर्यामी मानते है। ये ब्रह्मानुभव और परमात्मदर्शन दोनो ही भगवत् तत्त्व के खण्ड या अश बोध मात्र है। इस ब्रह्म के प्रतिष्ठान एव परमात्मा के अधिष्ठान भूत परमतत्त्व का भक्तो को जो श्री श्यामरूप मे दर्शन होता है वह भगवान् नाम से निर्देशित किया जाता है। इस दर्शन से जो अनुभव होता है वही भगवान् का विज्ञान-समन्वित परमगुह्य ज्ञान है और यह भक्तिभावित नेत्रों से ही परिज्ञात होता है। भगवान् ने स्वयं ब्रह्मा को अपना तात्त्विक रूप बतलाते हुए कहा है—

---

१ गीता ९ ३० ३१

२ भागवत १ २ ११

भागवत के शब्दो मे भक्त्या सजातया भक्त्या अर्थात् भक्ति की साधना से प्रेमभक्ति का उदय होने पर वे परमात्मा को प्राप्त होकर कृतकृत्य हो जाते है और उन्हे सर्वदा सर्वत्र सब रूप मे भगवान् के ही दर्शन होने लगते है। जो कठोर हृदय के अधिकारी है वे साधन भक्ति का अनुष्ठान करके धीरे-धीरे आत्म-शुद्धि सम्पादन करते है और फिर श्रवण मनन और निदिध्यासन के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करके कृतकृत्य हो जाते है। उनकी दृष्टि मे शरीर और ससार का अस्तित्व नही रहता। वे विशुद्ध चेतन के रूप मे सदा के लिए स्थित हो जाते हैं।

वास्तव में ज्ञान और भक्ति में कोई तात्त्विक भेद नही है, भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति है। जहाँ भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बतलाया गया है वहाँ भक्ति का अर्थ साधन भक्ति है और जहाँ ज्ञान को भक्ति से श्रेष्ठ बताया गया है वहाँ ज्ञान का अर्थ परोक्षज्ञान है। पराभक्ति और परम ज्ञान दोनो एक ही वस्तु हैं। श्रीमद्भागवत मे स्थान-स्थान पर भक्ति और ज्ञान का वर्णन हुआ है। ज्ञान और भक्ति दोनो ही अन्तरङ्ग भाव है। इसीलिए अन्तरंग मे रहने वाले परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। श्रीमद्भागवत मे कहा गया है—

> इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य. पर मन ।
> मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धे: परतस्तु स ॥[1]

अर्थात् इन्द्रियों से परे मन और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है जो साधन जितना ही अन्तरंग होगा वह उतना ही भगवान् के निकट होगा। इस दृष्टि से इन्द्रियो से होने वाले कर्म ज्ञान अथवा भक्ति सहायक होकर ही परमात्मा की भक्ति मे साधन होते हैं। वे स्वय साक्षात् रूप से भक्ति के साधन नही है, चाहे स्वाध्याय, मनन, आचार्य सेवन आदि कर्मो के द्वारा ज्ञान की साधना की जाय अथवा कर्त्तव्य पूजा-पाठ आदि द्वारा भक्तियोग की साधना की जाय, कर्म इन्ही का साधन होगा। जहाँ निष्काम कर्मयोग का निष्ठा के रूप मे वर्णन आया है, वहाँ निष्कामता की ही प्रधानता है, इसलिए वह निष्कामता भक्तियोग के ही अन्तर्गत है क्योकि भगवदर्थ कर्म ही निष्काम कर्म है। कर्म प्राय: तीन प्रकार के माने गए है, निष्काम, सकाम और निरर्थक। निरर्थक कर्म तो निरर्थक ही है। सकाम कार्य दो प्रकार के होते हैं, शास्त्रानुकूल तथा शास्त्र प्रतिकूल। शास्त्र प्रतिकूल कर्म कुछ काल के लिए इस लोक मे सफल हो सकते है परन्तु आगे चलकर उनके फलस्वरूप आसुरी योनि और नरक प्राप्त होता है। शास्त्र के अनुकूल जो सकाम कर्म है।

> एतावदेव जिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनात्मन. ।
> अन्वयव्यतिरेकाभ्या यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥[2]

अर्थात् अन्वय व्यतिरेक तथा प्रत्यक्ष अनुमानादि के द्वारा ही भगवान् के स्वरूप का बोध होता हैं। भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे इस प्रक्रिया का इस प्रकार विश्लेषण किया है, "जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवत् भक्तो के सेवन से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं

---

१ गीता ३ । ४२

२ भागवत स्कन्ध २ अध्याय ६ श्लोक ३५

तो पवित्र कान्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है तब रजोगुण तमोगुण के भाव काम और लोभ शान्त हो जाते है और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुण मे स्थित एवं निर्मल हो जाता है। इस प्रकार भगवान् की प्रेममयी भक्ति से जब संसार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती है, हृदय आनन्द से भर जाता है तब भगवान् के तत्त्व का अनुभव अपने आप हो जाता है। हृदय मे आत्मस्वरूप भगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते है और कर्म-बन्धन क्षीण हो जाता है। इसी से बुद्धिमान लोग नित्य निरन्तर बड़े आनन्द से भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति करते है जिससे आत्मप्रसाद की प्राप्ति होती है।[1]

परन्तु इस विवेचन से यह न समझना चाहिए कि श्रीमद्भागवत मे भक्ति का वर्णन साधन रूप मे ही हुआ है। कई स्थलो पर तो भागवतकार ने ज्ञान और मुक्ति से बढकर भक्ति को बतलाया है। पञ्चम स्कन्ध मे शुकदेव जी परीक्षित् से कहते है—

मुक्ति ददाति कर्हिचित्स्म न भक्ति योगम् ।[2]

अर्थात् भगवान् भक्त को मुक्ति भी सहज ही में दे देते है परन्तु भक्ति-योग को वे सहज मे नही देते। इसी प्रकार भगवान् के भक्त भी चारों प्रकार की मुक्ति में से किसी प्रकार की मुक्ति को स्वीकार करना नहीं चाहते, वे केवल भगवान् की सेवा ही करना चाहते हैं। तीसरे स्कन्ध मे भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति को जो भक्तो की महिमा बताई है उससे यही सिद्ध होता है कि भक्ति साध्य भी है और साधन भी। 'अद्वैत सिद्धि' कार श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने भक्ति रसायन मे साध्य-साधन रूप भक्ति की संगति अधिकारी भेद से लगाई है। वे कहते है कि साधन भक्ति का अनुष्ठान सभी को करना पड़ता है। उसके करने पर अधिकारी भेद प्रकट हो जाता है। दो प्रकार के अधिकारी होते हें, एक तो कोमल हृदय के और दूसरे कठोर हृदय के। कोमल हृदय के अधिकारी वे है जो भगवान् की लीला, दयालुता उदारता, आदि का वर्णन सुनकर ही द्रवित हो जाते हैं। उनकी आँखो से आँसू बहने लगते है, गला रुँध जाता है और शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। ऐसे अधिकारियों के जीवन मे साधन भक्ति के फलस्वरूप साध्य भक्ति का उदय होता है। उनसे इस लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है, परन्तु भगवत् प्राप्ति नही होती है। भगवत् प्राप्ति होती है निष्काम कर्मो से जो सर्वदा शास्त्रानुकूल ही होते है। इसीलिए श्रीमद्भागवत मे निष्काम -भगवत् कर्म को ही निष्काम माना गया है। वास्तव में भागवत मे ऐसे कर्मो को कर्म ही नही माना गया है उनको निर्गुण कहा गया है। वे भक्ति के अन्तर्गत है अथवा स्वयं भक्ति ही हैं। श्रीमद्भागवत मे ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के साथ जोड़ा गया है परन्तु प्रधानता भक्ति को ही दी है। भागवत माहात्म्य मे भक्ति नारद से कहती है कि, "मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र है।"[3] फिर आगे चलकर वह अपना परिचय देती है, "मै द्रविड देश मे उत्पन्न हुई, कर्नाटक में बढी, कहीं-कहीं महाराष्ट्र मे सम्मानित हुई किन्तु गुजरात मे मुझको बुढापे ने आ घेरा, वहाँ घोर

१ भागवत प्रथम स्कन्ध अध्याय २ श्लोक १८ से २२

२ भागवत पंचम स्कन्ध अध्याय ६ श्लोक १८

३ भागवत माहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४५

कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग भंग कर दिया चिरकाल तक यह अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ दुर्बल और निस्तेज हो गई अब जब से मैं वृन्दावन आई तब से पुनः परम सुन्दरी रूपवती नवयुवती हो गई हूँ।[१] इसके उत्तर में नारद ने कहा कि, "सत्य त्रेता और द्वापर इन युगों में ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे किन्तु कलियुग में तो भक्ति ही ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति कराने वाली है।"[२] फिर वे आगे कहते हैं कि, "भगवान् तप वेदाध्ययन ज्ञान और कर्म किसी भी साधन से बस मे नहीं किए जा सकते. वे केवल भक्ति से ही वशीभूत होते हैं। इसमें गोपीजन प्रमाण है। मनुष्यों को सहस्रों जन्म के पुण्य प्रताप से भक्ति मे अनुराग होता है; कलियुग में केवल भक्ति ही सार है, भक्ति से तो साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं जो लोग भक्ति से द्रोह करते हैं वे तीनों लोकों में दुःख ही दुःख पाते हैं; पूर्वकाल में भक्त का तिरस्कार करने वाले दुर्वासा ऋषि को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था; बस व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ, ज्ञान-चर्चा आदि बहुत से साधनों की आवश्यकता नहीं है, एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देने वाली है।"[३] नारद के इन वचनों में भागवत का सारा सार आगया है। श्रीमद्भागवत में भगवद् भक्ति ही को एकमात्र लोक-मंगल का हेतु बताया है और ज्ञानी योगी और भक्त का सामञ्जस्य करके भागवतकार ने भक्ति की महिमा प्रतिपादित की है। श्रद्धा के साथ श्रीमद्भागवत के श्रवण से ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति की प्राप्ति होती है और भक्ति से ही अपने हृदय मे महात्मागण परमतत्त्व रूप परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। इस साधन और साध्यरूपा भक्ति को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि मन की एकाग्रता से भगवान् का नित्य-निरन्तर श्रवण कीर्तन और आराधन आदि भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान् मे परानुरक्ति अथवा अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिभावना प्रेम भक्ति उसका साध्य पक्ष है। भागवत में दोनों ही पक्षों का विवेचन हुआ है। पहले प्रकार की साधन रूपा भक्ति को नवधा भक्ति अथवा वैधी भक्ति कहते हैं तथा दूसरे प्रकार की साध्यरूपा भक्ति को प्रेमा भक्ति अथवा रागानुगा या रागात्मिका भक्ति कहते हैं। वैधी भक्ति को कुछ लोग लोक मर्यादा भक्ति भी कहते हैं। 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' में वैधी और रागानुगा दोनों ही भक्तियों को साधन भक्ति कहा है और पराभक्ति को साध्य भक्ति कहा है;

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा।
यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ॥[४]

इस ग्रन्थ मे भक्ति गौणी तथा परा भेद से दो प्रकार की मानी गई है। गौणी भक्ति के दो भेद किए हैं, वैधी और रागानुगा। रागानुगा के दो भेद हैं, कामरूपा और सम्बन्ध रूपा। यह भक्ति साधन भक्ति है और जब सब कामनाओं से रहित होकर भक्त की ईश्वर में परानुरक्ति हो जाती है वह पराभक्ति कहलाती है। भक्ति ग्रन्थों में भक्ति की भाँति-भाँति से व्याख्या की गई है, उसका विवेचन हमारा उद्देश्य नहीं है। हमतो केवल यही दिखाना चाहते हैं कि श्रीमद्भागवत में साधन और साध्य रूपा दोनों ही भक्तियों का विस्तार से विवेचन हुआ है।

---

१ भागवत माहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४८
२ भागवत माहात्म्य अध्याय २ श्लोक ४
३ भागवत माहात्म्य अध्याय २ श्लोक १८ से २० तक
४ हरिभक्ति रसामृत सिन्धु पूर्व विभाग लहरी २ श्लोक ३

साधन रूपा भक्ति के पाच अ ग माने गये हैं

(१ उपासक

(२) उपास्य—भगवान् और उसके स्वरूप की कल्पना जैसा भागवत मे लिखा है;

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥[1]

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को पूजा की तीन विधियाँ बतलाई है, वैदिक तान्त्रिक और मिश्रित, और अपनी सुविधानुसार इनमे किसी को भी अपनाने का आदेश दिया है। इसी वैधी भक्ति के सम्बन्ध मे भगवान् के पॉच प्रकार के अवतारो का वर्णन हुआ है। १—अर्चावतार—जगन्नाथ रामेश्वर आदि स्थायी विग्रह आदि शालिग्राम नर्मदेश्वर आदि अन्य विग्रह २—विभवावतार—मत्स्य, कच्छप परशुराम आदि अंशावतार ३—व्यूहावतार—वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध अथवा राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न जो परमात्मा जीव मन और अहकार के प्रतिरूप हैं। ४—परावतार—राम-कृष्ण आदि पूर्णावतार जो परमात्मा और सर्वान्तिर्यामी होते हुए भी व्यक्तित्व विशिष्ट है। ५—अन्तर्यामी।

(३) पूजा द्रव्य—उपास्य के पश्चात् तीसरा अंग पूजा द्रव्य है, इसमें कलश, दीप घण्टी आदि तथा पचामृत, वस्त्र, यज्ञोपवीत, पुष्प, चन्दन ताम्बूल आदि सम्मिलित हैं।

(४) पूजा विधि—मानसिक पूजा के लिए ध्यानादि तथा मूर्ति पूजा के लिए षोडश उपचार, आह्वान, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन अक्षतादि पुष्प, तुलसी आदि धूप, दीप, नैवेद्य, जल आचमन, ताम्बूल, फल नीराजना परिक्रमा आदि।

(५) मन्त्र जप—इस विधान मे अनेक मन्त्रों की सृष्टि हुई है। आगे चलकर मंत्र जप में पंच तत्वो को बड़ा महत्त्व दिया गया है। विशेषकर तन्त्र ग्रन्थो मे इनका विस्तार से वर्णन हुआ है। वे पॉच तत्त्व ये हैं, गुरु तत्त्व, मन्त्र तत्त्व तनस्तत्व, देव तत्त्व और ध्यान-तत्व। निर्वाण तन्त्र मे लिखा है—

तत्त्वज्ञानमिद प्रोक्त वैष्णवे शृणु यत्नतः।
गुरुतत्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्तत्त्वं सुरेश्वरी।
देव-तत्त्वं ध्यानतत्त्व पंच तत्वं वरानने।

तथा तन्त्र सार में, 'पञ्चतत्व विहीनाना कलौ सिद्धिर्न जायते' लिखा है। तन्त्र ग्रन्थो मे भक्ति को मन्त्र योग का एक अग माना है और चित्तवृत्ति के निरोध के लिए उसका सहारा लिया है जिससे मन्त्र योगी भाव समाधि मे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करता है।

हम पहले कह चुके है कि रूप गोस्वामी ने वैधी और रागानुगा दोनो ही भक्तियो को साधन भक्ति कहा है तथा साधन भक्ति से परे पराभक्ति को साध्य भक्ति माना है। साधारण रूप से यह पराभक्ति प्रेमभक्ति कहलाती है। वल्लभाचार्य के मतानुसार इस भक्ति की अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् फिर भक्त को किसी साधन नियम की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार आचार्यों ने भक्ति का भाँति-भाँति विवेचन किया है। कुछ लोगो ने साधन भक्ति को वैधी और प्रेम-भक्ति को रागात्मिका माना है। श्रीमद्भागवत मे भक्ति के

---

१ भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय २७ श्लोक १२

सभी प्रकार दिए गए हैं भागवत के तृतीय स्कन्ध में कपिल मुनि देवहूति से प्रसन्न होकर कहते हैं माता ना साधकों के भाव के अनुसार भक्ति योग का अनेक प्रकार से प्रकाश होता है क्योंकि स्वभाव और गुणों के भेद से मनुष्यों के भावों में भी विभिन्नता आ जाती है। जो भेददर्शी को भी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है वह मेरा तामस भक्त है। जो पुरुष विषय, यश, और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेद-भाव से पूजन करता है वह राजस भक्त है। जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिए परमात्मा को अर्पण करने के लिए और पूजन करना कर्त्तव्य है—इस बुद्धि से मेरा भेदभाव से पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है। जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, इसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारवत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्ति योग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त, दिए जाने पर भी मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते। भागवत सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करने वाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणों को लाँघकर मेरे भाव को—मेरे प्रेमरूप अप्राकृतिक स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।"[१]

यहाँ भक्ति के चार प्रकार माने हैं, सात्त्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुण। भागवत के सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद जी ने विष्णु भगवान् की भक्ति के नव भेद बताए हैं।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥[२]

अर्थात्—भगवान् की भक्ति के नौ भेद हैं। भगवान् के गुण लीला नामादि का श्रवण, उन्हीं का कीर्त्तन, स्मरण, उन्हीं के चरणों की सेवा अर्चा वन्दन दास्य सख्य और आत्म-निवेदन। यदि भगवान् के प्रति समर्पण के भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाय तो मैं उसी को उत्तम अध्ययन समझता हूँ। यह नौ प्रकार की भक्ति से नवधा भक्ति कही जाती है जिसको वैधी अथवा साधन भक्ति भी कह सकते हैं। यह भी सकाम और निष्काम दो प्रकार की होती हैं। निष्काम वैधी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति तक भक्त को ले जाती है। इन साधनों का श्रीमद्भागवत में वर्णन हुआ है। इनके द्वारा कर्म-ग्रन्थि छिन्न हो जाती है, अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, रजोगुण एवं तमोगुण के भाव तिरोहित हो जाते हैं और सत्त्वगुण का उद्रेक हो जाता है। हृदय के सत्त्व गुण में स्थित होने से भगवान् की भक्ति का उदय होता है तथा संसार की समस्त मिट

साधन हैं जो वधी भक्ति के विशेष अंग हैं। दास्य सख्य और आत्म-निवेदन ये तीन भाव-सम्बन्धी साधन हैं जो रागात्मिका भक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। श्रीमद्भागवत में पहले और दूसरे साधनों पर विशेष बल दिया गया है। पाद-सेवन अर्चन और वन्दन भगवान् के अवतारों से सम्बन्ध रखते हैं जिनका वर्णन भी भागवत में स्थान-स्थान पर मिलता है। प्रारम्भ में साधक को स्थूल रूप से करना पड़ता है और धीरे-धीरे वह भगवान् के सूक्ष्म रूप में स्थित हो जाता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है, "विश्वेश्वर भगवान् दृष्ट नहीं द्रष्टा है, सगुण और निर्गुण सब इन्हीं का स्वरूप है। जब तक इनमें अनन्य प्रेममय भक्ति योग न हो जाय तब तक साधक को नित्य नैमित्तिक कर्मों के बाद एकाग्रता से भगवान् के स्थूल रूप का ही चिन्तन करना चाहिए।"[1] श्रीमद्भागवत में कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना का निरूपण है परन्तु वह सकाम उपासना भक्ति की कोटि तक नहीं पहुँचती।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के २८वें अध्याय में कपिल भगवान् ने अष्टांगयोग की विधि का जो निरूपण किया है उसे हम एक प्रकार से वैधी भक्ति ही कह सकते हैं जिसके द्वारा चित्त शुद्ध होकर परमात्मा के मार्ग में प्रवर्तित हो जाता है। इस निरूपण में यथाशक्ति शास्त्र विदित कर्त्तव्यों का पालन करना, शास्त्र विरुद्ध आचरण का परित्याग करना तथा नियत आहार-विहार और व्रत दानादि से सावधानता-पूर्वक प्राणों को जीत कर बुद्धि के द्वारा अपने कुमार्ग गामी चित्त को धीरे-धीरे एकाग्र करने की ओर निर्देश है। फिर भगवान् की मूर्ति की ओर ध्यान का विधान बताया गया है, जिस ध्यान के अभ्यास से साधक का श्रीहरि में प्रेम हो जाता है, फिर धीरे-धीरे उसका ध्यान वृत्तिरूपता का परित्याग कर ब्रह्म के रूप में लीन हो जाता है और वह निष्काम भक्ति-योग का अधिकारी हो जाता है। निष्काम भक्ति योग के लिए भगवान् कपिल ने लिखा है कि, "निष्काम भाव से श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्यों का पालन कर, नित्यप्रति हिंसा-रहित उत्तम क्रियायोग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दर्शन, स्पर्श पूजा स्तुति और वन्दना करने, प्राणियों में मेरी भावना करने, धैर्य और वैराग्य के अवलम्बन, महापुरुषों का मान, दीनों पर दया और समान स्थिति वालों के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमों का पालन, अध्यात्म शास्त्रों का श्रवण और मेरे नामों का उच्च स्वर से कीर्तन करने से तथा मन की सरलता, सत्पुरुषों के संग और अहंकार के त्याग से मेरे धर्म का (भागवत धर्म का) अनुष्ठान करने वाले भक्त पुरुष का चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणों के श्रवण मात्र से अनायास ही मुझ में लग जाता है।"[2]

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं श्रीमद्भागवत में इस नवधाभक्ति का स्थान-स्थान पर विवेचन हुआ है। भागवत के उन स्थलों में से कतिपय स्थल दिखाने का प्रयत्न करेंगे। दास्य सख्य और आत्मनिवेदन विशेषकर दशम स्कन्ध के विषय हैं तथा अन्य अंगों की ओर भागवत में स्थान-स्थान पर संकेत मिलता है। छठे स्कन्ध के दूसरे अध्याय में विष्णु दूतों के द्वारा विष्णु नामोच्चारण का महत्त्व बताया गया है। उसमें लिखा है, 'संकेत में, परिहास में, तान अलापने में अथवा किसी की अवहेलना करने में भी यदि कोई भगवान् के नामों का उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।" और फिर आगे चलकर

१ भागवत द्वितीय स्कन्ध अध्याय २ श्लोक १४

२ भागवत तृतीय स्कन्ध अध्याय ६ श्लोक १५ से १६

बताया है कि यद्यपि तपस्या जप दान आदि प्रायश्चितो के द्वारा भी पाप नष्ट हो जाते हैं परन्तु उन पापो से मलिन हुआ उसका हृदय शुद्ध नहा होता भगवान् के चरणो की सेवा से वह भा शुद्ध हा जाता है। इसी अध्याय के अन्त म शुकदेव जी कहते है, 'हे परीक्षित् ! देखो अजामिन्न जैसे पापी ने मृत्यु के समय पुत्र के बहाने भगवान् का उच्चारण किया उसे भी वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई, फिर जो लोग श्रद्धा के साथ भगवान् नाम का उच्चारण करते हैं उनकी तो बात ही क्या है।" इसी स्कन्ध के १२वे अध्याय मे आठवें श्लोक मे कहा गया है, "भगवान् के सकीर्तन मात्र से ही ब्राह्मण पिता गौ माता तथा आचार्य की हत्या करने वाले महा पापी, कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डाल और कसाई भी शुद्ध हो जाते है।"

भगवन्नाम-कीर्त्तन का माहात्म्य तो श्रीमद्भागवत मे विशेष रूप से कहा गया है। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्त्तन पक्ष को अपनी भक्ति मे बड़ा महत्त्व दिया है। उन्होने लिखा है कि, श्रीकृष्णनामकीर्तन चित्तरूपी दर्पण का मार्जन कर्त्ता है, ससार रूप महादावाग्नि का शमन कर्त्ता है, श्रेय रूप कुमुद को विकाश करने वाली चन्द्रिका का प्रकाश कर्त्ता है, विद्या-वधू का जीवन है, आनन्द सिन्धु को बढाने वाला है, प्रतिपद मे पूर्णामृत का आस्वादन देता है एव आत्मा को सर्वप्रकार से निमग्न करता है, ऐसा श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन परम विजय को प्राप्त हो।" श्रीचैतन्य शिक्षाष्टक का यह पहला श्लोक है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणं,
श्रेय कैरव-चन्द्रिका-वितरणं विद्या-वधू-जीवनं।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतस्वादनं,
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण-सकीर्तनम्।[1]

भागवत के प्रथम स्कन्ध मे ही सूत जी ऋषियो से कहते हैं, "श्रीकृष्ण के श्रवण और कीर्त्तन दोनों पवित्र करने वाले है, वे अपनी कथा सुनने वालों के हृदय में आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते हैं क्योंकि वे सन्तो के नित्य सुहृदय है।"[2]

बारहवे स्कन्ध में कीर्त्तन का महत्त्व बताते हुए शुकदेव जी कहते है;

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत ॥[3]

अर्थात् कलियुग में सब दोष ही भरे है परन्तु इसमे एक बड़ा भारी गुण यह है कि श्रीकृष्ण के कीर्त्तन से ही मनुष्य सारे बन्धनो से छूटकर परमात्मा को पा जाता है। ग्यारहवे स्कन्ध मे भक्त उद्धव जी भगवान् श्रीकृष्ण से कहते हैं, 'हे श्रीकृष्ण! जिसको परम मंगल रूप और सुनने में अमृत के समान तुम्हारी लीलाओ का स्वाद मिल गया है वह सारी इच्छाओ को छोड देता है।" बारहवे स्कन्ध मे श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित् से कहते हैं, "अति दुस्तर ससार सागर मे पडे हुए और ससार के विविध दुःखो की भयानक अग्नि से

---

१ श्री चैतन्य शिक्षाष्टक, प्रथम श्लोक
२ भागवत १२–३–५१
३ भागवत ११–६ ४४

जलते हुए जीव के पार जाने और शान्त पाने के लिए श्रीकृष्ण की लीला ही जहाज है और उन लीलाओं का अमृत के समान रस ही शान्ति करने वाला है अत उसी का सेवन करे।"[१] तथा "श्रीकृष्ण की निर्मल निष्काम भक्ति ही यथार्थ परमार्थ है जो इस भक्ति को पाना चाहे वह मन लगाकर शुद्ध चित्त से भगवान् श्रीकृष्ण के अमगल नाश करने वाले, पवित्र चरित्रों का बारम्बार गान करे और सज्जनों के पास बैठकर सदा उन्ही को सुने।"[२]

हरि स्मरण का भी श्रीमद्भागवत मे महत्त्व दिखाया गया है। भागवत के ११वे स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, "जो पुरुष निरन्तर विषय चिन्तन करता है उसका चित्त विषयो मे फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है वह मुझ मे तल्लीन हो जाता है।"[३] दशम स्कन्ध मे भगवान् की स्तुति करते हुए देवता कहते है, "हे भगवन् ! जो पुरुष आप के मगलमय नामो और रूपो का स्मरण कीर्तन और ध्यान करता है और आपके चरण-कमलों की सेवा मे ही अपना चित्त लगाए रहता है उसे फिर जन्म-मृत्यु रूप ससार मे नही आना पडता।"[४]

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है,

> अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
> तस्याहं सुलभ पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥[५]

अर्थात् हे अर्जुन ! जो मनुष्य अनन्य चित्त होकर नित्य मेरा स्मरण करता है मुझ मे नित्य लगे हुए उस योगी को मै अनायास ही प्राप्त हो जाता हूँ।

श्रवण कीर्तन और स्मरण तीनो ही प्रकार के भक्ति साधनो मे भगवन्नाम का विशेष वर्णन है। भागवत पुराण मे स्थान-स्थान पर इनका वर्णन है।

पाद सेवन अर्चन और वन्दन नामक भक्ति साधनो मे भगवान् के रूप का विशेष महत्त्व है। श्री मद्भागवत मे इन साधनों का भी विवेचन हुआ है। दशम स्कन्ध मे ब्रह्मा जी भगवान् जी से कहते है, हे देव ! जो लोग आपके उभय चरण कमलो का लेश पाकर अनुगृहीत हुए है वे भक्त जन ही आपकी भक्ति के महत्त्व को जान सकते है। उनके सिवा अन्य कोई चिरकाल तक विचार करने पर भी आपके तत्त्व को नही जान सकता।[६] इसी स्कन्ध मे शुकदेव जी की उक्ति है, जिसका यश महान् पुण्य प्रद है उस मुरारि श्रीकृष्ण के चरण कमल ससार सागर मे नौका रूप है, जो लोग उस चरण कमल नौका के आश्रित है उनके लिए ससार सागर गौ के खुर चिह्न के समान है। वे उसी नौका के सहारे परम पद को पहुँच सकते हैं। फिर उन्हे पद पद पर विपत्ति के धाम इस ससार मे नही आना पड़ता।[७] आगे इसी स्कन्ध मे नाग-पत्नी श्री भगवान् से कहती है, "हे भगवान् ! जो लोग आपके चरणो

---

१ भागवत १२–४–४०
२ भागवत १२–३–१५
३ भागवत ११–१४–२७
४ भागवत १०–२–३७
५ गीता ८–१४
६ भागवत १०–१४–१९
७ १० १४–५८

की धूलि को प्राप्त हो जाते हैं वे फिर स्वर्ग, चक्रवर्तीराज्य पाताल का राज्य ब्रह्मा का पद और योग की सिद्धि की तो बात ही क्या है मुक्ति की भी इच्छा नही करते।[1]" इसी स्कन्ध के उत्तरार्द्ध मे भगवान् श्रीकृष्ण की पटरानियाँ द्रौपदी से कहती है, "हे साध्वी! हमे पृथ्वी के साम्राज्य, इन्द्र के राज्य अथवा इन दोनों के भोग, अणिमा आदि ऐश्वर्य, ब्रह्मा का पद मोक्ष अथवा सालोक्य सारूप्य मुक्तियाँ कुछ भी नही चाहिये। हम केवल इतना ही चाहती है कि अपने प्रियतम प्रभु के सुकोमल चरण कमलों की वह श्रीरज सर्वदा अपने सिर पर वहन किया करे जो लक्ष्मी जी के वक्षस्थल पर लगी हुई केसर की सुगन्ध से युक्त है। उदार शिरोमणि भगवान् के जिन चरण कमलो का स्पर्श उनके गौ चराते समय गोप-गोपियाँ भिलनियाँ, तिनके, घास और लताये तक करना चाहती थी उन्ही की हमे भी चाह है।[2] अन्य स्कन्धो मे भी पाद सेवन का महत्त्व बताया गया है। छठे स्कन्ध मे यमराज अपने दूतो से कहते हैं' जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के मधुर चरण-कमलो का आस्वादन कर चुकता है वह फिर दुर्गति-प्रद माया के विषयो मे कभी अनुरक्त नही होता। इसके विपरीत जो अपने पापो का मार्जन करने के लिए पुन. प्रायश्चित रूप कार्य ही करते है उनके कर्मो की वासना नही मिटती और फिर वे वैसे ही दोष कर बैठते है।[3] इसलिए यमराज ने अपने दूतो से कहा कि बडे-बडे परम हंस दिव्य रस के लोभ से सम्पूर्ण जगत् और शरीरादि से भी अपनी अहंता ममता हटाकर अकिंचन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्द के पदारविन्द का मकरंद रस पान करते रहते है, जो दुष्ट उस दिव्य रस से विमुख है और नरक के द्वार गृहस्थी की तृष्णा का बोझा बाँध उसे ढो रहे हैं उन्ही को मेरे पास बार बार लाया करो।[4] सप्तम स्कन्ध मे नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कहते है, 'मेरी समझ मे धन कुलीनता आदि बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभ के चरण कमलो से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपने मन बचन कर्म और प्राण भगवान् के चरण कमलो मे समर्पित कर रक्खे है क्योकि वह चाण्डाल तो अपने कुल तक को पवित्र कर देता है और बडप्पन का अभिमान करने वाला वह ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नही कर सकता।[5]

पाद सेवन की भाँति अर्चन और वन्दन का विषय भी श्रीमद्भागवत में स्थान-स्थान पर आया है। श्रीमद्भगवतगीता मे लिखा है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन।[6]

अर्थात्—हे अर्जुन! जो मुझे पत्र पुष्प फल तथा जलादि भक्ति के साथ अर्पण करता है। श्रद्धा और भक्ति के साथ अर्पित किए हुए उस नियतचित्त पुरुष के पदार्थ को मैं प्रीति पूर्वक ग्रहण करता हूँ। अर्चन के विषय मे हम पहले ही लिख चुके है। वैष्णव सम्प्र-

१ भागवत १०—१६—३७।
२ भागवत १०—८३—४१—४२—४३।
३ भागवत ६—३—३३।
४ भागवत ६—३—२८
५ भागवत ७—९—१०
६ गीता ९ २६

दायो मे विशेषकर वल्लभ सम्प्रदाय में इसका बडा महत्त्व है। भागवत के दशम स्कन्ध मे इसके विषय मे लिखा है, 'स्वर्ग मोक्ष पृथ्वी और रसातल की सम्पत्ति तथा समस्त योग सिद्धियो की प्राप्ति का मूल भगवान् के चरणो का अर्चन है।[1] भागवत के नवे स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय मे अम्बरीष की अर्चन भक्ति का उल्लेख है। अर्चन मे भगवान् की मूर्ति सद्गुरु तथा भक्त जन तीनो को ही भगवान् का स्वरूप समझ कर श्रद्धा भक्ति के साथ उन्हे अपना सर्वस्व अर्पित करना पडता है। षोडश उपचार तो अर्चन का वाह्य रूप है परन्तु मानसिक अर्चन मे इन बाह्य उपचारों की आवश्यकता नही रहती। भगवान् का ध्यान और आत्म-समर्पण ही उसके उपचार है।

वन्दन भक्ति मे भगवान् की विनय, अनुनय, स्तोत्र-पाठ, प्रार्थना आदि सम्मिलित है। वास्तव मे पाद-सेवन, वन्दन और अर्चन भक्तियो के व्यापार सम्बद्ध है। श्रीमद्भागवत मे बहुत स्थानो पर स्तुतियाँ कराई गई है जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके है। एकादश स्कन्ध मे कवि नामक योगीश्वर कहते हैं, "ससार मे भगवान् के जन्म की और लीलाओ की बहुत मगलमयी कथाएँ प्रचलित है उनको सुनते रहना चाहिए, उन गुणों और लीलाओ का स्मरण दिलाने वाले भगवान् के बहुत से नाम भी प्रसिद्ध है। लाज सकोच को छोड कर उनका गान करते रहना चाहिये। ऐसा व्यक्ति साधारण लोगो की स्थिति से ऊपर उठ जाता है। लोगो की मान्यताओ और धारणाओ मे परे हो जाता है और ढग से ही नही स्वभाव मे ही मतवाला सा होकर कभी खिलखिला कर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूट कर रोने लगता है, कभी ऊँचे स्वर से भगवान् को पुकारने लगता है। तो कभी मधुर स्वर से उनके गुणो का गान करने लगता है, और कभी अपने प्रियतम को अपने नेत्रों के सामने समझ उन्हे रिझाने के लिए नृत्य भी करने लगता है।......... इत्यादि।[2] चैतन्य महाप्रभु की ऐसी ही स्थिति थी। भागवत की स्तुतियो में यह वन्दन भक्ति पूर्ण रूप से आ जाती है।

भक्ति के शेष तीन प्रकार दास्य सख्य और आत्म निवेदन मानसिक है, जो वास्तव मे भक्ति रस के उत्पादक है। रूप गोस्वामी के 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल नीलमणि' मे भक्ति रस का बडा विशद विवेचन हुआ। भक्ति-रसामृत सिन्धु के पूर्व विभाग मे तो भक्ति और इसके भेदो की ही व्याख्या हुई है परन्तु दक्षिण विभाग मे भक्ति के भाव विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो का वर्णन है। पश्चिम विभाग मे भक्ति सम्बन्धी पाँच मुख्य रसो का विवेचन हुआ है। वे पाच मुख्य रस हैं; शान्त, प्रीत, प्रेय, वात्सल्य तथा मधुर। उत्तर विभाग मे सात गौण भक्ति रसो का विवेचन है। वे सात रस ये है, हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स। इस प्रकार रूप गोस्वामी ने भक्ति रस दो प्रकार का बताया है, मुख्य भक्ति रस तथा गौण भक्ति रस।[3] प्रीति और प्रेय रूपो को रूप गोस्वामी ने दास्य और सख्य भावो के रूप मे माना है। शान्त रस का स्थायी भाव शुद्ध कृष्णविषया रति है। प्रीत रस का प्रीति, प्रेय का सख्य रति, वात्सल्य का वत्सलरति, तथा मधुर का प्रियता प्रेम या मधुरारति। इस अन्तिम रस को रूप गोस्वामी ने बडा महत्त्व दिया है और 'उज्ज्वल नील मणि में इसका विस्तार के

---

१ भागवत १०—८१—१९।

२ भागवत ११ २ ३९ ४०

३ भक्ति रसामृत सिन्धु, दक्षिण विभाग लहरा ५

साथ वर्णन किया है। इसके आलम्बन कृष्ण और उनकी गोपियाँ हैं जिनमें राधा प्रधान गोपी है। उद्दीपन वेणुनाद है। कटाक्ष मुस्कराहटादि अनुभाव है। सात्विक आठो भाव माने गये है तथा व्यभिचारी उग्रता और आलस्य को छोड़ कर सब माने गये हैं। उज्ज्वल नीलमणि में उज्ज्वल अर्थात् मधुर या शृंगार भक्ति रस को अलौकिकत्व प्रदान किया गया है। भक्ति शास्त्र का यही सर्व श्रेष्ठ रस माना है जिसकी प्राप्ति के लिए ही भक्त सब कुछ करता है। रूप गोस्वामी ने बहुत सी नायिकाओं की गोपी रूप में कल्पना की है। प्रधान तो राधिका और चन्द्रावली ही है परन्तु उनकी सैंकड़ो सखियाँ और है जिनके कई यूथ है और प्रत्येक यूथ की एक एक यूथेश्वरी। भक्त इन्ही सखियो के यूथ मे सम्मिलित होकर भगवान् के साथ विहार करने को ही अपना चरम लक्ष्य समझता है। राधा-भाव से श्रीकृष्ण का भजन करना ही भक्त की चरम साधना है। "चैतन्य-चरितामृत" मे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार दास्य सख्य और आत्म-निवेदन उत्तरोत्तर भगवान् की साध्य-रूपा भक्ति के साधन हैं। आत्म-निवेदन में साधन और साध्य एक हो जाते है, भक्त की अपनी सत्ता नही रहती। इसलिए दास्य सख्य और आत्म-निवेदन को हम भक्तिरस के पोषक मानते है क्योंकि इनका सम्बन्ध मन से है और इनके आधार से ही भक्ति रस की निष्पत्ति होती है।

यो तो भक्ति के अनेक मानसिक भाव है और सारे भाव भगवान् के सम्बन्ध से अलौकिक हो जाते हैं फिर भी दास्य सख्य और आत्मनिवेदन भावो से विशेष मानसिक स्थिति का परिचय मिलता है। आत्म दोष प्रकाशन विनय याचना दीनता आदि भाव दास्य भक्ति के अंग कहे जा सकते है। श्रीमद्भागवत मे भक्तो के जितने चरित्र है वे सभी दास्य भक्ति के उदाहरण है। यहाँ तक कि गोप गोपिकाओ में भी दास्य भक्ति का ही प्राधान्य है। यद्यपि श्रीमद्भागवत में कृष्ण को गोप-गोपियो का मित्र बताया गया है, जैसा कि दशम स्कन्ध के इस श्लोक से स्पष्ट होता है,

> अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
> यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम् ॥[1]

अर्थात् अहो! नन्द आदि गोपो के भाग्य धन्य है, वास्तव मे उनका अहोभाग्य है क्योंकि परमानन्द स्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे सम्बन्धी और सुहृद् हैं। परन्तु भागवतकार भगवान् कृष्ण मे अलौकिकता दिखा कर इस सख्य मे भी दास्य का सन्निवेश कर देते है। रूप गोस्वामी ने दासत्व को प्रीत रस के अन्तर्गत माना है। उन्होने प्रीत रस के दो भेद किए है यथा सभ्रम प्रीत और गौरव प्रीत। सभ्रम प्रीत मे स्थायी भाव श्रद्धा भाव है, अलम्बन कृष्ण और उनके दास है। दासों मे या तो अधिकृत शिव ब्रह्मा इत्यादि है या आश्रित उद्धव दारुक आदि है। उद्दीपन कृष्ण का अनुग्रह है। अनुभाव तन मन धन से भगवान् की सेवा करना है। सात्विक सभी है तथा व्यभिचारी त्रास अपस्मार आलस्य इत्यादि को छोडकर और सब है। गौरव प्रीत रस मे आलम्बन कृष्ण और उनके लालनीय सम्बन्धी होते हैं।

---

१ भागवत दशम् स्कन्ध अध्याय २४ श्लोक ३२

सख्य रति को जैसा कि हम पहले कह चुके है रूप गोस्वामी ने प्रेमरस का स्थायी भाव माना है इस रस के विभाव अलम्बन कृष्ण और उसके वयस्य मित्र हैं ब्रज में श्रीदामादि तथा अन्यत्र अर्जुनादि। सखा आयु और परिस्थिति के विचार से सुहृद, सखा, प्रिय सखी तथा प्रियवर्ग सखी भेद में चार प्रकार का होता है, इनका रूप गोस्वामी ने बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। प्रेम रस का उद्दीपन आयु, आकृति वेणु तथा क्रीडादि है। अनुभाव भांति-भांति की क्रीडाएँ आनन्द केलियाँ दिनचर्या मे माहर्य्य आदि है। सात्त्विक स्तम्भ स्वेदादि है। व्यभिचारी उग्रता त्रास और आलस को छोड़कर और सब है। यह प्रेम रस प्रणय प्रेम स्नेह तथा राग का रूप धारण कर लेता है। इस नवधा भक्ति मे वात्सल्य की गणना नही है। यद्यपि श्रीमद्भागवत मे वात्सल्य भक्ति का भी विवेचन है। भागवत के तृतीय स्कन्ध मे भगवान् कपिल कहते है, 'जिनका मैं ही एकमात्र प्रिय पुत्र मित्र गुरु सुहृद् और इष्टदेव हूँ, वे मेरे ही आश्रय मे रहने वाले भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठ धाम मे पहुँच कर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगो से रहित नही होते और न उन्हे मेरा काल चक्र ही ग्रस सकता है।''[1]

भागवत के दशम स्कन्ध मे इस वात्सल्य भक्ति का स्वरूप मिलता है। देवकी और यशोदा दोनो के लिए कृष्ण के अलग अलग रूप है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है। बाल-लीलाओं के वर्णन मे हम कृष्ण के उस रूप का विवेचन कर चुके है जो वात्सल्य रस का आधार है। रूप गोस्वामी ने वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल रति, विभाव, आलम्बन, कृष्ण तथा उनके गुरुजन नन्द यशोदा वसुदेव आदि, उद्दीपन, कृष्ण की बाल अवस्था, आकृति तथा बाल चेष्टाएँ है। अनुभाव शरीर का स्पर्श, आशीर्वाद तथा आदेश आदि का देना, सात्त्विक आठो तथा स्तन स्राव, तथा व्यभिचारी सभी प्रीति रस वाले। वात्सल्य रस भी प्रेम स्नेह और रागवत् प्रतीत होता है।

साधन रूपा भक्ति के नौ अङ्गो मे आत्म निवेदन का बड़ा महत्त्व है। श्री मद्भागवत मे भक्तो की जितनी कथाएँ हैं उनमे शरणागति का भाव ओत-प्रोत है वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति मे है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पण के रूप मे परिणत हो जाती है। गोपियों ने वैधी भक्ति का अनुष्ठान किया था। परन्तु उनका हृदय रागात्मिका भक्ति से भरा हुआ था। भागवत की चीर हरण लीला और रास लीला इस पूर्ण समर्पण के ही रूप है। पीछे स्थान स्थान पर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि श्रीमद्भागवत में आत्मनिवेदन का बड़ा महत्त्व दिखाया है। कृष्ण भगवान् को अर्पित करने से हमारे सब भाव कृष्णमय हो जाते है और हमारी वासनाओं से मुक्ति हो जाती है। श्रीमद्भगवत गीता मे भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इस आत्म निवेदन का उपदेश स्थान स्थान पर दिया है। आत्म निवेदन के पश्चात् भक्त भगवान् को सर्वत्र देखता है जैसाकि गीता मे कहा है,

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति'[2]।

अर्थात् मैं सब प्राणियो में हूँ और सब प्राणी मुझ मे। भागवत के ग्यारहवे स्कन्ध मे भी इसी भाव को बताया है, "जो अपने मन मे यह भेद भाव नही रखता कि मै अलग हूँ, भगवान् अलग है और सब लोग भिन्न है, किन्तु जो सब प्राणियो मे यह भाव रखता

१ भागवत ३ २५—२८

२ गीता ६ २९

है कि भगवान् और मैं दोनो एक हैं और जो यह समझता है कि सब प्राणी भगवान् में और मुझमें भी है वही सब भागवतो मे श्रेष्ठ है।[१] इसलिये गीता के नवे अध्याय मे भगवान् ने कहा है।

> यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
> यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥[२]

अर्थात् हे अर्जुन! जो कुछ तू करे, खावे हवन करे देवे या तप करे वह सब मुझ को अर्पण करदे। भागवत की गोपियाँ कृष्णमयी हो चुकी है और उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्ण को अर्पित कर दिया है वही भक्ति का सर्वोच्च रूप है। भागवत के एकादश स्कन्ध मे आया है कि काय, वाणी और मन ,इन्द्रिय, बुद्धि या आत्मा की प्रवृत्ति से अथवा स्वभाव के अनुसार जो कुछ हम किया करते है वह सब परस्पर नारायण को अर्पण कर दिया जावे।[३] सारांश यह है कि अध्यात्म शास्त्र मे जिसे ज्ञान कर्म समुच्चय पक्ष अथवा ब्रह्मार्पण पूर्वक कर्म कहते है उसी को भक्ति मार्ग मे कृष्णार्पण पूर्वक कर्म कहा जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कुछ आचार्यों ने इस आत्म निवेदन को शरणागति अथवा प्रपत्ति भी माना है। पञ्चरात्र विश्वक्सेन संहिता मे प्रपत्ति के विषय मे कहा गया है, भागवत् रूप्य प्राप्त वस्तु को इच्छा करने वाले उपाय हीन व्यक्ति की प्रार्थना मे पर्यवसायिनी निश्चयात्मिका बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है तथा अनन्य साध्य भगवत् प्राप्ति मे महा विश्वास पूर्वक भगवान् को ही एक मात्र उपाय समझ कर उपाय करते रहना ही प्रपत्ति है और इसी को शरणागति कहते है।[४] इसीलिए गीता मे कहा है,

> मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
> मामेवैष्यसि सत्य ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
> सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
> अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यासि मा शुच॥[५]

वल्लभाचार्य जी ने भी इस आत्म-निवेदन का बडा महत्त्व बताया है। श्री मद्भागवत की नवधा भक्ति का विवेचन करके भागवत मे वर्णित प्रेम स्वरूपा भक्ति का वर्णन करेगे। हम पहले ही कह चुके है कि भक्ति का विश्लेषण अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकार से किया है। श्रीमद्भागवत मे तो भक्तियो का इतना नाम-करण नही हुआ है उसमे या तो उन नौ प्रकारों का उल्लेख है या तामसी, राजसी सात्त्विकी और निर्गुण भक्तियों का नाम करण है अथवा स्थान-स्थान पर भक्तियोग का विवेचन हुआ है शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र और भक्ति रसामृत सिन्धु मे भक्ति का विशद विवेचन हुआ है। श्री मद्भागवत मे तो साधन और साध्य दो ही प्रकार की भक्तियो को स्वीकार किया गया है। भागवत की साध्य भक्ति ही निर्गुणा भक्ति है जिसका स्वरूप भागवत मे अहैतुक्य प्रतिहता कहा है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र मे उसे ईश्वर मे परानुरक्ति कहा है और जैसा कि हम पहले कह चुके है भक्ति

---

१ भागवत ११, २, ४५ तथा ३, २, ४०।

२ गीता ९, २७

३ भागवत ११, २, ३६

४ पाचरात्र विष्वक्सेन संहिता से साधनांक 'कल्याण' अगस्त सन् १९४० में उद्धृत पृष्ठ ६०

५ गीता श्लोक ६५ ६६

रसामृत सिन्धु मे उसे परा भक्ति बताया है वैधा और रागानुगा साधना भक्ति के ही भेद है इसमे उच्च कोटि की भक्ति भाव भक्ति है जिसका प्रेम भक्ति मे पर्यवसान हो जाता है इसलिए रूप गोस्वामी ने उत्तमा भक्ति के तीन भेद माने है। साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति। साधन भक्ति में साधनों का वर्णन आता है जो वैधी स्वरूप है। रागानुगा भक्ति के दो रूप है कामरूप और सम्बन्ध रूप अर्थात् कामानुगा, सम्बन्धानुगा। कामानुगा को रूप गोस्वामी ने केलि' तात्पर्यवती सम्भोगेच्छामयी बताया है। अर्थात्—इसमे तत्तद्भावो की इच्छा रहती है। भक्त गोपीमय होना चाहता है। इस भक्ति मे पद्मपुराण से उद्धरण दिये गये है। सम्बन्धानुगा भक्ति मे भक्त कृष्ण मे व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करता है। नन्द यशोदा और गोप इस प्रकार के भक्त है। भाव भक्ति या तो साधन परिपाक से साधनाभिनेशजा अथवा कृष्ण कृपया, तद्भक्त कृपया, कृष्ण प्रसादजा या कृष्ण भक्त प्रसादजा होती है। भाव भक्ति इस रूप तक नही पहुँचती, रस की स्थिति पर पहुंच कर वह प्रेम भक्ति हो जाती है जिसका विवेचन भक्ति रसामृत सिन्धु के पूर्व विभाग की चतुर्थ लहरी मे किया है। प्रेम भक्ति ही रस रूप मे परिणत होती है। उन रसों के विषय मे हम पहले कह चुके है कि रूप गोस्वामी ने पाँच मुख्य और सात गौण रस माने है जिनका विवेचन पीछे हो चुका है। अब हम नारद भक्ति सूत्र मे जो प्रेम भक्ति का स्वरूप बताया गया है उसके अनुसार भागवत की भक्ति का विवेचन करेगे 'नारद भक्ति सूत्र मे देवर्षि नारद ने चौरासी सूत्रो मे भक्ति तत्त्व की व्याख्या, भक्ति के अन्तराय, भक्ति के साधन, भक्ति की महिमा और भक्तो के महत्व को भली भाँति प्रकट किया है। इस भक्ति-सूत्र की रचना कब हुई यह विवाद का विषय है और अलग ही खोज से सम्बन्ध रखता है। हमारा अभिप्राय तो भागवत की प्रेमरूपा भक्ति का प्रदर्शन मात्र है। उस भक्ति को वैज्ञानिक ढग से नारद भक्ति सूत्र मे बताया गया है। इसीलिए इसका नाम प्रेम दर्शन भी है। भक्ति सूत्र के चौथे सूत्र मे बताया गया है।

'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' जिस प्रेम रूपा भक्ति की प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उसे किसी वस्तु की चिन्ता नही रहती। भागवत के ग्यारह वे स्कन्ध मे इसी भाव को भगवान् ने उद्धव से कहा है, "जिनने अपने को मुझे सौंप दिया है वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्मा का पद चाहता है और न देवराज इन्द्र का। उसके मन मे न तो सार्वभौम सम्राट् बनने की इच्छा होती है और न वह रसातल का ही स्वामी होना चाहता है। वह योग की बडी सिद्धियो और मोक्ष तक की अभिलाषा नही करता।" इसी भाव को भक्ति सूत्र के पाँचवे और छठे सूत्र मे भी कहा गया है। श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध मे कहा गया है "जो भगवान् श्री हरि के चरणो मे प्रेम मय भक्ति भाव रखता है उसे जगत् के भोगो की क्या आवश्यकता है, जो अमृत के समुद्र में विहार कर रहा है उसे क्षुद्र गड्ढो के जल से प्रयोजन ही क्या हो सकता है।[1] छठे सूत्र मे नारद जी ने बतलाया है कि इस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम बन जाता है। इसी भाव को ग्यारहवे स्कन्ध के दूसरे अध्याय में भागवतकार ने प्रकट किया है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है।

१ भागवत ६ १२-२२

प्रेम स्वरूपा भक्ति में दूसरा भाव अनन्यता का है जिसका विवेचन भक्ति सूत्र के सातवें आठवें, नवें तथा दसवें सूत्रों में किया है। इन सूत्रों में देवर्षि कहते हैं कि वह भक्ति कामना युक्त नहीं है क्योंकि वह निरोध-स्वरूपा है और निरोध लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को कहते है तथा उस प्रियतम भगवान् में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं। अनन्य दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम है। भागवत के दशम स्कन्ध में गोपियों की अनन्यता का बड़ा सुन्दर वर्णन है। जब श्रीकृष्ण ने गोपियों को ब्रज में लौटने के लिए कहा तो गोपियाँ उनसे कहती है, "हे प्राण वल्लभ! मनमोहन! अब तक हमारा मन घर के काम-धन्धों में लगता था इसी से हमारे हाथ भी उन्हीं में रमे हुए थे, परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा चित्त लूट लिया और अब हमारी गति-मति निराली हो गई है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरण कमलों को छोड़कर एक पग भी हटने के लिए तैयार नहीं है फिर हम ब्रज में कैसे जायें और क्या करें।"[1] इस अनन्य भाव से भगवदर्थ कर्म करने वाले के लिए भगवान् के प्रतिकूल कर्मों का अपने आप ही त्याग हो जाता है। इसके अनन्तर नारद जी प्रेमरूपा भक्ति के लक्षणों को बताते हुए अपने मत से अपने सब कर्मों को भगवान् के अर्पण करना और भगवान् का थोड़ा-सा भी स्मरण होने में परम व्याकुल होने को ही भक्ति बतलाते है। इस लक्षण में भक्ति के सभी लक्षण आ जाते है। गीता में वही भक्त उच्चकोटि का बताया है जो सब समय भगवान् का ही स्मरण करता रहता है। कृष्ण भगवान् अर्जुन से कहते है,

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥[2]

भगवान् को ऐसा ही भक्त सर्वप्रिय है। ऐसे ही भक्त की भगवान् ने प्रशंसा की है जिसका वर्णन हम पीछे कर चुके है। भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के १४वें अध्याय में भक्ति-योग का वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं, "हे उद्धव! मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा आत्मा शंकर, सगे भाई बलराम जी, स्वयं अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी जी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है।"[3] देवर्षि नारद ने इस प्रकार की भक्ति गोपिकाओं की बताई है;

'यथा व्रज गोपिकानाम्'—२१

कृष्ण भगवान् ने स्वयं गोपिकाओं के विषय में कहा है, 'मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे लिये घर गृहस्थी की उन बेड़ियों को तोड़ डाला है जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझ से तुम्हारा यह मिलन यह आत्मिक संयोग, सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीर से—अमर जीवन से अनन्त काल तक तुम्हारे प्रेम सेवा और त्याग का बदला चुकाना चाहूँ, तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्म के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभाव से, प्रेम से मुझे उऋण कर सकती हो, परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।[4] फिर उद्धव को संदेशा भेजते हुए श्रीकृष्ण ने प्रेमाश्रु बहाते हुए

१ भागवत १०—२९—३४
२ गीता ८, ७
३ भागवत ११—१४—१५
४ भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ३२ श्लोक २२

गद्‌गद् वाणी से यही कहा है, हे प्यारे उद्धव गोपियो का मन नित्य निरन्तर मुझ में ही लगा रहता है। उनके प्राण उनका जीवन उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिए उन्होंने अपने पति पुत्रादि सभी सगे सम्बन्धियो को छोड़ दिया है। उन्होने बुद्धि से भी मुझको अपना प्यारा, अपना प्रियतम तथा अपना आत्मा मान रक्खा है। मेरा यही व्रत है कि जो लोग मेरे लिए लौकिक और पार-लौकिक धर्मो को छोड देते है उनका भरण-पोषण मैं स्वय करता हूँ।[1] वास्तव मे गोपियो का ऐसा ही अनन्य प्रेम था। मथुरा की कुलाङ्गनाओ ने गोपियो की दशा को इसी प्रकार से वर्णन किया है, 'व्रज की गोपियाँ धन्य है जो निरन्तर श्रीकृष्ण मे ही चित्त लगा रहने के कारण प्रेम भरे हृदय से, गद्‌गद् कण्ठ से भगवान् की ही लीलाओ का गान करती है। वे दूध दुहते दही मथते, धान कूटते घर लीपते, बालाओ को झूला-झुलाते, रोते हुए बालकों को चुप कराते, उन्हे नहलाते-धुलाते घरो को झाडते-बुहारते हर समय श्रीकृष्ण के गुणो के गान मे ही मस्त रहती है।[2]

भागवत की गोपियाँ नारद जी के २२वे सूत्र में भी पूरी उतरती है, जिसका अर्थ है कि भक्त परमावस्था में भी भगवान के माहात्म्य ज्ञान को नही भूलता, गोपियाँ भी इसमे अपवाद नही। भागवत की गोपियाँ कृष्ण को साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् जानती हुई अपना प्रियतम समझती थी। जैसा कि दशम स्कन्ध के २६वे अध्याय के ३१ से ४१ तक के श्लोको से स्पष्ट प्रकट होता है। इसी स्कन्ध के गोपिका-गीत मे गोपियाँ कहती है, "हे कृष्ण! तुम केवल यशोदानन्दन ही नही हो, समस्त शरीर धारियों के हृदय में रहने वाले साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे! ब्रह्मा जी की प्रार्थना से विश्व की रक्षा करने के लिए यदुवश मे अवतीर्ण हुए हो।[3] माहात्म्य ज्ञान बिना किए हुए प्रेम को नारद जी ने जारो का सा प्रेम बताया है।

'तद्विहीन जाराणामिव'—२३।

इसके अनन्तर नारद जी ने प्रेम रूपा भक्ति को कर्म ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर बताया है और उसी को फलस्वरूप कहा है। श्रीमद्‌भागवत में कई स्थलों पर भक्ति का महत्व प्रदर्शित किया है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है। ग्यारहवे स्कन्ध मे भगवान् कहते है;

न साधयति मां योगो न सांख्य धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।
भक्त्याहमेकया ग्राह्य श्रद्धयाऽऽत्म प्रिय सताम्।
भक्ति: पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।[4]

अर्थात् योग ज्ञान धर्म स्वाध्याय तप और त्याग मुझे उतना प्रसन्न नहीं कर सकते जितना मेरी दृढ भक्ति मुझे प्रसन्न करती है। सन्तो का प्रिय आत्मा रूप मैं केवल श्रद्धायुक्त भक्ति के द्वारा ही वश मे हो सकता हूँ। मेरी भक्ति चाण्डाल आदि को भी पवित्र कर देती है। भगवद्‌गीता मे भी भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से इसी प्रकार कहा है;

---

१ भागवत १०-४६-४।
२ भागवत १०-४४-१५।
३ भागवत १० ३१ ४
४ भागवत ११ १४ २० २१

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्या त्वनन्या शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥[१]

अर्थात्—हे अर्जुन ! जैसा तुमने मुझे देखा है ऐसा मैं वेद तप दान यज्ञ आदि से भी नहीं देखा जा सकता। हे अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरा इस प्रकार देखा जाना, मुझे तत्त्व से जानना, और मुझमे प्रवेश पाना संभव है। इस प्रकार गीता और भागवत दोनो में ही भक्ति को साध्यरूपा माना है। भक्ति ही साधन भक्ति ही साध्य है। भक्त गण भक्ति के लिए ही भक्ति करते है। इसी लिए भागवत में कहा है।

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ।[२]

अर्थात्—भगवान् कहते है कि मुझ अनन्त गुण सम्पन्न सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मे भक्ति हो जाने पर फिर उस साधु पुरुष को कौनसी वस्तु प्राप्त करनी बाकी रह जाती है। इसके अनन्तर भक्ति सूत्र मे प्रेमरूपा भक्ति के साधनो का उल्लेख है जिनका विवेचन हम पीछे कर चुके हैं। परन्तु प्रेम भक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन महापुरुषों की कृपा अथवा भगवत कृपा को ही बताया है। सत्संग की महिमा श्रीमद्भागवत मे भी स्थान स्थान पर गाई गई है। भागवत के प्रथम स्कन्ध मे आया है, "भगवत संगी प्रेमियो के निमेष मात्र की तुलना स्वर्गादि को तो बात ही क्या पुनर्जन्म का नाश करने वाली मुक्ति के साथ भी नही की जा सकती। फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ही क्या है।[३] गोस्वामी तुलसीदास जी 'रामचरित मानस' मे भी कहते है।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

भागवत के ग्यारह वे स्कन्ध मे स्वयं भगवान् उद्धव जी से कहते है, "प्रिय उद्धव ! जगत् की जितनी आसक्तियाँ है, उन्हे सत्संग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्संग जिस प्रकार मुझे वश मे कर लेता है वैसा साधन न योग है न सांख्य, धर्म पालन और न स्वाध्याय। तपस्या त्याग इष्टापूर्त और दक्षिणा से भी मै वैसा प्रसन्न नहीं होता। कहाँ तक कहूँ—व्रत, वेद तीर्थ, और यम-नियम भी सत्संग के समान मुझे वश मे करने मे समर्थ नही हैं।[४] इस सत्संग की प्राप्ति भगवान् कृपा से ही होती है और भगवान् और भगवान् के भक्त मे कोई भेद नही है जैसा कि भागवतकार ने कहा है।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।[५]

---

१ गीता ११—५३,५४।
२ भागवत ११—२६—३०।
३ भागवत १—१८—१३।
४ भागवत ११ १२ १२
५ भागवत ९ ४ ६८

इसी प्रकार गीता मे भी कहा गया है 'ये भजन्ति तु मा भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्' ।[1]

नारद भक्ति सूत्र मे प्रेम रूपाभक्ति मे प्रधान बाधा कुसगति को माना है। श्रीमद्भागवत मे भी कुसगति की निन्दा की है। भगवान् कपिलदेव माता देवहूति से कहते है, "जो मनुष्य स्त्री और धन मे ही आसक्त नीच पुरुषो का सग करके उनके समान बर्ताव करने लगता है वह उन्ही की भाँति अन्धकार मय नर्को में जाता है, क्योकि दुष्ट सग से सत्य, पवित्रता, दया, मननशीलता, बुद्धि, लज्जा, श्री, कीर्त्ति, क्षमा, मन का वश मे रहना, इन्द्रियों का वश मे रहना, ऐश्वर्य आदि सब नष्ट हो जाते है, अतएव उन अशान्त चित्त मूर्ख नष्ट बुद्धि, स्त्रियों के हाथ के खिलौने बने हुए, शोचनीय असाधु दुष्ट मनुष्यो का सग कभी नही करना चाहिए।"[2] साधु और सन्त लोगों की सगति ही से कल्याण हो सकता है। सन्त महानुभावो की सेवा करने से ही माया रूपी समुद्र को पार किया जा सकता है। श्रीमद्-भागवत मे भगवान् कहते है, "जिस प्रकार भगवान् अग्निदेव का आश्रय लेने पर शीत, भय अन्धकार तीनों का नाश हो जाता है उसी प्रकार सन्त पुरुषो के सेवन से पाप रूपी शीत, जन्म-मृत्यु रूपी भय और अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाता है। जल मे डूबते हुए लोगो के लिए दृढ नौका के समान इस भयकर ससार सागर मे गोते खाने वालों के लिए ब्रह्मवेत्ता शान्तचित्त सन्त जन ही परम अवलम्ब हैं।"[3] इसी प्रकार पचम स्कन्ध मे महात्मा जड भरत राजा रहूगण से कहते है, "हे रहूगण ! यह भगवत-तत्त्व का ज्ञान और भगवत-प्रेम तप यज्ञ दान गृहस्थाश्रम द्वारा परोपकार, वेदाध्ययन और जल अग्नि एव सूर्य की उपासना से नही मिलता। यह तो महापुरुषो की चरण धूलि मे स्नान करने से ही मिलता है।"[4] इसी प्रकार भक्तराज प्रह्लाद अपने पिता से कहते है, "हे पिता ! जिन भगवान् श्रीहरि के चरणो का स्पर्श समस्त अनर्थों की निवृत्ति करने वाला है उन श्रीहरिचरणों मे तब तक प्रेम नही होता जब तक अकिचन साधु महापुरुषो की चरण धूलि से मस्तक का अभिषेक न किया जाय।"[5]

इस भगवत प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। यह गुण रहित है, कामना रहित है, प्रतिक्षण बढता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्मतर है और अनुभव रूप है। इस प्रेम को पाकर प्रेमी प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिन्तन करता है। श्रीमद्भगवत्गीता मे लिखा है,

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।[6]

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् मे भी, "जहाँ दूसरे को नही देखता, दूसरे को नही सुनता, दूसरे को नही जानता वही भूमा है और जहाँ दूसरे को देखता है, दूसरे को सुनता है,

१ गीता ९-२९
२ भागवत ३-३१-३२ से ३४
३ भागवत ११-२६-३१, ३२
४ भागवत ५-५-१२
५ भागवत ७-५-३२
६ गीता ६ ३०

दूसरे को जानता है वह अल्प है जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मरा हुआ है[१] यही प्रेमा भक्ति या पराभक्ति का स्वरूप है और इसी को भूमानन्द कहते हैं इसमें भक्त अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है इसी को भागवत में अहैतुकी निर्गुण भक्ति या गीता में ज्ञानी की भक्ति कहा है। इसमें भक्त की चित्तवृत्ति और कर्मगति का प्रवाह अविच्छिन्न रूप से स्वाभाविक ही भगवान् की ओर बहता रहता है और उसकी समस्त क्रियाएँ भगवान् के लिए ही होती है।[२] इसी प्रकार "तत्त्वज्ञानी महात्मा भक्त भी सब कुछ वासुदेवमय ही देखता है।"[३] इससे निम्नकोटि की भक्ति भागवतकार ने गौणी भक्ति बताई है, जो सात्त्विकी राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की होती है जिसका विवेचन हम पहले कर चुके हैं। गोपियो की भक्ति निर्गुण भक्ति साध्य भक्ति अथवा प्रेम स्वरूपा भक्ति है।

प्रेमाभक्ति का स्वरूप बताकर भक्तिसूत्र मे प्रेमी भक्तों की महिमा बताई गई है। श्रीमद्भागवत मे ऐसे भक्तों की महिमा का स्थान-स्थान पर बखान हुआ है जिसका सकेत हम कईबार पीछे कर चुके है। इन भक्तो के जन्म से कुल पवित्र, जननी कृतार्थ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है। भागवत मे लिखा है, "मद्भक्ति युक्तो भुवन पुनाति।"[४] भक्ति सूत्र मे लिखा है, "भक्त तीर्थों को सुतीर्थ, कर्मो को सुकर्म और शास्त्रो को भी सत्शास्त्र कर देते है।"[५] श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध मे धर्मराज युधिष्ठिर विदुर जी से कहते है, 'हे प्रभो! आप सरीखे भगवत भक्त स्वयं तीर्थ रूप है, तीर्थों को आप लोग अपने हृदय मे विराजमान भगवान् के प्रभाव से तीर्थत्व प्रदान करते हैं।"[६] भक्तो मे जाति, विद्या, रूप कुल, धन और क्रियादि का भेद नही होता है। भक्ति सूत्र में भक्ति की वृद्धि के साधन भी बताए हैं। श्रीमद्भागवत मे भी प्रेमस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करने का विधान ग्यारहवे स्कन्ध मे है। ग्यारहवे स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे प्रबुद्ध नामक योगीश्वर ने महाराजा निमि से प्रेमरूपा भक्ति के साधन इस प्रकार बताए हैं।

"जिनको अपना परम कल्याण जानने की इच्छा हो उसे वेद के ज्ञाता और परब्रह्म मे स्थित शान्त स्वरूप गुरु की शरण जाना चाहिए, और गुरु को ही आत्मा एवं इष्टदेव समझकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उन भागवतधर्मो को सीखना चाहिये जिनसे अपने आपको दे डालने वाले परमात्मा हरि प्रसन्न हो जाते है। मन से सब विषय-भोगो से वैराग्य, साधु महात्माओ का सग, सब प्राणियो के प्रति यथायोग्य (दीनों के प्रति) दया, (समान अवस्था वालो से) मित्रता और (बड़ो के प्रति) विनय का व्यवहार, तन-मन-धन से पवित्र रहना, कष्ट सहकर भी अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन रूपी तप करना, शीत उष्ण आदि को सहना, व्यर्थ बातचीत का त्याग या भगवान् का मनन, स्वाध्याय, सरलता ब्रह्मचर्य अहिंसा, सुख-दु ख आदि द्वन्द्वों मे समभाव, सर्वत्र सब जीवो मे अपने आपको तथा ईश्वर

१ छान्दोग्य ७-२४-१
२ भागवत ३-२९-११, १२
३ गीता ७-१९
४ भागवत ११ १४ २४
५ नारद भक्ति सूत्र ६९
६ , १- १

का देखना एकान्त में रहना घर आदि को भगवान् के मानना शुद्ध साधारण वस्त्र पहिनना जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष मानना भगवान् का गुण गान वाले शास्त्रों में श्रद्धा रखना दूसरे शास्त्रों का निन्दा न करना, मन वाणी और कर्मों का संयम, सत्य भाषण, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, अद्भुत लीला करने वाले श्रीहरि के जन्म, कर्म और गुणों का श्रवण कीर्तन और ध्यान करना, भगवान् के लिए ही सब विहित कर्म करना, यज्ञ दान जप तप आदि सदाचार अपने प्रिय लगने वाले सब पदार्थों और स्त्री पुत्र घर तथा प्राणों को भी परमात्मा के अर्पण कर देना और इस प्रकार भगवान ही जिनके आत्मा और स्वामी है ऐसे भक्तों में मित्रता करना, जड़-चेतन जीवों की, मनुष्यों की और उनमे भी साधु-स्वभाव वाले महापुरुषों की विशेष रूप से सेवा करना, परस्पर भगवान के पवित्र यश का कथन करना और इस भागवत गुण-गान के द्वारा ही परस्पर प्रीति, तुष्टि और दुःखों की निवृत्ति करना—ये सब साधन सद्गुरु के समीप रहकर सीखने चाहिए। इस प्रकार बर्ताव करने वाले और पापसमूह के नाशक श्रीहरि का स्वयं स्मरण करने और दूसरों के कराने वाले भक्तों के हृदय में इस साधना रूपा भक्ति के द्वारा प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उनका शरीर पुलकित हो जाता है और फिर वे प्रेम मग्न हो जाते है।"[1]

गीता के बारहवे और अठारहवे अध्याय में भी भक्तों के लक्षण बताए गए है और वह स्थिति बताई है जब भक्त को पराभक्ति की प्राप्ति होती है। "जब मनुष्य विशुद्ध बुद्धि से युक्त एकान्त सेवी मिताहारी, मन वाणी को जीतने वाला, वैराग्य को धारण करने वाला निरन्तर ध्यान परायण दृढ धारणा से अन्तःकरण को वश में करके शब्द, स्पर्श आदि विषयों को त्यागकर रागद्वेष को नष्ट करके, अहंकार बल दर्प काम-क्रोध और परिग्रह को छोड़कर ममता रहित शान्त हो जाता है तभी वह ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। फिर ब्रह्मभूत होकर सदा प्रसन्न चित रहने वाला वह न किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी वस्तु की आकांक्षा ही करता है और सब प्राणियों में समभाव से भगवान को देखता है, तब मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह मुझको तत्व मे जानता है, और फिर मुझ मे ही मिल जाता है।"[2]

श्रीमद्भागवत में इसका एक और उपाय बताया है, "जो धीर पुरुष व्रज बालाओं के साथ भगवान् विष्णु के (श्रीकृष्ण के) इस रास-विहार की कथा को श्रद्धापूर्वक सुने या पढ़ेगा वह शीघ्र ही भगवान् की पराभक्ति को प्राप्तकर हृदय के रोग रूप काम विकार से छूट जायगा।"[3]

इस प्रकार भागवत में सिद्ध और साधक दो प्रकार के भक्तों का वर्णन है। सिद्ध भक्तों में लक्षण स्वाभाविक ही होते है और साधकों को साधना द्वारा पराभक्ति की प्राप्ति होती है। पराभक्ति के प्राप्त होने पर भक्त आधे क्षण के लिए भी भगवत-चरण का चिन्तन नहीं छोड़ना चाहता। तीनों भुवनों का सम्पूर्ण वैभव भी उसे तुच्छ लगने लगता है।[4] भक्ति

१ श्रीमद्भागवत ११–३–२१ से ३१

२ गीता १८–५१ से ५५

३ श्रीमद्भागवत १०–३३–४०

४ श्रीमद्भागवत ११–२ ५३

के साधक के लिए अहिंसा शौच सत्य दया आस्तिकता आदि सदाचारों का भली भांति पालन करना बहुत आवश्यक है [1]

भक्ति सूत्र में प्रेमा भक्ति का फल यही बतलाया है कि भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रकट होते है और भक्तो को अपना अनुभव करा देते है। भागवत मे ऐसे अनेक स्थल आए हैं जहाँ भगवान ने भक्तो को अपने स्वरूप का अनुभव कराया है। इसलिए नारद जी कहते है कि तीनो सत्यों मे तीनो कालो में भक्ति ही श्रेष्ठ है।[2] श्रीमद्भागवत मे भी भक्ति ही की प्रशंसा की गई है। ग्यारहवे स्कन्ध मे स्वयं भगवान् कहते हैं, "हे उद्धव ! जैसे जोर से जली हुई अग्नि काठ के ढेर को भस्म कर देती है वैसे ही मेरी भक्ति सब पापों के समूह को जला देती है।"[3]

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम नारद जी से वर्णित उन आसक्तियों का उल्लेख करते है जिनसे प्रेम रूपा भक्ति एक होकर ग्यारह प्रकार की होती है। वे आसक्तियाँ ग्यारह है। (१) गुणमाहात्म्यासक्ति (२) रूपासक्ति (३) पूजासक्ति (४) स्मरणाशक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्मनिवेदना सक्ति (१०) तन्मयतासक्ति तथा, (११) परम विरहासक्ति। जो भक्त परमभक्ति को प्राप्त कर लेते है उनमे तो ये सभी आसक्तियाँ रहती है जैसे ब्रज-गोपियो में। परन्तु सभी अन्य भक्तो मे कोई न कोई आसक्ति अवश्य रहती है। श्रीमद्भागवत में इन सभी प्रकार के भक्तो का वर्णन है, जैसे नारद, शुकदेव, सूत, शौनक, परीक्षित पृथु, जनमेजय आदि गुण माहात्म्य सक्ति भक्त है। कुछ ऋषि और ब्रज नारियाँ रूपासक्ति भक्त हैं। राजा पृथु अम्बरीष भरत आदि पूजासक्ति भक्त है। प्रह्लाद ध्रुव सनकादि ये स्मरणासक्ति भक्त हैं। अक्रूर विदुरादि दास्यासक्ति भक्त है। अर्जुन, उद्धव, श्रीदाम सुदामादि सख्यासक्त हैं। अष्टपटरानियाँ कान्ता सक्ति भक्त है। कश्यप अदिति, सुतपा पृश्नि, मनुशतरूपा, नंद-यशोदा, वासुदेव-देवकी आदि वात्सल्यासक्ति भक्त हैं। राजा अम्बरीष, राजा बलि, राजा शिवि आदि आत्म निवेदनासक्ति भक्त है। शुक सनकादिक आदि ज्ञानी गण अथवा कौण्डिन्य सुतीक्ष्ण आदि प्रेमी मुनि गण तन्मयतासक्ति भक्त है तथा उद्धव अर्जुन ब्रज नारी आदि परम विरहासक्ति भक्त है।

---

१ नारद भक्ति सूत्र ७८

२ नारद भक्ति सूत्र ८१

३ ११ १४ १९

भागवत का साहित्यिक महत्त्व

श्रीमद्‌भागवत महापुराण की तिथि के विषय मे विचार करते हुए हमने उसे अन्त साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर वर्तमान रूप मे नवी शताब्दी के आसपास की रचना बताया है। हम यह भी कह आए हैं कि इस महापुराण की भाषा और शैली के रूप भी इस मान्यता के पोषक है। श्रीमद्‌भागवत के काव्यपक्ष पर विचार करने से पहले तत्कालीन संस्कृत काव्य शैली पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कालिदास के पश्चात् उत्तरोत्तर अलंकृत शैली को ही कवियो ने अधिक प्रश्रय दिया। सातवी शताब्दी मे एक ओर तो भारवि ने महाकाव्य के क्षेत्र मे चमत्कार पूर्ण शैली का सूत्रपात किया जो बाद मे माघ की कल्पना मे पुष्ट होती हुई अन्त मे ग्रन्थ-ग्रन्थि गूँथने वाले श्रीहर्ष के नैषधीयचरित मे चरम सीमा को प्राप्त हुई और दूसरी ओर यशस्वी गद्यकार बाण ने गद्यशैली को ऐसा व्यासपूर्ण एव अलंकृत रूप दिया कि आज के पाश्चात्य विद्वान् उसके साथ अपनी बुद्धि का सामञ्जस्य बिठाने मे असमर्थ होकर उसे विकट वन का रूपक देते है। गद्य और पद्य की इस पाण्डित्य पूर्ण शैली के अतिरिक्त वैदर्भी रीति को अपना कर चलने वाली प्रसाद पूर्ण स्वाभाविक शैली भी सर्वथा समाप्त नही हो गई थी। संस्कृत के अनेक गीतिकारों ने अपनी रस लहरियो से इसे बराबर सरस बनाए रखा। स्तोत्रकार भक्तों की भावभरी रचनाओ मे इसका प्रतिनिधित्व पर्याप्त मात्रा मे हुआ है और बिल्हण जैसे रससिद्ध कवि ने अपना महाकाव्य (विक्रमाङ्कदेवचरित) भी इसी शैली मे प्रस्तुत किया है। इस युग के नाटकों में भी पाण्डित्यपूर्ण शैली का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है, यद्यपि भास और कालिदास की सहज उक्तियो से टक्कर खाने वाली उक्तियाँ भी यत्र तत्र बिखरी हुई मिलती है।

सच तो यह है कि आठवी शताब्दी समाप्त होते होते संस्कृत साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास हो चुका था और लक्षण ग्रन्थों के प्रणयन तथा काव्य शास्त्रीय चिन्तन के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। अत इसके पश्चात् काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे तो विशेष रूप से उन्नति हुई और आचार्यो ने मौलिक सिद्धान्तो की स्थापना कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया जिसके कारण ध्वनि, वक्रोक्ति और रस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हुई, किन्तु काव्य रचना के क्षेत्र मे नवीन प्रतिभा का उदय नही हुआ पुराने कवियो का ही अनुकरण इस युग के कवि करते रहे। परम्परा-पालन को उन्होने कवि का मुख्य धर्म जाना और पाण्डित्यप्रदर्शन में कविकर्म की इतिश्री समझी। वस्तुत अनुकरण और परम्परा पालन को नवीन रूप में रखे बिना काम चलना असंभव था क्योंकि इस प्रकार तो कारबनपेपर द्वारा की हुई 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' जैसी ट्रू कॉपी ही निकाली जा सकती थी अतः कवियो ने विभिन्न प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान का परिचय और भाषा का चमत्कार अङ्कित कर मुलम्मा की हुई सी मौलिकता का आश्रय लिया अपने पूर्वजो से उन्होने प्रेरणा (Inspiration)

न लेकर रूढ़िया विषय और भावो को ग्रहण किया तथा सूक्ष्म निरीक्षण की अपेक्षा बाहरी तड़क भड़क पर अधिक ध्यान दिया जिससे काव्य का प्रवहणशील स्रोत सकारण किनारों मे बधकर एक सुनियोजित सरोवर तो बन गया किन्तु अपनी स्वाभाविक रवानी और कलकल ध्वनि को खो बैठा। वर्ण्य विषय का भावपूर्ण सूक्ष्म विश्लेषण शाब्दिक नक्काशी बन कर रह गया और आवेग की अपेक्षा आधार की तारकशी आकर्षण का केन्द्र बन गई। इसमे सन्देह नहीं कि यह भी अपने ढग की एक मौलिकता थी किन्तु मूल को छोड़कर शाखाओ की अधिक चिन्ता कर रही थी। साराश यह है कि श्रीमद्भागवत की रचना के समय साहित्यिक क्षेत्र का वातावरण निम्नलिखित चार प्रकार की काव्यशैलियों के स्वर से मुखरित था।

१—अलकार प्रधान ऊहात्मक शैली—इस शैली का स्वर सब से ऊँचा था। भावो की ध्वनि की अपेक्षा अलंकारो की चमक-दमक और झनझनाहट ही इसमे अधिक सुन पड़ती थी।

२—अलकार प्रधान भावात्मक शैली—इस शैली मे अलकारो का अनुरणन भाव ध्वनि की पृष्ठभूमि में सुनाई देता था।

३—प्रसादपूर्ण अनलकृत भावात्मक शैली—इस शैली के प्रशसक और वरयिता भावो की अभिव्यक्ति सीधे-सादे शब्दो मे करने के पक्षपाती थे। भक्ति भावपूर्ण स्तोत्रो मे प्राय: यही शैली अपनाई गई है।

४—इतिवृत्तात्मक शैली—रामायण, महाभारत, आदि के अन्तर्गत विविध आख्यान और उपाख्यानो मे प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली जिसमे अन्य किसी भी तत्त्व की अपेक्षा कथानक के प्रवाह पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है।

कहने की आवश्यकता नही कि भागवत मे उपर्युक्त सभी प्रकार की शैलियो के दर्शन होते है। वस्तुत: भागवत एक विचित्र ग्रन्थ है जिसमे भक्ति, ज्ञान, विविध दार्शनिक सिद्धान्तो तथा प्रचलित काव्य-शैलियों का अद्भुत समन्वय हुआ है। 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' उक्ति भागवत के इस महत्त्व की ओर स्पष्ट सकेत करती है।

यद्यपि श्रीमद्भागवत भक्ति और ज्ञान का प्रतिपादक एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है और इसका पर्यवसान शान्त रस मे होता है, तथापि अपने वर्ण्य विषय की गरिमा, विस्तार और व्यापकता के कारण यह ग्रन्थ सहज ही एक श्रेष्ठ काव्य के गुणो से अलकृत होगया है। यदि 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' ही काव्य की सर्वोत्तम परिभाषा है तो हम निस्सकोच कह सकते है कि श्रीमद्भागवत एक परम रसमय काव्य है। अपितु लौकिक काव्यो से भी महनीय भगवद्विषयक रति और भक्ति को इसमे रसकोटि तक पहुँचा दिया गया है इस प्रकार यह काव्य लौकिक काव्यो से उच्चतर धरातल पर पहुँच कर दिव्य-काव्य के रूप मे अभिहित होने का अधिकारी है। यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का अमृत-रस से परिपूर्ण फल है, जो शुक (शुकदेव रूपी तोते) के मुख से पृथ्वी पर गिरा है भावुक और रसिक भक्तो द्वारा इसका अमृत-रस आमरण सेवनीय है।[1] प्रारम्भ मे ही ग्रन्थ की जिस

---

[1] निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृत द्रव सयुतम्।
पिबत भागवत
मुहुरहो रसिका भुवि भावुका

रसमयता को जिस सुन्दर रूपक से व्यक्त किया गया है, उसका निर्वाह अन्त तक हुआ है और अपने विशाल कलेवर में गौण रूप में ही क्यों न सही यह ग्रन्थ एक सुन्दर काव्य को सजोए हुए है। जिस प्रकार हिन्दी में रामचरितमानस एक अध्यात्म प्रधान धर्म ग्रन्थ होकर भी भक्ति के दिव्य प्रभाव से सहज ही एक श्रेष्ठ महाकाव्य बन गया है, ठीक उसी प्रकार वर्ण्य विषय को ही महत्त्व देते हुए श्रीमद्भागवत एक निसर्ग सिद्ध काव्य बन गया है। जब एक महामनीषी साहित्य स्रष्टा एक महान् सत्य का वर्णन करने प्रस्तुत होता है तो युग-युग से सञ्चित ज्ञान-राशि, भाषा, भाव और सौन्दर्य की निधि उसके करतलगत हो जाती है। श्रीमद्भागवत में भारत के प्राचीन ज्ञान उपासना और कर्म की त्रिवेणी प्रवहमान है। प्राचीन ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों का पुण्यचरित तथा सर्वोपरि लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। इतने महत्त्वपूर्ण वर्ण्य-विषय जिनमें जीवन का सर्वांगीण दर्शन होता है, सहज ही काव्य के विषय बन जाते हैं।

यहाँ हम श्रीमद्भागवत के काव्यत्व पर संक्षेप में विचार करेंगे। हमारा लक्ष्य यह नहीं है कि काव्यशास्त्र के सूक्ष्म लक्षणों को श्रीमद्भागवत में खोजें। शब्दालंकार, अर्थालंकार रस, शब्द शक्तियों, छन्द और अन्य काव्यांगों का शास्त्रीय विवेचन श्रीमद्भागवत के सन्दर्भ में करें। अपितु हमारा अभिप्रेत केवल इतना ही है कि इस ग्रन्थ में काव्य के सामान्य रस अलंकार और गुण आदि किस मात्रा में और किस रूप में विद्यमान हैं। यह तो हम बड़े सहज भाव से कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में बहुत काफी मात्रा में काव्यत्व विद्यमान है और परवर्ती संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य इस से अत्यन्त प्रभावित हुआ है। समग्र भक्तिकाल का साहित्य इसकी भाव-सम्पत्ति का ऋणी है। सूर और तुलसी के काव्य प्रासादों का आधार-स्तम्भ यही ग्रन्थ है।

यद्यपि भागवत में भाषा की अपेक्षा भाव को ही प्रमुखता दी गई है तथापि भागवतकार के सहज पाण्डित्य से भाषा का सुन्दरतम और प्राणमय रूप कहीं भी मन्द नहीं हुआ है। भावों की गम्भीरता और मर्मस्पर्शिता तो लोकोत्तर ही हैं जो भक्ति के सतत प्रवाह के कारण सहज हो गई है। निम्नलिखित पंक्तियों में प्रसादपूर्ण सहज भावात्मक शैली का उदात्त रूप प्रस्फुटित हुआ है।

> नमः पंकजनाभाय नमः पंकज मालिने।
> नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये॥ १. ८ २२
>
> शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः
> स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
> त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं
> भव प्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥ १ ८ ३६.

श्रीमद्भागवत में अद्भुतकर्मा भगवान् की अनेक सुन्दर स्तुतियाँ हैं। वास्तव में वे एक सुन्दर काव्य ही है। यदि इन सभी स्तोत्रों को पृथक् से संग्रह किया जाय तो एक परम रुचिर, स्वतंत्र काव्य ग्रन्थ प्रस्तुत होजाय। इन भगवत्स्तुतियों में कवि ने अपना हृदय खोल कर रख दिया है। भगवान् की अपरिमित महिमा, शक्ति और त्रिभुवन मोहन सौन्दर्य का वर्णन पढ़कर प्रत्येक सहृदय गदगद हो उठेगा भगवान् कृष्ण के रूप वर्णन

चरित्राख्यान और लीलागान के अवसर पर भागवतकार का दार्शनिक रूप पूर्णरूपेण तिरोहित हो जाता है वे एक रस भक्ति भाव के सागर मे गोता लगा जाते है और अलकारो से गूथे जाने योग्य शब्द-रत्न स्वत ही उनकी भाषा की विस्तार परिधि मे सिमटते चले आते है। ऐसे ही स्थलों पर अलकृत भावात्मक शैली का मञ्जुल घोष सुनाई पड़ता है। जानबूझ कर भाषा को क्लिष्ट बनाने का प्रयत्न कही नही मिलता। अलकारो का बेजा भार कविता के सुकुमार शरीर पर लादने की लालसा इस आर्ष कवि को बिल्कुल नही रही। शबनम की बूँदों से शोभित लता के समान अछूता होकर भी उसकी कविता का अलकृत सौन्दर्य क्षणिक नहीं है जो उसकी भावमयी आत्मा के उल्लास के साथ सर्वत्र सगति बनाए हुए है। प्रथम स्कन्ध मे भीष्मपितामह के मुख से भगवान् की जो स्तुति कराई गई है उसकी अनुभूति की गहराई आकी नही जा सकती। मानो भक्तिरसार्णव मे आपाद मस्तक निमज्जित कोई परमभक्त पुकार रहा है—

'त्रिभुवनकमन तमालवर्ण
रविकर गौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्ज
विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥
युधितुरग रजोविधूम्रविष्वक्
कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये।
मम निशित शरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥

× × ×

स्व निगममपहाय मत्प्रतिज्ञा
मृतमधिकर्तुं मवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथ चरणोऽभ्ययाच्चलद्गु-
र्हरिरिव हन्तुमिभगतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥
शित विशिख हतो विशीर्ण दश.
क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं
स भवतु मे भगवान्गतिर्मुकुन्दः' ॥ ३८ ॥

श्रीमद्भागवत १. ६

'त्रिभुवन सुन्दर और तमालवृक्ष के समान श्याम वर्ण, सूर्यरश्मियो के समान उज्ज्वल पीताम्बरधारी, अलकावली से आवृत मुखमण्डल वाले, सुन्दर रूप वाले अर्जुन सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्काम प्रीति हो। जिनका मुखकमल युद्ध मे घोडो के खुर की धूलि से धूमरित और चचल अलकावली एव पसीने की बूँदों से सुशोभित है तथा जिनकी त्वचा मेरे तीक्ष्ण बाणों से छिदी जारही है, उन कवच सुशोभित कृष्ण मे मेरा चित्त स्थिर हो। जो अपनी प्रतिज्ञा छोड़कर मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए रथ से कूद पड़े और सिंह जैसे हाथी को

मारने चलता है वैसे ही मुझ मारने के लिए रथ का पहिया लेकर इतने वेग से दौड़े कि पृथ्वी डगमगा उठी और कंधे का दुपट्टा गिर गया। मुझ आततायी के तीक्ष्ण बाणों से जिनका कवच फट कर शरीर लोहूलुहान होगया उस समय मुझे मारने के लिए जो बड़े वेग से दौड़े वे भक्त-वत्सल भगवान् मुकुन्द मेरी गति हों।' इस स्तुति में हमें एक परम भावुक भक्त हृदय की झाँकी मिलती है। कवि ने अपने आराध्य देव का जो त्रिभुवन कमनीय तमाल श्याम पीतवसन धारी रूप वर्णन किया है, वह हिन्दी के भक्ति-साहित्य में उपजीव्य है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की जिस रूप माधुरी के दर्शन पद पद पर होते हैं, वह दिव्य है। प्रायः समस्त कृष्ण भक्त कवि श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य के वर्णन के लिए श्रीमद्भागवत के ऋणी हैं।

चित्रोपमता

उपर्युक्त स्तुति में कवि ने श्रीकृष्ण का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह चित्रोपम है। महाभारत के रण-प्रांगण में स्वेद और रक्त से लथपथ गतोत्तरीय होकर हाथ में रथाङ्ग लेकर भीष्म पर क्रुद्ध सिंह के समान आक्रमण करने वाले श्रीकृष्ण का चित्र कितना सजीव है। श्रीमद्भागवत में ऐसे अनेक सजीव चित्र हैं। उनका वर्णन पढ़ते पढ़ते समस्त वातावरण घटना और पात्र नेत्रों के समक्ष प्रस्तुत हो जाते हैं। अँग्रेजी साहित्य शास्त्र में इस प्रकार के चित्रोपम वर्णन को (Pictorial Effect) कहते हैं। यहाँ हम भगवान् के मोहिनी रूप का वर्णन देते हैं जो नारी के सहज सौन्दर्य चाञ्चल्य और आकर्षक रूप का ऐसा मोहक चित्र उपस्थित करता है, जो अपना सानी नहीं रखता। शिव की प्रार्थना पर विष्णु भगवान् ने अपना वह महामोहक रूप इस प्रकार दिखाया—

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लस-
द्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥
आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चल-
त्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥
दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम्।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लस-
त्कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥
श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥

श्रीमद्भागवत ८—१२—१८—२१

शिव ने देखा कि चित्र विचित्र पुष्पों और अरुण वर्ण नव पल्लव युक्त द्रुमों से सुषमित उपवन में सुन्दरी गेंद उछाल उछाल कर क्रीडा कर रही थी और जिसके

दुकूल से सुशोभित नितम्ब देश पर मेखला पड़ी हुई थी कन्दुक को उछालने और लपकने के कारण हिलते हुये स्तन और मनोहर मालाओं के भारी भार से जिसकी क्षीण कटि पद पद पर टूटी सी जाती थी और जो अपने चचल चरणों को इतस्ततः ले जाती थी। उस विशाल और चचल नेत्रो वाली तरुणी के नेत्र-तारक दिशा विदिशा मे उछलते हुये कन्दुक की चपलता से उद्विग्न हो रहे थे। उसका मुख मण्डल कानो में पहने हुए सुन्दर कुण्डलो से सुशोभित कपोलों पर छिटकी हुई नीली अलको से सुषमित था। वह रमणी अपनी खिसकी हुई साड़ी एव शिथिल हुई वेणी को अपने अति मनोहर वामकर मे सँवारती जाती थी तथा दूसरे हाथ से गेंद उछाल उछाल कर अपनी माया से सम्पूर्ण जगत को मोहित कर रही थी।' नारी के सहज सौन्दर्य और लीला विलास का कितना स्वाभाविक चित्रण है। नारी के सर्वलोक मनोहर रूप का इतना सुन्दर चित्र साहित्य में दुर्लभ है। प्रगल्भ नारी का यह रूप युग युग से कवि का वर्ण्य विषय रहा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त वर्णन महा काव्य-कारों द्वारा निबद्ध देवाङ्गनाओं के विहार की स्मृति दिलाता है।

कवित्वमय-वर्णन

यद्यपि इतिवृत्त मे नीरसता आ जाना एक स्वाभाविक और साधारण बात है किन्तु श्रीमद्भागवत के वर्णन प्रायः इसके अपवाद है। कवि ने दार्शनिक तथ्यों तक का वर्णन अत्यन्त सरसता के साथ किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन के अतिरिक्त देश, काल नदी, पर्वत, वन, ऋतु, नगर, स्वर्ग, नरक, वैकुण्ठादिलोक तथा अतलवितलादि अधोलोको का वर्णन अत्यन्त कवित्वमय है। युद्ध मे वीर दर्प की उक्तियाँ तथा समर का प्रत्यक्षवत् वर्णन बहुत ही मनोहर है। शिव के वासस्थान कैलास तथा विष्णु के धाम वैकुण्ठ के वर्णन मे कवि ने चमत्कार दिखाया है। अधिक विस्तार न देकर हम यहाँ उक्त दोनों स्थानों के चित्रोपम वर्णन का थोड़ा सा अंश प्रस्तुत करेगे।

वैकुण्ठ लोक का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः।
सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥
वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र।
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां॥
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः।
पारावतान्यभृतसारसचक्रवाक॥
दात्यूहहंसशुकतित्तिरबर्हिणां यः।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चै-
र्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने॥
मंदारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्ण।
पुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः॥
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्याः।
यस्मिंस्तपः सुमनसो बहुमानयन्ति

श्रीमद्भाग० ३ १५ १६ १६

वैकुण्ठ मे समस्त ऋतुओं की सम्पत्ति से युक्त कल्पवृक्षों मे सुशोभित नैःश्रेयस नामक वन है वह मूर्तिमान् कैवल्य पद के समान ही है। वहाँ अपनी प्रियाओं के साथ विमानचारी गन्धर्वगण प्रभु की पवित्र लीलाओं का, जो लोक की पापराशि को नष्ट करने वाली है, गान करते है। वे सरोवरो मे खिली हुई मकरन्द भरी माधवीलता की सुमधुर गन्ध मे चित्त के चचल होने पर भी उस गन्ध को लाने वाले वायु का तिरस्कार कर देते है। जिस समय भ्रमरराज गु जार करते हुए मानो हरि कथा का गान करते है उस समय थोड़ी देर के लिए कबूतर, कोकिल, सारस, चकवा, चातक, हंस, शुक तीतर और मोरो का कोलाहल बन्द हो जाता है। (क्योंकि वे सभी हरिकथा सुनना चाहते है) तुलसी विभूषित हरि तुलसी की सुगन्ध का ही अधिक मान करते है—यह देखकर वहाँ के मदार कुन्द, कुरव उत्पल, चम्पक, अर्ण पुन्नाग नागकेशर बकुल, अम्बुज और पारिजात आदि सुमनगण सुगन्ध युक्त होकर भी उस वन मे तुलसी का ही तप अधिक मानते है।' चित्रोपम वर्णन के अतिरिक्त इस प्रसंग ने काव्य-सुलभ जिन सुन्दर उत्प्रेक्षाओ का प्रयोग किया गया है वे सहज रूप से मनोज्ञ हैं। यह वर्णन बहुत विस्तृत है। यहा अमृतसागर की कतिपय लहरियो का ही दर्शन कराया जा सका है।

कैलास पर्वत के चित्रण से भी एक नमूना लीजिए—

जन्मौषधि तपोमन्त्र योग सिद्धैर्नरेतरैः।
जुष्ट किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा॥
नाना मणिमयैः शृंगैर्नाना धातुविचित्रितै।
नाना द्रुमलता गुल्मैर्नाना मृग गणावृतैः॥
नानामल प्रस्रवणैर्नाना कन्दरसानुभिः।
रमण विरहन्तीना रमणैः सिद्ध योषिताम्॥
मयूर केकाभिरुत मदान्धालि विमूर्छितम्।
प्लावितै रक्तकण्ठाना कूजितैश्च पतत्रिणाम्॥
आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्काम दुधैर्द्रुमैः।
व्रजन्तमिव मातंगैर्गृणन्तमिव निर्झरैः॥

॥ .... ॥ ४, ६, ६, १३

'वह पर्वत जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योग आदि उपायों से सिद्ध हुए देवता, किन्नर, गन्धर्व और अप्सरा आदि से निरन्तर भरा रहता है चित्र विचित्र धातु अनेक प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म और नाना मृगगणो से आवृत्त नाना मणिमय शिखरो से युक्त वह पर्वत अत्यन्त रमणीय जान पडता है। वह निर्मल जल के अनेक झरनो और बहुत सी कन्दराओ तथा शिखरो से सुशोभित है। वह अपने प्रियतमो के साथ विहार करती हुई सिद्ध पत्नियो का क्रीडा स्थल बना हुआ है। उसमे सब ओर मोरो का शोर मदान्ध भ्रमरों की गुनगुनाहट कोकिला की कुहू-कुहू ध्वनि और पक्षियो की चहचहाहट गूँजती रहती है। कल्पवृक्षो की ऊँची-ऊँची शाखाओं से मानो वह पक्षियो को बुला रहा है हाथियो के चलने फिरने से वह चलता फिरता मालूम होता है और झरनों की से बोलता सा जान पड़ता है

दुकूल से सुशोभित नितम्ब देश पर मेखला पड़ी हुई थी कन्दुक को उछालने और लपकने के कारण हिलते हुये स्तन और मनोहर मालाओं के भारी भार से जिसकी क्षीण कटि पद पद पर टूटा सी जाती थी और जो अपने चचल चरणों को इतस्तत ले जाती थी। उस विशाल और चचल नेत्रों वाली तरुणी के नेत्र-तारक दिशा विदिशा मे उछलते हुये कन्दुक की चपलता से उद्विग्न हो रहे थे। उसका मुख मण्डल कानों मे पहने हुए सुन्दर कुण्डलों से सुशोभित कपोलों पर छिटकी हुई नीली अलकों से सुषमित था। वह रमणी अपनी खिसकी हुई साड़ी एव शिथिल हुई वेणी को अपने अति मनोहर वामकर से सँवारती जाती थी तथा दूसरे हाथ से गेंद उछाल उछाल कर अपनी माया से सम्पूर्ण जगत को मोहित कर रही थी।' नारी के सहज सौन्दर्य और लीला विलास का कितना स्वाभाविक चित्रण है। नारी के सर्वलोक मनोहर रूप का इतना सुन्दर चित्र साहित्य मे दुर्लभ है। प्रगल्भ नारी का यह रूप युग युग से कवि का वर्ण्य विषय रहा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त वर्णन महा काव्यकारों द्वारा निबद्ध देवाङ्गनाओं के विहार की स्मृति दिलाता है।

कवित्वमय-वर्णन

यद्यपि इतिवृत्त मे नीरसता आ जाना एक स्वाभाविक और साधारण बात है किन्तु श्रीमद्भागवत के वर्णन प्रायः इसके अपवाद है। कवि ने दार्शनिक तथ्यों तक का वर्णन अत्यन्त सरसता के साथ किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णन के अतिरिक्त देश, काल नदी, पर्वत, वन, ऋतु, नगर, स्वर्ग, नरक, वैकुण्ठादिलोक तथा अतलवितलादि अधोलोकों का वर्णन अत्यन्त कवित्वमय है। युद्ध मे वीर दर्प की उक्तियाँ तथा समर का प्रत्यक्षवत् वर्णन बहुत ही मनोहर है। शिव के वासस्थान कैलास तथा विष्णु के धाम वैकुण्ठ के वर्णन मे कवि ने चमत्कार दिखाया है। अधिक विस्तार न देकर हम यहाँ उक्त दोनों स्थानों के चित्रोपम वर्णन का थोड़ा सा अंश प्रस्तुत करेंगे।

वैकुण्ठ लोक का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

यत्र नैःश्रेयस नाम वन कामदुघैर्द्रुमैः।
सर्वर्तु श्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥
वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र।
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधु माधवीनां॥
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः।
पारावतान्य भृतसारस चक्रवाक॥
दात्यूह हंसशुकतित्तिर बर्हिणां य।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चै—
र्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने॥
मंदार कुन्द कुरबोत्पल चम्पकार्ण।
पुन्नाग नागबकुलाम्बुज पारिजाताः॥
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या।
यस्मिंस्तपः सुमनसो बहुमानयन्ति

श्रीमद्भाग० ३ १५ १६ १९

वैकुण्ठ में समस्त ऋतुओं की सम्पत्ति से युक्त कल्पवृक्षों से सुशोभित नैःश्रेयस नामक वन है। वह मूर्तिमान् कैवल्य पद के समान ही है। वहाँ अपनी प्रियाओं के साथ विमानचारी गन्धर्वगण प्रभु की पवित्र लीलाओं का, जो लोक की पापराशि को नष्ट करने वाली है, गान करते हैं। वे सरोवरों में खिली हुई मकरन्द भरी माधवीलता की सुमधुर गन्ध से चित्त के चंचल होने पर भी उस गन्ध को लाने वाले वायु का तिरस्कार कर देते हैं। जिस समय भ्रमरराज गुंजार करते हुए मानो हरि कथा का गान करते है उस समय थोड़ी देर के लिए कबूतर, कोकिल, सारस, चकवा, चातक, हंस, शुक तीतर और मोरों का कोलाहल बन्द हो जाता है। (क्योंकि वे सभी हरिकथा सुनना चाहते हैं) तुलसी विभूषित हरि तुलसी की सुगन्ध का ही अधिक मान करते हैं—यह देखकर वहाँ के मंदार कुन्द, कुरब उत्पल, चम्पक, अर्ण पुन्नाग नागकेशर, बकुल, अम्बुज और पारिजात आदि सुमनगण सुगन्ध युक्त होकर भी उस वन में तुलसी का ही तप अधिक मानते हैं।' चित्रोपम वर्णन के अतिरिक्त इस प्रसंग में काव्य-सुलभ जिन सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया गया है वे सहज रूप से मनोज्ञ हैं। यह वर्णन बहुत विस्तृत है। यहाँ अमृतसागर की कतिपय लहरियों का ही दर्शन कराया जा सका है।

कैलास पर्वत के चित्रण से भी एक नमूना लीजिए—

जन्मौषधि तपोमन्त्र योग सिद्धैर्नरेतरैः।
जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा॥
नाना मणिमयैः शृंगैर्नाना धातुविचित्रितैः।
नाना द्रुमलता गुल्मैर्नाना मृग गणावृतैः॥
नानामल प्रस्रवणैर्नाना कन्दरसानुभिः।
रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्ध योषिताम्॥
मयूर केकाभिरुतं मदान्धालि विमूर्छितम्।
प्लावितै रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम्॥
आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्काम दुघैर्द्रुमैः।
व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः॥

॥ .... ॥ ४, ६, ६, १३

'वह पर्वत जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योग आदि उपायों से सिद्ध हुए देवता, किन्नर, गन्धर्व और अप्सरा आदि से निरन्तर भरा रहता है चित्र विचित्र धातु अनेक प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म और नाना मृगगणों से आवृत्त नाना मणिमय शिखरों से युक्त वह पर्वत अत्यन्त रमणीय जान पड़ता है। वह निर्मल जल के अनेक झरनों और बहुत सी कन्दराओं तथा शिखरों से सुशोभित है। वह अपने प्रियतमों के साथ विहार करती हुई सिद्ध पत्नियों का क्रीडा स्थल बना हुआ है। उसमें सब ओर मोरों का शोर मदान्ध भ्रमरों की गुनगुनाहट कोकिला की कुहू-कुहू ध्वनि और पक्षियों की चहचहाहट गूँजती रहती है। कल्पवृक्षों की ऊँची-ऊँची शाखाओं से मानो वह पक्षियों को बुला रहा है हाथियों के चलने फिरने से वह चलता फिरता मालूम होता है और झरनों की से बोलता सा जान पड़ता है

अनन्तमिव मातगंगृ ण ाम्मिव निर्झर मे ७ अक्षा की मनोरम माला दृश्य को अधिकाधिक चाक्षुषत्व प्रदान करने के अतिरिक्त उसके मानसिक प्रभाव का भी उस स्तर की अभिव्यक्ति करता है जो कविकुलगुरु कालिदास द्वारा नूपुर को 'चरणारविन्दविश्लेषदु खादिवबद्धमौनम्' बताने वाली उत्प्रेक्षामयी उक्ति मे हुई है। यों तो भागवत का अधिकाश इतिवृत्तात्मक शैली मे लिखा गया है किन्तु कितने ही स्थलों पर वस्तु का निर्वाह इस ढग से किया गया है कि वे किसी महाकाव्य के अश से प्रतीत होते हैं। कलात्मक अभिव्यक्ति तथा सुव्यवस्थित छन्द-योजना के साथ-साथ घटनाओ का सजीव चित्रण इन स्थलो की विशेषता है। नवम स्कन्ध के दशम अध्याय का रामोपाख्यान एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य के गुणों से भरपूर है।

पद्यांश के अतिरिक्त भागवत में गद्यांश भी है। यद्यपि पद्यांश की तुलना मे गद्य भाग अत्यल्प है तथापि जितना भी है वही इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि "गद्य कवीना निकष वदन्ति" सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने वाले युग की साहित्यिक चेतना के प्रति भी भागवतकार कुछ कम सजग नही थे। उनके गद्य की प्रौढता एव ओज भागवत को सहज ही सस्कृत के किसी भी गद्यकार की रचना के समकक्ष रखे जा सकने की योग्यता प्रदान करते है। उदाहरणार्थ नीचे लिखे हुए ये दो वाक्य ही ले लीजिए—

१—न हि विरोध उभय भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीन-विकल्प वितर्कविचार प्रमाणाभासकुतर्क शास्त्रकलिलान्त करणाश्रयदुखग्रह वादिना विवादा-नवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूप-द्वयाभावात्।[1]

२—अस्माकं तावकानां तव नतानां तव ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानु-बद्धहृदयनिगडानां स्वलिंगविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जित विशद रुचिर शिशिर-स्मितावलोकेन विगलितमधुर सुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम्।[2] प्रतीत होता है कोई सुबन्धु, बाण अथवा भवभूति बोल रहा है। इसी प्रकार पाँचवें स्कन्ध के अठारहवे अध्याय में गद्य के कितने ही अंश ऐसे है जो सस्कृत के प्रौढ गद्यमय रोमाण्टिक काव्यो के उद्धरण से ज्ञात होते है। जैसे—

अतीव सुललित गतिविलासविलसित रुचिरहासलेशावलोकलीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दर भ्रूमण्डलसुभग वदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते।[3]

भाव पक्ष

साहित्यिक दृष्टि से भागवत के गीतों का अत्यन्त महत्त्व है। ये गीत है— वेणुगीत, गोपी गीत, युगल गीत, भ्रमर गीत, द्वारका को श्रीकृष्ण की पत्नियों का गीत, पिंगला गीत, भिक्षु गीत, ऐल गीत और भूमि गीत। इन गीतों मे मानवीय मनोभावो का सहज एव मनोरम प्रस्फुटन हुआ है। सौन्दर्य के प्रति ललक, अनुराग की तीव्रता, विरह की अनुभूति, प्रियसान्निध्य से प्रसूत गौरव और उसके दाक्षिण्य के कारण आविर्भूत गर्व की हृदयहारिणी अभिव्यक्ति सचमुच श्लाघनीय है। भिक्षुगीत, ऐलगीत और भूमिगीत निर्वेदपरक गीत है।

---

१ श्रीमद्भागवत ६ ९ ३६
२ वही ६ ९ ४१
३ [illegible] ५ १८ १८

भिक्षुगीत मे लोगो से अपमानित दीन ब्राह्मण ससार से निर्विण्ण होकर आत्मोद्धार करता है ऐलगीत मे उर्वशी के सम्मोहन मे भूला हुआ ऐल अन्त मे निर्वेद को प्राप्त होकर अपने आप को धिक्कारता है। भूमिगीत मे भूमि नश्वर राजाओ की विजयाकांक्षा पर तीव्र व्यङ्ग्य करती हुई कहती है कि ये राजा लोग, जो मृत्यु के हाथो के खिलौने है, मुझे जीतना चाहते हैं अपने जल बुद्बुदसदृश जीवन पर विश्वास करते हैं और धोखा खाते है। इन गीतो मे शान्तरस का अच्छा परिपाक हुआ है। भिक्षु गीत मे मन की निन्दा करता हुआ ब्राह्मण कहता है—

> देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः।
> एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपोरे तमसि भ्रमन्ति ॥[1]

इस मनोमात्र देह को धारण कर अन्धबुद्धि मनुष्य मैं, मेरा और अपने पराये के भ्रम मे पडकर दुस्तर अन्धकार मे भ्रमण करते रहते है।

अतृप्तकाम ऐल की आत्मग्लानि भी निर्वेद का उत्कृष्ट उदाहरण है—

> अहो मे आत्मसमोहो येनात्मा योषिता कृतः।
> क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेव-शिखा-मणिः॥
> कुतस्तस्यानुभावः स्यात् तेज ईशत्वमेव वा।
> योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्ती खरवत् पादताडितः॥
> स्वार्थस्याकोविद धिङ्मा मूर्खं पण्डितमानिनम्।
> योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः॥
> पुंश्चल्यापहृतं चित्तं कोऽन्यो मोचितुं प्रभुः।
> आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम्॥

धिक्कार है मुझे जिसने अपने आपको स्त्रियो का वशवर्ती बना दिया। उस व्यक्ति का प्रभाव, तेज और प्रभुता कहाँ रहे जो खर के सदृश ठुकराया जाकर भी स्त्री के पीछे लगा रहता है। स्वार्थ को भी न समझ सकने वाले मुझ पण्डितम्मन्य मूर्ख को धिक्कार है जो प्रभुता पाकर भी साँड या खर के समान स्त्री के हाथो बिक गया। कुलटा कामिनी के द्वारा अपहृत हृदय को आत्माराम भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अन्य कौन मुक्त कर सकता है।

इन पंक्तियो में केवल आत्मग्लानि, पश्चात्ताप और विषाद की त्रिवेणी ही नही उमड रही है अपितु प्रबलतम मानवीय भाव का भौतिक धरातल से आध्यात्मिक सुमेरु तक उन्नयन का मनोरम मार्ग भी स्पष्ट चित्रित किया गया है। भागवतकार के कविहृदय की ऐसी झाँकियाँ अनेक स्थलो पर दिखाई पड़ेंगी।

दशम स्कन्ध इक्कीसवे अध्याय के अन्तर्गत वेणुगीत अपने मादक प्रभाव के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृष्ण की मोहक वेणु का सगीत गोपियों के सरल निर्मल हृदय पर ऐसा प्रभाव डालता है कि वे उसकी डोर मे बँधी हुई सी आत्मविस्मृत होकर विवश

---

१ श्रीमद्भागवत १२ २३ ५०

हो जाती हैं। यह ऐसी विवशता है जो देवताओं के लिए भी स्पृहणीय है। वेणुगीत मे भागवतकार ने अपनी भाषा, छन्द योजना और भावाभिव्यक्ति के द्वारा वेणु के संगीत को ही नही उसके प्रभाव को भी पाठकों के हृदय मे संक्रमित कर देने की क्षमता भर दी है। अपनी अलौकिक तान मे जड़ को चेतन और चेतन को जड़ बना कर समरसता उत्पन्न कर देने वाले वेणु के वर्णन मे भागवतकार ऐसे दिव्य वातावरण की सृष्टि करते हैं जिसमे साँस लेकर पाठक एक नवीन भावजगत् की अनुभूति करने लगता है—

> धन्या. स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दन मुपात्तविचित्रवेषम् ।
> आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसारा. पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥
> गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तभित कर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
> शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकला स्पृशन्त्यः ॥
> प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
> आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥
> नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनो भवभग्नवेगाः ।
> आलिंगन स्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥

ये मूढमति हरिणियाँ धन्य है जो अपने कृष्णसार मृगों के साथ विचित्रवेषधारी कृष्ण की वेणुध्वनि सुन कर स्निग्धदृष्टि से उनकी पूजा करती है गऊएँ उनके (कृष्ण के) मुख से निर्गत वेणुगीत रूपी अमृत का स्तब्ध एवं उन्नत कर्णों से पान कर रही है। वृक्षो की किसलयशोभी शाखाओं पर बैठे हुए पक्षिगण मुनिवत् मौन नेत्रनिमीलन कर वेणु का गीत सुन रहे है और नदियाँ, जिनके आवर्त उनकी कामवश अवरुद्ध गति के द्योतक हैं, कमलो का उपहार लिए अपनी वीचिरूपी भुजाओं से आलिंगन से छूटे हुए कृष्ण के चरणयुगल को पकड़ रही है।"

निःसन्देह वातावरण उस रास की उपयुक्त भूमिका है जिसमे भागवत की भावसृष्टि चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। स्नेह और भक्ति का श्रेय और प्रेय का, शिव और सुन्दर का ऐसा अद्भुत समन्वय सचमुच ब्रह्मानन्द सहोदर रस का जनक सिद्ध होता है। वेणुरव की सुरा से उन्मत्त गोपियाँ अपने पतियो के साथ लोकलाज को भी त्याग कर रात्रि के समय कृष्ण के पास पहुँचती है। वे गई थीं आत्म-समर्पण करने के लिए स्नेहसुधा का रसपान करने के लिए किन्तु कृष्ण उन्हे कुलांगनाओं के आचरण पर एक लम्बा-चौड़ा उपदेश पिलाने के लिए आगे आये उस समय गोपियों की दशा का जो शब्दचित्र भागवतकार ने प्रस्तुत किया है वह उनके भावों की कितनी स्पष्ट झलक दे रहा है—

> कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्—
> बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
> अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि
> तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥[1]

---

१ श्रीमद्भागवत १०–२६ २९

अपने तप्त श्वासों से सूखते हुए बिम्बाधर वाले मुखों को नीचाकर चरण (के नख) से पृथ्वी को कुरेदती हुई काजल से मिश्रित आँसुओं से कुचों पर लिप्त कुङ्कुम को धोती हुई गोपियाँ गुर्वी वेदना के कारण मौन रह गई।

इस श्लोक मे गोपियों की मनोदशा का पूरा प्रतिबिम्ब उभर आया है। विषाद, चिन्ता लज्जा आदि भावों से पुष्ट वेवशी का इससे सुन्दर चित्र दुर्लभ है। बेचारी गोपियाँ कहें तो क्या कहें। कृष्ण उन्ही को दोष दे रहे है, अपने हरजाई रूप को कुछ नही कहते जिसकी चपेट मे त्रैलोक्य को कोई भी सुन्दरी विजित हो सकती है। उन्हें कहना ही पड़ा कि—

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहितार्यं चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपम्
यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥[1]

ओह! त्रिलोकी में कौन स्त्री है जो तुम्हारे व्यापक सौन्दर्य मे सम्मोहित होकर अपने मार्ग से विचलित न हो जाये। इस त्रैलोक्य सुन्दर रूप को देखकर तो पशु, पक्षी और वृक्ष भी पुलकित हो उठते है।

कृष्ण व्रज के कष्टों को हरने का दम भरते है, आर्त-बन्धु होने का ढिंढोरा पीटते हैं किन्तु स्वय ही गोपियों के हृदय मे प्रणय की वेदना उत्पन्न कर उपचार तक नहीं करते। अतः गोपियां उनके कर्त्तव्यों का स्मरण दिलाती हुई कहने के लिए बाध्य हो जाती हैं कि—

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो!
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम्॥[2]

आप व्रज के भय एव ताप को दूर करने के लिये सुरलोक रक्षक आदि पुरुष के समान आविर्भूत हुए हैं। अत आर्तबन्धो! हम किङ्करियो के सतप्त स्तनों और सिरों पर अपने कर कमल को स्थापित कीजिए।

गोपियो के स्नेहोपालम्भ के समक्ष कृष्ण निरुत्तर हो गए और उन्हे उनकी इच्छा की पूर्ति के हेतु रास रचाना पड़ा। रास के अन्तर्गत विविध प्रकार की काम क्रीडाओं के रस से मत्त गोपियो के हृदय में जब सौभाग्य मद का सञ्चार हुआ तो कृष्ण उसका विन्यन करने के उद्देश्य से अन्तर्हित हो गए। इसके पश्चात् गोपियो का जो विरह-विलाप है वह साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की वस्तु है। उन्हे उन्माद की दशा अभिभूत कर लेती है। आत्म-विस्मृत होकर वे जड़-चेतन की संवित्ति से शून्य होकर पशु-पक्षियो और लता-वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती हुई वन मे भटकने लगती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की नागमती की इसलिए बड़ी भारी प्रशंसा की है कि वह विरह मे सब कुछ भूलकर अपने रानीपने को भी बिसरा कर—साधारण स्त्री की भाँति—बरसात मे अपने पति की अनुपस्थिति मे घर के छाने की चिन्ता करती है और भौंरे तथा काग से अपने प्रिय को संदेसड़ा कहने के लिए कहती है। तुलसी के राम भी अपनी मृगनैनी सीता को खोजते हुए खग, मृग और मधुकर श्रेनी से उनके बारे में पूछते हैं। भागवतकार की गोपियाँ इस प्रशस्त मार्ग को बहुत पहले ही दिखा

१ श्रीमद्भागवत १० २६ ४०
२ " १ २१ ४१

चुकी थीं। भागवत के दशम स्कन्ध का तीसवां अध्याय गोपियों के विरहोन्माद की करुण कहानी प्रस्तुत करता है। कृष्ण के विरह में वे तन्मयी होकर कृष्ण की लीलाओं को व्यक्त करने लगती हैं। उनकी दृष्टि में विरहाग्नि में झुलसा देने वाले प्रियतम के नाजुक चरण अटवी-अटन के योग्य नहीं है अतः वे अनुपस्थित कृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहती हैं—

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु,
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥[१]

प्रिय! तुम्हारे जिन चरण कमलों को हम अपने कर्कश स्तनों पर डरते-डरते रखा करती थीं उन्हीं से वन में घूमते हो, क्या उनमें वेदना नहीं होती?

गोपियों की असह्य विरह व्यथा कृष्ण को पुनः प्रकट होने के लिए बाध्य कर देती है, वे प्रकट होते हैं और पुनः उनके साथ रास में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस रास के वर्णन में भागवतकार का भावुक कवि हृदय पुनः दर्शन और भक्ति के आवरण को उठाकर सामान्य भावभूमि पर थिरकता हुआ प्रतीत होता है। रास प्रवृत्त गोपियों की चेष्टाओं में उसकी थिरकन और धड़कन दोनों ही सुनी जा सकती हैं। उसने स्पष्ट देखा कि—

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥[२]

पग सञ्चालन, भुज आन्दोलन, मुस्कान सहित भ्रूविलास, खिसकते कुचवस्त्र, कपोलों पर टकराते हुए चञ्चल कुण्डल और भग्न होते हुए से कटि प्रदेश वाली स्वेद सीकरों से अलङ्कृत मुखी गोपियाँ गाती हुई मेघ चक्र में तडित्-मण्डल के सदृश शोभित हो रही थीं।

इसके पश्चात् रासचक्र का तेजी के साथ प्रवर्तन होता है। एक-एक करके गोपियों की चेष्टाओं का जिस ढंग के साथ वर्णन किया गया है उससे रासचक्र की तीव्रगति पूर्णरूप से व्यक्त हो जाती है। भाषा का प्रवाह उसकी रवानी में और भी अधिक उत्कर्ष ला देता है। रास क्रीडा में अस्त-व्यस्त-वेष-भूषा वाली गोपियों का चित्रण तो अमरुक की कृतसुरता नायिका की याद दिला देता है—

तदङ्गसङ्ग प्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ।[३]

कृष्ण के अंगों के आसंग से प्रमुदित एवं आकुल इन्द्रियों वाली गोपियाँ अपने केश, दुकूल, चोली आदि की सुध न रख सकीं। उनकी मालाएँ और आभूषण भी विस्रस्त हो गए।

इस प्रकार वर्णन की चित्रात्मकता, भावों की कोमल व्यञ्जना, अनुप्रासों के मनोरम विधान, घटनाओं की कौतुकतापूर्ण कल्पना, प्रकृति के स्वाभाविक चित्रण, अलङ्कारों के सन्तुलित प्रयोग और भाषा के यथाप्रसंग सयोजन से भागवत में उन सत्काव्योचित गुणों का समावेश हो गया है जो किसी भी रचना के लिए गौरव का विषय बनकर उसे स्थायी साहित्य की श्रेणी में रख सकते हैं।

---

१ श्रीमद्भागवत १०-३१-१९
२ ” १०-३३-[illegible]
३ ” १०-३३-१८

नवम अध्याय

श्रीमद्भागवत और वैष्णव सम्प्रदाय

तीसरे अध्याय में भक्ति आन्दोलन का विवेचन करते हुए हमने विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की एक झाँकी प्रस्तुत की थी। श्रीमद्भागवत में जिन व्यापक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है उनको आंशिक रूप में ग्रहण करके विभिन्न वैष्णव सम्प्रदाय चले। सभी वैष्णव सम्प्रदायों के प्रायः दो पक्ष है—सिद्धान्त पक्ष और आचरण पक्ष। इन दोनो ही पक्षों के मूल सूत्र हमें श्रीमद्भागवत में मिल जाते है। श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्तिग्रन्थ है। अद्वैत सिद्धि और भक्ति साधना ये दोनो भाव विरोधी प्रतीत होते है क्योंकि अद्वैत का मूलाधार माया-मिथ्यात्व है और भक्ति साधना का मूलाधार माया का ब्रह्म-प्रकृतित्व। परन्तु श्रीमद्भागवत मे इन दोनों तत्त्वों का ऐसा सुन्दर समन्वय और सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है कि कहीं भी सिद्धान्तगत कोई व्याघात नहीं है इस महान् ग्रन्थ मे प्राचीन और अर्वाचीन सभी धार्मिक मान्यताओं का संश्लिष्ट रूप में समावेश किया गया है। यही कारण है कि दक्षिण और उत्तर के सभी सम्प्रदाय या तो भागवत मे अन्तर्भूत हो जाते है या भागवत स्वयं उनका प्रेरणा-स्रोत बन जाता है। हम पहले कह चुके है कि वैष्णव भक्ति का द्वितीय उत्थान द्रविड़ देश में हुआ। आलवार सन्तों से लेकर वैष्णवाचार्यों तक हमे श्रीमद्भागवत की भक्ति-धारा प्रवहमान लगती है। आलवार शब्द का अर्थ ही है भगवद्भक्ति रस मे लीन व्यक्ति। आलवारों की भक्ति पद्धति में जाति-पाँति और ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नहीं था। वर्ण व्यवस्था के लिए उसमे कोई स्थान नहीं था। उस साधना का मूल-मन्त्र भगवान् की दिव्य लीलामात्र है। इसी दिव्य-लीला मे वैष्णवाचार्यों की भक्ति-साधना के बीज विद्यमान है। आलवारों ने अपनी भक्ति भावना को कभी भी शास्त्रीय जामा पहनाने की परवाह नहीं की। भक्ति-रस में सिक्त और सराबोर ये भोले सन्त तो भगवान् की कृपा का आविर्भाव जनता जनार्दन के मध्य करते रहे। वैदिक विधि-विधानों की परम्परा से पगे हुए वैष्णवाचार्यों ने उस भक्ति-पद्धति को शास्त्रीय रूप देने का प्रयास किया। तीसरे अध्याय मे हम कह चुके है कि इन शास्त्रीय आचार्यों के चार सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रचलित हुए—निम्बार्क या सनकादि सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदाय तथा रुद्र सम्प्रदाय। इन सम्प्रदायों के आचार्यों ने शंकर के मायावाद को भक्ति का महान् प्रतिबन्धक माना और 'प्रस्थानत्रयी' अर्थात् उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता की व्याख्या के माध्यम से अपने-अपने सिद्धान्तो की शास्त्रीयता प्रतिपादित की। इस प्रकार इन्होंने द्रविड़ प्रदेश में विष्णु भक्ति के प्रचार का महनीय प्रयत्न किया। इन सम्प्रदायो के प्रवर्तक आचार्य कहलाए और उन्होने तमिल वेद और संस्कृत वेद का सुन्दर समन्वय और सामजस्य प्रस्तुत किया। संभवतः इसीलिए ये आचार्य उभय वेदान्ती कहे जाते है। मायावाद का खण्डन और भक्ति का प्रचार ही इनका ध्येय था। भारतीय धर्म-साधना में यह चरम बिन्दु कहा जा सकता है। बहुत सी अवैदिक और विकृत वैदिक धर्म साधनाओ के कारण शुद्ध भारतीय परम्परा जब उच्छिन्न प्रायः हो चुकी

श्री भगवान् शंकर ने उसका नए रूप से संस्थापन किया था। अवैदिक धर्म साधनाओं के मूल तत्वों को लेकर उन्होंने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की और सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रायः सभी अवैदिक साधनाओं का निष्कासन सा कर दिया। सारे देश में उनका आतंक छा गया। वैदिक साधनाएँ जो विकृत हो चुकी थीं; उनके संस्कार और परिष्कार के लिए भी उन्होंने आवाज उठाई। शायद इसीलिए उन्हें कुछ लोगों ने प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा है। यहाँ हम संक्षेप में शंकर के सम्बन्ध में कुछ संकेत प्रस्तुत करेंगे। वैष्णव आचार्यों के सिद्धान्तों को समझने के लिए शंकर के सिद्धान्तों को समझना परमावश्यक है। साथ ही साथ वैष्णवों के मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत का अध्ययन भी शंकर के सिद्धान्तों के अध्ययन के बिना अधूरा ही कहा जायगा। सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत में भागवतकार बड़ी सुन्दरता से अद्वैत को मोड़ देता चला गया है। भक्ति-साधना की सीधी रेखा में वे मोड़ बिल्कुल प्रतीत नहीं होते। भागवत के आश्रय तत्व का निरूपण करते हुए हमने इस बात की विशदरूप से व्याख्या की है। श्रीमद्भागवत भक्ति ग्रन्थ है और आर्ष ग्रन्थ है। इसकी तिथि के सम्बन्ध में अधिक विवेचन सम्भव नहीं है पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत का प्रचार विशेष रूप से शंकर के पश्चात् ही हुआ।

शङ्कराचार्य

यद्यपि आचार्य शंकर के जीवन एवं सिद्धान्तों में सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री अधिगत तथापि उनके काल के विषय में अभी तक कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हो पाया। श्रीकृष्ण स्वामी अय्यर ने 'शंकर एण्ड हिज टाइम्स'' नामक पुस्तक में, भाष्याचार्य ने 'एज ऑफ शङ्कर' में तथा आनन्दगिरि ने 'शङ्कर विजय' में उनके जीवन तथा समय पर प्रकाश डाला है। उनका जन्म सं० ८४५ तथा निधन सं० ८७७ में माना जाता है पर तिलक जी इस मत से सहमत न होते हुए शंकर का समय उक्त तिथि से एक शताब्दी पूर्व मानते हैं; शंकर का जन्म मलाबार प्रान्त में मलाबार नदी के किनारे 'कलादि' नामक एक छोटे से ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम 'शिवगुरु' था जो नम्बूद्री ब्राह्मण थे तथा इनकी माता का नाम आर्याम्बा था। ये अभी बालक ही थे कि इनके पिता का देहावसान हो गया और इनकी शिक्षा-दीक्षा का पूरा भार इनकी माता पर आ पड़ा। शंकर अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न बालक थे, संसार की असारता से प्रभावित होकर अल्पायु में ही ये सन्यासी हो गये और नर्मदा के तट पर विचरण करने वाले गोविन्द योगी' के शिष्य बने जो स्वयं आचार्य (गौड़पाद) के शिष्य थे उन्होंने शंकर की विद्या, त्यागभावना और अपूर्व प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें परम हंस की उपाधि दी और तत्पश्चात् उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये देश-यात्रा प्रारम्भ की उनके जीवन चरित के लेखक 'आनन्दगिरि' ने शंकर की दिग्विजय का पूर्ण विवरण दिया है। दिग्विजय के पश्चात् वे कई बार अपनी जन्म-भूमि में भी आये थे और वहाँ अनेक सुधारों का श्रीगणेश भी किया था। उन्होंने स्थान-स्थान पर मठों की स्थापना की और स्त्रियों के अतिरिक्त सब जाति के लोगों को सन्यास दिया। वास्तव में आचार्य शंकर पहले आचार्य थे जिन्होंने जाति-पाँति की संकीर्ण परिधि को हटाने का प्रयास किया, सामाजिक विषमता दूर की और बौद्ध मत के समर्थक आचार्यों को पराजित किया। उनके 'मनुष्य पञ्चक' का अनुवाद करते हुए 'श्रीकृष्णास्वामी अय्यर' उनके विचारों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं

He who has learned to look on Phenomena in this light monistic is my true Guru, be he a chandal or a twice born. This is my conviction."

शंकर के इन विचारो का कट्टर ब्राह्मणो ने विरोध किया किन्तु वे लक्ष्य-भ्रष्ट न हुए। भारतीय संस्कृति के इतिहास में शंकर के प्रादुर्भाव को एक चमत्कार ही समझना चाहिए। परम्परागत दोषों को दूर कर समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का कार्य शंकर ने किया और अपनी अपूर्व प्रतिभा के प्रभाव से चतुर्दिक् प्रचलित बौद्ध और जैन मत का खण्डन करके अपने मत की स्थापना की, वैदिक धर्म की रक्षा के लिए भारवर्ष मे स्थान-स्थान पर मठ बनवाये और श्रुति स्मृतिविहित वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करके निवृत्ति मार्ग के वैदिक सन्यास धर्म को कलिकाल में पुनर्जन्म दिया। उनके विचारो का प्रवाह देश के सभी प्रान्तों और भाषाओं में बड़े वेग से प्रवाहित हुआ, जिसमे छोटे मोटे मत-मतान्तर डूबते उतराते हुए अन्त में विलीन हो गये। इस विषय मे डा० ताराचन्द का कथन उल्लेखनीय है --

Shanker's career is the great watershed in the history of Sanskrit Learning Behind him lies the world of ancient ideas, half reconciled systems, profound but scattered thoughts, rival philosophies, struggling for ascendancy, the changing pantheon and theologies in a fluid condition, a living culture almost anarchic in its exuberance, before him the medieval world of set ideas, fixed systems, scholastic ingenuity, accretion not growth, explanation not invention, commentaries not philosophies, a stereotyped uniformity. The living stream of culture abandons the ancient bed of Sanskrit and flows through near channels—Tamil Telugu and Canarese in the south, Hindi, Bangali, Marathi and Urdu in the north but the abandonment is never quite complete. an increasingly thinning rill continues to linger in the old beds. [1]

शङ्कर के पश्चात् जितने आचार्य हुए वे मूलरूप से शङ्कर के सिद्धान्तो को ही लेकर चले, या तो उन्होंने शंकर के सिद्धान्तो में कोई सुधार प्रस्तुत किया या उनसे विरोध प्रकट किया। इसलिये परवर्ती समस्त वैष्णव-सम्प्रदायों पर शंकर का व्यापक प्रभाव पड़ा। शंकर का कथन था कि वास्तव मे श्रुतिकथित सिद्धान्तों मे कोई विरोध नही है, केवल उनकी व्याख्या मे अन्तर हो सकता है। वैदिक धर्म के उन्होंने दो स्वाभाविक विभाग 'ज्ञान' और 'आचरण' बनाए। पहले विभाग मे तो ब्रह्म का स्वरूप-निर्णय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति मे लगाया जाता है और दूसरे अर्थात् आचरण पक्ष मे इस पर विचार होता है कि संसार मे मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिये। सिद्धान्त रूप से शंकराचार्य जी ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार समस्त संसार जो मनुष्य को चर्मचक्षुओ से दीख पड़ता है, असत्य है, सबमें एक ही शुद्ध और परमब्रह्म का अस्तित्व है और उसी की माया से भेद की प्रतीति होती है। वस्तुतः जीवात्मा परब्रह्म का ही स्वरूप है, जब तक इस अभेद का

---
1 Influence of Islam on Hindu culture
Dr Tarachand) 95–97

अनुभव नहीं होता तब तक मुक्ति असम्भव है, एक शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त परब्रह्म के अतिरिक्त विश्व में कोई वस्तु स्वतन्त्र नहीं है। माया तात्त्विक दृष्टि से भ्रम उत्पन्न करती है जो मिथ्या है। शंकर के अद्वैतवाद का महावाक्य 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है। उन्होंने ब्रह्म को निर्विशेष माना है। दृश्य का निषेध करके निषेध की सीमा मे जो अनुच्छिष्ट और शिष्ट रहता है वही अखण्ड चिन्मात्र, एकरस अद्वितीय ब्रह्म है। उसका निरूपण विधानात्मक शब्दों में नहीं हो सकता, वह केवल स्थूल नहीं है, दीर्घ नहीं है, शब्द-स्पर्श वाला नहीं है, अदृश्य है, अलक्ष्य है, अलक्षण है, अग्राह्य है। इन्हीं शब्दों के द्वारा उसका संकेत किया जा सकता है। परमार्थ दृष्टि से वे ब्रह्म की सगुणता स्वीकार नहीं करते और कहते है कि श्रुतियों में जहाँ सगुण ब्रह्म का वर्णन आया है वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपासना की सिद्धि के लिए है। अतः ब्रह्म का वास्तविक रूप निर्गुण ही है।

शाङ्कर सम्प्रदाय का आचरण-सिद्धान्त भी बड़े महत्त्व का है। उसके अनुसार स्मृति ग्रन्थों मे निरूपित आचार-व्यवहार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके बिना न तो चित्त की शुद्धि ही सम्भव है और न ही ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही प्राप्त हो सकती है। अतएव शङ्कराचार्य जी के सिद्धान्त के इस (आचरण पक्ष के अनुसार कर्म करना अनिवार्य है किन्तु अन्त में कर्म को भी त्याग कर सन्यास लेना पड़ेगा क्योंकि सब वासनाओं और कर्मों के छूटे बिना ब्रह्म ज्ञान सम्भव ही नहीं है। इसी को 'शाङ्कर' मत के अनुसार निवृत्तिमार्ग कहा गया है। इसी को सन्यासनिष्ठा या ज्ञाननिष्ठा भी कहते है। शङ्कराचार्य जी ने अपने मत के दोनों ही पक्षों की सगति उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र और गीता से लगाई है और उक्त ग्रन्थों को ज्ञान तथा कर्म का समुच्चय करने वाला ही बताया है। यद्यपि शङ्कर से पहले भी इन ग्रन्थों पर सन्यास मार्ग का विवेचन करने वाले भाष्य लिखे गये थे, परन्तु उनकी तिथि निर्णय करना कठिन कार्य है। 'गीता' का 'पैशाच' भाष्य हनुमान जी द्वारा कृत प्रसिद्ध है। वास्तव में यह भाष्य भागवत के टीकाकार हनुमान पण्डित का है पवन-सुत हनुमान का नहीं, आगे चल कर कुछ आचार्यों ने शंकर का ही अनुकरण किया।

तर्कसम्मत और समयापेक्षित होते हुए भी शंकर का मत सर्वथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसके दोनों पक्षों मे पूर्ण समन्वय का अभाव था। एक ओर तो ब्रह्म की अद्वैतता को उस अमूर्त स्थिति तक पहुँचा दिया था कि सामान्य व्यक्ति उसकी प्रक्रिया मे चौंधिया जाय और दूसरी ओर संसार के महत्त्व को स्वीकार करके भी उसकी निःसारता और मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके साधारण मानव समाज की ओर से मनुष्य को विमुख कर दिया। सन्यास को आवश्यक बना कर समाज-धर्म की भी उपेक्षा की गई। फिर भी समाज पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा 'अडियार' और 'आलवार' भक्तों की रागात्मिका भक्ति भावना के ऊपर धर्म का यह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के इन प्रस्तरों को भेद कर निर्झरिणी के रूप से फूट निकला जिसका आधार मान कर वैष्णव और शैव आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदायों का प्रचार किया, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि भक्तों की परम्परा समाप्त हो गई। अब एक ओर तो भक्त और सन्त अपनी अटपटी बानी में अपने हृदय के उद्गार गीतों मे स्फुटित करते रहे, दूसरी ओर विद्वान् आचार्य अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने लगे। इन सम्प्रदायों का उद्देश्य एक ओर तो बौद्ध मत और जैन मत को नीचा दिखाना था और दूसरी ओर अपने अपने को उपयोगिता सिद्ध कर उसका जनता में प्रचार करना

रामानुजाचार्य

वैष्णवाचार्यों में सबसे पहले नाथमुनि हुए जो दसवीं शती के आरम्भ में वर्तमान थे। उनके पौत्र और उत्तराधिकारी यामुन-मुनि रामानुजाचार्य के गुरू थे। यामुनाचार्य शंकर के 'मिथ्यात्ववाद' को भक्तिमार्ग का विरोधी समझते थे। इसलिये उन्होंने अपने प्रिय शिष्य 'रामानुज' को शंकर के सिद्धान्त का खण्डन करने का उपदेश दिया। रामानुजाचार्य का जन्म मद्रास के समीप 'त्रिपुटी' नामक स्थान पर सन् १०१६ और मृत्यु 'श्रीरङ्गम्' में सन् ११३७ में हुई। उनके पिता का नाम केशव और माता का नाम कान्तिमती था। उनके प्रारम्भिक गुरु 'यादवप्रकाश' शंकर मतानुयायी थे और काञ्चीवरम् में रहते थे। 'अद्वैतवाद' के विषय में उनका अपने गुरु से मतभेद था, अतएव इन्हें वहाँ से हटना पड़ा, फिर इन्होंने 'प्रबन्धम्' के गीतों का यथावत् अध्ययन किया। इसके अनन्तर वे यामुनाचार्य के शिष्य हुए और 'श्रीरङ्गम्' में अपने सम्प्रदाय की स्थापना की। यामुनाचार्य के निधन के पश्चात् ये उनके उत्तराधिकारी हुए और इन्होंने अपने भक्ति-विषयक सिद्धान्तों पर कई ग्रन्थों का प्रणयन किया। उत्तरी भारत के तीर्थ स्थानों की यात्रा करते हुए वे काशी भी गये थे। प्रसिद्ध है कि तत्कालीन चोलराज कुल्लोतुङ्ग प्रथम (१०९५ ई०) ने इन पर पर्याप्त अत्याचार किये क्योंकि वह इनको शैव सम्प्रदाय में दीक्षित करना चाहता था, इसलिये उस राज्य को त्याग कर इन्हें यादव वंशीय 'होयसल' राजाओं की शरण लेनी पड़ी। वहाँ इन्होंने तत्कालीन राजा 'विट्ठलदेव' को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। यह घटना सं० १०९८ की है, रामानुजाचार्य के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं:—वेदान्तसार, वेदान्तसंग्रह वेदान्तदीप तथा ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के भाष्य। इस प्रकार अपने सम्प्रदाय को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने के लिये इन्होंने प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता पर भाष्य लिखे। उन्होंने शंकर के 'माया' और मिथ्यात्व वाद दोनों का खण्डन किया और बताया कि यद्यपि जीव, जगत् और ईश्वर ये तीनों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं तथापि जीव (चित्) और जगत् (अचित्) ये दोनों एक ही ईश्वर के शरीर हैं। अतएव चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर एक ही है और फिर ईश्वर-शरीर के इस सूक्ष्म चित् अचित् से ही स्थूल चित् और स्थूल अचित् (क्रमश अनेक जीव और जगत्) की उत्पत्ति हुई। तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से इसमें भक्ति का ही प्राधान्य रहा। इसमें कर्म-निष्ठा को स्वतन्त्र न मान कर ज्ञाननिष्ठा का उत्पादक माना गया है। इस प्रकार रामानुजाचार्य ने शाङ्कर मत के 'अद्वैत-ज्ञान' के स्थान पर 'विशिष्टाद्वैत' और 'सन्यास' के स्थान पर 'भक्ति' की प्रतिष्ठा कर दोनों में भेद किया परन्तु आचार दृष्टि से भक्ति को ही अन्तिम निष्ठा अङ्गीकार किया, जिससे वर्णाश्रमविहित सांसारिक कर्म भी गौण हो गये। तात्त्विक रूप से इन्होंने चित् अचित् और ईश्वर को आधार मान कर अपने मत का प्रतिपादन किया और उसकी पुष्टि उपनिषदों द्वारा की। ईश्वर को उन्होंने सर्वोपरि माना; जो सर्वगुण-सम्पन्न, अनुपम, अद्वितीय और महान् है, वही सब का स्वामी है विराट्-स्वरूप है उसको 'पुरुषोत्तम' कहा गया है और अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिये, समस्त शक्ति उसमें है, वह दोषों और त्रुटियों से रहित है। उत्पत्ति, पालन और संहार करने की शक्ति उसी में है उसकी सृष्टि का अभिप्राय एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तन है, कर्म और क्रियाएँ उसी की चेष्टाएँ हैं। सर्व प्रथम ईश्वर एकाकी था, उसी में प्रकृति और जीव की उत्पत्ति हुई। यद्यपि प्रकृति और जीव दोनों सत्य हैं, फिर भी उनकी सत्ता उसी पर निर्भर है। प्रत्येक कल्प के अन्त में प्रलय होती है और सब कुछ उसी में विलीन हो जाता है केवल उसका अवशिष्ट रहता

है, यही ब्रह्म का शरीर है किन्तु यह इतना सूक्ष्म है कि इसकी सत्ता अलग कल्पित नही की जा सकती, इसीलिये यह एक है, फिर वह अपने आपको अनेक म परिवर्तित कर लता है और इस नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। इस प्रकार सृष्टि का हेतु वही है किन्तु उस का विकास ही कार्यरूप सृष्टि है। उपासना और ध्यान के लिये उसके पॉच रूप माने गये हैं।

(१) परब्रह्म—यह परब्रह्म वैकुण्ठ में रहता है। वैकुण्ठ अनेक प्रकार की विलास सामग्रियों मे सुसज्जित है। 'श्री' 'भू' और "लीला" नाम की स्वर्गीय स्त्रियाँ उसकी सेवा करती हैं। वह शंख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित है। अनन्त गरुड और विष्वक्सेन आदि मुक्त आत्माएँ उसके साथ विहार करती हैं।

(२) व्यूह—इस स्वरूप मे परब्रह्म के चार रूप हो जाते हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।

(३) विभव—यह स्वरूप भगवान् के मत्स्य, कच्छप आदि दस अवतारो से सम्बन्ध रखता है।

(४) अन्तर्यामी—इस स्वरूप से वह योगियो के हृदय मे प्रवेश करता है और घट-घट में वास करने वाला है।

(५) अर्चा—इस स्वरूप मे उपासकों द्वारा इसकी अनेक मूर्तियों की कल्पना की जाती है। कुछ आचार्यों ने 'व्यूह' मे वासुदेव के अतिरिक्त शेष तीन रूपों की कल्पना की है शंकर ने तो आत्मा की पृथक् सत्ता स्वीकार नहीं की है, परन्तु रामनुजाचार्य ने आत्मा का अनेकत्व स्वीकार करके उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया है—बद्ध, मुक्त और नित्य। वह आत्माओं की अनेक कोटियाँ हैं जो ब्रह्मदेव से लेकर कृमिकीटो और वनस्पतियो तक फैली हैं। मनुष्य जातीय बद्ध जीवात्माओं के भी दो भेद हैं—

१—आनन्द के इच्छुक और मुमुक्षु। आनन्द के इच्छुक प्राणियो मे कुछ तो भौतिक आनन्द को ही अपना लक्ष्य बनाकर उसी के प्राप्ति के हेतु द्रव्यादि-सग्रह मे तत्पर रहते हैं और कुछ दिव्य आनन्द की खोज में तीर्थ यात्रा, यज्ञ, पुण्य, जप, व्रत आदि का आश्रय लेते हैं। मुमुक्षु आत्माओं में से कुछ 'केवली' कहलाते है, जो अपनी आत्मा को सांसारिक दोषो से रहित कर लेते हैं। और कुछ नित्य आनन्द की खोज मे रहते है, वे भी भक्त कहलाते हैं। भक्ति के लिए कर्म योग और ज्ञान योग दोनों अपेक्षित हैं। कर्मयोग मे यज्ञ, तपस्या, तीर्थ-यात्रा आदि वेद-विहित सभी कर्म आ जाते है, आत्मा की शुद्धि हो जाती है और ज्ञानयोग की प्राप्ति होती है जिसके कारण जीवात्मा अपने आपको प्रकृति से भिन्न समझता है। यही ज्ञानयोग भक्ति का हेतु है। यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोग भी भक्ति योग मे अपेक्षित हैं। समर्पण भक्ति का सर्वश्रेष्ठ अङ्ग है, इसे प्रपत्ति कहा गया है जिसके अधिकारी शूद्र भी हो सकते हैं। भक्ति इन साधनों के अतिरिक्त 'अर्थ पञ्चक' में 'आचार्याभिमान योग' नामक एक और साधन है जिसके अनुसार शिष्य सब कुछ गुरु को अर्पण कर देता है। भक्ति के अनेक प्रकारों का विधान किया गया है। रामानुजाचार्य ने अपने सिद्धान्तो मे उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र, पुराण आदि सभी का आधार ग्रहण किया और सृष्टि का क्रम सांख्यशास्त्र के अनुसार माना। वास्तव मे उनका यह वैष्णव पाञ्चरात्र के वासुदेव से मिलता जुलता है जिसमे नारायण और विष्णु

के तत्त्वों का समावेश हो गया और नारायण को विशेष महत्त्व मिला इस सम्प्रदाय के उपदेशों में यह ध्यान रखने की बात है कि न तो कहीं गोपाल कृष्ण का ही नाम आया है और न ही राम को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। भगवान् के जिन स्वरूपों का वर्णन गीता में हुआ है उन्हीं का उन्होंने विशेष रूप में उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने परम्परागत भक्ति को ब्राह्मण-धर्म के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया। सबसे बड़े महत्व की बात यह है कि उन्होंने अपना भक्ति-मार्ग शूद्रों के लिए भी उन्मुक्त कर दिया। आगे चलकर स्वामी रामानन्द, नामदेव और तुकाराम ने इस पक्ष पर विशेष बल दिया। जहाँ तक प्रपत्ति का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में कुछ यह भी अनुमान लगाया जाता है कि यह ईसाइयत की देन है; परन्तु यह बहुत दूर की सूझ प्रतीत होती है। रामानुज के सम्प्रदाय का नाम श्रीसम्प्रदाय है श्री-सम्प्रदाय में निश्चित दिनों में शूद्रों को भी मन्दिर-प्रवेश का अधिकार दे दिया गया था और कुछ शूद्र भी इस सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

रामानुजाचार्य के सिद्धान्तों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-मार्ग के परिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना सबसे पहले रामानुजाचार्य ने ही की और भक्ति के इस स्वरूप ने उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन को पूर्णतया प्रभावित किया। रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या उत्तरी भारत में उतनी नहीं है जितनी दक्षिण भारत में। प्रायः वैष्णव मत के जितने प्रचारक हुए सभी ने शंकर के 'मायामिथ्यात्ववाद' के सिद्धान्त का खण्डन कर भक्ति की स्थापना की, परन्तु सिद्धान्त रूप में रामानुजाचार्य का मत एक प्रकार से शंकर के मत से समझौता ही था, क्योंकि अन्ततोगत्वा कर्म-आचरण से चित्त शुद्ध होने के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति होने पर सन्यास ग्रहण कर ब्रह्मचिन्तन में लगा रहना (शंकर) या प्रेमपूर्वक वासुदेव-भक्ति में तत्पर रहना और ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण करना (रामानुज) दोनों ही बातें कर्मयोग की दृष्टि से एक हैं क्योंकि ये दोनों ही मार्ग निवृत्तिविषयक कहे जा सकते हैं। इसलिये आगे के आचार्यों ने विशिष्टाद्वैत को भी अद्वैत का ही एक सुधार समझा।

मध्वाचार्य

माया को किसी भी रूप में मिथ्या मानकर चलने वाले सम्प्रदायों का खण्डन कर भगवद्भक्ति को ही सच्चा मोक्ष साधन बतलाने वाले इस रामानुज-सम्प्रदाय के पश्चात् एक तीसरा सम्प्रदाय निकला जिसे 'द्वैत-सम्प्रदाय" कहते हैं। इसके प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। आचार्य मध्व का जीवन-चरित्र माधव-विजय, में जिसका सम्पादन त्रिविक्रम के पुत्र 'नारायण' द्वारा हुआ था, विस्तार में लिखा है। इसके अनुसार 'रजत पीठ' नामक नगर में 'मध्यगेह' भट्ट के यहाँ इनका जन्म हुआ। इनका जन्म-नाम वासुदेव था और ये अच्युतप्रकाशाचार्य के शिष्य थे। दीक्षित होने के पश्चात् ये बदरिकाश्रम में गये और वहाँ से राम तथा वेदव्यास की मूर्तियाँ लाये। सन्यास ग्रहण करने पर इनका नाम 'आनन्दतीर्थ' हुआ। सम्प्रदाय के अनुसार इनका समय संवत् १०४० से ११९९ तक माना जाता है, परन्तु भाण्डारकर सम्प्रदाय के इस कथन को नहीं मानते। उनके अनुसार मध्वाचार्य का समय वि० सं० १२५४ से १३३३ तक था।[1] अपने इस कथन की संगति उन्होंने आचार्य मध्व के 'महाभारत तात्पर्य' से भी लगाई और शिलालेखों के भी प्रमाण दिये हैं। मध्वाचार्य ने शंकर के 'अद्वैत', रामानुज के

---

१ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म आर० जी) १९२९ पृ० ८२ २

विशिष्टाद्वैत के विरोध में अपने मत की स्थापना की और भागवत पुराण को अपने मत का आधार बनाया। उन्होंने ईश्वर जीव और प्रकृति के पांच पाँच भेदो पर विशेष रूप से विचार किया—

(१) ब्रह्म और जीवात्मा (२) ब्रह्म और जड़जगत् (३) जीवात्मा और जडजगत् (४) एक जीवात्मा और दूसरी जीवात्मा (५) एक जड पदार्थ और दूसरा जड़ पदार्थ। सृष्टि की रचना के विषय मे उन्होंने वैशेषिक शास्त्र को आधार माना। ब्रह्म को उन्होंने असंख्य गुणो का आधार माना है और उसके कार्य-विधान को आठ श्रेणियो मे विभाजित किया है—उत्पत्ति, पालन, लय नियन्त्रण, आवरण, बोधन, बन्धन तथा मोक्ष। ब्रह्म को उन्होंने पूर्णतया स्वतन्त्र तथा जीवात्मा और प्रकृति से भिन्न माना है। वह विभिन्न अवतार धारण करता है जिनमे उसके सभी गुणों का अवतरण होता है, लक्ष्मी उससे भिन्न है किन्तु उसकी आश्रिता है और उसी के इंगित पर उसके कार्य-विधान का सम्पादन करती है। इस लक्ष्मी के अनेक रूप हैं जैसे—श्री, भू, ह्री, दक्षिणा, सीता, सत्या, रुक्मिणी आदि। वे प्रवृतियो को चेतन और अचेतन दो प्रकार की मानते हैं। जीवो की संख्या उन्होंने अनन्त मानी है जो तीन वर्गों मे विभाजित है:—

१—मुक्तियोग्य, २—नित्य-ससारी ३—तमोयोग्य।

जब जीव मुक्त भी हो जाता है तब भी जीव-जीव मे तथा ईश्वर और जीव मे पार्थक्य बना ही रहता है। इन्होंने मुक्ति के चार भेद माने हैं—

१—कर्म-क्षय २—उत्क्रान्ति का लय ३—अर्चिरादि मार्ग ४—भोग।

मुक्तियोग को वे चार प्रकार का मानते हैं—

१—सालोक्य, २ सामीप्य, ३—सारूप्य, ४—सायुज्य।

'कर्मक्षय' नाम की मुक्ति मे नश्चित पाप-पुण्य का तो क्षय हो जाता है परन्तु प्रारब्ध कर्म बने ही रहते है। जब 'प्रारब्ध कर्म' का भी क्षय हो जाता है तो जीव ब्रह्मनाड़ी या सुषुम्ना के सहारे उत्क्रमण करता है और उसे पार करने पर अपने जीवन को भूल जाता है, उसके हृदय का द्वार खुल जाता है और हृदय स्थित भगवान् ब्रह्मद्वार से निकल कर उसे और ऊपर ले जाते हैं। तब वैकुण्ठ लोक मे पहुँच कर जीव को भगवान् के 'तुर्य' रूप का साक्षात्कार होता है। यही उत्क्रमण लय मोक्षकी अवस्था है 'अचिरादि मार्ग मुक्ति' उन ज्ञानी भक्तो के लिये है, जिनके 'प्रारब्ध कर्म' का क्षय नहीं हुआ हो और जो सुषुम्ना की पास की नाड़ी के द्वारा ऊर्ध्वगमन करते हैं तथा अर्चिरादि लोको मे पहुँचते है, फिर वहाँ से वायु लोक होते हुए ब्रह्म लोक में पहुँच जाते है। भोगमुक्ति में जब ज्ञानी भक्त के 'प्रारब्ध कर्मों' का क्षय हो जाता है तो वे श्वेत द्वीप मे पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हे नारायण का दर्शन होता है जिनकी आज्ञा से फिर वे पृथ्वी पर आकर परमानन्द का उपभोग करते है।

इस जगत् को उन्होंने प्रपञ्च माना है क्योंकि यह पाँच प्रकार के भेदो से युक्त है। परमात्मा के समान जगत् को भी वे सत्य मानते हैं और उसके पाँचो भेदों को भी। मुक्ति-प्राप्ति के लिए जीव को उन पाँचो का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। पदार्थो की सख्या उन्होंने दस मानी है द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशिष्ट विशेष अशी शक्ति, सादृश्य तथा अभाव द्रव्य पदार्थ बीस माने हैं प [illegible] लक्ष्मी, जीव प्रकृति,

गुणत्रय महत्तत्त्व अहङ्कार बुद्धि मन इन्द्रिय तन्मात्रा भूत ब्रह्माण्ड अविद्या वर्ण अन्धकार वासना काल और प्रतिबिम्ब। अन्य पदार्थों के भी विस्तृत विवेचन करते हुए उन्होंने शक्ति पदार्थ पर विशेष बल दिया है और उसके चार भेद किये हैं :–१—अचिन्त्य शक्ति, २–आधेय शक्ति, ३—सहज शक्ति, ४—पद शक्ति। इनमें अचिन्त्य शक्ति विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि इसकी पूर्णता ईश्वर में है। भगवान् की इस अचिन्त्य शक्ति का नाम ही ऐश्वर्य है और ईश्वर में विरुद्ध धर्मत्व का भी यही कारण है। आधेय शक्ति आरोपित शक्ति का नाम है। जब किसी मूर्ति में देवशक्ति का आह्वान किया जाता है और उसमें प्राण प्रतिष्ठा की जाती है वह आधेय शक्ति कहलाती है, सहज शक्ति पदार्थों के स्वभाव और प्रकृति के अनुसार नित्य और अनित्य दो प्रकार की होती है। पद और पदार्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाली शक्ति पदशक्ति होती है।

इस मत के अनुयायी प्रायः कनाडी जिलों, बम्बई प्रान्त मैसूर और पश्चिमी घाट में पाये जाते हैं। उत्तरी भारत में उनकी संख्या अधिक नहीं है। भारत में इस मत के ग्यारह मठ हैं जिनमें से ८ दक्षिण में और ३ शेष भारत में हैं।

आनन्दनाथ ने ३७ ग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में पाञ्चरात्र संहिताओं का भी आधार ग्रहण किया है इस सम्प्रदाय की उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें व्यूह और वासुदेव आदि का स्थान नहीं है। परमात्मा को विष्णु नाम से अभिहित किया गया है। राम और कृष्ण की उपासना भी विहित है परन्तु गोपाल कृष्ण, गोप, अथवा राधा का कहीं उल्लेख नहीं है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पुराने वासुदेव धर्म और भागवत धर्म के स्थान पर इन्होंने नवीन वैष्णव धर्म को जन्म दिया और पाँचरात्र को भी अधिक महत्व नहीं दिया। चैतन्य तथा मध्व के उपदेशों से समाज में भक्तिभावना का प्रचार हुआ और उत्तरी भारत में भी इसकी लहर फैली। अब तक इस भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार व्यवस्थित रूप से उत्तरी भारत में नहीं था क्योंकि रामानुज और मध्व ने दक्षिण को ही अपने प्रचार का केन्द्र बनाया था। उत्तरी भारत में भक्ति का प्रचार करने वाले आचार्यों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है:—(१) संस्कृत के माध्यम से प्रचार करने वाले और (२) देशभाषा के माध्यम से प्रचार करने वाले। संस्कृत के माध्यम से प्रचार करने वालों में सर्व प्रथम निम्बार्काचार्य का नाम आता है।

निम्बार्काचार्य

निम्बार्क के समय का अभी तक कोई निर्णय नहीं हो सका है। भाण्डारकर ने हस्त-लिखित पुस्तकों के आधार पर इनके समय का निर्धारण किया है और उनका निधन सन् ११६२ में माना है * परन्तु आगे चल कर इस तिथि के विषय में भी सन्देह प्रकट किया गया है। यदि इन्हें उक्त समय में ही प्रादुर्भूत माना जाय तो वे रामानुजाचार्य के लगभग सम-कालीन ठहरते हैं। वे जाति के तैलङ्ग ब्राह्मण थे और इनका जन्म बैल्लरी जिले में निम्ब अथवा निम्बपुर ग्राम में हुआ था। इनका जन्म वैशाख शुक्ला तृतीया को माना जाता है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ और माता का नाम सरस्वती था तथा इनके मतावलम्बी इन्हें विष्णु के सुदर्शन चक्र का अवतार मानते हैं जिसकी पुष्टि में एक कथा भी प्रचलित है कि

* वैष्णविज्म और शैविज्म पृ० ८८

उन्होंने नीम वृक्ष पर सुदर्शन चक्र का आह्वान किया था, जिससे उसे सूर्य समझ कर उन साधकों ने भी जो सूर्यास्त होने पर भोजन नहीं करते थे, भोजन कर लिया। कहा जाता है कि तभी से इनका नाम निम्बार्क या निम्बादित्य हुआ। इससे पहले इनका नाम नियमानन्द था। इन्होंने जिस मत का प्रचार किया उसे भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत कहते हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि भेदाभेदवादी श्री भास्कराचार्य तथा निम्बार्काचार्य दोनों एक ही व्यक्ति थे किन्तु जैसा कि गोपीनाथ कविराज ने लिखा है, ये दोनों आचार्य पृथक्-पृथक् थे। निम्बार्क ने प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। इनके सम्प्रदाय को सनक सम्प्रदाय भी कहते हैं। यद्यपि ये दाक्षिणात्य थे तथापि अधिकतर वृन्दावन में ही रहे। ये सर्वप्रथम आचार्य थे जिन्होंने उत्तरी भारत में राधाकृष्ण की भक्ति को विशेष महत्व दिया। इनके अनुयायियों की संख्या उत्तरी भारत में—विशेषकर बंगाल और ब्रज में अधिक है। इनके अनुयायी दो श्रेणियों में विभक्त हो गये—सन्यासी और गृहस्थी। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) वेदान्त पारिजात-सौरभ और (२) दशश्लोकी। एक २५ श्लोकों का स्तोत्र भी जिसका नाम 'सविशेष निर्विशेष श्री कृष्ण स्तवराज' है, निम्बार्क द्वारा रचित बताया जाता है। 'वेदान्त पारिजात सौरभ' ब्रह्मसूत्रों की संक्षिप्त व्याख्या है। इस सम्प्रदाय का साहित्य बहुत अधिक नहीं है। निम्बार्क के उत्तराधिकारी श्रीनिवास' ने वेदान्तपारिजात-सौरभ पर और निम्बार्क से ३२ वें आचार्य हरिव्यासदेव ने दशश्लोकी पर भाष्य लिखा। इस सम्प्रदाय के १३ वें आचार्य 'देवाचार्य' ने 'सिद्धान्त जाह्नवी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिस पर उनके शिष्य सुन्दरभट्ट ने एक टीका लिखी। इस सम्प्रदाय के तीसवें गुरु 'केशव काश्मीरी' ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा।

निम्बार्काचार्य की 'दशश्लोकी' में उनके सिद्धान्तों का विवेचन हुआ है। इन दस श्लोकों का सारांश यह है:—

१—जीवात्मा ज्ञानस्वरूप है परन्तु हरि पर आश्रित है, वह अणुरूप है विभिन्न शरीरों में पृथक्-पृथक् है अनन्यावशिष्ट और ज्ञानी है।

२—यह जीवात्मा अनादि माया से बद्ध रहता है और तीन गुणों से युक्त रहता है। ईश्वर की कृपा से ही उसे अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है।

३—अचेतन पदार्थ तीन प्रकार के माने हैं—अप्राकृत, प्राकृत काल। प्रकृति में उत्पन्न पदार्थों के प्रायः तीन रंग—रक्त, श्वेत तथा कृष्ण होते हैं।

४—मैं कृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो व्यूह अवयवों वाला है और सर्वश्रेष्ठ है। सब दोषों से रहित कल्याणकारी और सर्व गुणसम्पन्न है।

५—मैं वृषभानु की कन्या राधिका का ध्यान करता हूँ जो कृष्ण के वामाङ्ग में सुशोभित हैं, हजारों सखियों से परिसेवित है और सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं।

६—अज्ञानान्धकार से मुक्ति पाने के लिए प्राणियों को निरन्तर परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। नारद सच्चे ज्ञानी और सत्य के अन्वेषक थे। उन्हें यह ज्ञान सदानन्द आदि ने दिया था।

७—श्रुति स्मृतियों के अनुसार सब आत्माओं का मूलस्रोत ब्रह्म है, अतएव ब्रह्म सत्य है। जो वेदों को जानते हैं, उनका यही सिद्धान्त है। स्मृति और सूत्रों के अनुकूल जो उसके तीन रूप बताए गये हैं, वे भी सत्य हैं

८—कृष्ण के चरणारविन्दो को छोड़ कर और कोई गति नही है, ब्रह्मा, शिव आदि भी उनकी वन्दना करते है; वे कृष्ण भक्तो की इच्छा से उनके ध्यान योग्य स्वरूप धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य और अप्रमेय है।

९—उसकी कृपा का बड़ा महत्व है. दैन्य आदि भाव उसकी कृपा से ही उत्पन्न होते है और उसी से प्रेम रूप भक्ति की प्राप्ति होती है। भक्त द्वारा की गई अनन्य भक्ति द्वारा ही उसकी कृपा प्राप्त हो सकती है। यह भक्ति दो प्रकार की होती है—१—परा जो श्रेष्ठ है। २—साधन रूपा।

१०—भक्तों के लिए पाँच पदार्थ जानने आवश्यक हैं, उपास्य का रूप, उपासक का रूप कृपा फल, भक्ति-फल तथा फल प्राप्ति के विरोधी।

निम्बार्क-सम्प्रदाय का यही सार है। इसमे ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति का विवेचन हुआ है। इन्ही सार सिद्धान्तो की व्याख्या हरि व्यासदेव जी ने की है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सिद्धान्तो का मूल आधार रामानुज के ही सिद्धान्त है क्योकि इनमे शरणागति अर्थात् प्रपत्ति को विशेष महत्व दिया गया है। इसकी विशेषता यह है कि प्रपत्ति के साथ-साथ परमात्मा की कृपा और उसके प्रति प्रेम का प्राधान्य है। निम्बार्क की साधना भक्ति मे रामानुज सम्प्रदाय के सभी योग आ जाते हैं, अन्तर केवल इतना है कि रामानुजाचार्य ने भक्ति को उपनिषदो मे विहित उपासना की कोटि मे रखा है। तथा अपनी भक्ति को नारायण, लक्ष्मी भू और लीला तक ही सीमित रखा जबकि निम्बार्क ने कृष्ण और सखियों द्वारा परिवेष्टित राधा को ही प्रधानता दी है। इस प्रकार उत्तरी भारत मे राधाकृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय ढग से प्रतिपादन निम्बार्क ने किया। बंगाल और व्रजभूमि मे इसका विशेष प्रचार हुआ।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय

उपर्युक्त चार दाक्षिणात्य आचार्यों के अतिरिक्त विष्णु स्वामी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके सम्प्रदाय का नाम शुद्धाद्वैत बताया जाता है जिसे रुद्र सम्प्रदाय भी कहते है। इस सम्प्रदाय का कोई ऐतिहासिक विवरण नही मिलता। विष्णु स्वामी नाम के भी कई आचार्य हुए हैं। पद्म पुराण और भविष्य पुराण में रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी का उल्लेख है। 'सम्प्रदायप्रदीप' में लिखा है कि वल्लभाचार्य के समय तक विष्णु सम्प्रदाय के ७०० आचार्य हो चुके थे। यदि इस कथन को सत्य माना जाय तो विष्णुस्वामी का समय अति-प्राचीन ठहरता है, परन्तु अन्य पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे यह कथन मान्य नही हो सकता। श्रीधर स्वामी ने 'श्रीमद्भागवत' की टीका मे विष्णुस्वामी का उल्लेख किया है। श्रीधर स्वामी का समय १४ वी शताब्दी निश्चित है। इसलिए विष्णु स्वामी का समय १० वी शताब्दी से पहले मानना चाहिए भाण्डारकार ने इस विषय मे नाभा जी के भक्त माल का उल्लेख किया है जिसके अनुसार विष्णुस्वामी के उत्तराधिकारी, ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलोचन और वल्लभ हुये है। इस उल्लेख के आधार पर विष्णु स्वामी का समय १३ वी शताब्दी का मध्य ठहरता है। 'गोडीय दशम खण्ड' के लेख में एक अन्य विष्णुस्वामी का उल्लेख है जिसका जन्म सन् ८३० लिखा है और जो काञ्चीनगर मे रहते थे। डा० दीनदयालु गुप्त ने एक लेख के आधार पर लिखा है श्री अमरनाथ जी का इस विषय पर भाण्डारकार रिसर्च इन्स्टी

स्थ टं—एन स में एक लेख है जिसमे कहा गया है कि म और सायणाचार्य के गुरु 'श्री विद्याशंकर' थे और विद्याशंकर का ही दूसरा नाम 'विष्णुस्वामी' था। इस प्रकार विष्णुस्वामी के विषय मे कुछ कहना कठिन है। वल्लभ—सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार वल्लभाचार्य विष्णुस्वामी की परम्परा मे ही थे और विष्णुस्वामी ने जिस शक्ति मार्ग का प्रचार किया था, उसमे मुक्ति की अपेक्षा भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस सम्प्रदाय के आचार्य 'बिल्वमङ्गल' के समय मे भक्ति का विशेष प्रचार हुआ, जिनके मार्ग के आधार पर वल्लभाचार्य जी ने अपने मत को प्रतिष्ठित किया। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त के विषय मे 'भाण्डारकार' लिखते हैं—

"The Vedantic theory of 'Vishnuswamin' which is the same as that of Vallabh is as follows. The one primeval soul was not joyful, because He was alone (B.U.1. 4. 3) and desiring to be many, He Himself became the inanimate world, the individual soul, and the inward controlling soul. These sprang from Him like sparks from a burning fire and are His parts (M.U 11. 1) by His own insurtable power he rendered the properties of intelligence and joy, imperceptible in the first, and His joy alone in the second, while the third has all the attributes, perceptible in it"

(Vaishnavism and) Shaivism P. 110.)

अर्थात् सर्व प्रथम एक ही ब्रह्म था। उसकी इच्छा हुई 'एकोऽहं बहुस्याम्'' और वह अचेतन जगत् में परिवर्तित हो गया, जिसका नियन्त्रण वह स्वयं था। जगत् के सब जीव उसमे से इस प्रकार उत्पन्न हुए, जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से स्फुलिङ्ग। अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा उसने अदृश्य बुद्धि और आनन्द को उत्पन्न किया और फिर केवल आनन्द को और अन्त में उसके सब गुण प्रकट हुए। ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप में दृश्य आनन्द व्याप्त है।"

वल्लभाचार्य

राधा और कृष्ण को आधार मान कर भक्ति का प्रचार करने वाले निम्बार्क आचार्य का उल्लेख पहले हो चुका है। उत्तरी भारत में राधा कृष्ण की भक्ति का प्रचार करने वाले दो आचार्य हुए—वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु। वास्तव में भक्ति आन्दोलन को इन्हीं दो आचार्यों से विशेष शक्ति प्राप्त हुई। ये दोनों ही आचार्य 'निम्बार्क' की भक्ति परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। इन्होंने भी प्राय संस्कृत के माध्यम से ही अपने मत का प्रचार किया था। वल्लभाचार्य का जीवन चरित 'वल्लभदिग्विजय' मे दिया हुआ है। इनका जन्म गोदावरी-तट पर 'कारम्बाड' गाँव मे 'लक्ष्मण भट्ट' नामक एक तैलङ्ग ब्राह्मण के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम इल्लम्मागारू था। वल्लभ के जन्म के विषय मे एक कथा प्रचलित है। लक्ष्मण भट्ट अपनी पत्नी सहित काशी में रहने लगे थे, वहीं पर उनकी पत्नी ने गर्भ धारण किया। राजनैतिक परिस्थितियो के कारण जब काशी मे कुछ अराजकता फैली तब लक्ष्मण भट्ट अपनी स्त्री और कुछ साथियों के साथ वहाँ से चल दिये और जब वे मध्यदेश के रायपुर जिले में ण्य' नामक वन म होकर जा रहे थे तब स्त्री को प्रसव पीड़ा हुई वे वहीं

रुक गये और उनके साथी आगे बढ़ गये। उनकी पत्नी ने एक शमी वृक्ष के नीचे एक सतमासे के शिशु को जन्म दिया, जो जन्म के समय संज्ञाहीन था। मृतक समझ कर वे उसे पत्तों से ढककर आगे चल दिये परन्तु 'चौड़ा' नगर में पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि काशी की स्थिति अब ठीक है, एकाएक वे लौट पड़े और लौटते समय बच्चे को ठीक पाया। 'वल्लभदिग्विजय' में वल्लभ का जन्म बैसाख कृष्णा एकादशी रविवार सं०१५३५ और तिरोधान ज्येष्ठ १० सं० १५८७ माना जाता है।

कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने १० वर्ष की आयु में ही वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, पुराणों का अध्ययन कर लिया था। सं० १५४५ में अपने पिता के निधन के पश्चात् उन्होंने अपनी यात्राएँ प्रारम्भ कीं और अपनी माता को उनके पितृ-गृह पहुँचा दिया। 'वल्लभदिग्विजय' में उनकी यात्राओं का विस्तृत वर्णन है। सर्व प्रथम यात्रा उन्होंने केवल १२ वर्ष की आयु में स० १५४६ में की। इस यात्रा में वे दक्षिण भी गये और वहाँ वैष्णव आचार्यों के सिद्धान्तों का सम्यक् अध्ययन किया। 'विद्यानगर' का शास्त्रार्थ भी इसी यात्रा में हुआ और ब्रज की यात्रा भी इन्होंने की, जहाँ संवत् १५५० श्रावण शुक्ला एकादशी को गोकुल के 'ठकुरानी' घाट पर श्रीमद्भागवत' का सप्ताहिक पारायण भी उन्होंने किया था। उनकी दूसरी यात्रा सं० १५५४ में प्रारम्भ होकर सं० १५.८ में पूरी हुई। इस यात्रा में वे गोवर्द्धन भी गये और स० १५५६ में जब श्रीनाथ जी के स्वरूप का प्राकट्य हुआ तो उनके मन्दिर की स्थापना की। इस यात्रा से लौटकर स० १५५८ आषाढ कृष्णा पञ्चमी को उन्होंने 'मधुमङ्गल' नामक ब्राह्मण की कन्या महालक्ष्मी से अपना विवाह किया। उनकी तीसरी यात्रा स० १५५८ से १५६६ तक चली। इसी यात्रा में उनकी प्रेरणा से गोवर्द्धन पर्वत पर पूरनमल खत्री ने श्रीनाथ जी का मन्दिर बनवाया और वे संवत् १५६५ में 'विद्यानगर, के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में विजयी हुए, जिसके उपलक्ष में राजा कृष्णदेवराय ने इनका कनकाभिषेक कराया। इस यात्रा के पश्चात् ही इन्होंने अपना द्विरागमन किया और प्रयाग के दूसरी ओर यमुना के किनारे 'अडैल' नामक ग्राम में रहने लगे। इनके दो पुत्र हुए—गोपीनाथ जी और विट्ठलनाथ जी।

अपनी तीन यात्राओं में उन्होंने अपने मत का प्रचार किया। उनका दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है और उनके मत का आचरण पक्ष 'पुष्टि-सम्प्रदाय।

दार्शनिक सिद्धान्त

श्री शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद के विरोध में चार वैष्णव सम्प्रदाय खड़े हुए। इनमें कई बातों में समानता और कई में विभिन्नता है। सभी सम्प्रदाय भक्ति को सर्वोपरि मानते हैं और इसीलिये इन्होंने ब्रह्म को सगुण माना है जबकि शंकर आचार्य ब्रह्म को माया के प्रभाव से सगुण सा प्रतीत होने वाला मानते हैं। इसी प्रकार शंकर ने 'सर्वं ब्रह्म जगन्मिथ्या' कहकर जगत को भ्रान्ति कहा है जबकि अन्य समस्त वैष्णव सम्प्रदायों ने ब्रह्म के समान ही जगत् को माना है, 'अहंब्रह्मास्मि' आदि वाक्यों के अनुसार शङ्कर मुक्त जीव को ही ब्रह्म मानते हैं। परन्तु अन्य वैष्णव-सम्प्रदाय मुक्त जीव को ब्रह्म न मानकर वैकुण्ठ में निवास करने वाले भगवान् की सेवा करने वाला मानते हैं इन के होते हुए भी इन सम्प्रदायों में सैद्धान्तिक मत भेद है।

वल्लभ के ग्रन्थों और किम्वदन्तियों से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य विष्णु सम्प्रदाय के आचार्य थे। भाण्डारकर ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्त वे ही थे जो विष्णुस्वामी के।[१]

'सम्प्रदाय प्रदीप' के द्वितीय प्रकरण में भी विष्णुस्वामी का वृत्तान्त दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि विष्णुस्वामी का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' था। उनके मत की प्रतिष्ठा कुछ भङ्ग हो गई थी और वल्लभाचार्य ने उसे पुनरुज्जीवित किया।

वल्लभाचार्य के ग्रन्थों की संख्या ८४ बताई जाती है किन्तु आजकल कुल मिला कर तीस से अधिक नहीं मिलते। इन ग्रन्थों में वेदान्त सूत्र का अणुभाष्य, भागवत की सुबोधिनी टीका षोडश ग्रन्थ, पुरुषोत्तम सहस्त्रनाम तथा तत्वदीप निबन्ध अधिक प्रसिद्ध हैं। वल्लभाचार्य जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने भी वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है और छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ लिखे, अपने पिताजी के अपूर्ण ग्रन्थों को पूरा किया और उनकी टीकाएँ की। इसके स्वतन्त्र ग्रन्थों में विद्वण्मण्डन ग्रन्थ बड़ा महत्वपूर्ण है। विट्ठलनाथ जी के पश्चात् उनके पुत्र गोकुलनाथ तथा पौत्र श्रीहरिराय जी ने भी सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु हम अपना विवेचन आचार्य वल्लभ के ही ग्रन्थों तक सीमित रखेंगे।

धर्म के दो पक्ष है, सिद्धान्त और आचरण। सिद्धान्त पक्ष में वल्लभ सम्प्रदाय को शुद्धाद्वैतवादी, ब्रह्मवादी, तथा अविकृत परिणामवादी कहते है तथा आचरण पक्ष में यह मार्ग पुष्टि मार्ग कहलाता है। शुद्धाद्वैत का विवेचन श्री गिरिधर जी के शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड में तथा श्री रामकृष्ण भट्ट के शुद्धाद्वैत-परिष्कार में विशेष रूप से हुआ है; ब्रह्मवाद का विवेचन श्री हरिराय जी और श्री व्रजराज जी ने किया है तथा तत्वदीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण में, अणुभाष्य में, सिद्धान्त मुक्तावली में और भागवत की टीका सुबोधिनी में आचार्य वल्लभ ने भी ब्रह्म के त्रिविध रूपों पर प्रकाश डाला है। आचार्य वल्लभ का मत शाङ्कर मत से भिन्न है। शुद्धाद्वैत का अभिप्राय है शुद्ध अद्वैत—माया के संबन्ध से रहित, शंकर ने माया और अविद्या रूप उपाधि से युक्त ब्रह्म को कारण और कार्य बताया है किन्तु वल्लभाचार्य ने ऐसा नहीं माना। शुद्धाद्वैत-मार्त्तण्ड में लिखा भी है—

'मायासम्बन्धरहित शुद्धमित्युच्यते बुध।

कार्यकारण रूप हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्। शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, श्लोक २८

ब्रह्मवाद का अभिप्राय यह है सर्व ब्रह्म इतिवादः ब्रह्मवाद, अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है। जगत् भी ब्रह्म रूप ही है और जीव भी ब्रह्म रूप है जैसाकि तत्त्वदीपनिबन्ध में लिखा है:—

"आत्मैव तदिद सर्वं ब्रह्मैव तदिदं तथा"

इसी शुद्धाद्वैत को 'अविकृत परिणामवाद' भी कहा गया है जिसका अर्थ है कि जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है जो अविकृत अर्थात् विकार रहित है।

'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' वाली श्रुति को लेकर शुद्धाद्वैत के आचार्यों ने ब्रह्म का निरूपण किया है। इस श्रुति में ब्रह्म को एक और अद्वितीय बताया है और उसमें निश्चयात्मकता सूचक अव्यय 'एव' का प्रयोग कर मन्तव्य की दृढता का आभास दिया है। इसके अनुसार ब्रह्म स्वारस्य, स्वजातीय, विजातीय और स्वगतभेदवर्जित है। इस प्रकार जीव,

१ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म पृष्ठ १०६

जगत् और ब्रह्म का एक ही माना गया है। तत्वदीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण में लिखा है कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय स्वगतभेद वर्जित है तथा सत्य आदि हजारों गुणों से वह युक्त है (त० दी० नि० पृ० २२१) उसी पृष्ठ पर वल्लभाचार्य लिखते हैं कि ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, व्यापक और अव्यय है। सर्व शक्ति मान और सर्वज्ञ है एवं गुणों से रहित है' इससे आगे वे फिर लिखते हैं:—

'वही ब्रह्म जगत् का समवायिकारण है और वही निमित्तकारण है तथा वह अपने स्वरूप में और अपनी रचित लीला में नित्य मग्न रहता है। जिस प्रकार सूर्दास अग्नि से स्फुलिंग अर्थात् चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म में असंख्य जीवस्वरूप उत्पन्न होते हैं। (त० दी० नि०, पृष्ठ २२३)

श्रुतियों के अनुकरण पर वल्लभाचार्य ने ब्रह्म को 'पुरुषेश्वर पुरुषोत्तम भी माना है। ब्रह्म को पुरुष मानने वाली अनेक श्रुतियाँ हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् के सहस्रशीर्षानुवाक् में यह श्रुति कहा गई है—"पुरुष एवेदं सर्वम्"। अर्थात् यह सब पुरुष ही है। फिर आगे कहा है कि 'जो होगा, वह वह ही है।' वल्लभाचार्य जी ने सब श्रुतियों को आधार मान कर लिखा है:—

"जहाँ-जहाँ, जिसमें-जिसके लिये और जिस सम्बन्ध द्वारा जो-जो जब-जब होना है, उस देश, उस हेतु, उस सम्बन्ध, उस कार्य और उस पदार्थ के अर्थात् सब कुछ के भगवान् स्वयं ही नियन्ता हैं" (त० दी० नि०, पृ० २३७)

इस भाव को प्रकट करने वाली अनेक श्रुतियाँ हैं। इस प्रकार ब्रह्म अनन्तमूर्ति सिद्ध हो जाता है, जैसा कि वल्लभाचार्य जी ने लिखा है—"भगवान् अनन्तमूर्त्ति, चल और अचल दोनों प्रकार का है तथा वह सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मों का आश्रय है।"

(त० दी० नि० पृ० २४६)

ब्रह्म का यह विरुद्ध धर्माश्रयत्व' वल्लभाचार्य जी के मत की विशेषता है। इसको वल्लभाचार्य जी ने स्थान-स्थान पर बड़े विस्तार से कहा है, शास्त्रार्थ प्रकरण में ईश्वर के विरुद्ध धर्मत्व की विवेचना की गई है। ब्रह्म से ही पदार्थों का आविर्भाव और उसमें ही उनका तिरोभाव होता है। इस प्रकार भगवान् स्वयं आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति से सम्पन्न है जिसके द्वारा वह एक से अनेक और अनेक से एक होता रहता है। पुरुषोत्तम सहस्रनाम में वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के अनेक नामों का वर्णन किया है। आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया भी वल्लभ सम्प्रदाय की अपनी विशेष मौलिकता है। इसी आविर्भाव-तिरोभाव के द्वारा जड़ जगत्, जीव, सृष्टि और ब्रह्म में एकता स्थापित की गई है। जड़ तत्व में चित् और आनन्द दो धर्म तिरोभूत हैं केवल सद्धर्म प्रकट है। जीव में सत् और चित् दो धर्म प्रकट हैं और आनन्द तिरोभूत है इस ब्रह्म का आनन्दांश अन्तरात्मा रूप से प्रत्येक जीव में है इसलिये भगवान् अन्तर्यामी है

जहो जीवोऽन्तरात्मति व्यवहारश्चिपा मत ।

विद्याविद्य हरेः शक्ता माययव विनिर्मिते ।

(तत्वदीपनिबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ० ६२)

पुरुषोत्तम परब्रह्म का दूसरा स्वरूप अक्षर ब्रह्म भी है। आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया मे अक्षर ब्रह्म की ही अनकल्पना होती है। अक्षर ब्रह्म से ही जीव और जगत् की उत्पत्ति होती है। वह पुरुषोत्तम परब्रह्म ही जब रमण करने की इच्छा करता है तो स्वयं जगत् के रूप मे प्रकट हो जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् मे लिखा है "एकोऽहं बहु स्याम्।" वल्लभाचार्य जी ने भी इसी सिद्धान्त को माना है और लिखा है:—

अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तयत्।

बहु स्याम् प्रजायेयेति लीलातस्य ह्यभूत सती। (त० दी० नि० पृ० ८७)

अर्थात् वह अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा से अनन्तमूर्ति हो गया। अक्षर ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप धारण करता है। शुद्ध सत्वगुणयुक्त विष्णु रूप मे वह सृष्टि को स्थित रखता है, शुद्ध रजोगुण रूप से ब्रह्मा उसे उत्पन्न करता है और शुद्ध तमोमय रूप से शिव उसका सहार करता है।

उसी पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म का एक स्वरूप रसरूप भी है। छान्दोग्योपनिषद् मे उसके इस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय में रसरूप परब्रह्म को छै धर्मो से युक्त बतलाया है। वे छै धर्म ये है—ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। जब जीव के ये छै ऐश्वर्यादि गुण तिरोहित हो जाते हैं तभी उसे दुःख भोगना पड़ता है। फिर भगवान् की कृपा से जब पुन उक्त छै गुण मिल जाते हैं तो वह अपने स्वरूप को जान कर ब्रह्म के समान हो जाता है। परब्रह्म आनन्दाकार विग्रह से अपने अक्षर धाम मे अनेक लीलाएँ करता है। परब्रह्म के अक्षरधाम को 'गोलोक' भी कहा गया है। यह पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म अगणितानन्द है और अक्षर ब्रह्म गणितानन्द' अक्षर ब्रह्म के ही अनेक अश समय समय पर कलारूप से अवतार लेते हैं। यह अक्षर ब्रह्म दो प्रकार से अवतार धारण करता है, धर्म-संस्थापन के लिए और संसार को आनन्द देने के लिये। वल्लभ-सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण को पूर्ण आनन्दस्वरूप पूर्ण-पुरुषोत्तम परब्रह्म माना गया है :—

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्। (सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३)

तत्वदीपनिबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण मे पहले ही श्लोक मे लिखा है —

"मैं उस भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जिसमे ससार की उत्पत्ति हुई है और जो रूप और नाम-भेद से उसमे रमण करता है"। ब्रह्म के स्वरूपो का विश्लेषण करते हुए उसके तीन स्वरूप बताए गये है १—पूर्ण पुरुषोत्तम रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण, २—पूर्ण पुरुषोत्तम अक्षर ब्रह्म, ३—अन्तर्यामी ब्रह्म। कृष्ण का अवतार उन्होंने चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, दोनो रूपो से माना है। परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम अपने अक्षर धाम तथा अपनी शक्तियों सहित अवतार लेता है इसलिये ब्रजभूमि को भगवान् का लीला धाम अथवा गो-लोक का अवतार माना है और उसको मायिक जगत् से परे माना है।

वल्लभाचार्य जी ने जीव को अंश और परमात्मा को अंशी माना है। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के चिद् अंश से असंख्य जीव निकले और सद् अंश से जड़ प्रकृति तथा आनन्दांश से उसके अन्तर्यामी रूप निकले। श्रीमद्भागवद्गीता में भी जीव को उसका अंश माना गया है। अणुभाष्य में वल्लभाचार्य ने लिखा है.—

अस्य जीवस्यैश्वर्यादितिरोहितम् (अणुभाष्य १-२-५)

• अर्थात् भगवान् की इच्छा से जीव के ऐश्वर्यादि छः गुण हो जाते है ' ऐश्वर्य के तिरोभाव से दीनता पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से सब प्रकार के दुःख, यश के तिरोभाव से हीनता श्री के तिरोभाव से जन्म-मरण विषयक विपत्तियाँ, ज्ञान के तिरोभाव से अहं बुद्धि और सब पदार्थों का विपरीत ज्ञान तथा वैराग्य के तिरोभाव से विषयों में आसक्ति हो जाती है। आनन्दांश का तिरोभाव तो पहले से ही हो जाता है।

वल्लभाचार्य ने जीव को अणुमात्र माना है जो गन्ध की भाँति सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है, उसका चैतन्यगुण सर्व शरीर व्यापी है। जीव असंख्य, नित्य और सनातन है। जीव में अपने अंशी के सब कुछ गुण हैं अविद्या माया के कारण जीव बद्धावस्था में रहता है और ऐश्वर्य आदि गुणों का उसमें से तिरोधान हो जाता है। उस समय जीव अनेक योनियों में भ्रमता फिरता है। वल्लभाचार्य ने श्रुतियों से प्रमाण देकर जीव का अणुत्व और आनन्त्य सिद्ध किया है·

जीव सृष्टि दैवी और आसुरी दो प्रकार की मानी गई है। दैवी जीवसृष्टि पुष्टि और मर्यादा भेद से दो प्रकार की है। पुष्टि-सृष्टि के जीव चार प्रकार के होते हैं और उनकी उत्पत्ति पुरुषोत्तम के अङ्ग से मानी गई है। इस सृष्टि के जीवों के चार प्रकार ये हैं—शुद्ध, पुष्ट, पुष्टि-पुष्ट मर्यादा-पुष्ट तथा प्रवाही पुष्ट।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वल्लभाचार्य जी ने जगत् की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के सत् अंश से मानी है। ब्रह्म की रमण करने की कामना ही उसका कारण है अर्थात् भगवान् स्वयं ही जगत् के रूप में प्रकट हुये हैं। जैसे स्वर्ण से कटक कुण्डल आदि बनते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से यह जगत् बना है, इसलिए भगवान् की क्रीडा का उपकरण रूप जगत् भी आनन्द रूप है। क्रीडा आधार के बिना सम्भव नहीं, अतएव आधारत्वेन जड़ जीवात्मक सच्चिदंश से सत्रूप प्रपञ्च का आविर्भाव किया है। यह दृश्यमान जगत् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ही आविर्भाव है। इस प्रकार काष्ठवह्नि न्याय से आविर्भूत और अनाविर्भूत दोनों ही स्वरूपों में जगत् सत्यज्ञान और अनन्त लक्षण लक्षित ब्रह्मरूप सच्चिदानन्द स्वरूप या भगवान् स्वरूप है सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य वल्लभ कहते हैं:—

"परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही है। सच्चिदगणितानन्द अक्षर ब्रह्म है, जो दो प्रकार का है—जगत्स्वरूप और उससे भिन्न। जगत् रूप के विषय में विवाद करने वालों के अनेक मत हैं। कोई इसे मायाविष्ट मानते है और कोई त्रिगुणात्मक, किसी के मत से यह ईश्वरकृत है और किसी के मत से अनादि वास्तव में अक्षर ब्रह्म ही [illegible] है जो गङ्गा के जल के सदृश है अर्थात् एक [illegible] और दूसरा तीर्थ रूप सि० मु० ३ ४ ५

अणुभाष्य में आचार्य जी लिखते हैं ब्रह्म ही इस जगत का निमित्त कारण है और वही इसका उपादान कारण है। यह जगत् अविकृत परिणामी है, अर्थात यह रूप बदलने पर भी लय होने के अनन्तर शुद्ध ब्रह्म रूप में आ जायेगा। सृष्टि के विकास के विषय में श्री वल्लभाचार्य जी मानते हैं कि सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम अपनी इच्छामात्र से सत् चित् तथा गणितानन्द अक्षर ब्रह्म बनता है। उसके चित् रूप से जीवरूप पुरुष और जड़ अंश से प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है। पुरुष और प्रकृति के साथ महत्तत्व अहङ्कारादि अन्य २६ तत्वों का आविर्भाव होता है। इन २८ तत्वों में युक्त अष्टरूप सृष्टि में परब्रह्म जब अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर उसका संचालन करता है तभी अनेक रूपात्मक सृष्टि का प्रसार होने लगता है। इस अण्ड-सृष्टि को विराट पुरुष भी कहा गया है। अक्षर, काल कर्म और स्वभाव ये सृष्टि कार्य ब्रह्म के ही स्वरूप हैं और इनकी गणना सृष्टि के २८ तत्वों में नहीं की गई है।

वल्लभाचार्य ने संसार का सम्बन्ध जीव से बताया है। जगत् सत्य है क्योंकि यह ब्रह्म का अविकृत परिणाम है, संसार जीवकृत होने के कारण झूठा है:—

प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाऽभवत्।
तच्छक्त्या विद्यया त्वस्य जीवसंसार उच्यते।

(त० दी० नि० शास्त्रार्थ प्रकरण २६)

संसार को जीव ने अपनी अविद्या माया से रचा है इसका उपादान कारण अविद्या और निमित्त कारण जीव है। अहंता ममतात्मक कल्पना का नाम ही संसार है। जब जीव अज्ञान से छूट जाता है तो उसके संसार का लय हो जाता है किन्तु जगत् का लय भगवान् की इच्छा पर निर्भर है। श्रीमद्भागवत में लिखा है- 'यह संसार गुणों और कर्मों के कारण होने वाला जन्म मरण का चक्र है। यद्यपि यह अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है तथापि जीव को इस की प्रतीति स्वप्न समान हो रही है।[1]" वल्लभाचार्य जी ने माया के दो रूप बताये हैं विद्यामाया और अविद्यामाया। जीव माया के अधीन है अविद्या माया जीव के बन्धन का कारण है और विद्यामाया मुक्ति का। अविद्यामाया के कारण ही जीव को भ्रान्ति होती है, उसमें अहंता ममता के भाव आते हैं। माया दो प्रकार से भ्रम उत्पन्न करती है एक तो विद्यमान को प्रकाशित नहीं होने देती और दूसरे अविद्यमान को प्रकाशित करती है।[2] शास्त्रार्थ प्रकरण में आचार्य जी ने माया को पञ्चपर्वा कहा है:—

पञ्चपर्वा त्वविद्येयं यद्बद्धो याति संसृतिम्।
विद्ययाऽविद्यानाशे तु जीवो मुक्तो भविष्यति।

(त० दी० शा० प्र० ३६)

अर्थात् अविद्या पञ्चपर्वा है जिस में फंसा हुआ जीव संसार चक्र में पड़ जाता है, किन्तु जब विद्या से अविद्या का नाश हो जाता है तो जीव मुक्त हो जाता है। ये पाँच पर्व अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय देह और स्वरूप नाम के अध्यास हैं, स्वरूपाध्यास में जीव बिलकुल भूल जाता है कि वह भगवान् के चेतन रूप का अंश है। इस अविद्या का नाश भगवान् की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। भगवान् की कृपा होने पर जब जीव दुःख से छूट जाता है और उसे नित्यानन्द की प्राप्ति हो जाती है तो वह मुक्त हो जाता है।

---

१ श्रीमद्भागवत ७–७–२७
२ वही २ ६ ३२

वल्लभ सम्प्रदाय में मुक्तजीव के अधिकार और साधन के अनुसार मुक्ति की अनेक अवस्थाएँ मानी हैं। नित्यानन्द की प्राप्ति ही मुक्ति है। विद्या के द्वारा जब अविद्या का नाश हो जाता है तो देह, इन्द्रिय इत्यादि का अध्यास मिट जाता है और जीव संसार के दुःख से छूट जाता है। जब तक जीव के प्रारब्ध कर्म नष्ट नहीं हो जाते अथवा उसे भगवान् की अनुकम्पा प्राप्त नहीं होती तब तक उसका देहाभाव विद्यमान रहता है। प्रभु की कृपा के पात्र पुष्टि-मार्गी भक्त के प्रारब्ध कर्म बिना भोग के ही नष्ट हो जाते हैं। वह इस स्थूल देह को छोड़ देता है और भगवान् की लीला के उपयुक्त देह को प्राप्त कर लेता है। भक्ति के द्वारा ही मुक्ति सरलता से प्राप्त हो सकती है क्योंकि ज्ञान और योग के उपाय और साधन कष्ट साध्य हैं। वल्लभाचार्य जी ने सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति-अवस्थाओं के अतिरिक्त स्वरूपानन्द की एक अवस्था और मानी है, जब मुक्तजीव भगवान् की लीला का साक्षात् रूप से अनुभव करता है। वल्लभ सम्प्रदाय में इसी को अधिक महत्त्व दिया है और गोकुल को वैकुण्ठ से भी उच्च माना है। भगवान् के संयोग वियोगात्मक रस रूप के उपासक श्री वल्लभाचार्य इस अवस्था में संयोग और वियोग दोनों ही रसों की अनुभूति करते हैं, इसीलिये उन्होंने सायुज्य मुक्ति की लयात्मक और प्रवेशात्मक दो अवस्थाएँ मानी हैं। श्रीमद्भागवत की भाँति उन्होंने 'सद्योमुक्ति' और 'क्रममुक्ति' भी स्वीकार की है। सद्योमुक्ति के अधिकारी पुष्टि पुष्ट भक्त होते हैं, जिन्हें भगवान् आनन्द विग्रह देकर अपने नित्य रसात्मक लीला में ग्रहण करते हैं। क्रममुक्ति ज्ञानमार्गियों को प्राप्त होती है। अणुभाष्य के चौथे अध्याय में मुक्ति और पुनरावृत्ति के विषय पर विस्तारपूर्वक विचार किया है। विरह की अवस्था को इस सम्प्रदाय ने बड़ा महत्त्व दिया है क्योंकि उस अवस्था में ही भक्त और भगवान् का एकीकरण होता है। वह भी एक सायुज्य अवस्था ही है। भगवान् का अनुग्रह ही जीव की मुक्ति में विशेष कारण बनता है, जैसा अनुग्रह जिस जीव पर होता है उसी के अनुसार अलौकिक शरीर में प्रवेश कर मुक्तजीव भगवान् की लीला का आनन्द लेता है।[१]

चैतन्य सम्प्रदाय

'वल्लभाचार्य के भक्तिमार्ग में राधा और कृष्ण के युगल स्वरूप का इतना महत्व नहीं है जितना चैतन्य सम्प्रदाय में है। वल्लभाचार्य ने तो भक्ति के विधि विधान और बाह्य रूप पर विशेष बल दिया जबकि चैतन्य का भावपक्ष प्रबल रहा। वे राधाकृष्ण का कीर्तन करते करते मूर्छित हो जाते थे। भावात्मक कीर्तन के द्वारा ही वे जनता के हृदय को आकृष्ट करने में समर्थ हुए। चैतन्य महाप्रभु वल्लभाचार्य के ही समकालीन थे। 'कल्चरल हेरिटेज ऑफ इण्डिया' के अनुसार उनका जन्म सन् १४८५ में बंगाल के नवद्वीप स्थान में फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को हुआ था। इनका जन्म का नाम विश्वम्भर था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचीदेवी था। जगन्नाथ मिश्र पूर्वी बंगाल के सिलहट में रहते थे और बाद को नदिया चले गये थे। इनके दो पुत्र थे, पहले विश्वरूप जो चैतन्य सम्प्रदाय के इतिहास में नित्यानन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं और दूसरे विश्वम्भर। विश्वम्भर को ही लोग बाद में 'कृष्ण चैतन्य' कहने लगे थे। उनके अनुयायी उन्हें कृष्ण का अवतार मानते हैं। वे गौराङ्ग और गौरचन्द्र के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित्र कई ग्रन्थों में कुछ भेद के

---

१ अणुभाष्य ४ ४ ७

साथ उपलब्ध होता है। भाण्डारकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म में चैतन्य का जीवनवृत्त इस प्रकार दिया है।

"२२ वर्ष की अवस्था मे उन्होने लक्ष्मीदेवी से विवाह किया और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय बाद वे पूर्वी बंगाल में पर्यटन करने के लिये निकल पड़े। माँगना और गाना ही उनका व्यवसाय था जिससे उन्होने पर्याप्त धन एकत्र कर लिया। उनकी अनुपस्थिति मे उनकी पत्नी का देहान्त हो गया और घर लौट कर उन्होने अपना दूसरा विवाह कर लिया। २३ वर्ष की अवस्था में वे पिण्डदान के लिये 'गया' गये और वहाँ से लौट कर उन्होने अपना कार्य प्रारम्भ किया। धार्मिक रीतिरिवाजों और कर्मकाण्ड के विरोध मे उन्होने हरि के प्रति प्रेम और विश्वास का उपदेश दिया। जाति-पाँति का उन्होने भी खण्डन किया। कहा जाता है कि उनसे पहले अद्वैताचार्य ने भी इसी प्रकार की भक्ति का प्रचार किया था। चैतन्य के भाई नित्यानन्द ने भी उन्हें भक्ति के प्रचार मे योग दिया। शनैः शनैः उनके मत का प्रचार बढता चला गया। उस समय बंगाल में शाक्तो का बड़ा जोर था और लोग काली तथा मनसादेवी की उपासना किया करते थे। वे चैतन्य के बड़े विरोधी थे और उनका उपहास भी किया करते थे किन्तु धीरे धीरे उनके कीर्तन का प्रचार बढ़ गया। सन् १५१० मे चैतन्य सन्यासी हुए और उन्होने 'केशव भारती' से दीक्षा ली। सन्यासी होने के अनन्तर वे जगन्नाथ जी गये और फिर ६ वर्ष तक देश का भ्रमण किया। इसी यात्रा मे उन्होंने कुछ शास्त्रार्थ भी किये और फिर पुरी में आकर रहने लगे जहाँ सन् १५३३ में उनकी मृत्यु हुई"।

चैतन्य के विषय मे लक्ष्य करने की बात यह है कि अन्य आचार्यों की भाँति उन्होंने अपने सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास नही किया और न ही प्रस्थानत्रयी पर कोई भाष्य लिखा। वे उच्च कोटि के भावुक भक्त थे। उनके जीवन की घटनाओं का उल्लेख 'चैतन्य चरितामृत' मे मिलता है। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने 'श्री चैतन्य चरितावली' पाँच भागो में लिखी है जो गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई है। इसमें चैतन्य के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भगवान् के प्रेम महोदधि मे निमग्न रहने के कारण किसी ग्रन्थ आदि की रचना के लिये महाप्रभु के पास समय ही नही था। कृष्ण की भक्ति और कीर्तन के महत्व के प्रतिपादक उनके ये ८ श्लोक मिलते हैं —

चेतोदर्पणमार्जन भवमहादावाग्निनिर्वापणम्।
श्रेयः कैरव चन्द्रिकावितरण विद्यावधू जीवनम्॥
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपद पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्नपन परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥१॥

"जो चित्तरूपी दर्पण के मैल को मार्जन करने वाला है, संसार रूपी महादावाग्नि को शान्त करने वाला है, प्राणियों को मङ्गलदायिनी कैरवचन्द्रिका का वितरण करने वाला है, जो विद्यारूपी वधू का जीवन स्वरूप है और जो आनन्द समुद्र को प्रतिदिन बढ़ाने वाला है उस श्रीकृष्णसकीर्तन की जय हो

रि बहुधा निजसर्वशक्ति

स्तत्रार्पितानियमितः स्मरणेन कालः

एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि

दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥२॥

'नाथ ! तुम्हारी कृपा मे कोई कसर नही और मेरे दुर्भाग्य मे कुछ सन्देह नही, तुमने अपने समस्त नामो मे पूर्ण शक्ति भरदी है, काल पात्र आदि का कोई नियम अथवा प्रतिबन्ध नही। यह तो मेरा ही दुर्भाग्य है कि तुम्हारे इन मधुर नामो से मेरे हृदय मे अनुराग नही उत्पन्न होता।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

अर्थात् भागवत बनने वाले को चाहिये कि तृण से भी अधिक नम्र और तरु से भी अधिक सहिष्णु बन कर स्वयं मान की इच्छा न कर दूसरो का मान करता हुआ हरि का कीर्तन करे।

न धनं न जनं न सुन्दरी

कविता वा जगदीश! कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे

भवताद्भक्तिर हैतुकी त्वयि । ४ ॥

हे जगदीश ! मैं जन, धन, सुन्दरी, कविता कुछ नही चाहता, बस प्रत्येक जन्म मे मेरी तुम में निष्काम भक्ति रहे।

अयि नन्दतनूज किंकरं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।

कृपया तव पादपङ्कजस्थित धूलिसदृशं विचिन्तय ॥५॥

"हे नन्दसुत ! विषम ससार मे पड़े हुए मुझ सेवक को कृपा करके अपने चरण-कमल पर पड़ी हुई धूलि के समान समझो"।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्-गद् रुद्धया गिरा।

पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति ? ६ ॥

'हे प्रभो! तुम्हारे नाम का कीर्तन करते समय मै किस शुभ क्षण मे इस स्थिति को प्राप्त करूँगा कि मेरे नयन अश्रुधारा से, मुख गद्-गद् वाणी से तथा शरीर पुलक से व्याप्त होगा ?

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।

शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥७॥

प्रभु के विरह में मेरे पल युगों के समान आँखें वर्षा के समान तथा विश्व शून्यवत्

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा—
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।। ८ ।।

हे सखि ! वह धोखेबाज कृष्ण उनके चरणों में रत रहने वाली मुझ (दासी) को हृदय से लगाये या विरह से मर्माहित कर दे, जोकुछ जी में आये, करे, मेरे प्राणनाथ तो वही हैं और कोई नहीं ।

(चैतन्यचरितावली भाग ५ पृष्ठ २६५)

महाप्रभु के शिष्यों ने उनके सम्प्रदाय का यथावत् प्रचार किया . श्री नित्यानन्द अद्वैताचार्य ने बंगाल में तथा उनके अन्य छै शिष्यों ने वृन्दावन में महाप्रभु के सिद्धान्तों की धूम मचा दी । महाप्रभु के इन छै शिष्यों में 'रूपगोस्वामी' 'जीवगोस्वामी' और 'सनातनगोस्वामी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नाभादास ने अपने भक्तमाल में इन तीनों का वर्णन इस प्रकार किया है—

वेला भजन सुपक्व रसायन कबहूँ लागी ।
वृन्दावन दृढवास जुगल चरननि अनुरागी ।
पोथीलेखन पान अघट अक्षर चित दीनो ।
सद्ग्रन्थन को सार सबै हस्तामलक कीनो ।
सन्देह-ग्रन्थि-छेदन-समर्थ, रस-रास-उपासक परमधीर ।
श्री रूप सनातन भक्तिजल श्री जीवगुसांई सर गभीर ।।[१]

इन गोस्वामियों ने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की रूपगोस्वामी के 'भक्तिरसामृत-सिन्धु' उज्ज्वल नीलमणि, तथा 'लघुभागवतामृत', सनातनगोस्वामी के श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध की टीका' षट् सन्दर्भ तथा 'गोपाल चम्पू' ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के साहित्य का प्रचार सन् १६०० के लगभग 'श्रीनिवासाचार्य' द्वारा हुआ । १८ वीं शताब्दी में इस सम्प्रदाय के आचार्य बलदेव विद्याभूषण ने ब्रह्मसूत्र पर गोविन्दभाष्य लिखा । तभी से इस सम्प्रदाय की गणना अन्य परिनिष्ठित वैष्णव सम्प्रदायों में होने लगी ।

इस सम्प्रदाय के मतानुसार कृष्ण ही परम तत्व हैं जो अनन्त शक्ति से युक्त और अनादि हैं । उपासना भेद से उसके अलग अलग-नाम हो गये हैं। उसकी शक्ति अचिन्त्य है उनकी शक्ति का प्राकट्य होने पर उसे भगवान कहते हैं अन्यथा वह ब्रह्म कहलाता है । जब उसकी कुछ शक्ति प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब वह परमात्मा कहलाता है । इस परम तत्व का भगवान स्वरूप ही भक्ति का आलम्बन है । 'लघुभागवतामृत' में परब्रह्म के रूप का विस्तार से विवेचन है परन्तु उसका आधार श्रीमद्भागवत है । 'लघुभागवतामृत' में परब्रह्म के तीन रूप माने हैं:—

१ भक्तमाल भक्ति-सुधा २ क रूपकला छन्द ९३ पृ० ६१६

(१) स्वयरूप, तदेकात्मरूप और आवेश रूप। इन तीनों रूपों में कृष्ण ही स्वयरूप हैं। उसके भी तीन रूप है—१—द्वारिका रूप, २—मथुरा रूप और ३—ब्रजलीला रूप। ये तीनों रूप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। तदेकात्मरूप मे वह अपनी अभिव्यक्ति दो रूपो मे कराता है, १—विलासरूप और २—स्वाग रूप मे। लीला विशेष के लिये उनकी जो अभिव्यक्ति होती है वही विलासरूप है परन्तु जब वे अपना अश किसी रूप मे प्रकट करते है वही स्वागरूप कहलाता है और जब वे कुछ कलाओं के साथ विशिष्ट जीवो मे प्रकट होते है वह उनका आवेश रूप कहलाता है। भगवान् के अवतार भी तीन प्रकार के माने गये है—पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार। परम ब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि पुरुषावतार 'वासुदेव' कहलाता है जो तीन प्रकार का माना गया है—सकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। ये पुरुषावतार ही सृष्टि के कारण है। गुणावतार मे वह विष्णु, ब्रह्म और रुद्र का रूप धारण करता है। लीलावतार मे परब्रह्म का तदेकात्मकरूप और आवेश रूप प्रकट होता है।

भगवान् की तीन शक्तियाँ मानी गई हैं। अन्तरङ्ग शक्ति बहिरङ्ग शक्ति और तटस्थ शक्ति। भगवान् की अन्तरङ्ग शक्ति ही स्वरूप शक्ति है जिसे चान्ध शक्ति भी कहते है। सच्चिदानन्द इसी का सामूहिक रूप है। बहिरङ्ग शक्ति माया कहलाती है जिससे जड प्रकृति का उद्भव होता है। यह माया भी दो प्रकार की होती है १—द्रव्य माया और २—गुण माया। द्रव्य माया जगत् का उपादान कारण होती है और गुणमाया निमित्तकारण। इस बहिरङ्ग शक्ति और अन्तरङ्ग शक्ति के मध्य की एक तटस्थ शक्ति है जो जीवों की उत्पत्ति का हेतु है। चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय मे जीव को अणुरूप और नित्य माना है। भगवान् का पूर्णतम स्वरूप गोलोक में रहता है जिसको चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन धाम और गोकुल कहते हैं।

जीव जड माया से मुक्त रहता है और उससे छुटकारा पाने पर ही उसे सायुज्य कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह मुक्ति भक्ति के द्वारा ही सम्भव है। भक्ति भी वैधी और रागानुगा रूप से दो प्रकार की होती है। चैतन्य सम्प्रदाय मे कृष्णचैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैतानन्द तीन प्रभु माने है। नित्यानन्द के अनुगामी नदिया मे और अद्वैतानन्द के शान्तिपुर मे निवास करते है। चैतन्य सम्प्रदाय के मन्दिर, मथुरा, वृन्दावन, तथा बंगाल मे नदिया अम्बिका और अग्रद्वीप मे है। अन्य स्थानो पर भी इनके मन्दिर मिलते हैं।

इन सम्प्रदायो के अतिरिक्त भारतवर्ष मे और भी अनेक सम्प्रदाय भक्ति का प्रचार करने के लिए उठ खड़े हुए। प्रधान रूप से आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों से ही सब सम्प्रदाय प्रभावित हुए हैं। उनका उल्लेख हम अगले अध्यायो मे आधुनिक भाषाओं के साहित्य पर भागवत के प्रभाव को दिखाते हुए करेंगे।

शकर के अद्वैत को वैष्णव सम्प्रदाय कहना कहाँ तक समीचीन है, यह प्रश्न विचारणीय है। सिद्धान्त रूप से अद्वैत का प्रतिपादन करने के लिए शकराचार्य को किसी पुराण की आवश्यकता नहीं थी। उन्होने अपने सिद्धान्तों की संगति प्रस्थानत्रयी तक ही सीमित रखी। भागवत महा पुराण का काल निर्णय करते हुए हमने लिखा है कि इसकी रचना नवी शताब्दी के बाद की नहीं हो सकती। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उसका रचना काल नवी शताब्दी से पहले का सभव नहीं है आचार्य शकर के प्रबोध सुधाकर आदि ग्रन्थो में तथा उनके दादागुरु आचार्य गोडपाद के आदि ग्रथों मे भागवत का छाया

स्पष्ट दीख पड़ती है। उत्तर गीता की टीका मे तो भागवत दशम स्कन्ध चतुर्दश अध्याय के चौथे श्लोक को उद्धृत भी किया गया है। हम पहले लिख चुके है कि श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्ति ग्रन्थ है। आचार्य शकर के अद्वैतमत मे भी व्यवहार पक्ष मे भक्ति को स्थान दिया गया है, परन्तु शकर के अद्वैत मतानुयायी किसी आचार्य का स्पष्ट उल्लेख भागवत के सम्बन्ध मे नही प्राप्त होता। आचार्य शकर ने अपने अद्वैत मत के द्वारा वैदिक धर्म की दुन्दुभी का उद्घोष सम्पूर्ण भारतवर्ष मे किया परन्तु वे धर्म के रसात्मक रूप अर्थात् भागवत धर्म का परिष्कृत रूप प्रस्तुत न कर सकें। भागवत धर्म का उत्थान धर्म के रसात्मक रूप का प्रथम प्रकाश है जो अनेक विकृत वैदिक तथा अवैदिक साधनाओ के कारण धूमिल हो गया था। भागवतकार ने यद्यपि ब्रह्म के अद्वैत रूप का ही प्रतिपादन किया फिर भी लोक जीवन के व्यावहारारिक पक्ष में उस ब्रह्म को सर्वजन सुलभ बनाने का स्तुत्य प्रयत्न भी उन्होंने किया। शकर के उत्तरवर्ती वैष्णव सम्प्रदाय इसी लोक-पथ के प्रशस्ता हैं। यह पथ राजमार्ग के रूप में वृक्षों की सघन छाया से समन्वित होकर पथिक मात्र के कल्याण का साधन बना जो उसे सहज ही गन्तव्य तक पहुँचाने मे समर्थ था। यह भागवत धर्म का द्वितीय उत्थान था। इस उत्थान मे सम्प्रदायो की प्रतिष्ठा हुई। सभी वैष्णव सम्प्रदायो का प्रधान लक्ष्य अद्वैत वेदान्त का खण्डन था। समस्त वैष्णव आचार्यों के परमाचार्य श्री कृष्ण माने जाते है। इस विषय मे पद्मपुराण का निम्न-लिखित श्लोक द्रष्टव्य है:—

> सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
> अत. कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिन'॥
> श्री ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः।
> चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्॥

भगवान् श्री कृष्ण ने वैष्णव तत्व का उपदेश चार शिष्यों को दिया जिसका उल्लेख प्रमेयरत्नावली मे निम्न प्रकार है —

> रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
> श्री विष्णु स्वामिनं रुद्रो निम्बादित्यं चतुः सन॥

इन चार सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय इन्ही की शाखा-प्रशाखाओ के अन्तर्गत आ जाते हैं। चैतन्यमत माध्वसम्प्रदाय की शाखा है तथा वल्लभ मत रुद्र सम्प्रदाय की। दसवी शताब्दी से सोलहवी शताब्दी तक इन सम्प्रदायो मे अनेक भक्त तथा आचार्य हुए जिनकी संस्कृत तथा आधुनिक भाषाओ मे अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। भागवत महापुराण इन सम्प्रदायो का उपजीव्य ग्रन्थ रहा है जिससे प्रभावित होकर आचार्य तथा भक्त कवियो ने अनेक भक्ति-सरिताओ से देश को आप्लावित कर दिया।

रामानुज-मत

छाप है। उनके वेदार्थ-संग्रह, वेदान्तसार तथा वेदान्त दीप नाम के ग्रन्थ शांकरमत के खण्डन में लिखे गए हैं। गद्यत्रय, गीताभाष्य तथा श्री भाष्य उनके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं जो ठीक भागवत के अनुकूल है। रामानुजाचार्य के शिष्यों की रचनाओं में श्रीमद्भागवत का महत्व प्रतिपादन हुआ है। श्री वीरराघवाचार्य ने श्रीमद्भागवत की टीका करते हुए इस महापुराण की अनेक टीकाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है तथा भागवत को पञ्चम वेद माना है तथा उसे ब्रह्म सूत्रों की व्याख्या के रूप में स्वीकार किया है :—

श्रीमद्भागवत पुराणमखिलं व्याख्यातृभिव्यक्तिं
व्यासार्येयति रामभाष्य वचसामहं बुधाना मुदे।
मन्दानामपि मादृशामवगमाच्चाहृतया दर्शित
पन्थानं समुपाश्रितो विवृणुयां मत्याहस क्षम्यताम् ॥

गर्भ-जन्म-जरा मरणादि-नानाविधदुःखोपहतानवगतवेदार्थान् जनानवलोक्या-नुकम्पित मनास्तदुज्जिजीविषया "...... "वेदं व्यासिष्यामुन्नावस्वशिष्येण भगवता जैमिनिना महर्षिणा पूर्वभागं व्याख्याय, स्वयमुत्तरभागं समीचीनैः शारीरकनयैर्व्याख्याय प्रायशः पूर्वभागोप बृंहणा-त्मकं पंचम वेदत्वेनप्रसिद्ध श्री महाभारताख्यमितिहास निर्माय प्राधान्येन वेदान्तार्थोपबृंहणा-त्मकं पञ्चमवेदत्वेन प्रसिद्धं श्री महाभारताख्यमितिहास निर्माय प्राधान्येन वेदान्तार्थोप बृंहणात्मक श्री मद्भागवताख्य पुराणमलचिकीर्षुः।

(श्रीमद्भागवत, श्री वीरराघव कृत टीका उपोद्घात् पृष्ठ ७)

श्री वीरराघव का काल चौदहवीं शताब्दी माना जाता है। श्रीमद्भागवत के जिन दार्शनिक तथा भक्ति-सिद्धान्तों का विवेचन हमने किया है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि श्री सम्प्रदाय के सिद्धान्त भागवत के ठीक अनुरूप बैठते हैं। रामानुज सम्प्रदाय में भागवत के अनुसार जीव के उद्धार का मार्ग भक्ति मार्ग ही है।

निम्बार्क-मत

निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के आदि आचार्य हंसावतार भगवान् नारायण हैं। इनका सनकादि से गुरु-शिष्य भाव भागवत सम्मत ही है। भागवत के एकादश स्कन्ध के त्रयोदश अध्याय के चौदहवें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसी अध्याय में आगे चल कर श्रीकृष्ण भगवान् ने हंसाव-तार नारायण और सनकादि के संवाद का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को ही मूल ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। आचार्य शुकदेव ने श्रीमद्भागवत की टीका 'सिद्धान्त प्रदीप' के उपक्रम में श्रीमद्भागवत का महत्व बड़ी सुन्दरता से प्रतिपादित किया है।

"अथवेदान्तोपबृंहणार्थं श्रीसन्नारदाज्ञया मुमुक्ष्वनुग्रहाय पञ्चत्रिंशत्यधिक-त्रिशताध्याय-निबद्ध-द्वादश स्कन्ध-युतं कल्पद्रुमवदभीष्टार्थप्रद श्रीमद्भागवत-महापुराणं प्रारिप्सुर्ग्रन्थ विषय-भूतस्य परब्रह्मपरमात्मादि पदवाच्यस्य भगवतो मंगलाचरण व्याजेन लक्षणं वदन् परपक्षान् निरा-करोति 'जन्माद्यस्येति'"

(श्रीमद्भागवत सिद्धान्त प्रदीप वृन्दावन सं० १९६० वि० पृष्ठ २६।)

निम्बार्क में गोप वेशधारी श्रीकृष्ण को ही परम आराध्य माना है।

अगणित गुणसिन्धुः स्वप्रपन्नैकबन्धु सकलभुवनहेतु सर्वसौन्दर्यसेतुः
विगत सकल दोषो वेदवेद्यः परेशो भवतु समगतिः मः सर्वदा गोपवेशः।

(श्रीमद्भागवत, सिद्धान्त प्रदीप, पृष्ठ २६)

निम्बार्क सम्प्रदाय में अष्टादशाक्षर गोपाल मंत्र की दीक्षा परम्परा प्राप्त है। कहा जाता है कि आचार्य निम्बार्क ने इस मंत्र की दीक्षा नारद जी से प्राप्त की थी। 'प्रपन्नकल्पवल्ली' में इस मंत्र की तथा श्री मुकुन्दशरण मंत्र की व्याख्या बड़ी सुन्दरता से की गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय के कई आचार्यों ने भागवत के दशम स्कन्ध के रासलीला आदि के प्रसंगों की बड़ी सरस व्याख्या की है। केशव कश्मीरी की भागवत टीका प्रसिद्ध है परन्तु अब केवल वेद स्तुति का ही भाष्य उपलब्ध है। इसी सम्प्रदाय के श्रीभट्ट ने सबसे पहले ब्रज भाषा में कृष्ण की लीलाओं का गान किया। जिसका वर्णन हम अगले अध्यायों में करेंगे।

जिस प्रकार भागवत में कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध आत्मा—आत्मीय भाव, तथा बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव माना गया है उसी प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का सम्बन्ध माना गया है। अपनी मान्यता के पक्ष में निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य भागवत से ही प्रमाण प्रस्तुत करते हैं :—

"अनपायिनी भगवतः श्री साक्षादात्मनो हरेः"

तथा

रेमे रमेशो व्रज सुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

(भागवत, १०/३३/२७)

भागवत के अनुसार इस सम्प्रदाय में प्रेमलक्षणा अनुरागात्मिका पराभक्ति को ही सर्व श्रेष्ठ माना है। सख्यभाव की भक्ति भी इस सम्प्रदाय में विधेय है। निम्बार्क सम्प्रदाय की अवान्तर शाखा सखी सम्प्रदाय की चर्चा हम आगे करेंगे।

माध्व-मत

माध्व-मत विशुद्ध भक्तिवादी मत है। श्री मध्वाचार्य ने भागवत के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए भागवत तात्पर्य निर्णय नामक ग्रन्थ लिखा तथा इस महापुराण को ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गायत्री तथा वेद से सम्बद्ध बताया है। भागवत तात्पर्य निर्णय में वे लिखते हैं—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः॥
पुराणानां साररूपः साक्षाद् भगवतोदितः
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥

(भागवत तात्पर्य निर्णय, पृष्ठ ७८९)

संभवतः 'भागवत तात्पर्य निर्णय' सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसमें भागवत के महत्व का इतने विस्तार से विवेचन हुआ है इस ग्रन्थ में के अधिकारी विषय प्रयोजन और

फल विवेचन के अतिरिक्त उसके वर्ण्य विषय को श्रुति स्मृति पुराण इतिहास तथा तन्त्रादि से सम्मत बताया है प्रत्येक स्कन्ध के प्रत्येक अध्याय का तात्पर्य विस्तार से बताया गया है वैशिष्ट्य इस ग्रंथ का यह है कि स्कन्ध का तात्पर्य उतने ही अध्यायों में लिखा गया है जितने अध्याय उस स्कन्ध में है। मध्वाचार्य जी ११ वी शताब्दी के आचार्य थे। तथा उन्होंने लगभग तीस ग्रंथों मे भक्ति सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इसी सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वजतीर्थ ने भागवत पर पदरत्नावली नामकी टीका लिख कर भागवत धर्म को लोकप्रिय बनाने मे बड़ी सहायता की तथा भागवत महापुराण को भागवत धर्म के पुनरुत्थान का मूल कारण माना।

माध्वमत की गौडीय शाखा चैतन्य मत मे भी भागवत महापुराण की बड़ी मान्यता है। माध्वमत के १६ वे आचार्य माधवेन्द्रपुरी ने ही वृन्दावन मे गोपाल की स्थापना की थी। चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य मध्वाचार्य को ही भक्ति-प्रवर्तक मानते हैं तथा भागवत को उसके प्रधान साधन के रूप मे ग्रहण करते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के छै आचार्य रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट तथा जीव गोस्वामी वृन्दावन में रह कर भागवत धर्म की व्यवस्थित रूप मे प्रचार करने में लगे तथा भागवत को उपजीव्य मानकर उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। श्रीरूपगोस्वामी ने जो उच्च कोटि के कवि तथा विद्वान् थे 'ललितमाधव' तथा विदग्ध माधव' नामक नाटकों मे श्रीकृष्ण की लीलाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है उज्ज्वल नीलमणि तथा हरिभक्ति रसामृतसिन्धु मे इन्होंने भक्ति का रस रूप मे शास्त्रीय विवेचन किया है। हरिभक्ति रसामृत सिन्धु मे भागवतोक्त वैधी तथा रागानुगा भक्ति के समस्त प्रकारों का विवेचन किया है तथा सब प्रकार की भक्ति के लिए श्रीमद्भागवत को साधन ग्रन्थ ठहराया गया है। उज्ज्वलनील मणि में शृङ्गार को उदात्तता प्रदान की गई है तथा उसे उज्ज्वल रस या मधुर रस की संज्ञा दी गई है। रसराजत्व भक्ति को प्राप्त हुआ है।

मुख्य रसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्ति रसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुरः॥

(उज्ज्वलनीलमणि पृष्ठ ४।)

श्री रूप गोस्वामी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'लघुभागवतामृत है जिसमे भागवत के आधार पर अनेक विषयों का बड़ा सुन्दर प्रतिपादन हुआ है तथा कृष्ण को परात्पर ब्रह्म सिद्ध किया है। लघुभागवतामृत को श्रीमद्भागवत का निचोड कहा जा सकता है। श्री रूपगोस्वामी के 'हंस दूत' तथा उद्धव दूत' नामक काव्य भी भक्ति काव्य ही हैं।

श्री सनातन गोस्वामी जी ने 'वैष्णव तोषिणी' नाम की भागवत की मार्मिक व्याख्या की है तथा वृहद् भागवतामृत मे भागवत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। वृहद् भागवतामृत का प्रतिपाद्य गोपी प्रेम है तथा किशोर श्रीकृष्ण परम सेव्य है। भगवान् के अवतार का प्रयोजन केवल प्रेमदान ही है। इस ग्रंथ में श्री चैतन्यदेव को गोपीभाव का अवतार माना गया है।

रघुनाथदास गोस्वामी की रचनाएं स्तोत्र रूप म हा ही अधिक है य उच्च कोटि के कथा-वाचक थे जो रूप गोस्वामी की सभा में की कथा कहते थे

श्री गोपालभट्ट सम्प्रदाय के उत्कट विद्वान् थे इन्होंने सनातन गोस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ हरिभक्ति विलास का उपबृहण किया था।

श्रीजीवगोस्वामी की विशिष्ट रचना 'षट्सदर्भ है जिसमे भागवत सम्बन्धी छै निबन्धो का सकलन है। इस ग्रन्थ में तत्वसंदर्भ, भागवत तत्व, परमात्मतत्व, श्री कृष्णतत्व, भक्ति तथा प्रीति तत्व शीर्षकों से श्री मद्भागवत के गूढ रहस्यों का उद्घाटन किया गया है तत्व सन्दर्भ में उन्होने लिखा है।

तदेव परमनि:श्रेयसनिश्चयाय श्रीमद्भागवतमेव पौर्वापर्याविरोधेन विचार्यते'। तत्रास्मिन् संदर्भषट्कात्मके ग्रन्थे सूत्रस्थानीयमवतारिका वाक्यम्। विषय वाक्यं श्रीमद्भागवत वाक्यम्......

(तववसन्दर्भ, पृ० १७)

श्रीजीवगोस्वामी जी ने क्रम सन्दर्भ नाम की एक भागवत पुराण की टीका भी लिखी। इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रचार तथा विवेचन मे माध्वमत तथा चैतन्य सम्पदाय अग्रणी है।

वल्लभ-मत

वल्लभ मत के सिद्धान्तो का विवेचल हम पीछे कर चुके हैं। भागवत महापुराण के व्यापक प्रचार मे इस मत का विशेष हाथ रहा है। आचार्य वल्लभ ने सम्पूर्ण देश मे भ्रमण करके भागवत का प्रचार किया तथा देश मे चौरासी स्थानो पर इस महापुराण का पारायण किया। वल्लभ पहले आचार्य थे जिन्होंने इस पुराण को प्रस्थान त्रयी के समकक्ष मानकर उसे प्रस्थान चतुष्टय की संज्ञा दी।

वेदाः श्री कृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्।

(त० दी० नि० पृष्ठ १)

छठे अध्याय में भागवत के दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए हमने भागवत के सम्बन्ध में वल्लभमत पर प्रकाश डाला है। वल्लभ सम्प्रदाय मे आचार्य वल्लभ को श्री भागवत गूढार्थ प्रकाशन परायण कहा जाता है। तत्व दीप निबन्ध तथा सुबोधिनी में भागवत की अनेकश: प्रशसा की गई है तथा इसे समस्त वेदो का आभरण रूप बताया है। इतना ही नहीं, उन्होंने इस महा पुराण को लीलापुरुषोत्तम का साक्षात् विग्रह स्वीकार किया है। भागवत के द्वादश स्कन्धों को अपने सेव्य श्री नाथ जी के बारह अगो के रूप मे स्वीकार कर उन्होने "द्वादशो ह वैपुरुष": श्रुति की संगति बैठाई है। भागवत के प्रथम, द्वितीय स्कन्ध भागवत के पाद युगल हैं, तृतीय, चतुर्थ बाहु युगल, पंचम षष्ठ सक्थिद्वय, सप्तम स्कन्ध दक्षिणहस्त, द्वादश स्कन्ध उत्क्षिप्त वाम हस्त, अष्टम, नवम स्कन्ध स्तन युगल, दशम स्कन्ध हृदय तथा एकादश स्कन्ध शिरोभाग। भागवत के एक ही अर्थ को सात प्रकार से उन्होने बताया है। वे सात प्रकार हैं। शास्त्रार्थ, स्कन्धार्थ, प्रकरणार्थ, अध्यायार्थ, श्लोकार्थ, शब्दार्थ। इन सात प्रकार के अर्थों में आचार्य जी ने बड़ी सावधानी से काम लिया है जैसा कि उन्होने स्वयं सुबोधिनी मे लिखा है

ल त्रणा नव वक्ष्यामि न ।
आर्थिक नु प्रवक्ष्यामि पगाक्षकथनादृते ।
अविरोधेन सप्तानामर्थानामिह सगनि ।
उत्तरोत्तर दौर्बल्य वाच्यं सकोचत परम्
भापात्रय विरोधस्त्र कल्पभेदात्समाहितः ।
भापात्रय विभेदश्च लक्षणैर्नाप्यिने पुन ॥
अर्थत्रय तु वक्ष्यामि निबन्धेऽस्ति चतुष्टयम् ।
(सुबोधिनी १। १)

वल्लभाचार्य ने भागवत महापुराण के विषय विश्लेषण के लिए अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं १—श्रीभागवत सुबोधिनी, २—श्रीभागवत सूक्ष्म टीका, ३—तत्त्व दीप निबन्ध का श्रीभागवतार्थ प्रकरणम् ४—श्रीदशम स्कन्धानुक्रमणिका ५—श्रीपुरुषोत्तम नामसहस्रम् तथा ६—त्रिविध लीला नामावली। वल्लभाचार्य जी के पुत्र विट्ठलनाथ जी ने अपने पूज्य पितृ चरणों के ग्रन्थों के गूढ रहस्य का उद्घाटन किया तथा कुछ स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे। भक्ति हस' तथा 'भक्ति निर्णय' में भागवत की भक्ति का विशेष रूप से प्रतिपादन किया। विट्ठलनाथ जी भी अपने पिता के समान संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे तथा उन्होंने अपने पिता के समान देश में अट्ठाईस बैठकें स्थापित की।

वल्लभाचार्य जी ने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना मर्यादामार्गीय सम्प्रदाय से भिन्न रूप में की। यहाँ तक कि सम्प्रदाय के नाम करण की प्रेरणा भी उन्हें श्रीमद्भागवत से ही मिली। भागवत के द्वितीय स्कन्ध दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में आया है—'पोषण तदनुग्रह.' अर्थात् भगवान् के अनुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहते हैं। भगवान् के अनुग्रह में ही भक्त के हृदय में भक्ति का उदय होता है। इसलिए भक्त को अपना सब कुछ भगवान् को ही समर्पण करना पड़ता है जिससे भगवान् के प्रति उसकी अनन्यता हो सके। यही पुष्टि मार्ग कहलाता है। 'सिद्धान्त रहस्य' नामक ग्रंथ की विवृति में हरिराय जी ने स्पष्ट लिखा है कि भक्ति पुष्टि, प्रवाह, मर्यादा भेद से तीन प्रकार की होती है। इनमें प्रवाह भक्ति तो वेद, पुराण में कही गयी है तथा मर्यादा और पुष्टि के लिए श्रीभागवत ग्रंथ का प्रादुर्भाव हुआ मर्यादा भक्ति का फल है—प्रभु स्नेह, जो पुष्टि भक्ति का आधार है। इस पुष्टि भक्ति का विवेचन श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध में हुआ है। भगवान् का अनुग्रह गूढ होने के कारण प्रत्यक्ष-प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। इसलिए लोक में व्यक्ति विशेष की उत्तम फल प्राप्ति देखकर उसकी कल्पना की जाती है, भगवान के छठे स्कन्ध में भगवान के अनुग्रह का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है, इसीलिए पुष्टि सम्प्रदाय में इसे पुष्टि स्कन्ध कहते हैं। इस स्कन्द के उन्नीस अध्यायों की व्याख्या पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के विवेचन के साथ की गयी हैं। इस स्कन्ध में पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्व का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर, का है इसी स्कन्ध के एकादश अध्याय में इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन है। वृत्रासुर ने इन्द्र के साथ युद्ध करते हुए भगवान् की कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव किया, तथा अपनी अनुभूति के उद्गारों को अभिव्यक्त किया। भागवत कार ने इन्हीं उद्गारों को इस अध्याय के अन्तिम चार श्लोकों में निबद्ध किया है। पुष्टि म ये चार श्लोक वृत्रासुर चतुःश्लोकी' के नाम से प्रख्यात हैं जो क्रमश पम भप

काम और मोक्ष के नाम से अभिहित किये जाते है, इन श्लोकों की पुष्टिसम्प्रदाय में विभिन्न रूपो से व्याख्या की गयी है। पुष्टि-सम्प्रदाय का सेवा मण्डान भी भगवतानुसारी ही सिद्ध किया गया है, भागवतोक्त कृष्ण के अष्ट सखाओ के आधार पर ही 'अष्ट छाप' की स्थापना हुई थी।

"हे स्तोक कृष्ण हे अंशोश्रीदामन् सुबलार्जुन, विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप"
(श्रीमद्०, दशमस्कन्ध, अध्याय २२, श्लोक ३१)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना करके उसके आठो कवियो को ठाकुर जी के आठ सखाओं के रूप मे माना और उन्हे आठ झाँकियो से भगवान् की कीर्तन-सेवा करने का आदेश दिया।

इस प्रकार सभी वैष्णव सम्प्रदायो ने भागवत पुराण को अपने सिद्धान्तो का मूलभूत ग्रंथ माना। भारतवर्ष की सम्पूर्ण आधुनिक भाषाओ का मध्ययुगीन साहित्य श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। इसका विवेचन हम अगले अध्याय मे करेंगे। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों से प्रेरणा पाकर और भी बहुत से सम्प्रदाय भारतवर्ष में चले उनकी साधना पद्धति की मूल चेतना भी श्रीमद्भागवत महापुराण ही रहा।

श्रीमद्भागवत और मध्ययुगीन भक्ति साहित्य

तृतीय अध्याय में भागवत धर्म और भक्ति आन्दोलन का विवेचन करते हुए, हम यह संकेत कर आये हैं, कि श्रीमद्भागवत मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन की प्रेरणा का मूल-स्रोत रहा है तथा सभी भक्ति-सम्प्रदायों में साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से भागवत का महत्त्व स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण का काल-निर्णय करते हुए हमने यह स्वीकार किया है कि श्रीमद्भागवत की प्रस्तुत रूप में रचना नवीं शताब्दी तक अवश्य हो चुकी थी। इसमें भी सन्देह नहीं कि, भागवत-पुराण नाम का कोई ग्रन्थ प्रस्तुत रचना के अतिरिक्त विद्यमान था। भक्ति तथा दर्शन के सभी सामान्य व विशेष तथा वैदिक व अवैदिक तत्त्वों का समावेश भागवतकार ने अपनी रचना में सुचारु रूप से किया है। इसलिये प्रस्तुत श्रीमद्भागवत पुराण में पूर्ववर्ती भक्ति-ग्रन्थों में भी भागवत के तत्त्वों की प्राप्ति अस्वाभाविक नहीं है। यहाँ हमें यह देखना है कि नवीं शताब्दी के अनन्तर भारतीय भाषाओं के भक्ति-ग्रन्थों का यह ग्रन्थ कितनी मात्रा में उपजीव्य रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्राय भारतवर्ष की सभी आधुनिक भाषाओं का विकास नवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ है तथा उनके साहित्य का मूल स्वर सत्रहवीं शताब्दी तक भक्ति ही रहा है। नवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक के साहित्य को मध्य-युगीन साहित्य की संज्ञा दी गयी है। यह दूसरी बात है कि पाश्चात्य देशों में मध्ययुगीन प्रवृत्तियों को जिन विशेषताओं से अभिहित किया गया है वे इस भारतीय मध्य-युगीन साहित्य में विद्यमान हैं अथवा नहीं ? भारतीय मध्य-युगीन भक्ति-साहित्य की अपनी एक विशेषता यह है कि वह परम्परागत भारतीय-साधना से अविच्छिन्न नहीं कहा जा सकता। कुछ आधुनिक विद्वान् इस युग के साहित्य को विशेषकर भक्ति-साहित्य को विदेशी देन मानते हैं, परन्तु यह मान्यता केवल भ्रम ही है। डा० ग्रियर्सन, वेबर केनेडी, डा० भाण्डारकर आदि विद्वानों ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन ईसाइयत की देन है। डा० ताराचन्द आदि भारतीय भक्ति-साधना को मुसलमानों से प्रभावित मानते हैं। हमने अपने ग्रंथ 'सूर और उनका साहित्य' में इन मान्यताओं का खण्डन किया है। इस तथाकथित मध्य-युगीन भक्ति-साहित्य में जिन तत्त्वों का समावेश हुआ है, उनका पूरा ब्यौरा हमें उत्तरवर्ती संस्कृत और प्राकृत के तथा सम्पूर्ण अपभ्रंश के साहित्य में मिल सकता है। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि कृष्ण का देवत्व भारतवर्ष में ईसा से बहुत पूर्व स्वीकृत हो चुका था। संस्कृत साहित्य में कृष्ण के देवत्व की चर्चा पर्याप्त मात्रा में मिलती है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य कई पुराणों, पाञ्चरात्र-ग्रन्थों तथा संस्कृत के काव्यों तथा नाटकों में कृष्ण की अवतार रूप में प्रतिष्ठा है। इसी प्रकार प्राकृत के ग्रंथों में भी पर्याप्त मात्रा में कृष्ण के देवत्व की प्रतिष्ठा हुई है। जहाँ तक भक्ति के उन तत्त्वों का प्रश्न है जो मध्य-युगीन भक्ति-साहित्य के प्रेरक तत्त्व कहे जा सकते हैं, वे तो वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के सम्पूर्ण धर्म-साहित्य में ओत-प्रोत हैं। भागवताश्रयी जिन तत्त्वों का उल्लेख हम यहाँ करना चाहते हैं वे हैं प्रेम और शृंगार।

इन्हीं तत्त्वों को लेकर आधुनिक विद्वानों को यह भ्रम हुआ है कि मध्य-युगीन भक्ति-आन्दोलन अभारतीय भक्ति-साधना से प्रभावित हुआ है। प्रेम और श्रृंगार भक्ति के विशिष्ट तत्त्व हैं जिनके कारण भागवत महापुराण का अपना एक अलग स्थान है। भगवान् की स्तुति, सत्संग वैराग्य, नाम माहात्म्य, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का आपेक्षिक सम्बन्ध, लोक तथा परलोक की चर्चा, गुरु-महिमा, माया-मोह-जाल आदि ऐसे सामान्य तत्त्व हैं जो किसी भी देश अथवा धर्म की भक्ति-साधना के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं तथा जिनकी चर्चा थोड़े बहुत रूप में हमें सर्वत्र मिलती है। इन सभी तत्त्वों की चर्चा श्रीमद्भागवत में भी है। परन्तु भागवत का भागवतत्व इन तत्त्वों की चर्चा के कारण नहीं है। श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य तो प्रेम और श्रृंगार का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करने में है जो धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियों से अद्वितीय कहा जा सकता है। रूप-माधुर्य तथा लीला-विहार, इन दोनों तत्त्वों को रूप प्रदान करने वाले भागवतकार ने इन दो तत्त्वों को शरीर प्रदान कर मानव-मात्र का जो उपकार किया है वह विश्व की धर्म-साधना में अनुपम, अद्वितीय तथा बेजोड़ है।

भारतीय भक्ति-साधना में प्रेम और श्रृंगार का समावेश हम पाँचवीं—छठी शताब्दी से ही पाते हैं। ऐसा लगता है कि ये दोनों तत्त्व लोकमत के प्रधान तत्त्व बन चुके थे। बौद्धों की महायान तथा सहजयान शाखाओं में प्रेम और श्रृंगार का ही विस्तार है। दक्षिण के आलवार भक्तों के गीतों में प्रेम और श्रृंगार की ही ध्वनि गूँजती है। वैष्णव सहजयान, शाक्तमत तथा शैवमत में भी प्रेम और श्रृंगार को ही किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति मिली है। भारत-वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में जो प्राच कला के नमूने प्राप्त होते हैं, उनमें यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रेम और श्रृंगार धार्मिक स्तर पर सामान्य जनता में स्वीकृत हो चुके थे। इसीलिए स्मार्त धर्मावलम्बी आचार्यों के लिए अपनी उपासना-पद्धति में दोनों तत्त्वों का समावेश अनिवार्य हो गया था। भारतीय धर्म-साधना में अवतारवाद की प्रतिष्ठा एक महत्त्वपूर्ण घटना है, परन्तु प्रेम तथा श्रृंगार के आधार के बिना वह प्रतिष्ठा निष्प्राण तथा निर्जीव सी ही थी। बौद्धमत अपने अन्तिम दिनों में इसीलिए लोकमत के रूप में परिणत हो चला था। वर्ण-व्यवस्था तथा शास्त्रीय कठोर नियम, वैधी उपासना तथा आडम्बर पूर्ण पौरोहित्य वैदिक धर्म को लोक मत बनाने में बाधक थे। युग पुरुष भागवतकार ने इस स्थिति को पहिचाना और भारतीय धर्म-परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए भक्ति-पद्धति में प्रेम और श्रृंगार को स्थान देकर मणि-कांचन योग प्रस्तुत किया। भागवतकार का ब्रह्म-निरूपण इस समन्वय बुद्धि का स्पष्ट उद्घोष है:—

"वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्,
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।"

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भारत की प्रायः सभी आधुनिक भाषाओं का विकास नवीं शताब्दी के अनन्तर हुआ है। इसलिए यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य के मूल में प्रेम और श्रृंगार की भावना है तथा वह किसी न किसी रूप में श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ आठवीं-नवीं शताब्दी से माना जाता है कुछ विद्वानों ने इस काल की अपभ्रंश की रचनाओं को पुरानी हिन्दी के

नाम से अभिहित किया है   से पी अथवा साहित्य का काल निर्धारण ... विषय न । है
हिन्दी साहित्य का आदि काल चाहे नवी शताब्दी मे माना जाय या ग्यारहवी शताब्दी मे,
इसमे कोई सदेह नही कि, उस काल का लोक साहित्य धार्मिक साहित्य भी था तथा उसके मूल
मे प्रेम और शृ गार की भावना थी । जो ग्रथ राज्याश्रित कवियो तथा भाटो द्वारा लिखे
गये थे उनमे धार्मिकता चाहे न हो, प्रेम और शृ गार अवश्य है। हम यहाँ केवल धार्मिक-
साहित्य तक ही अपने को सीमित रखना चाहते है। इस दृष्टि से हिन्दी के आदि युग मे
सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ-साहित्य तथा वैष्णव साहित्य धार्मिक साहित्य के रूप मे
प्राप्त होता है ।

सिद्ध-साहित्य की रचना आठवी शताब्दी से तेरहवी शताब्दी तक होती रही। सरहपा
को प्रथम सिद्ध कवि कहा जाता है, जिनका समय ७६० ईस्वी है। बंगाल के पालवंशीय राजा
सिद्धो के आश्रयदाता थे। सभी सिद्ध प्रायः सहजयानी थे। जिसमे विरक्त जीवन के प्रति घोर
प्रतिक्रिया थी तथा जो मुक्त यौन-सम्बन्ध की पोषक थी। सहज जीवन तथा काम-वृत्ति की
सतुष्टि इनका ध्येय था। वर्ण-व्यवस्था, वैदिक यज्ञ विधान तथा शास्त्रीय नियमो के ये कट्टर
विरोधी थे। 'निर्वाण' का स्थान 'महासुख' ने ले लिया है। सिद्धो के चर्यापदो तथा उनके दोहो
मे हमे इन्ही सिद्धान्तो का निरूपण मिलता है। कुछ विद्वानो ने सिद्धो की इस लौकिक प्रवृत्ति
को रहस्यात्मक सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा० हरवर्ट ने अपनी 'युगनद्ध' नामक पुस्तक मे
लौकिक रति तथा वासनात्मक प्रतीको की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। बौद्ध धर्म के
शून्य मे तथा करुणा तत्त्व जो उपाय तथा प्रज्ञा के रूप मे प्रस्तुत किये गये थे तथा जिनके मेल से
बोधि-चित्त की उत्पत्ति मानी जाती थी, अब पुरुष व स्त्री के रूप मे स्वीकृत हुए जिनके यौगिक
मिलन से आनन्द अथवा महासुख की उत्पत्ति मानी गयी। प्रेम तथा शृंगार के माध्यम से
यह लौकिक तथा अलौकिक का समन्वय कहा जा सकता है। भोग के माध्यम से कैवल्य की
प्राप्ति का यह साधन था। प्रज्ञा तथा उपाय ने स्त्री तथा पुरुष का ही रूप धारण नही
किया बल्कि वे शक्ति और शिव के भी प्रतीक बने तथा सूर्य और चन्द्र सुषुम्ना और पिंगला,
स्वर तथा व्यञ्जन की भी सज्ञा उन्होने प्राप्त की। ससार की सारी स्त्रियाँ गोपा की अवतार
मानी गयीं तथा पुरुष बुद्ध के। अद्वय, युगनद्ध तथा समरस सभी साधनाओ के सिद्धान्त
इन्ही क्रियाओ पर आधारित है । सरह पाद के 'दोहा कोश' मे वैदिक परम्पराओ का
पूरा मजाक उड़ाया गया है। सम्पूर्ण सिद्ध साहित्य मे प्रेम तथा शृंगार की प्रतिष्ठा की
गयी है।

बौद्ध सिद्धों की लोक-प्रियता से भयभीत होकर ही वैष्णव सहजयानियो ने अपने
गीतों मे प्रेम तथा शृ गार की प्रतिष्ठा की। उनका भगवत्प्रेम स्वकीया तथा परकीया को
आधार मानकर चला। सफलता परकीया प्रेम को मिली। चण्डीदास ने परकीया प्रेम
को आध्यात्मिक रूप देकर राधा और कृष्ण के प्रेमगीत गाये। कहा जाता है कि चण्डीदास रामी
धोबिन से प्रेम करते थे। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय मे सिद्धों के 'रस' ने 'कृष्ण' का और
'रति' ने 'राधा' का रूप ग्रहण किया। प्रकारान्तर से वैधी, यौगिक-साधना ही कही जा सकती
है। हम यो कह सकते है कि वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय हिन्दू तान्त्रिक मत तथा बौद्ध सहजयान
का ही नया रूप है इन वैष्णवो के आश्रय दाता   के उत्तराधिकारी सेन वंश के राजा
थे   ब्रह्म-वैवर्त-पुराण तथा जयदेव का गीतगोविन्द वैष्णव सहजिया   के ही पोषक ग्रथ

कहे जा सकते हैं। वैष्णव भक्तो ने अपने गीतों मे प्रेम तत्व की विशेष रूप से प्रतिष्ठा की इनका महासुख जीव और ब्रह्म का मिलन था जो शिव व शक्ति तथा प्रज्ञा तथा उपाय के मिलन के समान था। इस मिलन स्थिति को अलौकिक प्रेम की सहजावस्था कहा गया है। यह अवस्था शुद्ध भावात्मक है तथा प्रेम की ही सयोगावस्था है। यह प्रेम का आध्यात्मिक रूप है, जिसका माध्यम मानवीय-प्रेम है। नित्य लोक मे बिहार करने वाले राधा और कृष्ण इस शाश्वत प्रेम के आधार है। सहजिया वैष्णवो ने इस प्रेम की दार्शनिक व्याख्या बड़े सुन्दर ढग से की है। कृष्ण निर्विशेष ब्रह्म हैं वे ही परमात्मा या भगवान् है। उनके भगवान् रूप को तीन शक्तियाँ हैं स्वरूप शक्ति, जीवशक्ति तथा माया शक्ति। स्वरूप शक्ति मे सत, चित् और आनन्द तीनों का मिश्रण है। उनके ब्रह्म रूप की भी तीन शक्तियाँ-सन्धिनी, सम्वित् तथा ह्लादिनी है। राधा ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति है। राधा भोग्य है कृष्ण भोक्ता। दोनों का सम्बन्ध नित्य है। वृन्दावन उनका नित्य लीला-धाम है, जहाँ नित्य लीला गुप्त रूप से होती रहती है। मानवीय परकीया प्रेम राधा और कृष्ण के प्रेम का प्रतीक है। अपनी तीव्रता तथा सामाजिक बन्धनो के तिरस्कार के कारण परकीया प्रेम को आदर्श प्रेम कहा गया है। बगाल के उत्तरवर्ती कृष्ण भक्तो ने तो राधा-भाव से कृष्ण की उपासना की, परन्तु सहजिया सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती कवि सखी-भाव से कृष्ण की उपासना करते थे। राधा की सखी के रूप में राधा और कृष्ण की नित्य लीलाओ का दर्शन ही उनका ध्येय था। राधा को तो वे कृष्ण से अभिन्न मानते थे, तथा जीव को कृष्ण की तटस्थ शक्ति। इसलिये वे राधा न बनकर सखी बनने मे ही गौरवान्वित होते थे। उत्तरवर्ती वैष्णवो ने शिव-शक्ति तथा उपाय व प्रज्ञा के समान प्रत्येक पुरुष व स्त्री को कृष्ण और राधा के रूप मे देखने का प्रयास किया। यह तत्रो का प्रभाव कहा जा सकता है। उत्तरवर्ती वैष्णवों ने जिस प्रेम को आदर्श माना है, वही भागवतकार का 'प्रेम' है। पूर्ववर्ती सहजयानी वैष्णव बौद्धो की सहजयानी शाखा से पूर्णतया प्रभावित थे, जबकि, उत्तरवर्ती वैष्णवो ने अपने आदर्श प्रेम को वैदिक साधना-पद्धति के मेल मे देखने का प्रयास किया।

वैष्णव सम्प्रदायो में प्रेम और सौन्दर्य तत्व की विवेचना करते हुए हमें यह नही भूलना चाहिए कि, शक्ति मत ने इन सम्प्रदायो को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। शाक्त मत का प्रचार अति प्राचीन काल से ही भारतवर्ष मे निम्न'जाति के लोगो में रहा है। ऐसा लगता है कि शक्ति आर्येतर जातियो की उपास्या थी। उनकी उपासनापद्धति का प्रभाव धीरे-धीरे वैदिक उपासना-पद्धति पर पडता गया। कई पुराणो मे शक्ति को देवताओ की अधिष्ठात्री देवी स्वीकार किया गया है। देवी-भागवतमहापुराण, देवी-पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण में तो देवी का बड़े विस्तार से स्तवन किया गया है। देवी के अनेक रूपो को देवताओ की पत्नी के रूप मे ग्रहण कर लिया गया है। तत्र-साहित्य मे शृगार-भावना को विशेष बल दिया गया तथा देवी की कल्पना आनन्दभैरवी, त्रिपुर-सुन्दरी तथा ललिता के रूप में हुई, सम्पूर्ण देश मे शाक्त-तत्रो का प्रचार हुआ तथा स्त्री-तत्व को प्रमुखता मिली, नर-तत्व साधन रूप मे रहा, नियामक तत्व स्त्री-तत्व बना तथा सभी पुरुष स्त्री रूप में माने गये। शाक्तो में चक्र-पूजा का विशेष महत्व है जिसके अनुसार एक भोज-पत्र पर स्त्री की योनि का चित्र बनाया जाता है और उसके आस पास नौ और चित्र रहते है। शक्ति-साधना का भारतीय साधना पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि सभी अवतार युगल रूप में पूजित होने लगे तथा आगे चलकर उनकी काम क्रीडाओं का भी खुलकर वर्णन होने लगा

ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेम और सौन्दर्य वैदिक तथा अवैदिक सभी साधनाओं में इतने घुल-मिल गये थे, कि किसी न किसी रूप में उनकी अभिव्यक्ति आवश्यक थी। आठवीं-नवीं शताब्दी तक ये दोनों तत्व इतने विकृत हो चुके थे कि धार्मिक स्तर पर मानव के संस्कारों के परिष्करण की सामर्थ्य उनमें न रह गई थी। सिद्धों तथा शाक्तों की साधना-पद्धति व्यवहार रूप में समाज के लिए अभिशाप बनती जा रही थी। सम्प्रदायों का दर्शन पक्ष केवल मन को समझाने के लिए था, उनका विकृत क्रिया-पक्ष ही सर्वोपरि था। आचार्य शंकर ने इस गम्भीर स्थिति को पहचान कर अद्वैत मत का प्रचार किया तथा बड़े सुन्दर समन्वयात्मक ढंग से वैदिक साधना-पद्धति की पुनः प्रतिष्ठा की। यह एक प्रतिक्रिया थी, जिसके मूल में औपनिषदिक ज्ञान-वाद था। इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया नाथ-सम्प्रदाय की कही जा सकती है जिसमें वैदिक साधना-पद्धति के प्रति भी घोर विद्रोह है। इस सम्प्रदाय में योग-साधना को आधार बनाया गया तथा शिव को आदि योगी स्वीकार किया। प्रायः सभी अवैदिक साधनाओं को इस सम्प्रदाय में प्रश्रय मिला। इस सम्प्रदाय का लक्ष्य शिवत्व की प्राप्ति है, जो हठ योग से ही सम्भव है। काया-सिद्धि इस सम्प्रदाय का मूल-मंत्र है। शिव और शक्ति का मिलन इस सम्प्रदाय में भी विधेय है, परन्तु दूसरे रूप में। नाथों की साधना उल्टी साधना है, परन्तु मूल तत्व शिव और शक्ति की सिद्धि ही है। सूर्य शक्ति का प्रतीक है, स्त्री का रूप है तथा चन्द्र शिव का प्रतीक है और पुरुष का रूप। पुरुष स्त्री के बन्धन में बँधता है। इस बन्धन को तोड़ना ही नाथ सम्प्रदाय का लक्ष्य है। यह सिद्ध सम्प्रदाय की घोर प्रतिक्रिया है। नाथ मत शंकर के अद्वैत से बहुत कुछ मिलता है, परन्तु नाथ उसे अद्वैत संज्ञा न देकर द्वैताद्वैत-विलक्षण-वाद की संज्ञा देते हैं। नाथों के यहाँ माया कांचन, कामिनी, यश, अज्ञान आदि का स्वरूप धारण करने वाली शक्ति है, जो शिवत्व की प्राप्ति में बाधक है। नाथों का परम लक्ष्य अमरत्व है।

श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना से पहले भारतीय धर्म-साधना कई प्रकृत तथा विकृत अवस्थाओं में बिखर चुकी थी तथा क्रिया व प्रतिक्रिया के रूप में वह अनेक शाखाओं में विभाजित थी। वैदिक साधना लोक-साधना न रहकर वर्ग-विशेष की साधना बन चुकी थी। पौराणिकों ने उसे लोक-साधना बनाने का प्रयास किया, परन्तु वे सफल न हो सके। बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म वैदिक-साधना की प्रतिक्रिया में ही खड़े हुए थे। कालान्तर में ये दोनों धर्म भी जन-सामान्य से अलग पड़ गये। अनेक अभारतीय धर्म-साधनाओं का भी देश में प्रवेश हो गया, जिसके कारण शास्त्रीय धर्म-साधना का रूप और भी सिमटता गया। धर्म जिसका आधार मनोवैज्ञानिक था, कठोर से कठोरतर बन्धनों को अपनाता गया। प्रेम और सौन्दर्य की ओर स्वभाव से आकृष्ट होने वाला मानव-मन धर्म के कठोर बन्धनों से वितृष्ण हो उठा तथा इन दोनों तत्वों की खोज में भटकने लगा। सिद्धों तथा शाक्तों ने भटकते हुए मानव-मन का लाभ तो उठाया परन्तु उसे स्वस्थ न कर सके। तन्त्र-साधनाओं से भी उसका समाधान नहीं हुआ। भागवतकार ने मानव-मन की इस स्थिति को पहिचाना तथा उसे सात्विक प्रेम के उन्मुख किया। रसिकेश्वर कृष्ण के रूप में उसे प्रेम का आश्रय मिल गया तथा उसने भारतीय साधना-पद्धति में प्रथम बार प्रेम के सात्विक रूप को प्रतिष्ठित किया। कृष्ण की लीलाओं का लौकिक स्वरूप पहले से प्रचलित था ही, भागवतकार ने उन्हें आमुष्मिकता प्रदान कर दी ७ वीं ८ वीं शताब्दी में हमें प्रेम-विह्वल भक्तों के ऐसे गीत मिलते हैं जिनमें कृष्ण

को आश्रय माना गया है। सम्पूर्ण मध्य-कालीन साहित्य का मूल स्वर प्रेम ही है—चाहे वह साहित्य निर्गुण भक्ति का हो चाहे सगुण भक्ति का। प्रेम के साथ शृंगार का योग स्वाभाविक ही था। इसलिए इस युग के सम्पूर्ण साहित्य में शृंगार और भक्ति का समन्वित रूप हमें प्राप्त होता है। जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' में स्पष्ट ही लिखा है—

"यदि हरि स्मरणे सरसं मनो, यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल-कांत पदावलीम्, शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।
—(गीत-गोविन्दम् श्लोक ३)

इसी प्रकार भागवतकार ने भी भक्ति के लिये रति और श्रद्धा को आवश्यक बताया है:—

"सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवंति हृत्कर्णरसायन्तः कथाः,
यज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनु क्रमिष्यति।"

ऐसा लगता है कि, मध्य युग तक आते-आते मानव-मन एक प्रकार की मुक्ति का अनुभव करने लगा था तथा दैवी शक्तियों का आतंक उसमे हट चुका था। पौराणिक नैतिक रूढ़िवादिता को स्वीकार करने के लिए भी वह प्रस्तुत नहीं था। इस मानव-मन की उन्मुक्ति के मूल मे चाहे वैदिक साधनाओं की कठोरता हो या विदेशी संस्कृति का प्रभाव हो, इतना हम अवश्य कह सकते हैं, कि यह वस्तु स्थिति थी। संस्कृत तथा प्राकृत के लोक-साहित्य का आधार भी शृंगार बन चुका था। चौथी-पाँचवी शताब्दी से ही हमें इस साहित्य मे स्वच्छन्द प्रेम के दर्शन होते है, हाल की 'गाथा-सप्तशती' के सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—"प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिकों की रसमयी क्रीड़ाएँ, उनका घात-प्रतिघात इस ग्रन्थ मे अतिशय जीवित रूप में प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनियो की प्रेम गाथाएँ, ग्राम-वधूटियों की शृंगार चेष्टाएं, चक्की पीसती हुई या पोधों को सींचती हुई सुन्दरियो के मर्मस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओ का भावोत्तेजन आदि बातें इतनी जीवित, इतनी सरस और इतनी हृदय-स्पर्शी है कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट हो जाता है। यहाँ वह एक अभिनव जगत् मे प्रवेश करता है, जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नही है. कुश और वेदिका का नाम नहीं सुनाई देता, स्वर्ग और अपवर्ग की परवाह नही की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नही दी जाती।"।

अपभ्रंश की रचनाओ मे तो यह शृंगार और भी उन्मुक्त रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। जिसके उदाहरण हमे अब्दुल रहमान के संदेश रासक' हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण' मे बहुलता से मिलते हैं। यह लोक परक शृंगार-भावना धार्मिक साहित्य मे भी प्रवेश पा चुकी थी। संस्कृत के अनेक स्तोत्र और स्तुति ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। विरक्ति-प्रधान जैन धर्म-ग्रन्थो मे भी हमें शृंगार और प्रेम की भावना का पुट बराबर मिलता है। राहुल जी ने अपनी 'काव्य-धारा' मे ठीक ही लिखा है कि 'हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनी के आलिङ्गन का सुख गीत गाने लगे थे जैन-साहित्य में ऐसे पदों की कमी नहीं है जिनमें स्त्री के सौन्दर्य

का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। नेमिनाथ-चौपई में राजमती और नेमी के प्रेम का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। नख-शिख वर्णन भी जैन कवियों ने बड़ी सहती से किया है। यह दूसरी बात है कि उन वर्णनों में सूक्ष्मता तथा गम्भीरता अधिक आ गई है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वैष्णव धर्म में प्रेम और शृंगार का शास्त्रीय ढंग से समावेश सबसे पहले भागवतकार ने किया, दशम शताब्दी के अनन्तर सब भाषाओं का भक्ति-साहित्य किसी न किसी रूप से भागवत से प्रभावित हुआ है। सगुण भक्ति साहित्य में तो भागवत की विषय वस्तु को भी ग्रहण किया गया है, जबकि निर्गुण भक्ति साहित्य में भागवत के प्रेम भाव की छाप हमें मिलती है। संस्कृत में भी भागवतानुसारी ग्रन्थों के अतिरिक्त भागवत नाम से ही कुछ ग्रंथों की रचना हुई। देवी भागवत का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, यहाँ हम संस्कृत के कुछ ऐसे ग्रन्थों का उल्लेख करते हैं, जिनमें भागवत नाम आया है तथा जो श्री मद्भागवत महापुराण के आधार पर लिखे गये हैं। सबमें उल्लेखनीय ग्रन्थ जैमिनीय भागवत है जिसकी मुद्रित प्रति अब प्राप्त नहीं होती। इसकी दो प्रतियाँ—एक देवनागरी अक्षरों में तथा एक उड़िया में खजूर पत्र पर लिखी हुई इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण-लीला है। कुछ लीलाएं ऐसी हैं जिनका वर्णन श्री मद्भागवत में नहीं है। इस ग्रन्थ में राधिका जी को उचित स्थान मिला है, ग्रन्थ की शैली तथा वर्ण्य विषय से पता चलता है, कि यह ग्रन्थ भागवत महापुराण से बहुत बाद की रचना है। दूसरा ग्रन्थ भागवत-चम्पू है, जिसकी तीन प्रतियाँ इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित है। यह एक गद्य-पद्य मिश्रित सुन्दर रचना है। रचयिता अभिनव कालिदास नामक कोई कवि है। ग्रंथ का विभाजन छः उल्लासों में किया गया है। ऐसा लगता है कि ग्रंथकार रामानुज-सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाला है। इस ग्रन्थ की 'रत्नावली' नाम की एक टीका भी उपलब्ध है। तीसरा ग्रंथ 'मन्त्र-भागवत' है। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। जिसकी एक प्रति बड़ौदा की सेण्ट्रल लाइब्रेरी में सुरक्षित है। इसके रचयिता का नाम 'नीलकण्ठ' है। ग्रंथ की टीका ग्रंथ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। टीका का नाम 'मन्त्र-रहस्य-प्रकाशिका' है। टीकाकार ने वैदिक मंत्रों के द्वारा श्रीमद्भागवत की कथाओं की संगति बैठाई है। चौथा उल्लेखनीय ग्रंथ 'बाल-भागवत' है। इसकी रचना सन् १४३० ई० में आन्ध्र निवासी धर्म-सूर्य कवि ने की। यह भी एक काव्य ग्रंथ ही था। इस ग्रंथ की कोई भी प्रति अब उपलब्ध नहीं होती। लेखक के 'नरकासुर-विजय' नामक नाटक में इस ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। इन चार ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत में अनेक ऐसे ग्रन्थ प्राप्त है, जो या तो भागवत को आधार मानकर लिखे गये हैं, या भागवत की टीका के रूप में उपलब्ध हैं। वोपदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हरिलीलामृत' तथा गोस्वामियों के लघु भागवतामृत' 'वृहत्भागवता-मृत' तथा 'षट् संदर्भ' की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

भागवत-धर्म का विवेचन करते हुए हम यह बता चुके हैं कि ईसा से बहुत पूर्व इस धर्म का उदय हुआ तथा वैदिक साधना-पद्धति में प्रेम को स्थान दिया गया। सम्पूर्ण भारतवर्ष में भागवत-धर्म की प्रतिष्ठा हुई तथा अवतार-वाद को सम्बल मिला। परन्तु इस धर्म का सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठापक श्रीमद्भागवत महापुराण ही था। उत्तर और दक्षिण की सभी भाषाओं में भागवत के अनुवाद हुए तथा भागवतानुसारी ग्रंथ लिखे गये। नवीं-दसवीं शताब्दी के जन-ग्रंथों में भी हम कृष्ण लीलाओं का विवरण प्राप्त होता है

कृष्ण ल लाओ को आ ार मानकर की गइ रचनाओ मे ब्रजभाषा का रचनाए अग्रणी है ब्रजभाषा की पूववर्ती शौर सेनी अपभ्र श में कृष्ण सम्ब धी काव्य का प्राचुय मिलता है दुख से कहना पडता है कि यह काव्य अभी तक हिन्दी के विद्वानो के दृष्टि-पथ मे नही आया। सगुण भक्ति-आन्दोलन तथा ब्रजभाषा-काव्य के विकास को समझने के लिए यह काव्य अत्यन्त उपयोगी है। डा० शिवप्रसादसिंह ने अपने शोध-प्रबन्ध 'सूर-पूर्व ब्रज-भाषा और उसका साहित्य' मे इस प्रकार की रचनाओं का उल्लेख किया है। अपभ्रंश भाषा की कृष्ण-लीला सम्बन्धी जो रचनाएँ प्राप्त होती है उनके उपजीव्य नि.सन्देह भागवत महापुराण, हरिवंश पुराण अथवा ब्रह्म-वैवर्त्त पुराण रहे हैं। पुष्पदन्त के 'महापुराण' में कृष्ण-लीलाओ का सम्बद्ध वर्णन प्राप्त होता है। उसमे पूतना-लीला, ओखल-बधन, गोवर्द्धन-धारण, कालिय-दमन आदि घटनाओ के अतिरिक्त गोपियो के साथ कृष्ण-विहार का चित्रण भी बड़ी सुन्दरता से किया गया है। पुष्पदन्त ने कृष्ण के लिए गोपाल, मुरारी, मधुसूदन, हरि, प्रभु आदि भागवतोक्त विशेषणो का प्रयोग किया है, महापुराण का रास-वर्णन भी अद्वितीय है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए:—

> "धूली धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा,
> लीला रस वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा,
> मंदीरउ तोडिवि आवट्टिउ, अद्धविरोलिउ दहिउं पलोट्टिउं
> कवि गोवी गोविन्दहु लग्गी, एण महारी मथनि भग्गी
> एयहिं मोल्लु देहु आलिंगणु, णं तो मा मेल्लहु में प्रंगणु
> काहि वि गोविहि पडह चेलउं, हरि तणु तेइ जायउं कालइउं।"
>
> (उत्तर पुराण, पृ० ६४)

जैन कवियों की अन्य रचनाओं में भी कृष्ण-लीला सम्बन्धी पद प्राप्त होते हैं। यह दूसरी बात है, कि उनका दृष्टिकोण कृष्ण के प्रति भक्ति-परक नही है। हेमचन्द्र के दोहो मे कृष्ण-लीला के सकेत कई स्थान पर प्राप्त होते हैं यथा:—

> १—'हरि नच्चाविउ पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ,
> एम्बहिं राह पओहरहं जं भावइ तं होउ।
> २—'मइं भणियउं बलिराय तुहुं केहउ मग्गण एहु,
> जेहु तेहु न वि होइं वढ सईं नारायण एहु।'

जैन-कथाओ में कृष्ण-काव्य का जो रूप मिलता है, उसमें भागवत की धार्मिकता न मिलना स्वाभाविक ही है। परन्तु विषय वस्तु निश्चय रूप से भागवतानुसारी है। श्री अगरचन्द नाहटा ने जैन-कथा के कृष्ण-काव्य पर एक विस्तार से लेख लिखा है। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' का निम्नलिखित दोहा इस बात की पुष्टि करता है कि कृष्ण का अवतार रूप सामान्य जनता मे प्रतिष्ठित हो चुका था।

> "भम्मणिओ संदेसडो तारय कन्ह कहिज्ज
> जग दालिद्दिंहि डुब्बिउ बलिबंधणह मुहिज्ज'

प्राकृत पैंगलम् में भी कई ऐसे पद्य संगृहीत हैं जिनमे कृष्ण को उपास्य रूप में स्वीकार किया गया है तथा साथ ही साथ गोपी अथवा राधा के साथ उनके प्रेम का वर्णन भी हुआ है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मे गोपियों के लौकिक प्रेम का समुन्नयन हुआ है, उसी प्रकार इन पद्यों मे भी लौकिक प्रेम का चिन्मुख प्रेम मे पर्यवसान किया गया है। इस संकलन मे राधा और कृष्ण के प्रेम सम्बन्धी कई उच्च कोटि के चित्र सकलित हैं। कुछ कविताओ के उदाहरण नीचे दिये जाते है:—

१—"जिणि कंस विणासिअ कित्ति पयासिअ
मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे गिरि हत्थ धरे
जमलज्जुण भंजिय पय भर गंजिय
कालिय कुल संहार करे जस भुवण भरे
चाणूर विहंडिअ, णिय कुल मंडिअ
राहा मुह महु पान करे जिमि भमर वरे
सो तुम्ह णारायण विप्प परायण
चित्तह चिंतिय देउ वरा, भयभीअ हरा" (२२८।२०७)

२—"परिणअ ससिहर वअण विमल दल णअण
विहिअ असुर कुल दलण पणयह गिरि महु महण" (४२१।१०६)

३— 'भुवण अणदो तिहुअण कंदो
भवर भवण्णो स जअइ कण्हो "(३६२।१०८)

'प्राकृत पैंगलम्' मे कुछ ऐसे पद्य भी संगृहीत है, जिनमें शिव और कृष्ण की साथ-साथ स्तुति की गयी है। 'प्राकृत पैंगलम्' के पद्यो से पता चलता है कि कृष्ण की अवतार-भावना उत्तरी भारत मे भी प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अनुसंधेय बात यह है, कि उत्तरी भारत मे कृष्ण की उपासना का जो स्वरूप प्रचलित था, उसे हम भागवत परम्परा का कहे अथवा अन्य किसी परम्परा का। कृष्ण की लीलाओं के स्वरूप के अतिरिक्त दोनों परम्पराओ की विभाजक रेखा कृष्ण-लीलाओ मे राधा का समावेश है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दोनों परम्पराओं के लीला-पक्ष मे भाव-साम्य होते हुए भी स्वरूप मे पर्याप्त भेद है, साथ ही साथ भागवतेतर परम्परा मे राधा का समावेश विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उत्तरवर्ती भागवत-परम्परा मे तो राधा का भी यथोचित समावेश हो गया है। इस समावेश को हम दोनों परम्पराओ के समन्वय का मूल केन्द्र मान सकते है। ऐसा लगता है कि राधा-कृष्ण वाली परम्परा प्रारम्भ मे लौकिक शृंगार की परम्परा थी, भागवत-धर्म के द्वितीय पुनरुत्थान मे उस लौकिक शृंगार परम्परा में भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हो गयी। विद्वानो ने श्रीमद्भागवत मे भी राधा-रूप खोजने का प्रयास किया, तथा उन्हे अपने प्रयास मे सफलता भी मिली। कल्प-वृक्ष सम भागवत महापुराण का 'अनयाऽराधितो नूनम्' वाक्य, महावाक्य बना। जिसने आह्लादिनी शक्ति को सिद्धि प्रदान की। गोपी-प्रेम दोनों परम्पराओं में सामान्य था। परन्तु भागवतेतर परम्परा मे भागवत सदृश कोई पुष्ट ग्रंथ नहीं था। इसलिए आगे सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति साहित्य का उपजीव्य ग्रंथ बना।

हमने अपभ्रंश और पिंगल भाषाओं के कृष्ण भक्ति परक जिन पद्यों का उल्लेख किया है, उनसे यह निश्चित करना बड़ा कठिन है कि वे पद्य विशुद्ध भागवतेतर परम्परा के है अथवा समन्वित परम्परा के। 'प्राकृत पैंगलम्' में संगृहीत पदों की भाषा संक्रान्ति कालीन भाषा है, जो अपभ्रंश तथा ब्रज की मध्यवर्ती भाषा कही जा सकती है। आगे चलकर हिन्दी क्षेत्र में भाषा के दो रूप विकसित हुए है:—

१—संतों की सधुक्कड़ी भाषा तथा २—सगुण भक्तों की ब्रज-भाषा। भाषा का एक तीसरा रूप भी, जिसे 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' नाम से अभिहित किया गया है—मुसलमान सूफी संतों के हाथ से निखार पा रहा था। परन्तु वह वैष्णव-भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम न बन सका। वैष्णव-भक्ति तथा विशेष रूप से कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने का सौभाग्य ब्रज-भाषा को ही मिला। 'हिन्दुई' का साहित्यिक रूप 'दकनी हिन्दी' के नाम से विशेष रूप से पल्लवित हुआ।

ऊपर हमने भागवत-धर्म की दो परम्पराओं का उल्लेख किया है, साथ ही यह भी बताया है कि आगे चलकर उन दोनों परम्पराओं में सामञ्जस्य स्थापित हो गया था। प्रतिष्ठा भागवत को ही प्राप्त हुई। यहाँ हम राधाकृष्ण के युगल रूप को लेकर चलने वाली भक्ति-साधना के प्रतिपादक कुछ संस्कृत ग्रंथों का उल्लेख करेंगे। हिन्दी के अधिकांश कृष्ण-भक्ति साहित्य में राधाकृष्ण के युगल रूप की उपासना का ही स्वरूप मिलता है। इसलिए उस साहित्य से पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य के कुछ उद्धरण उस स्वरूप को समझने में सहायक हो सकते है।

कृष्ण सम्बन्धी पुराण-साहित्य का विवेचन पीछे हो चुका है। हरिवंश पुराण तथा ब्रह्म-वैवर्त्त पुराण को विद्वान् बहुत बाद की रचना मानते है। परन्तु कुछ प्राचीन प्रेम-गीत संकलन ऐसे है, जिनमें राधा-कृष्ण और गोपियों की प्रेम लीलाएँ प्राप्त होती है। कहा जाता है कि आभीर जाति के गीतों में इस प्रकार की लीलाओं का विशद वर्णन था। ये गीत लोकगीतों के रूप में प्रचलित थे। ऐसा लगता है कि कृष्ण-लीला के इन गीतों ने धीरे-धीरे पुराणों के माध्यम से धार्मिकता प्राप्त करली। बारहवीं शताब्दी में संगृहीत 'सदुक्ति कर्णामृत' में भी कृष्णलीला सम्बन्धी एक दो पद संगृहीत है। आलवारों के गीत संकलन 'दिव्य प्रबन्धम्' में कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का नाना प्रकार से उल्लेख हुआ है। इनमें कृष्ण की प्रियतमा गोपी का नाम 'नाप्पिन्नाई' है। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध ग्रंथ 'गाहा सत्तसई' का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। इसके रचना काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मत-भेद है। पहली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक इसका रचना-काल माना गया है। इस ग्रन्थ-रत्न में कई पद कृष्ण की व्रज-लीला के सम्बन्ध में है। हिन्दी के मध्य युगीन कृष्ण-भक्तों की रचनाओं में इस ग्रंथ की पूरी छाया दीख पड़ती है। उदाहरण के लिए हम केवल तीन पद्य उद्धृत करते है—

(१) अज्जवि बालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिए जसोआए।
कह्णमुहपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं वअवहूहिं ॥ २।१२

(२) णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसंठिआ णिउणगोवी।
सरिसगोविआणं चुम्बइ कवोल पडिमागअं कह्णम् २।१४

(१) जइ ममसि ममसु एमेअ कह्व साहग्गगव्विरो गोट्ठ ।
महिलाण दोसगुणे विचारइउ जइ खमो सि ।। १।४७

(बम्बई निर्णय सागर संस्करण ।)

पहले पद मे, यशोदा, तथा व्रज-गोपियो के वात्सल्य का बड़ा सुन्दर चित्रण है। जब यशोदा कह रही थी कि दामोदर आज भी बालक है, तो व्रज-गोपियाँ ओट मे होकर कृष्ण के मुख को देख-देखकर हँस रही थी। दूसरे पद मे भी नाच की प्रशंसा के लिये आई हुई किसी चतुर गोपी द्वारा कृष्ण के कपोलो का चुम्बन दिखाया गया है। तीसरे पद मे भी किसी गोपी की कृष्ण के प्रति एक व्यंग्योक्ति है, जिसके द्वारा वह कृष्ण को कहती है कि, यदि तुम्हे भ्रमण करना ही है और यदि तुम स्त्रियो के गुण-दोषो का ठीक-ठीक विचार कर सकते हो, तो सौभाग्यगर्वित होकर हमारे गोष्ठ में विचरण करो।

छठी-सातवी शताब्दी के अनन्तर संस्कृत की अनेक रचनाओं मे राधा-कृष्ण की लीलाओं के उल्लेख मिलते है। भट्टनारायण ने 'वेणीसंहार' के नान्दी श्लोक मे रास-रत राधा-कृष्ण की ही प्रार्थना की है.—

"कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशित-पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुण्णो-ऽनुनय प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः ।।"

आनन्दवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' मे कृष्ण-लीला सम्बन्धी कई पद उद्धृत किये गये है, जिनमे गोपियों के विरह का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। संस्कृत कविता-संग्रह 'कवीन्द्र-वचन समुच्चय' मे कृष्ण-लीला सम्बन्धी चार पद संगृहीत है। इस संग्रह का संकलन-काल दशम शताब्दी माना गया है। 'सदुक्ति कर्णामृत' नामक संकलन का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' मे भी कृष्ण-लीला सम्बन्धी कई पद उद्धृत किये गए है।

इस प्रकार बारहवी शताब्दी तक रचित संस्कृत के अनेक ग्रंथो मे कृष्ण-लीला का धार्मिक रूप मिलता है। जयदेव का 'गीत गोविन्द' राधा-कृष्ण-लीला की विभिन्न परम्पराओ का एक विकसित रूप प्रस्तुत करता है। गीतगोविन्द की रचना १२ वीं शताब्दी की मानी जाती है। गीत गोविन्द की रचना लोक गीतो की शैली पर हुई है, इसीलिए कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि यह ग्रन्थ पहले किसी प्राकृत या देशी भाषा मे लिखा गया होगा। जयदेव लोक भाषा के अच्छे कवि रहे होगे, परन्तु उनकी कोई रचना, भाषा की, अब प्राप्त नही है। उनके नाम के दो पद 'गुरुग्रन्थ साहब' मे संगृहीत अवश्य है। गीतगोविन्द की भाषा तथा जयदेव का रचना-स्थल अभी भी गवेषणीय है। गीत-गोविन्द के दो छन्दों का रूपान्तर 'प्राकृत-पैंगलम्' मे भी मिलता है। प्राकृत पैंगलम् के इन दोनो पदों की भाषा का रूप निश्चित रूप से पश्चिमी अपभ्रंश का उत्तरवर्ती रूप है। जयदेव के गीतगोविन्द मे कृष्ण-लीला पर पूरी धार्मिक छाप लग गयी है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है।

राधा माधव याजयन्ति यमुना कूले रह केलय

लीलामय भगवान् कृष्ण का माधुर्य गीतगोविन्द का प्रतिपाद्य है जयदेव के उत्तरवर्ती कवि चण्डीदास तथा विद्यापति में इसी माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है गीतगोविन्द में कृष्ण और राधा नायक और नायिका के तथा सखियाँ लीला-सहचरी के रूप में प्रतिष्ठित हुई है। ऐसा लगता है कि जयदेव के समय मे सेन राजाओ के यहाँ वैष्णव कवियो का ही जमघट था। जयदेव के समकालीन प्रायः सभी वैष्णव कवियों ने कृष्ण-लीला सम्बन्धी पदो की रचना की थी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि १२ वीं शताब्दी तक सम्पूर्ण भारतवर्ष के लोक-साहित्य तथा धार्मिक साहित्य मे प्रेम तथा सौन्दर्य तत्वो का पूर्ण रूप से समावेश हो चुका था। शृंगार भक्ति का अभिन्न अग हो गया था। वैष्णव धर्म मे शृंगार की अभिव्यक्ति के लिए कृष्ण-लीलाओं से बढ़कर और कौन सा माध्यम मिल सकता था? लौकिक कथाओ को धार्मिक रूप देने की प्रथा उत्तर भारत मे छठी-सातवी शताब्दी से ही चल रही थी। दसवी शताब्दी से तो इस प्रथा को इतना प्रश्रय मिला कि प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता का चरित्र लिखते समय उसे कुछ धार्मिक रूप देने का प्रयत्न करता था। कहा जाता है कि चन्द कवि ने भी 'दशावतार चरित' की रचना इसी दृष्टि से की थी। उत्तर भारत के पश्चिमी भाग मे बहुत काल तक शैवमत का प्राबल्य रहा, परन्तु गाहडवालो के शासन-काल में हिन्दी-क्षेत्र मे स्मार्त मत का भी बोल-बाला रहा था।

उत्तर भारत मे धर्म-साधना का कोई व्यवस्थित रूप नही था। बंगाल मे पालवश के उत्तराधिकारी सेनवश के राजाओ के संरक्षण मे वैदिक धर्म की वैष्णव शाखा पनप रही थी। कन्नौज के गाहडवाले भी स्मार्त धर्मानुयायी थे। अजमेर और कालिञ्जर मे भी स्मार्त्त-धर्म की प्रबलता थी, परन्तु उत्तरभारत मे—विशेषकर पश्चिमी भाग मे शैवमत का प्रभाव भी कम नही था। कुछ पहाड़ी प्रदेशो में शाक्तमत का प्रचार था। धीरे-धीरे इस शाक्तमत का प्रभाव शैव तथा वैष्णव मतो पर पड़ने लगा था। उत्तर भारत के प्राचीन ध्वसावशेषो से पता चलता है कि उत्तर भारत मे उन दिनो यक्ष-पूजा का भी बड़ा महत्व था। इस यक्ष-पूजा-पद्धति ने बौद्धधर्म की वज्रयान शाखा को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। वज्र-पाणि यक्ष को तो बोधिसत्व का ही स्थान दिया गया है। कहना न होगा कि, बौद्धतन्त्रो तथा शैवतन्त्रो पर यक्षो के तान्त्रिक धर्म का बहुत प्रभाव है। प्राय. यक्ष-साधना के विकृत रूप की प्रतिक्रिया मे ही स्मार्त-धर्म की प्रतिष्ठा हुई थी। शकर के दिग्विजय से इस साधना को बड़ी ठेस पहुँची तथा उसका कुछ विकृत रूप भारत के पूर्वी प्रदेशों में ही सुरक्षित रह सका। दक्षिण के आचार्यो द्वारा प्रवर्तित भक्ति-सम्प्रदायों के प्रभाव से उत्तर भारत मे भी वैष्णव-धर्म का निखरा हुआ रूप सामने आया। लीला-पदो के माध्यम से प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की बात हम पहले ही कह चुके हैं। ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी के दो प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र तथा जयदेव उत्तरी भारत की पश्चिमी तथा पूर्वी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। क्षेमेन्द्र काश्मीर के प्रसिद्ध कवि थे। उनके 'दशावतार-वर्णन' मे जो पद मिलते हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, लीला-गान-पद्धति सम्पूर्ण उत्तर भारत मे समान रूप से प्रचलित थी। हम यहाँ उदाहरण के लिए दशावतार वर्णन के दो पद उद्धृत करते है :—

(१) गोविन्दस्य गतस्य कंसनगरी

व्याप्ता f

स्निग्धश्यामलकूललीनहरिणे
गोदावरी-गह्वरे ।
रोमन्थस्थितगोगणैः परिचयाद्य—
स्कर्णमाकर्णितम् ।
गुप्तं गोकुलपल्लवे गुणगणं
गोप्यः सरागा जगुः । (८-१७३)

(२) ललितविलासकलासुखखेलन—
ललनालोभनशोभनयौवन—
मानितनवमदने ।
अलिकुलकोकिलकुवलयकज्जल—
कालकलिन्दसुता विगलज्जल—
कालियकुलदमने ।
केशकिशोरमहासुरमारण—
दारुणगोकुलदुरितविदारण—
गोवर्धनधरणे ।
कस्य न नयनयुग रतिसङ्गे—
मज्जति मनसिजतरलतरंगे—
वररमणीरमणे ।

दशावतार वर्णन तथा गीतगोविन्द के तुलनात्मक अध्ययन से कई महत्वपूर्ण बातो पर प्रकाश पडता है। दोनो ही ग्रंथ लोक गीतो की पद्धति का अनुसरण करते हैं तथा दोनों मे ही भक्ति के स्तर पर प्रेम तथा सौन्दर्य को महत्त्व दिया गया है। एक विशेष बात उल्लेखनीय यह भी है कि दोनो ही ग्रंथो मे राधा को उचित स्थान दिया गया है। ऐसा लगता है कि उत्तर भारत मे कृष्ण के साथ राधा का संयोग बहुत पहले से हो चुका था। संस्कृत के ग्रंथो से उद्धरण देते हुए हमने इस तथ्य को पीछे स्पष्ट भी किया है। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ने अपने 'श्रीराधा का क्रम विकास' शीर्षक शोध-प्रबंध मे इस विषय पर अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये है।

'दशावतारवर्णन' तथा 'गीतगोविन्द' दोनों ही ग्रन्थो मे राधा का शृंगारिक रूप चित्रित हुआ है। क्षेमेन्द्र के निम्नलिखित श्लोक को देखिए—

गच्छन् गोकुलगूढकुञ्जगहनान्यालोकयन् केशवः।
सोत्कण्ठ वनितानतो वनभुवा सख्येव रुद्धाञ्चलः।
राधाया न न नेति नीविहरणे वैक्लव्यनष्टाक्षराः।
सस्मार स्मरसाध्वसाद्भुततनोरर्द्धोक्तिरिक्ता गिरः॥

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो के 'दसम्' में भी हमें राधा का चित्रण इसी रूप में मिलता है

बारहवीं शताब्दी तक के साहित्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रेम और शृंगार के माध्यम से भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति होने लगी थी तथा लौकिक प्रेम और शृंगार अलौकिक प्रेम और शृंगार का रूप धारण कर रहे थे। हिन्दी साहित्य का यह शैशव-काल था। सामान्य रूप से हिन्दी के विद्वानों ने इस काल को आदि-काल की संज्ञा दी है। वास्तव में इस काल को हम संक्रान्ति काल कह सकते है। अपभ्रंश की प्रवृत्तियां लोकभाषाओं में प्रवेश कर रही थीं तथा भाषा का स्वरूप भी बदल रहा था। धार्मिक प्रवृत्तियों का साहित्य हिन्दी को दायरूप में मिला परन्तु उसे पचाने में हिन्दी का कुछ समय लगा। संक्रान्ति-काल में निर्गुणपरक नाथ-साहित्य का प्राधान्य था। इसलिए आदिकाल के ठीक बाद हमें हिन्दी में निर्गुण साहित्य की ही प्रधानता मिलती है जिसे हिन्दी में सन्त साहित्य से अभिहित किया गया है। भाषा की दृष्टि से शौरसेनी की उत्तराधिकारिणी ब्रज-भाषा रही तथा उसे ही साहित्यिक-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। खड़ी बोली का कोई निखरा हुआ रूप सामने नहीं था। सामान्यतया खड़ी बोली को मुसलमान सूफी फकीरों ने ही अपनाया था। नाथों और सन्तों की भाषा का रूप तो मिश्रित ही रहा। भारतीय संस्कृति के पोषक कवियों ने खड़ी बोली को नहीं अपनाया। यद्यपि प्रचार की दृष्टि से खड़ी बोली का ही महत्व अधिक था तथा वह जन-साधारण के अधिक निकट थी परन्तु दो विभिन्न संस्कृतियों के द्वन्द्व के कारण खड़ी बोली पर धार्मिकता की छाप न लग सकी। यही कारण है कि उस काल का धार्मिक साहित्य हमें खड़ी बोली में प्राप्त नहीं होता है। सूफी तथा सन्त वैष्णव परम्परा के कवि नहीं थे। वे जन-साधारण से अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहते थे। इसीलिये इन दोनों ही श्रेणियों के कवियों की भाषा खड़ी बोली के अधिक निकट है। उत्तर भारत के पूर्वी भाग में यह द्वन्द्व इतने खुले रूप में नहीं था। इसलिये अवधी में हमें सूफी साहित्य भी प्राप्त होता है तथा वैष्णव-साहित्य भी। मैथिली में तो आगे चल कर विद्यापति ने प्रेम और शृंगार का चित्रण परम्परा के अनुसार किया ही है। विद्यापति को हम भाषा का प्रथम कवि कह सकते हैं जिसने प्रेम और शृंगार को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है। विद्यापति का काल चौदहवीं शती के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध के मध्य तक माना जाता है। विद्यापति को हम संक्रमण काल का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। यहाँ से हमें प्रेम और शृंगार की दो स्पष्ट धाराएँ प्राप्त होती हैं—१—सन्तों तथा सूफियों की धारा, २—वैष्णव कवियों की धारा। श्रीमद्भागवत साक्षात् रूप से वैष्णव कवियों का ही प्रेरणा स्रोत रहा है। सन्तों तथा सूफियों के प्रेम निरूपण में तो प्रेम तत्व के वायवी तथा अद्वय रूप को ही प्रधानता मिली है। सूफियों ने प्रेम को अवश्य रूप देने का प्रयत्न किया है परन्तु उसमें विदेशीपन की गन्ध ही अधिक आती है। वैष्णव कवियों की रचनाओं में चाहे किसी भी परम्परा को अपनाया गया हो, भागवत महापुराण उनका किसी न किसी रूप में उपजीव्य अवश्य रहा है। स्वयं विद्यापति ने १४२८ ई० में भागवत की एक प्रति लिखी थी।

१४ वीं शताब्दी से हिन्दी साहित्य की दो धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है—एक निर्गुण भक्ति काव्य की तथा दूसरी सगुण भक्ति काव्य की। निर्गुण भक्ति-काव्य सामान्य रूप से वेदान्त परक है तथा सगुण भक्ति काव्य के मूल में अवतार भावना है। दोनों ही ों पर हम भागवत का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। निर्गुण सन्तों की वाणी का

आधार बौद्ध सिद्धों तथा नाथ पंथी योगियों के पद हैं इन निर्गुण वादियों के तत्व वे ही हैं, जिन्हें हमने भागवत के सामान्य तत्वों के नाम से अभिहित किया है। तत्वों के प्रतिपादन की शैली में भेद अवश्य है। निर्गुण सन्तों की प्रेम-साधना जैसा कि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है, निम्न लिखित आकारों में प्रकट हुई है—

१—भगवान् को अन्तर में ही रखना चाहिए, बाहर प्रदर्शन करने पर वह दिखाने की चीज हो जाता है।

२—इस रस को जिसने पाया है, वही जला है।

३—इस प्रेम-लीला में भक्त के समान ही भगवान् भी उत्सुक है।

४—जिसने प्रेम के क्षेत्र में भगवान् का योग पाया है वही वास्तव में योगी है।

५—इस प्रेम की ज्वाला में जलकर ही भगवान् ने अनाहत संगीत की तरह इस सुन्दर सृष्टि की रचना की है।

६—पवन, जल, आकाश, धरती, सूय,चन्द्र ये सभी भगवान् के प्रेम के रूप हैं। इत्यादि।"

निर्गुण सन्तों ने निर्गुण भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र साधन प्रेम बताया है इसलिए उनका काव्य स्वतः ही सौन्दर्य से सम्बन्धित हो गया है। इस प्रेम का सौंदर्य ससीम की असीम को पाने की आकुलता में ही है। डा० द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है "कबीरदास, दादूदयाल आदि निर्गुण-मतवादियों की नित्य- लीला और सूरदास, नन्ददास आदि सगुण-मतवादियों की नित्य लीला एक ही जाति की है। अन्तर यही है कि पहली श्रेणी के भक्तों के सामने भगवान् के व्यक्तिगत सम्बन्धात्मक रूप के साथ उसकी रूपातीत अनन्तता वर्तमान रहती है और दूसरी श्रेणी के भक्तों के सामने भगवान् सदा प्रतीकरूप में आते हैं और इसीलिए उनकी अनन्तता और असीमता ओझल सी हुई रहती है।"[१]

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर निर्गुण और सगुण भक्तों की मूल-भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं है केवल साधना पद्धति का ही भेद है। प्रेम के माध्यम से भगवान् की प्राप्ति दोनों का ध्येय है। भगवान् की नित्य लीला में भी दोनों प्रकार के भक्त विश्वास करते हैं। हाँ, नित्य-लीला के रूप में भेद अवश्य है। निर्गुण भक्तों ने नामात्मक ब्रह्म को परम ध्येय माना है तथा उन्होंने अपने ब्रह्म को कृष्ण, मुरारी, गोविन्द आदि नामों से अभिहित किया है। ब्रह्म नाम में प्रीति का निदर्शन करते हुए नामदेव जी कहते हैं कि—

"कामी पुरुष कामिनी पियारी, ऐसी नामे प्रीत मुरारी।

एक स्थान पर नामदेव जी अपने ब्रह्म को 'माधव' की संज्ञा देकर कहते हैं—

'बदहु किन होड़ माधव मोसिउ
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर खेल परिउ है तो सिउ।'

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० द्विवेदी १९५६ पृ० ९७-९

कबीर रैदास तथा दादू के पदो में भी इसी प्रकार प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। कहना न होगा कि, सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास के विनय के अधिकांश पद इसी परम्परा के है। भागवत के जिन दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन हमने पीछे किया है, उनकी सगति निर्गुण कवियों के भक्ति-साहित्य मे ठीक बैठ जाती है। साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से इस युग के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य में कृष्ण भक्ति की चर्चा मौजूद है। ऐसा लगता है कि १४ वीं शताब्दी के अन्त तक उत्तर भारत मे भी भागवत महापुराण आर्ष-ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका था। व्रज-भाषा के कवियो ने इस महापुराण की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा दिये। कृष्णभक्ति, भागवत तथा व्रज-भाषा एक दूसरे से इतने सटे हुए हैं कि इनमे से किसी एक को अलग करके नहीं देखा जा सकता। वैष्णव कवियो के अतिरिक्त जैन कवियो का वर्ण्य-विषय भी कृष्ण-कथा रहा है। अपभ्रंश के जैन कवियो की रचनाओ के उद्धरण हम पीछे प्रस्तुत कर चुके है। व्रजभाषा मे भी जैन कवियो ने कृष्ण-कथा के आधार पर काव्य रचना की है। व्रज भाषा की सबसे पहली प्राप्त रचना जैन कवि अग्रवाल रचित 'प्रद्युम्न-चरित' है जिसका निर्माण विक्रमी सवत् १४११ अर्थात् सन् १३५४ ई० माना गया है।[1] ग्रन्थकार ने बडे विस्तार से प्रद्युम्न को नायक मानकर उत्तरवर्ती कृष्ण-चरित का वर्णन किया है। घटना स्थल द्वारकापुरी है। यद्यपि कथा का सार भागवतानुसारी है पर कवि ने अपनी कल्पना से कथा मे अनेक मोड़ दे दिए हैं। अन्त मे प्रद्युम्न को जिनेन्द्र से दीक्षा दिलाई है। प्रद्युम्न चरित, के उल्लेख मे हमारा अभिप्राय यह दिखाना है कि व्रज-भाषा साहित्य का प्रारम्भ ही भक्ति-भावना से हुआ तथा उसका आधार श्री मद्भागवत महापुराण रहा है। निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवियों का समय १४ वीं शताब्दी माना गया है परन्तु यह मान्यता अभी विवादास्पद है। इस सम्प्रदाय के सर्व प्रथम हिन्दी के कवि श्री भट्ट माने जाते हैं जो केशव कश्मीरी के अंतरंग शिष्य थे। श्री भट्ट रचित 'जुगलसतक' के रचना-द्योतक दोहे मे पाठ-भेद के कारण श्री भट्ट का समय गडबडी में पड़ गया है। दोहा इस प्रकार है:—

नैन बान पुनि राम ससि. गिनो अंकगति बाम।
जुगल सतक पूरन भयौ संवत् अति अभिराम॥

इस दोहे के सम्बन्ध मे सर्वे रिपोर्ट के निरीक्षक की टिप्पणी इस प्रकार है,—

"लिपि की एक मामूली गलती से यह उलझन पैदा हो गयी। पहिली पंक्ति मे 'राग' के स्थान पर 'राम' लिखा गया। 'राग' की सख्या छ. होती है। इस तरह १६५२ सम्वत् बदलकर १३५२ हो गया। यह तिथि १९०६-८ की रिपोर्ट मे दी हुई है, यही तिथि है जब श्री भट्ट उत्पन्न हुए[2]। निरीक्षक ने यह बात बताने की कोई जरूरत नही समझी कि राग का राम क्यो और कैसे हुआ। केवल ग और म का सादृश्य ही इस गलती का कारण माना जाये या कोई और कारण भी है। सर्वे रिपोर्ट १९०६—८ के निरीक्षक डा० श्यामसुन्दरदास ने इस कवि के विषय मे कुछ विशेष नही लिखा। विवरण में इतना दिया हुआ है : श्री भट्ट : (यफ आई १५४४ ए० डी०) युगल शतक की तीन प्रतियाँ मिलती हैं जिनका समय क्रमशः १८७१, १७८६ और १८२० ईस्वी है।[3]

१ सूर पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १४२
२ सर्वे रिपोर्ट १९२३ २५ पृ० १३२
३ सर्वे रिपोर्ट १९०६—८ पृ० ८८

{ सूर पूर्व और उसका साहित्य
डॉ० शिवप्रसाद सिंह पृ० २०२ से उद्धृत

निम्बार्क सम्प्रदाय के भागवत से प्रभावित होने वाले भक्त कवियों की चर्चा हम आगे करेंगे। श्री भट्ट का समय चाहे १४ वी शताब्दी हो, या १६ वी शताब्दी, यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि १४ वी शताब्दी के आसपास जो व्रज-भाषा का भक्ति-साहित्य था उसमें कृष्ण-लीलाओं का विकसित रूप प्राप्त होता है। बात यह है कि चौदहवीं शताब्दी से पहले उत्तरभारत में गेय रासकों की परम्परा थी। व्रज भाषा में वह परम्परा लीला-काव्य के रूप में परिवर्तित हो गयी। वैष्णव धर्म के आचार्यों के प्रभाव से व्रज-प्रदेश से लेकर बंगाल तथा आसाम तक कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ। प्राकृत-पैंगलम् में संगृहीत कई पद्य इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि कृष्ण की रास-लीला का प्रचार उत्तर भारत में धीरे-धीरे बढ़ रहा था। १४ वी शताब्दी में व्रज-भाषा में रचित कृष्ण-लीला की सामग्री अभी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हो सकी है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस विषय पर व्रज-भाषा में पर्याप्त साहित्य लिखा गया। सूर-सागर की आलोचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह ठीक ही संकेत किया है कि सूर-सागर किसी चली आती हुई परम्परा का उत्कृष्ट रूप है। सूरदास से लगभग ५० वर्ष पूर्व विष्णुदास नाम के एक कवि की ऐसी रचना प्राप्त होती है, जिसमें कृष्ण-भक्ति के माधुर्य का सुन्दर रूप प्राप्त होता है। खोज-रिपोर्ट में विष्णुदास को १४२५ ई० का कवि माना गया है। विष्णुदास की कई रचनाओं का पता चला है जिनमें महाभारत कथा, स्वर्गारोहण रुक्मिणी-मंगल और सनेह-लीला विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रुक्मिणी-मंगल और सनेह-लीला भागवतानुसारी रचनाएँ हैं। हम यहाँ रुक्मिणी-मंगल का एक पद उद्धृत करते हैं:—

"महलन मोहन करत विलास।
कहाँ मोहन कहाँ रमन रानी और कोउ नहीं पास।
रुकमन चरन मिरावत पिय के पूजी मन की आस॥
जो चाहें थिमी अब पायो हरि पति देवकी सास।
तुम बिनु और कौन थो मेरो धरत पताल अकाश॥
पल सुमिरन करत तिहारो ससि पून परगास॥
घट घट व्यापक अन्तर्यामी सब सुखरामी।
विष्णुदास रुकमन असनाई जनम जनम की दासी॥

यह पद भागवत की द्वारका-लीला के ठीक अनुरूप है। यदि विष्णुदास जी का काल १४२५ ईस्वी स्वीकार कर लिया जाय तो यह सिद्ध हो जाता है कि वल्लभाचार्य जी से लगभग १०० वर्ष पहले व्रजभाषा में भागवतानुसारी कृष्ण-भक्ति-साहित्य लिखा जाने लगा था। विष्णुदास की 'सनेह लीला' भी एक महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना को हम भ्रमर-गीत का पूर्व रूप कह सकते हैं। रचना में सगुण की विजय ही दिखाई गयी है। भागवत के निर्गुण-तत्व की प्रधानता का संकेत इस रचना में नहीं है; ऐसा लगता है कि मध्ययुगीन भक्त कवियों ने भगवान् के सगुण रूप का प्रतिपादन करने के लिए भागवत की कथा में थोड़ा हेर-फेर कर लिया था क्योंकि सगुण मत का प्रतिपादन और प्रतिष्ठा निर्गुनियों के विरोध में ही की गई थी। विष्णुदास सगुण के प्रतिपादन में आगे के कवियों से भी एक कदम

आगे हैं गोपियों के सम्मुख निरुत्तर होकर जब उद्धव जी मथुरा लौटते हैं तो अपनी व्यथा और गोपियों की दशा कृष्ण को सुनाते हैं:—

तब ऊधो आये यहाँ श्री कृष्णचन्द के धाम ।
पाय लागि बन्दन कियो बोलत लेले नाम ।।
ग्वाल बाल सब गोपिका ब्रज के जीव अनन्य ।
तुम ही पाय लागन कहो सुनो देव ब्रह्मन्य ।।
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय ।
वे जाने कै तुम भले मो पै कह्यो न जाय ।।
वे चित टारत नही स्याम राम की जोर ।
मध नामक पुरती अहै मूरति मधुर किशोर ।।
अस गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।
मैं पूछी षट् मास लो तऊ न पायो अन्त ।
देह गेह सब छाणि के करत रूप को ध्यान ।
वन को भजन विचारिये सो सब फीको मान ।।
सन्त भक्ति भूतल विषै वे सब ब्रज की नार ।
चरण सरण रही सदा मिथ्या लोग बिसार ।।
उनके गुण नित गाइये करि-करि उत्तम प्रीति
मैं नाहिन देखूं कहुँ ब्रज वासिन की रीत ।।
तब हरि ऊधो सो कह्यो हूँ जानत सब अंग ।
हौ कहूँ छाड्यो नही ब्रज वासिन्ह को संग ।।
ब्रज तजि अनत न जायहो मेरे तो या टेक ।
भूतल भार उतारहो धरि हो रूप अनेक ।।

विष्णुदास किस सम्प्रदाय मे दीक्षित थे ? नही कहा जा सकता । उनके बारे मे केवल इतना ही मालूम हो सका है कि वे गोपाचलगढ या ग्वालियर के रहने वाले थे तथा वहाँ के राजा डूँगरेन्द्रसिंह के राज्य-काल मे वर्तमान थे। डूँगरेन्द्रसिंह सन् १४२४ ई० में ग्वालियर के राजा हुए थे।

सामान्य रूप से हिन्दी के विद्वानो की यह धारणा है कि उत्तर भारत में—विशेषत: ब्रज प्रदेश मे कृष्ण-भक्ति-साहित्य के निर्माण का श्रेय वैष्णव सम्प्रदायों के कवियों को ही है। यह धारणा ठीक नही प्रतीत होती क्योंकि, सम्प्रदाय मे दीक्षित भक्तों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी ब्रज-भाषा मे भक्ति-साहित्य की रचना की थी। उस साहित्य के उपलब्ध न होने के कारण विद्वानो की ऐसी धारणा बन गयी है । उस परम्परा को जो भी साहित्य उपलब्ध हुआ है, निष्ठ कवियो का वह ही प्रेरणा-स्रोत प्रतीत होता है आगे के साहित्य

मे भगवत की लीला परम्पराओ को इतना प्रश्रय नहीं मिला है जितना रस साहित्य की लील पद्धति का । पाठ संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश की रचनाओं से हमने जो कृष्ण लीला परक पद उद्धृत किये हैं, उन सबका अपनी एक परम्परा है, जिसमे राधा का उचित स्थान है। ब्रज-भाषा के पूर्ववर्ती कवियो मे भी इसी परम्परा का रूप हमे प्राप्त होता है।

जब हम भागवतानुसारी साहित्य की बात कहते हैं तो उसका अभिप्राय यह नही कि भागवत का अनुसरण करने वाले कवियों ने अपनी रचनाओं मे ज्यो का त्यो भागवत का अनुवाद कर दिया है, उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि भागवत के प्रभाव से कृष्ण-लीला को एक विशेष दिशा प्राप्त हुई तथा भागवतोक्त सामान्य तत्वों का वैष्णव भक्ति-भावना मे समावेश हुआ। भागवत को आर्षग्रंथ के रूप मे स्वीकार किया गया तथा जिस प्रकार वैदिक धर्म की विभिन्न शाखाओं मे वेदोक्त तत्वो का अनुसरण किया जाता है, उसी प्रकार भागवत धर्म के तृतीय उत्थान मे भागवत का अनुसरण किया गया।

विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायों मे भागवत की मान्यता का उल्लेख हम पहले कर चुके है। अब हम उन सम्प्रदायो के कुछ ऐसे भक्त कवियो की चर्चा करेंगे जिनकी रचनाओं का प्राण-तत्व भागवत महापुराण है। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों में निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे पहला सम्प्रदाय है, जिसने व्रजभूमि को अपना अड्डा बनाया था। निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य केशव काश्मीरी अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन थे। उनकी किसी हिन्दी रचना का पता नहीं चलता, परन्तु उनके शिष्य श्रीभट्ट जी का व्रजभाषा का 'जुगल-सतक' प्राप्त है। जुगल-सतक के रचना काल के सम्बन्ध मे हम पहले लिख चुके हैं। श्रीभट्ट जी भगवान् कृष्ण के माधुर्य भाव के उपासक थे और नित्य बिहारी श्री राधा-माधव की दिव्य-लीलाओ के आनन्द में विभोर रहते थे। जैसा कि उन्होंने स्वय लिखा है —

> "सेव्य हमारे श्रीप्रिय प्यारे वृन्दाविपिन-विलासी।
> नंदनंदन वृषभानु-नंदिनी-चरन अनन्य उपासी ।।
> मत्त प्रनय बस सदा एक रस विविध निकुंज निवासी।
> श्रीभट जुगल रूप वंशीवट सेवत सब सुखरासी ।।

कुछ विद्वान् कृष्ण भक्ति-साहित्य मे राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना का रूप देखकर यह कल्पना कर लेते हैं कि यह साहित्य भागवतानुसारी नही हो सकता क्योकि श्रीमद्भागवत मे राधा के सम्बन्ध मे स्पष्ट उक्ति नही है परन्तु यह तर्क मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति साहित्य के सन्दर्भ मे उचित प्रतीत नही होता क्योकि मध्ययुग के लगभग सभी आचार्यों ने अपनी भक्ति भावना का उपजीव्य श्रीमद्भागवत महापुराण को स्वीकार किया है। भक्ति के स्वरूप तथा साहित्य-सर्जना मे साहित्यिक तथा धार्मिक परम्पराओं को उचित स्थान दिया गया है। साथ ही सम्पूर्ण साहित्य मे भक्त कवियो के हृदय के उद्‌गारो तथा उर्वरा कल्पना का भी पूरा योगदान है। वृन्दावन के सम्प्रदायो मे निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे पहला सम्प्रदाय है जिस की पद्धति मे राधा को इतना अधिक महत्व मिला है श्रीभट्ट जी ने एक पद में स्पष्ट लिखा है

जुगल किशोर हमारे ठाकुर

सदा सर्वदा हम जिनके हैं जनम जनम घर जाये चाकर ।।

चूक परें परिहरें न कबहूँ सबही भाँति दया के आकर ।

जै श्रीभट्ट प्रगट त्रिभुवन मे प्रनतनि पोषत परम सुधाकर ।।

श्रीभट्ट परम भागवत थे तथा सुनते है कि उन्होने अपने चर्मचक्षुओं से वर्षा मे भीगते हुए राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप के दर्शन किए थे। उनके सम्बन्ध में नाभादास जी ने अपने भक्तमाल मे ठीक ही लिखा है:—

मधुर-भाव संवलित ललित लीला सुवलित छवि ।

निरखत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कवि ।।

भव निस्तारन हेत देत दृढ भक्ति सवनि नित ।

जासु सुजसु ससि उदै हरत अति तम भ्रम भुभचित ।।

आनद कद श्रीनद सुत श्री वृषभानुसुता-भजन ।।

श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन-मन-मोद-घन ।।

जुगलसतक मे रूप-माधुरी, वेणु-माधुरी, व्रज महात्म्य आदि का बडा सुन्दर निरूपण हुआ है।

श्रीभट्ट जी के अन्तरग शिष्य श्री हरिव्यास देवाचार्य थे जो निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। इनकी उपाधि परमहस वंशाचार्य थी तथा इनका कविता का नाम हरिप्रिया था। अपने गुरु की आज्ञा से इन्होने जुगलसतक पर भाष्य लिखा जो 'महावानी पञ्चरत्न'' के नाम से प्रसिद्ध है। हरिव्यास जी सबसे पहले उत्तर भारत के सम्प्रदायाचार्य माने जाते हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने रसिक-सम्प्रदाय नाम की शाखा का प्रवर्तन किया। श्रीकृष्ण के रसिक रूप की उपासना का श्रेय इसी सम्प्रदाय को है। हरिव्यास जी ने कई ग्रन्थों की रचना की तथा इनके १२ शिष्यो ने बारह द्वारे अथवा शाखाओ को चलाया। हरिव्यास जी का समय १६०० वि० माना जाता है। उनकी हिन्दी की रचना एक मात्र 'महावाणी, ही उपलब्ध है जिसमें राधा-कृष्ण की नित्य विहार-लीला का बड़ा मार्मिक वर्णन हुआ है। 'महावाणी' के पाँच सुख वा रत्न है—१–सेवा; २–उत्सव; ३–सुरत, ४–सहज तथा ५—सिद्धान्त। राधा-कृष्ण के मधुर-भाव की उपासना का इतने विस्तार से प्रतिपादन सबसे प्रथम इसी ग्रन्थ में हुआ है। जो स्थान पुष्टि सम्प्रदाय मे सूरदास जी का है वही स्थान निम्बार्क सम्प्रदाय में हरिव्यास जी का है। कृष्ण-भक्ति साहित्य की श्री वृद्धि में हरिव्यास जी का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रेम और शृंगार का जैसा समुज्ज्वल रूप इनकी रचनाओ मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव में हरिव्यास जी में हमें भागवतकार की तन्मयता यथा अद्वैतता का अलौकिक तथा हृदयग्राही स्वरूप प्राप्त होता है। एक ओर तो अपने पूज्य आचार्य श्रीभट्ट जी के 'जुगल सतक' के पदों की व्याख्या तथा भाष्य प्रस्तुत करते है तथा साथ ही भक्ति के गुह्य तत्वों का समावेश अपने विश्लेषण मे करते है। कला की दृष्टि से भी उनकी रचना काव्यत्व का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है। उनके मधुर-भाव का एक नमूना देखिए

विलसी दाम माल भर प्रिय सदन सुखसन
सुरत रसलीन अंग अंग नागर नवल।
कमल की माल लहलही डहडहे तनें।
मुकुट की लटक अरविंद पद परमिनी।
सरसनी भमर अद्भुत सु आनन्द घने।
'श्री हरि प्रिया' ललित उरसी मिची झिलमिली।
झिलमिली दीपनि द्युति जोर जोबन जने॥

इसी प्रकार राधा-कृष्ण का अद्वैतता का भी उन्होंने स्थान-स्थान पर वर्णन किया हैः—

सदा सर्वदा जुगल इक, एक जुगल तन धाम।
आनद अरु अह्लादिनिनि, विलसत द्वै द्वै नाम॥
एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनंद के अह्लादिनि श्यामा, अह्लादिनिहूके आनंद श्याम,
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन विलसत धाम।
'श्री हरिप्रिया' निरन्तर नितप्रति काम रूप अद्भुत अभिराम॥

हम पहले कह चुके हैं कि श्री हरिव्यास जी निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत 'रसिक शाखा, के प्रवर्तक थे। इस शाखा का मूल तत्त्व ही मधुर-भाव है। परवर्ती सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण की रसिकता तथा मधुर-भाव को लेकर अनेक प्रकार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पुष्टि-सम्प्रदाय के उपास्य रसिकेश्वर श्री कृष्ण हैं तथा चैतन्य सम्प्रदाय में रस रूपा राधा रसिकेश्वर श्री कृष्ण की अह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित हुई है। हरिव्यास जी ने राधा के रसात्मक रूप-वर्णन में अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका एक पद देखिए:—

जयति जय राधिका रसिक रस मंजरी,
रसिक सिरमौर मोहन विराजै।
रसिकनी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन,
रसिक रस रसी सहचरि समाजै॥
रसिक-रस-प्रेम सिंगार रंग रँगि रहे,
रूप आगार सुख सार साजै।
मधुर माधुर्य सौंदर्यता वर्य पर,
कोटि ऐश्वर्य की कला लाजै॥
चातिकी कृष्ण की स्वाति की वारिदा
वारिधा रूप-गुन गर्विता जै

मदन मद मोचिनी रति कला
रतन मनि कुन्डला जगमगा जै ।।

निम्बार्क सम्प्रदाय के तीसरे प्रतिभाशाली हिन्दी-कवि परशुरामाचार्य हुए। हरिव्यास जी के १२ शिष्यों मे ये सबसे अधिक प्रतिभाशाली थे। परशुराम जी ने निर्गुण तथा सगुण भक्ति का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। बात यह है कि इनका कार्य क्षेत्र राजस्थान था जो नाथ सम्प्रदाय तथा निर्गुनियो का अड्डा था। साथ ही मुसलमान सूफी फकीरो का भी राजस्थान मे प्रभाव था। पुष्कर क्षेत्र मे परशुराम जी की समाधि है जिस पर एक शिला-लेख भी है। शिलालेख का समय १६३२ ई० है। इस प्रकार परशुराम जी गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास के समकालीन ठहरते है। परशुराम जी की रचनाग्रो का संग्रह 'परशुराम सागर' के नाम से विख्यात है। इनके कई लीला ग्रन्थ हैं जिनमे लीला के दार्शनिक पक्ष को परशुराम जी ने भाँति-भाँति से समझाया है। 'हरिलीला नाम' की रचना मे लीला का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कई ग्रन्थो मे श्री मद्भागवत के सामान्य तत्वों का विवेचन किया गया है इनकी रचनाग्रो से कबीर का समन्वयवाद, सूर की प्रेम लक्षणा भक्ति तथा तुलसी का लोक-धर्म सभी को उचित स्थान मिला है। इनके अनेक पद विनय भाव से पूर्ण है। खेद है कि हिन्दी के पाठकों मे इनकी रचनाओं का उचित प्रचार तथा प्रसार नही हो सका है। हम यहाँ इनके ग्रन्थो से केवल दो उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४५ अङ्क ४ मे इनकी रचनाओं के कई नमूने प्रस्तुत किये गये हैं।
समन्वय-वाद की रचना—

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणा रे।
हारि गए नर जनम बादि जो हरि हिरदै न समाणा रे।।
जठरा अगिनि जरत जिनि राख्यो गरभ सकट गंवाणा रे।
तिहि और तिन तज्यो न तोकू तै काँहि सु भुलाणारे।।

विनय के पद का नमूना देखिये:—

गोबिन्द मैं वन्दीजन तेरा।
प्रात समै उठि मोहन गाऊँ तो मन मानै मेरा।
कर्तम करम भरम कुल करिणी ताकी नाहि न ग्रासा।
करूँ पुकार द्वार सिर नाऊँ गाऊँ ब्रह्म विधाता।
'परसराम, जन करत बीनती सुणि प्रभु अविगत नाथा।।

परशुराम जी के पश्चात् निम्बार्क सम्प्रदाय में अनेक हिन्दी के कवि हुए। इन कवियों का भक्ति-काव्य हिन्दी-साहित्य में बड़ा महत्वपूर्ण है। राधा-कृष्ण की ललित लीलाओं का जैसा सुन्दर बर्णन इन कवियों ने किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। राधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा से सम्बन्ध रखने वाले पद भी बड़े महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के रीति-काल मे भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के अनेक कवियों ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। महाकवि के
बिहारीलाल घनानन्द रसिकगोविन्द रसखान रूपरसिकदेव जी गोविन्ददेव जी वृन्दावनदेव

जी नागरीदास जी तथा शीतलदास जी आदि अनेक कवियों ने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होकर सम्प्रदाय की साधना-पद्धति का हिन्दी भाषा के माध्यम से अभिव्यञ्जन किया है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवियों के सम्बन्ध में ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी की 'निम्बार्क-माधुरी' दर्शनीय है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में कृष्ण तथा गोपियों का आत्मा-आत्मीय भाव माना गया है, उसी प्रकार निम्बार्क-सम्प्रदाय में भी राधा और कृष्ण का अभिन्न भाव-सम्बन्ध माना गया है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के साधकों का किसी विशेष भाव के लिए आग्रह नहीं है। भक्ति के लिए दास्य, सख्य अथवा माधुर्य कोई भी भाव हो सकता है। माधुर्यभाव के साथ इन भक्तों ने वात्सल्य भाव को भी उचित स्थान दिया है। सम्प्रदाय में प्रधानता प्रेम-लक्षणा पराभक्ति की ही है। चित्त वृत्ति का परिष्कार होने पर भाव की विशेषता का महत्व नहीं रहता। इस प्रकार निम्बार्क-सम्प्रदाय के भक्तों की दृष्टि भागवत के मूल तत्वों पर ही अधिक रही है।

हम पीछे कह चुके हैं कि सखी-सम्प्रदाय निम्बार्क-सम्प्रदाय की ही एक अवान्तर शाखा है। इस शाखा के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। स्वामी हरिदास जी निंबार्क सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे तथा मधुरोपासना के ही पोषक थे परन्तु इन्होंने युगल उपासना के स्थान पर गोपी-भाव को भगवत्प्राप्ति का उत्तम साधन स्वीकार किया। प्राय सन्त, महात्मा इस सम्प्रदाय के पोषक रहे जिन्होंने अपनी अमूल्य रचनाओं से हिन्दी-साहित्य के भंडार को पूर्ण किया है। स्वामी हरिदास जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध में मतभेद है। इनका जन्म स० १५४१ तथा १५८५ वि० के बीच माना जाता है। वृन्दावन में मानसरोवर के पीछे निधुवन इनका साधना-स्थल था। वहीं इन्हें बाँकेबिहारी जी की मूर्ति मिली थी। इन्होंने वृन्दावन में 'टट्टी संस्थान' की स्थापना की। साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के झमेले में ये महात्मा नहीं पड़े। हरिदास जी सबसे बड़ा योग-दान कृष्ण-भक्ति साहित्य में संगीत का समावेश है। नाभादास जी ने भक्तमाल में इनके विषय ठीक ही लिखा है.—

आसधीर उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नेम, जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सुखी सुख को अधिकारी।
गान-कला-गन्धर्व स्याम-स्यामा को तोषैं।
उत्तम भोग लगाय, मोर मरकट तिमि पोषैं।
नृपति द्वार ठाढे रहैं, दर्सन आसा जास की।
आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।

राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना तो स्वामी जी को मान्य थी परन्तु वे सखी भाव से युगल मूर्ति की ललित लीला का आनन्द लेते थे तथा संगीत के द्वारा अपनी सरकार को प्रसन्न करने में अपने को कृत कृत्य मानते थे। स्वामी जी की पदावली 'केलि माला' के नाम से विख्यात है। बिहारी जी के प्रति प्रेमानुगा भक्ति 'केलिमाला' का प्रधान विषय है बाँके-बिहारी के प्रति हरिदास जी की अटूट भक्ति है तथा वे उस भक्ति के सामने ज्ञान को व्यर्थ ही समझते हैं प्रेम-समुद्र के सम्बन्ध में उनका कथन है

कल्याण

प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे, कैसे लागे घाट।

बेकार्‌यो दै जानि कहावत, जानिपनों की कहा परी बाट ॥

काहू को सर पर्यो न सूधो, मारत गाल गली-गली हाट।

कह, 'हरिदास' 'बिहारिहिं जानो, तको न औघट बाट ॥

भागवतोक्त वैराग्य शरणागति तथा प्रपत्ति के अतिरिक्त हरिदास जी ने राधा-कृष्ण की रूप–माधुरी तथा रास-लीला पर भी अनेक पद लिखे है। भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य का विवेचन उन्होने बड़ी सुन्दरता से किया है। एक उदाहरण देखिए—

आज तन टूटत है री, ललित त्रिभंगी पर।

चरन चरन पर, मुरलि अधर पर,

चितवनि बंक छबीली भुव पर।

चलहु न वेगि राधिका पिय पै,

जो भई चाहति हो सर्वोपर।

श्री हरिदास समय जब नीको,

हिलि-मिलि केलि अटल रति भू पर ॥

इसी प्रकार राधा-कृष्ण की एक रूपता का स्वामी जी ने अलौकिक चित्र खींचा है:—

'प्यारी जैसे तेरी आँखिन मे हौं अपनपौ

देखत, तैसे तुम देखिति हौ किधौं नाहीं।'

'हां, तोसों कहौं प्यारे, आँखि मूँदि

रहौं, लाल निकसि कहाँ जाहीं।

'मोकों निकसिबे को ठौर बताओ,

साँची कहौ, बलि जाऊँ, लागौं पाहीं;

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा,

तुमहिं देखत चाहत और सुख लागत नाहीं।

लीला-गान के तो स्वामी जी ने अनेक पद लिखे है। यहाँ हम रास-लीला के एक पद का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं:—

अद्‌भुत गति उपजति अति नाचत, दोऊ मण्डल कुँवर किशोरी।

सकल सुगंध अंग भरि भोरी, पिय नृत्यति मुसकति मुख मोरी।

ताल धरैं बनिता मृदंग, चन्द्रागति घात बजैं थोरी थोरी ॥

मधुर भाव भाषा विचित्र अति, ललित गीत गावैं चित चोरी।

श्री वृन्दावन फूलति फूल्यौ पूरन ससि समीर गति थोरी।

गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्‌भुत जोरी।

श्री जमुना जल बिथकित पुहुपनि छवि रति पति डारत तृन तोरी ॥

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी जू को रस रसना कहू कोरी

स्वामी हरिदास जी के जीवन की अनेक चमत्कार पूर्ण घटनायें किम्वदन्तियों के रूप में आज भी प्रचलित हैं। अपने जीवन-काल में ही उन्हें इतनी ख्याति प्राप्त हो चुकी थी कि अकबर जैसे शाहंशाह को भी उनके चरणों में नत-मस्तक होना पड़ा था। प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्हीं के शिष्य बताये जाते हैं। स्वामी हरिदास जी के पश्चात् टट्टी-संस्थान के वैष्णवों की परम्परा आज तक चली आ रही है। उनकी शिष्य परम्परा में विट्ठल विपुल जी बिहारिनीदेव जी, भगवत् रसिक जी, तथा सहचरिरशरण जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विट्ठलविपुल जी ने राधा-कृष्ण की निकुञ्ज-लीला तथा रास-लीला के पदों के अतिरिक्त हिंडोला तथा झूलना आदि पर भी पद लिखे हैं। विट्ठलविपुल जी का समय १५५० वि० से १६२३ विक्रमी तक माना जाता है। ब्रज में प्रचलित रीति-रिवाजों तथा उत्सवों का हिन्दी के वैष्णव-साहित्य में समावेश करने का श्रेय विट्ठलविपुल जी को ही है। भगवान् की रास-लीला का इन्होंने बड़ी तन्मयता से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए:—

(१) मजनी नव निकुञ्ज द्रुम फूले।
अलि कुल संकुल करत कुलाहल, सौरभ मन्मथ भूले।
हरखि हिंडोरे रसिक रास वर, जुगल परस्पर झूले।
श्री 'विट्ठल विपुल' विनोद देखि नभ देव विमानन भूले॥

(२) नवल शरद की जोन्ह जगमगी।
नवसतसाज सकल अंग सुंदरि, नवल वदन पर अलक मगवगी।
श्री विट्ठल विपुल बिहारी के अंग लाड़िली सहज उर लगी॥

विट्ठलविपुल जी के शिष्य श्री बिहारिनीदेव जी ने भी अपने आचार्यपाद के सदृश भगवान् कृष्ण की लीला के अनेक पद रचे हैं। भक्ति का मूलस्रोत इन्होंने श्रीमद्भागवत को ही माना है। भागवत-कथा के बिना ये भक्ति-साधना को व्यर्थ मानते हैं— भक्ति बिना भागवत कहे कत सोखै काया दहै'। भागवत के सामान्य और विशेष तत्वों का विवेचन इन्होंने अपनी रचनाओं में बड़ी सुन्दरता से किया है तथा भागवत की अन्तर्कथाओं का भी अपने पदों में पूरा-पूरा उपयोग किया है। भागवतोक्त नवधा भक्ति का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं:—

"यहै उपाय सुन्यो सन्तन पै हरि सेवत सुख जीजै।
श्रवण कीर्तन भक्ति भागवत नौ प्रकार रति कीजै।
विषय विकार विरचि रचि मन क्रम वचन रचन चित दीजै।
श्री बिहारिनदास प्रभु सदा सजीवन वदन कमल रस पीजै॥"

सखी-सम्प्रदाय के गण्य-मान्य भक्त कवियों में भगवतरसिक जी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओं में वैराग्य तथा अनन्य प्रेम का अद्भुत समन्वय है। रचनाओं का संग्रह 'भगवतरसिक की वानी' नाम से अभी हाल में प्रकाशित हुआ है। ये रीति-कालीन कवि हैं परन्तु इनकी रचना भक्ति काल की परम्परा की है। इनका जन्म सम्वत् १७९५ में

माना जाता है। इनकी दृष्टि में भागवत का अद्वैत 'रसिक' पद की उपलब्धि में ही सम्भव है।

'रसिक' की परिभाषा वे इस प्रकार करते हैं:—

जीव ईस मिलि दोय, नाम रूप गुन परिहरै।
रसिक कहावैं सोय, ज्यों जल घोरै सर्करा॥
दिया कहै सब कोय, तेल-तूल-पावक मिलैं।
तमहि नसावैं सोय, वस्तु मिलैं भागवत रसिक॥

भगवान् कृष्ण के प्रति अनन्य अनुरक्ति के इन्होंने अनेक अर्थ लिखे। एक पद नीचे दिया जाता है:—

तुव मुख चन्द चकोर ये नैना।
अति आरतु अनुरागी लम्पट,
भूल गई गति पलहुँ लगै ना।
अरबरात मिलिबे की निसुदिन,
मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
'भगवत रसिक' रसिक की बातैं,
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना॥

हरिदासजी के सम्प्रदाय में दीक्षित नागरीदास, सरसदेव, नरहरदेव, सहचरिशरण आदि और भी अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने ब्रज-भाषा के भक्ति-साहित्य को अपनी कमनीय कृतियों से पूर्ण तथा सरस बनाया।

नागरीदास नाम के कई वैष्णव भक्त हुए हैं। अब तक इस नाम के पाँच भक्त कवियों का पता चल सका है। टट्टी-संस्थान की परम्परा में सहचरिशरण जी का भी विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म १९ वीं शताब्दी में माना जाता है। इन्होंने फुटकल पदों के अतिरिक्त दो स्वतन्त्र ग्रंथों की रचना की है। सखी सम्प्रदाय में ये प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने टट्टी-संस्थान के सिद्धान्तों पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

युगल उपासना का तीसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय राधा वल्लभीय सम्प्रदाय है। मध्य-युगीन प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रसार और प्रचार का श्रेय ब्रज प्रदेश के हिन्दी भक्त कवियों को है। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य ब्रज-प्रदेशीय सम्प्रदायों ने भी प्रेम लक्षणा-भक्ति को पल्लवित करने में पूरा योगदान दिया। स्वामी हरिदास जी का सखी सम्प्रदाय उन्हीं सम्प्रदायों में एक है। इस कोटि का दूसरा महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय रा[illegible] सम्प्रदाय कहा जा सकता है प्रेम लक्षणा भक्ति के स्वरूप निर्धारण तथा व्यवस्थित विश्लेषण में इस [illegible] ने अभूतपूर्व कार्य किया [illegible] इस [illegible] म

प्रेम तत्सुखित्व के नाना स्वरूपों की कल्पना की गयी है। इस सम्प्रदाय का प्रेम तत्सुखित्व की भावना से सर्वनिष्ठ होकर किया जाता है। राधावल्लभीय साधना पद्धति में केवल प्रेम ही विधेय है और इसीलिए इस सम्प्रदाय में विधि-निषेध के बचनों का व्यावहारिक रूप से बहिष्कार किया गया है। इस सम्प्रदाय में राधा को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसीलिए प्रेम लक्षणा भक्ति को व्यवहारिक रूप देने में इस सम्प्रदाय को इतनी सफलता मिली है। लौकिक ऐषणाओं तथा वासनाओं को अलौकिक रूप प्रदान करने में इस सम्प्रदाय का अभूत-पूर्व योगदान है। प्रिया राधा तथा प्रियतम कृष्ण के काम-केलि प्रसंगों का वर्णन सहचरी रूप जीव के लिए मुक्ति प्रदान करने वाला है। दाम्पत्य उपासना को मूल मानकर मधुराभक्ति को व्यवस्थित रूप देना इसी सम्प्रदाय का काम है।

कुछ विद्वानों ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय की स्वतन्त्र सत्ता मानने में आपत्ति की है तथा गोस्वामी हितहरिवंश को माध्व सम्प्रदाय में दीक्षित बताया है। प्रेम विलास नामक ग्रन्थ में हितहरिवंश जी की कथा भी दी हुई है। परन्तु 'प्रेम विलास' ग्रन्थ की प्रामाणिकता में विद्वानों को सन्देह है। गोस्वामी हित हरिवंश जी के माध्व सम्प्रदाय में दीक्षित होने का कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होता। दोनों सम्प्रदायों के सिद्धान्त पक्ष तथा आचरण पक्ष में पर्याप्त भेद है। कुछ विद्वानों ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय की वृन्दावनी शाखा माना है, परन्तु यह भी एक भ्रम ही प्रतीत होता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के मूल भूत सिद्धान्तों का विवेचन हम पहले ही कर चुके हैं। निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत की स्थापना करके केवल ब्रह्म को ही उपास्य स्वीकार किया था। इस सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यों ने राधाकृष्ण की उपासना में सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दिया। राधा का जो स्वरूप निम्बार्क सम्प्रदाय में स्वीकृत हुआ है, राधावल्लभीय सम्प्रदाय में उससे भिन्न रूप माना गया है। जहाँ तक युगल रूप की उपासना का प्रश्न है, उसे हम परवर्ती काल का प्रभाव ही मानते हैं। इसलिये राधावल्लभीय सम्प्रदाय की साधना पद्धति का गम्भीर अनु-शीलन करने पर हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि यह एक स्वतन्त्र ही सम्प्रदाय है। नाभादास जी ने इस सम्प्रदाय की साधना पद्धति को साधारण मनुष्यों के लिये बड़ा कठिन बताया है:—

> श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है।
>
> श्री राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ़ उपासी।
>
> कुंज केलि दम्पति तहाँ की करत खवासी॥
>
> सर्वसु महाप्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी।
>
> विधि निषेध नहिं, दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।
>
> श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचान है
>
> श्री हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है

प्रियदास जी ने इस सम्प्रदाय की दुरूहता के सम्बन्ध में लिखा है

हित जू की रीति कोऊ लाखनि मे एक जानै
राधा ही प्रधान मानै पाछै कृष्ण ध्याइयै।
निपट विकट भाव होति न सुभाव ऐसो,
उनहीं ही की कृपा दृष्टि नेकु क्योंहूँ जाइये ॥
विधि श्रौ निषेध छेद डारे प्रान प्यारे हिये,
जिये निज दास निसदिन वहै गाइये,
सुखद चरित्र सब रसिक विचित्र जीके,
जानत प्रसिद्ध कहा कहिकै सुनाइयै ॥

वैष्णव मत मे गोस्वामी हित हरिवश जी को श्री कृष्णचन्द्र की मुरली का अवतार माना जाता है। सम्भवत. उनकी सरस कविता के कारण उन्हे यह पदवी प्राप्त हुई है। गोस्वामी जी के जन्मस्थान तथा जन्म तिथि के सम्बन्ध मे भी मतभेद है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उनका जन्म संवत् १५५९ माना है, जिसका आधार श्री भगवत मुदित लिखित 'रसिकमाल' का उल्लेख है। रसिकमाल की एक प्रति मे वह उल्लेख इस प्रकार है:—

पन्द्रह में उनसठि सम्वतसर वैसाखी सुदि ग्यास सोमवर।
तहाँ प्रगटे हरवंश हित रसिक मुकुट मनिमाल।
कर्म, ज्ञान, खंडन करन, प्रेम भक्ति प्रतिपाल ॥"

गोस्वामीजी का जन्म स्थान भी डा० स्नातक ने मथुरा के समीप वाद नाम का गाँव माना है।

गोस्वामी जी के दो ग्रन्थ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—'राधा सुधानिधि' तथा हित चौरासी राधासुधानिधि ग्रन्थ है जिसमें राधा रानी की अद्भुत शैली मे प्रशस्ति की गयी है। हित चौरासी व्रजभाषा की रचना है, जिसमे सम्प्रदाय की मूल भावना को व्यक्त करने वाले चौरासी गेय पदों का संग्रह है। सभी पद रागों के आधार पर लिखे गये। गोस्वामी जी के ही नाम से कुछ और ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है, जिनमें आशास्तव, चतुःश्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधातन्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी जी का गोलोकवास सम्वत् १६०९ माना जाता है।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति अन्य सम्प्रदायों की साधनाओं से विलक्षण गूढ तथा रहस्यमयी है। इनकी प्रेम लक्षण भक्ति स्वकीया परकीया की भावना से परे है। प्रेम-विरह इस भक्ति साधना का सार है मिलन में भी विरह की भावना इस साधना का वैशिष्ठ्य है

'मिले ही रहत मानो कबहू मिलना

गोस्वामी जी आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों के किसी 'वाद' के पचड़े में नहीं पड़े तथा न ही अपने सिद्धान्तों का कोई दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया। हाँ आगे चलकर कुछ साम्प्रदायिकों ने इस सम्प्रदाय का दार्शनिक विवेचन अवश्य किया है, परन्तु गोस्वामी जी की भक्ति-भावना को देखते हुये वह सब प्रयास असंगत सा लगता है। भागवत से अनुप्राणित प्रायः सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी तत्व को वैशिष्ट्य प्रदान करके आचार्यों ने अपनी अलग सत्ता घोषित की है तथा भागवत के मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम तत्व को उसी वैशिष्ट्य में मिलाकर देखने का प्रयास किया है। राधा वल्लभीय सम्प्रदाय में प्रेम तत्व को ही वैशिष्ट्य प्रदान किया गया है तथा उस तत्व का पोषण करने वाली नित्य विहारिणी श्री राधा को अपना इष्ट माना है जो स्वतन्त्र रूप में पराशक्ति रूपा तथा महासुख रूपा है। इस सम्प्रदाय को हम सच्चे अर्थों में रस सम्प्रदाय कह सकते हैं। भागवतोक्त अद्वैत की जैसी अद्भुत सिद्धि इस सम्प्रदाय में है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। प्रेम तत्व की दृष्टि से जीव तथा युगल मूर्ति का साधर्म्य स्थापित करना इस सम्प्रदाय का विधेय है। गोस्वामी हित हरिवंश स्पष्ट उद्घोष करते हैं:—

'यति किञ्चन् दृश्यते सृष्टौ सर्वम् हित मय विदु':

बात यह है कि प्रेम रस सिक्त भक्त की दृष्टि में द्वैत सम्भव ही नहीं है—'जिन आँखिन में वह रूप बस्यो, उन आँखिन सों अब देखिय का'। जब भक्त की बुद्धि स्वाराध्य विशिष्ट हो चुकी, प्रेम रस में सराबोर हो चुकी तथा उस पर एक गहरा रंग चढ़ चुका तब दूसरी किसी बात की गुञ्जाइश कहाँ है? गोस्वामी जी नित्य विहारी तत्व को वेद उपनिषद्, पुराण आदि सबसे अलक्षित और अगोचर मानते हैं। वह तत्त्व प्रेम तत्व है, जो श्री राधावल्लभ लाल के रूप में विराजमान है। श्री राधा और श्रीकृष्ण दो तत्व नहीं हैं, एक ही है उनका नित्य विहार परिकर जो श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियों के रूप में है, आकृति मात्र से ही अलग-अलग प्रतीत होता है। नित्य विहार को ही निकुञ्ज क्रीड़ा कहते हैं। यह क्रीडा नित्य धाम श्री वृन्दावन में नित्य निरन्तर होती रहती है। सखियाँ युगलकिशोर की आत्मभूता हैं, स्व-पर भेद से रहित हैं, सब प्रकार से अप्रमेय तथा अगोचर हैं। लावण्य और सौन्दर्य की यहां कोई सीमा नहीं है। युगलकिशोर की अद्भुत केलि प्रेम रस का सार है, सब ओर एकत्व की भावना है:—

एकै प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कहै जो और ठाँ, झूठो जानो ताहि॥

सम्पूर्ण विश्व स्थिर और जंगम रूप से उसी प्रेम का प्रसार है। यह प्रेम तत्व बड़ा रहस्यपूर्ण है; ब्रह्मा, नारद, शिव, शुक आदि के लिये भी अगम्य है। गोस्वामी जी ने इस तत्व के सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है—

यन्नारदाजेश—शुकैरगम्य
वृन्दावने वञ्जुल—मञ्जु कुञ्ज

तत्कृष्णचेतो हरेणक विश्व
मत्रास्ति किञ्चित् परम रहस्यम् ।।

गोस्वामी जी ने इस प्रेम तत्व को शाश्वत तत्व माना है तथा मुक्ति को भी इसके सामने हेय बताया है:—

अलं विषयवार्तया नरक कोटि वीभत्सया,
वृथा श्रुति कथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यत:
परेश भजनोन्मदा यदि शुकादय: किं तत:
परं तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु ।

इस सम्प्रदाय में मिलन मे भी विरह की स्थिति स्वीकार की गई है, जो इसका अपना वैशिष्ट्य है तथा प्रेम नेम की भी विचित्र ढंग से व्याख्या की है । राधा सुधानिधि का अध्ययन करने पर पाठक प्रेम रस सिक्त सा हो जाता है, नित्य विहार रत राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का साक्षात्कार सा होने लगता है । भागवतकार ने जिस प्रसादमयी शैली के प्रेम तत्व का विवेचन किया है उसी शैली मे गोस्वामीजी ने राधा स्तवन किया है । ऐसा लगता है कि भागवतकार ही गोस्वामी जी के रूप मे अभिभूत होकर राधा तत्व की व्याख्या कर रहे है । विषय के अनुकूल कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग किया गया है । व्रजभाषा मे लिखे हुये चौरासी पदों का माधुर्य भी विलक्षण है । आचार्यपाद ने गागर में रस सागर भर दिया है । यहाँ हम प्रेम तत्व की अद्वैतता के प्रतिपादक दो पदों को उद्धृत करते हैं:—

(१) प्रीति की रीति रंगीलोई जानै ।।
जद्यपि सकल लोक चूडामणि दीन अपनपो मानै ।।
जमुना पुलिन निकुञ्ज भवन मे मान मानिनी ठानै ।
निपट नवीन कोहि कामनि कुल धीरज मनहि न आनै ।।
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यो आन आन सौ बानै ।
हित हरिवंश चतुर सोई लालहि छाडि मेड पहिचानै ।।

(२) प्रीति न काहू की कानि विचारै ।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै ।।
ज्यों सरिता सावन जल उमगत सनमुख सिन्धु सिधारै ।।
ज्यो नादहि मन दिये कुरगनि प्रकट पारिधी मारै ।।
हित हरिवंश हिलग सारंग ज्यो शलभ शरीरहि जारै ।।
नाइक निपुन नवल मोहन विनु कौन अपनपो हारै ।।

नित्य-विहार के परिकर का वर्णन भी गोस्वामी जी ने बड़े विस्तार से किया है साथ ही साथ भागवतोक्त सामान्य तत्व जैसे वैराग्य नाम महिमा गुरु-महिमा सत्संग आदि का भी

स्वामी जी के पदों में पर्याप्त वर्णन है । इन तत्वों का विशेष वर्णन गोस्वामी जी की स्फुट णी में मिलता है । रासलीला पर भी गोस्वामी जी की दृष्टि गयी है तथा उन्होंने शरद रास । वसंत रास दोनों का ही वर्णन किया है । यह रास-वर्णन नित्य विहार का ही एक अंग रास के दो पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

(१) चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान
रास रच्यौ श्यामतट कलिन्द नन्दिनी ।।
निर्तत युवती समूह राग रस अति कुतूह
बाजत रससूल मुरलिका अनन्दिनी ।।
वंशीवट निकट जहाँ परम रमनि भूमि तहाँ
सकल सुखद मलय बहै वायु मन्दिनी ।
जातो ईषद विकास, कानन अतिशय सुवास
राका निशि शरद मास विमल चन्दिनी ।
नरवाहन प्रभु निहार लोचन भरि घोष नारि
नखशिख सौन्दर्य काम दुःख निकन्दिनी ।
विलसहिं भुज ग्रीव मेलि भामिनि सुख सिन्धु झेलि
नव निकुंज श्याम केलि जगत वन्दिनी ।।

(२) श्याम संग राधिका रास मंडल बनी ।
बीच नंदलाल ब्रजबाल चंपक बरन,
ज्यौंव घन तडित बिच कनक मर्कत मनी ।।
नृत गति मान तन्न थेइ हस्तक भेद,
'सरिगमपधनि' ये सप्त सुर नन्दिनी ।।
निर्त रस पहिर पट नील प्रकटित छवी
वदन जनु जलद में मकर की चन्दिनी ।।
राग रागनि तान मान संगीत मत,
थकित राकेश नव शरद की जामिनी ।।
हितहरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी,
दूर कृत मदन मदमत्त गज गामिनी ।।

गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी के अनन्तर इस सम्प्रदाय में अनेक भावुक भक्त कवि हैं जिन्होंने अपनी दिव्य वाणी के रस से हिन्दी साहित्य महोदधि को पूर्ण करने में ादान दिया है । श्री हितहरिवंश जी की वाणी के मर्म को सर्वजन-सुलभ कराने का श्रेय दामोदर दास सेवक जी को है सेवक जी का जन्म सं० १५७७ के लगभग माना जाता था निधन तिथि सम्वत् १६१० इस प्रकार ये गोस्वामी हित हरिवंश जी के समकालीन

ही ठहरते है। इनका जन्म स्थान गोंडवाना प्रदेश का गढ़ा नाम का एक ग्राम माना जाता है। सेवक जी की 'वाणी' मे श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध करने की शक्ति थी। उनकी वाणी हित चौरासी की व्याख्या तथा पूरक के रूप मे ही रक्खी जाती है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत भी प्रसिद्ध है.—

'चौरासी अरु सेवक वाणी, इक संग लिखत पढ़त सुखदानी'।

सेवक वाणी सोलह प्रकरणो मे विभाजित है तथा 'चतुरासी पदाश्रित' है। सेवक जी ने श्रीमद्भागवत् को गोस्वामी हित हरिवंश जी से भी उच्च स्थान प्रदान किया है। इस सम्बन्ध मे उनकी वाणी के दो अंश उद्धृत किये जाते हैं —

(१) शुक मुख वचन जु श्रवन सुनावहु।
तब हरिवंश सुनाम कहावहु ॥
मन सुमिरन विसरै नहीं ॥

(२) श्री भागवत जु शुक उच्चरी। तैसी विधि जु व्यास विस्तरी
करी नन्द जैसी हुती ॥
घर-घर तोरण बन्दनवार। घर-घर प्रति चित्रहि दरबार ॥

सेवक जी की वाणी मे प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादन ठीक भागवत के अनुसार हुआ है। श्री हितहरिवंश जी को वे प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रचार के लिए आविर्भूति अवतार मानते हैं। इस भक्ति की प्राप्ति नवधा भक्ति के अनन्तर ही सम्भव है तथा उसके प्राप्त होने पर विधि निषेध की सीमाएं समाप्त हो जाती है। जाति, पाँति, कुल, धर्म आनन्द का कोई महत्त्व नही रहता। सेवक जी ने लिखा है—

'श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे।
औरो कर्म सकाम सकल तजि सब भजे ॥
साधन विधि प्रयास ते सकल विहावही।
श्रवण कथन सुमिरण सेवन चितलावही ॥
अर्चन बन्दन अरु दासतन, सख्य और आत्मा समर्पन।
ये नवलक्षण भक्ति बढ़ाई। तब तिन प्रेम लक्षणा पाई।
पाई रस भक्ति गूढ़ युग-युग जग, दुर्लभ भव इन्द्रादि विधिम् ॥
आगम अरु निगम पुराण अगोचर सहज माधुरी रूप निधिम् ॥
× × × श्री हरिवंश चरण शरणम् ॥
जाति पाँति कुल-कर्म धर्म व्रत ससृति हेतु अविद्यानासी।
सेवक रीति प्रतीति प्रीति हित विधि निषेध शृंखला विनासी ॥
अब जोई कह्यो करै हम सोई आयुष लिये चले निज दासी।
मन क्रम वचन विशुद्ध सकल मत हम श्री हित हरिवंश उपासी

सेवकजी ने भक्त के लक्षण भागवत के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर लिखे हैं

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जित षड्गुण,
अमानी मनद: कल्पो मैत्र: कारुणिक: कवि: ।
अज्ञायैव गुणान्दोषा मया दिष्टानपि स्वकान,
धर्मान्सत्यज्य य: सर्वान् माम् भजेत सउत्तमः ॥

(श्रीमद्० १७।११।३१-३२)

सेवकजी ने अपनी वाणी में भक्त के लक्षणों की निम्न प्रकार व्याख्या की है—

अरु अपनी प्रभुता नहिं सहै। तृण तें नीच अपन यों कहै ॥
समुझै नहीं कछु कुल कर्म। सूधैं चलै आपने धर्म॥ × × ×॥
जब श्री हरिवंश नाम जानि है। तब सबही तें लघु मानि है।
हसि बोलैं बहुमान दै।
तरु सम सहन शीलता होय। परम उदार कहै सब कोय।
सोचन मन कबहूं करै॥

(श्रीहित सुधासागर, श्री सेवक वाणी जी पृ० २४७)

सेवक जी ने गुरुमहिमा, लीला-गान, रास-लीला, वृन्दावन-महिमा तथा मथुरा महिमा भी विस्तार से लिखी हैं। मथुरा के सम्बन्ध में श्री मद्भागवत के—

'मथुरा भगवान्यत्र नित्य सनिहितो हरि.,

का अनुवाद सेवकजी ने "मथुरा नित्य कृष्ण को वास"।

निसिदिन स्याम न ठाड़ों पास।

किया है।

श्री हरिराम व्यास

श्री हरिराम व्यास का नाम ब्रज-मडल के कवियों में विशेष उल्लेखनीय है। ये ओरछा-नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु थे। इनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक भ्रांतियां प्रचलित हैं। उनका मुख्य कारण यह है कि इस नाम के वृन्दावन में तीन महात्मा प्रसिद्ध हैं। प्राय: आलोचकों ने हरिव्यासदेव और हरिराम व्यास को एक ही व्यक्ति समझ लिया। नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में व्यासजी का परिचय दिया है—

काहू के आराध्य मच्छ कच्छ नरहरि सूकर।
वामन, फरसा धरन सेतु बंधन जु सैल कर॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सों लाये।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युतगोत्री जु लड़ाये॥
नौ गुण तोरि नूपुर गुह्यौ महत सभा मधि-रास के।
उत्कर्ष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति व्यास के॥

(भक्तमाल, नाभाजी-छप्पय सं० ९२।१२२)

सम्प्रदाय के श्री भगवत मुदित तथा श्री उत्तमदास जी ने भी व्यासजी का चरित्र लिखा है। श्री ध्रुवदास जी की भक्तनामावली लीला में भी व्यासजी के सम्बन्ध में तीन दोहे मिलते हैं। व्यासजी के जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में अभी तक निर्णय नहीं हो सका है

कुछ विद्वान् उनका जन्म स० १५६७ मानते हैं तथा कुछ स० १५४६ इतना निश्चित है कि उनका जन्म ओरछा राज्य में हुआ था।

व्यास-वाणी का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासजी राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे ही दीक्षित थे, क्योकि उसमे रसोपासना तथा प्रेमलक्षणा भक्ति का जैसा स्वरूप मिलता है वह ठीक राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के अनुकूल है। उनकी वाणी पर हित चौरासी का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया जा सकता है। व्यासजी संस्कृत भाषा के गम्भीर पण्डित थे। भक्ति के क्षेत्र में उन्हें जाति-पाँति का भेद स्वीकार्य नही था। इस सम्बन्ध मे उन्होंने लिखा है—

स्वान प्रसादहि छू गयो, कौवा गयो विटारि।
दोऊ पावन व्यास कै, कहैं भागौत विचारि॥
व्यास जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत् टेरि।
जातिहि भक्तिहि ना बनै, ज्यों कैरा ढिग बेरि॥

ऐसा लगता है कि व्यासजी ने श्रीमद्‌भागवत का पूर्ण रूप से रसास्वाद किया था और इसीलिए उनकी रचनाओं पर इस महापुराण का व्यापक प्रभाव पड़ा। अनेक स्थलो पर उन्होंने भागवत का नामोल्लेख किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(अ) जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी बिरले जानत मानत कठिन रहनि तैं करनी।
स्वामी भट्ट गुसाई, अगनित मति-करि गरि आचरनी॥
× × ×
सहज प्रीति विना परतीति न, सिस्नोदर की भरनी।
व्यास आस वो लगि है तो लगि, हरि बिनु दुख जिय भरनी॥

(ब) सुक नारद से भक्त न कोऊ जिहि भागवत सुनायो।
बिनु भागवत भक्ति न उपजै, साधन साधि बतायो॥

(व्यास वाणी)

व्यासजी की मान्यता थी कि राधानाम भक्ति का सार-भूत तत्व है तथा एक रहस्यमय तत्व है। सम्भवतः इसीलिये शुकदेवजी ने उसे श्रीमद्‌भागवत मे प्रकट नही किया। श्रीमद्‌भागवत की माधुर्य-लीला का विस्तार से गान करने के लिए ही व्यासजी ने 'रासपञ्चाध्यायी' की अलग से रचना की। व्यासजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने श्रीमद्‌भागवत में स्वीकृत बालकृष्ण की लीला का भी गान किया है तथा मथुरा, वृन्दावन, यमुना तथा वेणु आदि के महत्त्व का भी बड़ी रोचकता से प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार कृष्ण और गोपियों की प्रेम क्रीड़ाओं का भी वर्णन 'वाणी' में भागवत के आधार पर हुआ है। व्यासजी की केवल 'व्यास-वाणी' ही उपलब्ध है। उनके संस्कृत के ग्रन्थ अप्राप्य हैं। व्यासजी की रचना इतनी प्रौढ़ है कि उससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने संस्कृत का गहन अध्ययन किया था तथा भागवतकार की शैली से वे प्रभावित थे। उनकी वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य तो माधुर्यभक्ति तथा राधाकृष्ण की निकुञ्जलीला ही हैं, परन्तु उसकी के लिए उन्होंने भाग की शैली पर अनेक विषयों का वर्णन किया है। शृंगार के भी सयोग और वियोग दोनों ही पक्षों को उन्होंने लिया है उनकी रचना

महाकवि सूरदास के टक्कर की है और कभी कभी तो यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि अमुक पद सूरकृत है अथवा व्यासकृत। उनका रास वर्णन विदग्धता पूर्ण तथा कवित्वमय है रास का वर्णन उन्होंने बड़े विस्तार से किया है जिसमें भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। रास-लीला के पदों में संगीत का अद्भुत तथा विचित्र समावेश है। राधा-कृष्ण की रूप-माधुरी के चित्र बड़े मोहक हैं।

चतुर्भुजदास—(सं० १५८५)

श्री चतुर्भुजदास जी राधावल्लभ सम्प्रदाय के उन विशिष्ट भक्त कवियों में है, जिन्होंने अपनी रचनाओं में श्रीमद्भागवत को महत्त्व प्रदान किया है। अष्टछापी चतुर्भुजदास से इनकी भिन्नता सिद्ध हो चुकी है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के सम्बन्ध में नाभादास जी के भक्तमाल में निम्नलिखित पद मिलता है—

गायौ भक्ति प्रताप सबहिं दासत्व बढ़ायौ।
राधावल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढ़ायौ॥
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अँघ्रिरेनु वहै धारी सिर भूषन॥
सत्संग महा आनन्द में प्रेम रहत भीज्यौ हियौ।
हरिवंश चरन बल चतुर्भुज गौंड़ देश तीरथ कियौ।

प्रियादास जी ने भक्तमाल की टीका में चतुर्भुजदास जी को भागवत-प्रेमी तथा भागवत के कथाकार बताया है—

भोग लै लगावैं नाना संतनि लड़ावैं,
कथा भागवत गावैं, भाव भक्ति विस्तारियै।
भज्यौ धन लेके कोऊ धनी पाछे परयो,
सोऊ आनिकै दबायौ बैठि रह्यौ न निहारियै॥
निकसा पुरान बात करै नदी गान दिक्षा,
शिक्षा सुनि शिष्य भयौ मह्यौ यों पुकारियौ।
कहै या जनम मैं न लियौ कछु दियौ फारौ,
तब ल उबारयौ प्रभु रीति लागी प्यारियौ॥

[भक्तमाल (भ० सु० वि०) पृ० ७४१]

ध्रुवदास जी ने भक्तनामावली लीला में चतुर्भुजदासजी को परम भागवत बताया है। चतुर्भुजदास जी के ग्रन्थ 'द्वादशयश' नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होंने स्वयं ही अपने ग्रन्थों की संस्कृत टीका भी की थी। अपने ग्रन्थों में इन्होंने प्रेमलक्षणाभक्ति को ही सर्वोपरि बताया है, 'प्रेम भक्ति ब्रज में अति भारी, ता बस अटके कुंज बिहारी' नवधा भक्ति का प्रतिपादन करते हुए वे कहते है, 'नवधा भक्ति एक जो करै, भव सागर नारी-नर तरै।' इनका भक्ति-विवेचन धर्म-विचार, संत-महिमा, गुरुमहिमा आदि भागवत के अनुकूल हैं। भक्ति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन इन्होंने 'द्वादश यश' में किया है। इनके अनुसार प्रेमाभक्ति साध्य है, जिसके सामने मुक्ति भी हेय है। चार भक्ति मोहन वर देत। भक्त भक्ति तजि ताहि न लेत॥' भक्ति के क्षेत्र में विधि निषेध भी मान्य नहीं है। इनके पदों में संस्कृत के गहन की छाप मिलती है भागवत के सभी सामान्य तत्त्वों का विवेचन उन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है

ध्रुवदास—(सं० १६३०—१७००)

साम्प्रदायक सिद्धान्तो के विवेचन की दृष्टि से ध्रुवदास जी का स्थान बहुत ऊँचा है। वे राधावल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति के भाष्यकार कहे जाते हैं। इनके जन्म संवत् के विषय मे भी अभी तक कोई निर्णय नही हो सका है। श्री भगवत मुदित तथा गोस्वामी जतनलाल कृत 'रसिक अनन्य सागर' में इनका जीवन-चरित दिया गया है जिसके अनुसार इनका जन्म देवबन्द मे कायस्थ कुल में हुआ था। अनुमान से इनका जन्म सं० १६३० और स्वर्गारोहण सं० १७०० माना गया है। इनकी रचनाओ से पता चलता है कि वे सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके बयालीस ग्रन्थों का नाम 'बयालीस-लीला' नाम से प्रख्यात है। कुछ इनके फुटकर पद भी मिलते है। ध्रुवदास जी की रचनाओं का मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम लक्षणा मधुराभक्ति का सागोपांग विवेचन है। इस विवेचन मे प्रेम सम्बन्धी, लीला सम्बन्धी तथा रसोपासना के अनेक ऐसे वर्णन है जिनमें भागवत की स्पष्ट छाप दीख पडती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियो का बड़ा विशाल साहित्य उपलब्ध है। परम्परा के अनुसार सभी भक्तों ने साम्प्रदायिक सिद्धान्तो के विवेचन के अतिरिक्त भक्ति के सामान्य और विशिष्ट तत्त्वो का निरूपण किया है। इन भक्त कवियो मे नेही नागरीदास, श्री अनन्य-अलि, श्री रसिकदास तथा चाचा वृन्दावनदास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सम्प्रदायो मे भगवान् कृष्ण के नित्य बिहारी तत्त्व को स्वीकार किया गया है। राधावल्लभ लाल ही उनके इष्ट हैं। इसी मान्यता के भेद के कारण उनकी रचनाओं में भागवत से कुछ भिन्नता आती है। चाचा वृन्दावनदास के 'ब्रजप्रेमानन्द सागर विवेक-पत्रिका वेलि तथा कवि-चरित्र वेलि' मे ऐसे अनेक पद मिलते है जो ठीक भागवतानुसारी हैं।

ब्रज क्षेत्र मे ऐसी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं जिनका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय विशेष से नही जोडा जा सकता, परन्तु जो निश्चित रूप से भागवतानुसारी कही जा सकती हैं। आचार्य प्रवर्तित चार सम्प्रदायों का उल्लेख हम पहले कर कर चुके है। इन चारो ही सम्प्रदायो मे श्रीमद्भागवत को आर्ष-ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों के अतिरिक्त अन्य वृन्दावनी सम्प्रदायों मे भागवत का नामोल्लेख उस आदर तथा प्रतिष्ठा से नही हुआ है जितना उन चार सम्प्रदायों मे। परन्तु इतना निश्चित है कि सभी सम्प्रदायों की रचनाओ का मूल प्रेरणा-स्रोत श्रीमद्भागवत ही रहा है। इस बात के भी पर्याप्त संकेत प्राप्त हो जाते हैं कि इन सम्प्रदायों के अधिकांश भक्त कवि सस्कृत के विद्वान् थे तथा भागवत का पारायण उनका नैत्यिक कर्म था। निम्बार्क सम्प्रदाय का विवेचन हम पहले कर चुके है। अब हम चैतन्य मत के कवियो पर विचार करेंगे।

नवम अध्याय में माध्वमत का विवेचन करते हुए हमने यह सकेत किया है कि चैतन्यमत माध्वमत की एक शाखा है। चैतन्यमत का दार्शनिक ढाँचा प्राय: माध्वमत पर ही आधृत है, परन्तु हिन्दी में साहित्य-सर्जना की दृष्टि से चैतन्यमत का ही विशिष्ट स्थान है। चैतन्यमत का अधिकतर भक्ति-साहित्य यद्यपि संस्कृत भाषा तथा प्राचीन बँगला भाषा में है फिर भी ब्रजभाषा में रचित भी इस मत का इतना विपुल साहित्य उपलब्ध होता है जो पुष्टिसम्प्रदाय के हिन्दी साहित्य को छोड़कर अन्य सभी सम्प्रदायों के साहित्य से बढ़कर है। नवीन गवेषणाओ से इस मत का इतना ब्रजभाषा साहित्य उपलब्ध हुआ है जिसकी पहले कल्पना ही नहीं थी। इस मत के अधिकाश कवि वृन्दावन के गौड़ीय गोस्वामियों की शिष्य परम्परा में हैं कुछ

विशिष्ट भक्त कवि श्री नित्यानन्द जी के परिकर में श्री [illegible] जी के वचन हैं। चैतन्यमत के ब्रजभाषा साहित्य का मूल्य प्रेरणास्रोत श्रीमद्भागवत महापुराण रहा है। चैतन्य सम्प्रदाय में चैतन्य महाप्रभु की पूजा राधाकृष्ण के सम्मिलित रूप मे की जाती है उसमें कृष्ण के रसराज रूप और राधा जी के महाभाव दोनों का समावेश है। वृन्दावनदास कृत 'चैतन्य भागवत' जो बगला भाषा में रचा हुआ सर्व प्रथम महाप्रभु का जीवन-काव्य है, इसी ओर संकेत करता है —

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास,
चैतन्य लीला व्यास वृन्दावनदास।

चैतन्यमत मे श्रीमद्भागवत की एकमात्र मान्यता का उद्घोष स्थान-स्थान पर किया गया है। निम्नलिखित श्लोक मे चैतन्यमत का सार आ जाता है:—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं —
रम्या काचिदुपासेना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्राग्रहो नापरः॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण एकमात्र आराध्य हैं और उनका धाम वृन्दावन है। उनकी आराधना का आदर्श ब्रज-गोपियो की उपासना है। श्रीमद्भागवत प्रमाण ग्रन्थ है और प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है।

चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत को ब्रह्मसूत्रो का सर्वोपरि भाष्य माना जाता है। ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत दोनो के रचयिता स्वय व्यास मुनि है। इनके मतानुसार व्यासमुनि ने स्वयं ही भागवत के रूप में ब्रह्मसूत्र की व्याख्या की। यही कारण है कि चैतन्य महाप्रभु ने अन्य किसी भाष्य की आवश्यकता नहीं समझी। यहाँ तक कि मध्वाचार्यकृत ब्रह्मसूत्र-भाष्य के उन अंशो को मान्यता नही दी जो किसी भी प्रकार भागवतानुसारी नही ठहरते थे। उन्ही अशो की पूर्ति के लिए चैतन्यमत के आचार्य बलदेव विद्याभूषण ने गोविन्द भाष्य की रचना की। भागवत की टीकाओ मे चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधर स्वामी की टीका को ही सर्वश्रेष्ठ माना। इसलिए इस मत के विद्वानों ने बाद में भागवत के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा वह श्रीधरीटीका के अनुकूल ही है।

चैतन्य महाप्रभु के शिक्षाष्टक शीर्षक आठ श्लोकों का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इन्ही आठ श्लोको मे चैतन्यमत का स्वरूप-ज्ञान निहित है। चैतन्य सम्प्रदाय में भागवत के अनुसार कृष्ण को परब्रह्म माना गया है तथा कृष्ण और जीव के सम्बन्ध को भक्ति कहा गया है। चैतन्यमत के अचिन्त्य भेदाभेद की व्याख्या कृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्यचरितामृत मे निम्नलिखित शब्दो में की है :—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश॥

भक्ति के क्षेत्र मे जाति-पाँति का बन्धन महाप्रभु को स्वीकार्य नही है जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है :—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।

किन्तु प्रोद्यन्निखिल पर

गोपीभर्त्तु स ।

अर्थात्—मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं हूं। मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या सन्यासी भी नहीं हूं। किन्तु मैं स्वयप्रकाश निखिल परमानन्दपूर्ण सुधासिन्धु स्वरूप गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्द के दास का भी दासानुदास हूं।

श्रीमद्भागवत की भक्ति का यही मूलतत्त्व है कि उसमें जाति-पाँति का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि चैतन्य मत के अनुयायियों ने सभी वर्ग तथा धर्म के लोगों को भक्ति की शिक्षा दी। जगन्नाथपुरी में तो आज भी सभी जातियों के लोग एक ही पंक्ति में बैठकर भगवान् का प्रसाद ग्रहण करते हैं। चैतन्यमत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके द्वारा भक्ति में हरिनाम सकीर्तन को महत्त्व प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णदास कविराज ने हरिनाम सकीर्तन को ही नवधाभक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया है :—

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति। कृष्ण-प्रेम कृष्णदिते धरे महाशक्ति ।।
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-संकीर्तन। निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन ।।

हरिनाम संकीर्तन भक्ति का अंग तो बहुत प्राचीनकाल से रहा था, परन्तु उसमे नूतन शक्ति-संचार करने का काम चैतन्यमत ने किया। भगवान् कृष्ण की लीलाओ का अष्टकालीन विवरण भी चैतन्यमत द्वारा ही प्रस्तुत किया गया। श्रीमद्भागवत मे भगवान् की नैमित्तिक लीलाओं का ही विवेचन हुआ है, नैत्यिक लीलाओं का नहीं। इसी अभाव की पूर्ति के लिए रूपगोस्वामी ने 'स्मरण-मंगल-स्तोत्र' की रचना की थी। इसी स्तोत्र के आधार पर चैतन्य-मतानुयायी कवियो ने अनेक अष्टयाम ग्रन्थों की सर्जना की। चैतन्यमत की दूसरी विशेषता भक्ति-भाव को भक्ति-रस मे परिणत करना है। इस परिणति को शास्त्रीयता प्रदान करने के लिए इस मत मे कितने ही ग्रन्थ लिखे गये। राधा-तत्त्व का भी चैतन्य सम्प्रदाय में विशेष महत्त्व है। यह तत्त्व ऐसा है, जिसका स्पष्ट उल्लेख श्रीमद्भागवत मे नहीं मिलता। संभवतः इसीलिए वृन्दावन के गोस्वामियों ने इस तत्त्व को श्रुतियो, स्मृतियों, तन्त्रों और पुराणो मे खोजने का प्रयास किया। निम्बार्क-मत के राधा-तत्त्व की खोज तथा प्रकार चैतन्य मत से भी प्राचीन है। चैतन्यमत में राधा-तत्त्व, कृष्ण-तत्त्व का भी सहायक है और दोनो में अभेद है जैसा कि चैतन्य-चरितामृत में लिखा है :—

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव। भावेर परम काष्ठा नाम महाभाव ।।
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुरानी। सर्वगुण खानि कृष्णकांता शिरोमणि ।।
कृष्ण प्रेमे भावित जार चित्तेन्द्रिय काय। कृष्ण निज शक्ति राधा क्रीड़ार सहाय ।।
राधा पूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्रेर प्रमाण ।।
राधा कृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप। लीला रस आस्वादिते धरे दुइरूप ।।

चैतन्यमत मे स्वीकृत परकीया भक्ति के सम्बन्ध मे यह प्रश्न किया जा सकता है कि वह कहाँ तक भागवत-सम्मत है? इसका उत्तर सामान्य रूप से तो वही हो सकता है जो शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को दिया था कि भगवान् सब प्रकार के दोषों से मुक्त हैं, परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि चैतन्य मत की परकीया भक्ति पर बौद्धों के सहजयान, शाक्तमत तथा सहजिया सम्प्रदाय का प्रभाव है। चैतन्यमत का साहित्य विशेष कर संस्कृत तथा बगला में ही लिखा गया है में भी इस मत के साहित्य की मात्रा कम नहीं है बहुत दिनो

तक यह समझा जाता रहा था कि ब्रजभाषा मे चैतन्यमत का साहित्य नगण्य ही है परन्तु इधर चैतन्यमत के ऐसे शताधिक कवियो की रचनाएँ मिली है जो ब्रजभाषा मे लिखी गयी हैं उनमे से अनेक बडा सरस और भक्तिरस पूर्ण है। इन स्वतन्त्र पदावलियो के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत और गीत गोविन्द के कई अनुवाद भी प्राप्त हुए है। भागवत के दशम स्कंध के आधार पर श्रीकृष्ण की विविध लीलाओ का वर्णन भी अनेक रचनाओ में हुआ है। हम यहाँ कुछ प्रमुख कवियो की रचनाओ का विवरण प्रस्तुत करते हैं —

माधवदास जगन्नाथी

श्री जगन्नाथ जी के परमभक्त और प्रायः जगन्नाथपुरी मे रहने के कारण ये माधवदास जगन्नाथी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस मत के प्रारम्भिक ब्रजभाषा कवियो मे ये प्रमुख हैं। इनका जीवन-वृत्तान्त, साहित्य-सर्जन और देहावसान का यथार्थ काल अनिश्चित है। भक्त कवि हरिराम व्यास (सं० १५६७–१६६६) के पिता सुमोखन शुक्ल को इनका शिष्य कहा जाता है। स्वयं व्यास जी के संदेहों की निवृत्ति भी इन्होंने ही की थी :—

> श्री माधवदास सरन मैं आयौ।
> ह्वौ अजान, ज्यों नारद ध्रुव सौं कृपा करी, संदेह भगायौ ॥

माधवदास जी परम भक्त और विरक्त संन्यासी थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् भक्ति शास्त्रों के ज्ञाता और अनेक ग्रंथों के रचयिता थे। संस्कृत साहित्य मे जो स्थान महर्षि द्वैपायन व्यास का है, वही चैतन्यमत के ब्रजभाषा साहित्य मे माधवदास का है। वेद विभाग कर भागवतादि अष्टदश पुराणो के रचयिता महर्षि व्यास जी की भाँति इन्होंने महाभारत, इतिहास कथासार समुच्चय जैसे अनेक विशाल ग्रन्थो को शोधकर उनके भाषानुवाद प्रस्तुत किए, जैसा कि नाभादास जी ने इनके बारे मे लिखा है :—

> पहिलैं वेद-विभाग कथित, पुरान अष्ट दस।
> भारतादि भागवत मथित उद्धार्‍यौ हरि-जस ॥
> अब सोधे सब ग्रन्थ, अर्थ भाषा विस्तार्‍यौ।
> लीला जै जैसे जैति गाय, भव पार उतारयौ ॥
> जगन्नाथ इष्ट बैराग्य सीव, करुना रस भीज्यो हियौ।
> बिनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जग कौ हित 'माधौ' कियौ ॥

(भक्तमाल, छप्पय सं० ७०)

इस समय इनकी निम्नलिखित छोटी-बड़ी पुस्तकें प्राप्य है :—

इतिहास कथासार समुच्चय का खंडित अंश, नरायन लीला, जगन्नाथ माहात्म्य, ग्वालिन झगरौ, परतीत परीच्छा, मदालसा आख्यान आदि साधारण सी रचनाएँ, अनेकों स्फुट पद तथा लोक काव्य की विविध रचनाएँ।

ये घुमक्कड़ प्रकृत्ति के थे अतः इनकी रचनाओं में कई भाषाओं और बोलियो के शब्द भी मिलते हैं। उपलब्ध रचनाओं मे राधा-कृष्ण तथा गोपियों से सम्बद्ध इनकी दो संक्षिप्त रचनाएं ग्वालिन झगरौ और परतीत परीच्छा हैं

'ग्वालिन झगरौ' से एक उदाहरण दृष्टव्य है

कृपावत भई सारदा, भई बुद्धि परगास।
झगरत आई ग्वालिनी महरि जसोधा पास॥
तुम्हारैं ई राज है॥१॥

अहो जसोदा हमन गाँम को बसिवौ हि छाड्यौ।
निकरन हमे न देत, जितै तित होतहिं आड़ौ॥
बरजि जसोधा लाड़िले, जो तुम दियो सिखाय।
कौतुम अपने लाल के, तुम देखौ जसोधा माय॥
तुम्हारैं ई राज है॥२॥

परतीत परीच्छा द्वारा राधा की परीक्षा का यह पद दृष्टव्य है:—

राधा बाधा दूर करि, साधा सिगरे काम।
आराधा श्रीकृष्ण जू, सुमिरत आठो जाम॥
× × ×
एक दिना नन्दलाल, मन मे करी जु इच्छा।
लैन राधिका पै च, लै परतीत—परीच्छा॥
× × ×
क्यों मेरी साँवल सखी, तेरो बदन बिहालौ।
काहे तें तू उनमनी, कहि मेरी आली॥
कै आवत तोहि स्रम भयो, कर चरन दबाऊँ।
कै तोहि लागी लपट है, घसि चन्दन लाऊँ॥

कुछ अन्य छोटी छोटी रचनाएँ बाल लीला, जानराय लीला, ध्यान लीला आदि है।

आनन्दघन

ब्रजभाषा साहित्य मे आनन्दघन नाम के कई कवि हुए है, जिनमें लगभग सौ-सौ वर्षो के अन्तर से विद्यमान तीन आनन्दघन प्रसिद्ध है। प्रथम चैतन्यमतानुयायी आनन्दघन १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध मे ब्रज के नन्दगाँव मे रहते थे, दूसरे जैनी आनन्दघन (महात्मा लाभानन्द जी) १७ वीं शती के उत्तरार्द्ध मे तथा सुजान प्रेमी आनन्दघन १८ वीं शती मे ब्रज के वृन्दावन में निवास करते थे। इनके वंशज खरोट और नन्दगाँव मे निवास करते है और अब भी इनके द्वारा स्थापित नन्दगाँव के मन्दिर की पूजा करते है और श्री चैतन्यदेव मे श्रद्धा रखते है।

आनन्दघन के नाम के उपलब्ध पदो में से अधिकतर सुजस प्रेमी आनन्दघन के बताये जाते हैं, परन्तु अनेक पद इनके भी हैं। इनकी कोई विशिष्ट रचना नही मिलती। श्री चैतन्य देव की वन्दना का निम्नांकित पद उनका रचा हुआ माना जाता है, जो कुछ पाठ भेद से सुजान प्रेमी घनानन्द की पदावली में भी संकलित है: —[१]

१ 'घन नन्द पृ० ४४६ प० सं० ५१४

श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलि कालीन मलीन दीन जन पावन करन परम गभीर ॥
पूरन चन्द नन्दनदन को उदै, सदा उमगन की भीर।
बोहित नाव चढाये बहु जन, प्रेम मगन करि पठये तीर ॥
भाव-तरंग अभंग-भंग गति, महा मधुर रस रूप सरीर।
निज जन रतन जान गुन राजत, बुन-हुँकार उसास समीर ॥
त्रिविध ताप तें जरे जीव जे, सीतल किये परस पद-नीर।
करुना दृष्टि-वृष्टि सो सीचे, जय-जय-जय 'आनन्द मुदीर' ॥

इनके द्वारा रचे गये कुछ पदो का गायन नन्दगाँव के मन्दिर मे भी किया जाता है।

रामराय

नाभाजी ने इन्हे सारस्वत ब्राह्मण, भक्त, विरक्त और साधुसेवी सज्जन बताया है। उनके जीवन वृत्तान्त, सम्प्रदाय आदि के बारे में कुछ नही लिखा है:—

भक्ति, ज्ञान वैराग, जोग अन्तरगति पायौ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मतसर सब त्याग्यौ ॥
× × ×
विप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि-रति करी ॥

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अन्तर्गत 'रामराय हित भगवान दास' की वार्ता से इतनी पुष्टि होती है कि ये गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक और चैतन्य मतानुयायी, आगरा के सूबेदार के दीवान भगवानदास जी के पुरोहित थे। इस वार्ता में इन्हें वल्लभ सम्प्रदायी बताया गया है, किन्तु चैतन्य मत मे उन्हे श्री नित्यानन्द जी का शिष्य और श्री चैतन्यदेव का अनुगामी माना जाता है। वृन्दावन के श्री यमुनावल्लभ जी ने रामराय जी कृत 'आदिवाणी' और 'गीत गोविन्द भाषा' का प्रकाशन किया है। वे अपने को इन्हीं रामराय जी का वशज बताते है। उनके अनुसार गीतगोविन्द कार जयदेव की १४ वीं पीढी मे रामराय जी हुए। इनके अनुज चन्द्र गोपाल जी इन्ही के प्रेरणा से गौर चरणाश्रित हुए:—

गौर-चरन की रति दई, दई दास-गति मोय।
बलिहारी ता बन्धु की, जा सम कोऊ न होय ॥

ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली', चैतन्यमतानुयायी प्रियादास कृत 'भक्तमाल टीका' चैतन्य भागवत, चैतन्य चरितामृत आदि ग्रथों मे जहाँ चैतन्य मत के भक्तों की बृहद् नामावलियाँ दी हुई है वहाँ रामराय जी का नामोल्लेख नही है। यमुनावल्लभ जी द्वारा प्रकाशित 'आदि वाणी' की भूमिका मे चैतन्यमत के गण्यमान्य विद्वान जीव गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत रामराय जी की वदना के दो श्लोक इस प्रकार दिये गये हैं—

(१) वन्दे श्री परमानन्दं भट्टाचार्यं रसालयम्।
रामरायं तथा वाणी विलासञ्चोपदेशकम् ॥ (श्री जीव गोस्वामी कृत तोषिणी')

(२) श्रीमद् गदाधर नमो, नृहरे नमस्ते।
श्री रामराय नम एव नमः स्वरूप ॥
श्री रूप सानुग नमोऽस्तु नमोस्तु तुभ्यं
नमोस्तु नमो नमस्तु श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत दास टीका)

स्वयं रामराय जी ने गीत गोविन्द भाषा और आदि वाणी के मंगलाचरण में चैतन्य महाप्रभु एवं उनके प्रमुख सहकारियों की वन्दना की है—

वन्दौं श्री गुरु गौर-पद जगमग जोति अभंग।
मिलि अनंगमंजरि सहित, एक अंग दो रंग ॥ ('गीत गोविन्द भाष' का मंगलाचरण)

मंगल जय श्री गौर किसोर।
मंगल श्री वृन्दावन-भूषन, राधा-भाव रसिक रस बोर ॥
नित्यानन्द अद्वैत गदाधर, श्री वासादि चतुर चित चोर।
मंगल महाभाव भावित तन, रूप सनातन हिये हिलोर ॥

रामराय जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और ब्रजभाषा के सर्वोत्कृष्ट वाणीकार थे। उनकी संस्कृत रचनाएँ-ब्रह्मसूत्र के आरम्भिक चार सूत्रों पर गौरविनोदिनी वृत्ति, गीता पर गौर भाष्य, स्तवपंचकम् और गोविन्द तत्त्व दीपिका कही जाती हैं। इनकी ब्रजभाषा रचनाएँ 'आदि वाणी' और 'गीत गोविन्द भाषा हैं:—

(१) आदि वाणी—चैतन्य मत के प्रथम वाणीकार होने से ही कदाचित् रामरायजी श्री राधा-माधव के सेवा विषयक १०१ सरस पदों के संकलन को 'आदि वाणी' कहा जाता है। ब्रह्मगोपाल कृत 'बारह वैष्णवन की वार्ता' में इसके रचना-काल और पद-परिमाण के बारे में यह लिखा है—

संवत पन्द्रहसौ रुचिर, सत्तर सावन मास।
भई आदि बानी सही, एक सहस पद रास ॥

परन्तु 'आदि वाणी में, एक सहस पद नहीं मिलते हैं। इसका रचना-काल भी संदिग्ध ही है।

रामरायजी के पदों की भाषा परिमार्जित और रचना-शैली प्रौढ है। इनका वर्ण्य विषय प्रिय-प्रिया का मधुर मिलन, रस-केलि, निकुंज-लीला आदि हैं—

(अ) ललित लता मन्दिर के आँगन, प्रात समै राजत पिय-प्यारी।
प्रतिम की पट पति प्रिया पै, ओढै लाल प्रिया का सारी ॥
सिथिल सरीर नखर उर अंकित, बिथुरी अलकन की छबि न्यारी।
उठत अनंग तरंगनि की द्युति, अंग-अंग रुचि मंगलकारी ॥
करत विशाखा चमर चतुर इत, उत ललिता ठाडी लिएँ झारी।
निरखत 'रामराय' दंपति छवि, नैन-चकोरी टरत न टारी ॥

(ब) मुकुट मनि चंद्रिका स्याम स्यामा बनी।
पालक अलकन लुकी, तिलक झलकन झुकी,
कमल कुंडल रुकीं, ललक भृकुटी तनी।
अधर दर कंदरी, सुघर वर सुन्दरी,
जुगल गल चँदरी, धवल हीरन खनी ॥
चटक पट केसरी, नील नव वेस री,
कनक नकबेसरी, मनिक मुक्ता मनी।
जटित कंकन करन, पगन नूपुर धरन,
मदन मन हरन 'रामराय' करि करघनी

(२) गीत गोविन्द भाषा—श्री जयदेव कृत संस्कृत गीत-गोविन्द का ब्रजभाषा के पदों और छन्दों में श्री रामरायजी ने अत्यन्त सरस, सुन्दर और सफल अनुवाद किया है। इसका रचना-काल इसकी पुष्पिका के अनुसार सं० १६२२ वैशाख मास है।[1]

पंचम सर्ग के श्याम-विरह का अनुवाद दर्शनीय है—

श्री राधे तव वियोग बनमाली।
काम सहाय बनाय मलय की, वायु बहति दुखसाली ॥१॥
विरही हिये विदारन करन, कुसुमकली किलकारी।
पीड़ा मरन समान दै रही, चंद-किरन चिनगारी ॥२॥

× × × ×

राधे-राधे नाम कोऊ तिन सन्मुख सहज बखानै।
तब सब सों तजि प्रीति पियारौ, सुनत नाहि दै कानै ॥७॥
श्री जयदेव कवीश्वर हरि के, विरह विलास उचारे।
'रामराय' जो पुन्य तिनही के प्रगट होंहि पिय प्यारे ॥८॥

सूरदास मदनमोहन

ब्रजभाषा साहित्य मे चैतन्यमत के भागवतानुसारी रससिद्ध कवियों में सूरदास मदनमोहन का विशिष्ट स्थान है; किन्तु उनका प्रामाणिक जीवन वृत्त अनुपलब्ध है। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में 'भक्तमाल', प्रियदासकृत, 'भक्ति रस बोधिनी' और नागरीदास कृत 'पद-प्रसंग-माला' के अनुसार किम्वदन्तियो पर आधृत उनका अपूर्ण जीवन-वृतान्त लिखा गया है। इनके गेय काव्य की बड़ी प्रशंसा की जाती है। अष्टछापी सूरदास के बाद इन्हीं की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। यद्यपि मध्यकालीन भक्ति साहित्य मे सूरदास नाम के कई भक्त कवियो की रचनाएँ मिलती है, कालान्तर मे अष्टछापी भक्तकवि सूरदास की व्यापक प्रसिद्धि और लोकप्रियता के कारण अन्य सूरदासों की कतिपय रचनाएँ भी नाम-छाप के परिवर्तन के साथ सूरसागर मे मिल गयी।

प्रियादास और नागरीदासजी ने जो कुछ उनके बारे मे लिखा है, उससे पता चलता है कि वे सूरध्वज ब्राह्मण थे। मुगल सम्राट् अकबर के शासन-काल में संडीला परगना के अमीन थे। वृन्दावनस्थ सनातन गोस्वामी के उपास्य ठाकुर मदनमोहनजी उनके इष्ट तथा चैतन्य महाप्रभु उनके आराध्य थे।

'एक सूरध्वज ब्राह्मण गृहस्थ उनके नेत्र तो आछे है, परन्तु नाम सूरदासजी, पातसाही एक परगना के दिवान हे।..........एई सूरध्वज सूरदास गृहस्थ को त्याग करि वृन्दावन आय बैठे। ठाकुर श्री मदनमोहन जी के सेवक आसक्तजान हे।'

(नागरीदास कृत 'पद-प्रसंग-माला')

---

१ संवत सोलहसौ बाईस रितु बसन्त सरसाई।
मास [illegible] माधव की [illegible] कीना गाई।

इनके विषय म प्रसिद्ध है कि उन्होंने सरकारी मालगुजारी का तेरह लाख रुपया साधु-सेवा में व्यय कर दिया और सरकारी खजाने में दाखिल करते समय पेटियों में कंकड-पत्थर भर दिया और इस आशय का एक पत्र भी रख दिया—

तेरह लाख संडीले उपजे, सब साधुन मिल गटके।
सूरदास मदनमोहन, वृन्दावन को सटके ॥

स्वयं विरक्त होकर वृन्दावन रहने लगे। यह घटना कम से कम तत्कालीन भक्ति सम्प्रदायों के व्यापक प्रभाव का परिचय देती है।

सूरदास मदनमोहन ने किसी ग्रन्थ की रचना न कर स्फुट पद ही रचे थे। कहा जाता है कि उन्होंने भागवत दशमस्कन्ध का ब्रजभाषा मे अनुवाद भी किया था, जिसका कुछ अंश कांकरौली विद्या विभाग मे है। उन्होने शृंगार-भक्ति के अनेक सरस और मधुर पदो की रचना की है, जिनमे उनकी नाम-छाप के साथ उनके उपास्य ठाकुर मदनमोहन जी का नाम भी सम्मिलित है। इनके पदों में राधा-कृष्ण की केलि-क्रीडाओ, दान, मान, अनुराग, बसत, होली फूलडोल आदि का सरस और मनोरम वर्णन हुआ है, कुछ पद बाललीला के भी मिलते है इनमे सगीतात्मकता अधिक होने से ये कीर्तन-मंडलियो और सगीत गोष्ठियों मे प्रिय है और विभिन्न सम्प्रदायों की कीर्तन-पोथियो मे सकलित हैं। इनके कतिपय पद नीचे उद्धृत हैं—

(क) झनक-मनक चलै तनक से छंगना।
न्हैनी-न्हैनी सोहति दूध की दतियाँ,
किलकि-किलकि लागै छतियाँ रज झारत री झगना ॥
गोद लिएँ हलराय खिलावै,
ग्रीवा लावै, कंठ सोहैं सुभ बघना,
'सूरदास मदनमोहन' संग लागी-लागी डोलें,
लाड़िलौ घुटुरुवन रेंगत री अँगना ॥

(ख) तैं कहूँ दई ही दिखाई, तब तैं स्याम भूल्यौ री बन कौ जाइबौ।
ग्वालन संग चले आत, चौंकि-चौंकि चकित, थकित भए, उत पग न परत इत आइबौ।
जब हरि इहि मारग ह्वै निकसे, ता छिनु री तेरो चितइबौ।
आधौ-मुख, आधौ कर-पल्लव बीरी गहैं लालन दसन खडि कैसो खाइबौ॥
अजहूँ निकसि, दरस दै री सुखनिधि, छाँड़ि दै री बातन बनाइबौ।
'सूरदास मदनमोहन' पिय तैं किए प्रीति बस, अब छाँडहि नाँच नँचाइबौ।

(ग) कबहुँ हरषि, कबहू डरपति सी, कबहु क्रोध-आँसू ढारति,
स्याम! समुझौ जू, यह कौन भाव।
नहीं मान, अभिमान नही और नहिं हठ, नहिं रिस,
रस नही तुम ही जानौ वाकौ सुभाव॥

बहुत बर मैं ही जु मनाइ मनक मैं रुसौ और कछु
तब मेरे जिय उपज्यौ आन उपाय
'सूरदास मदनमोहन' प्रभु आपुन ही चलियै, सोच कहा ?
सोई खेल खेलिए, जैसोई परै दाव ।।

गदाधर भट्ट

चैतन्य मतावलम्बी व्रजभाषा के अन्य कवियों की भाँति ही नाभाजी, ध्रुवदास, नागरीदास, भगवत रसिक प्रभृति भक्त-कवियों के उल्लेखों से गदाधर भट्ट जी के जीवन-वृतान्त पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने भी उनके सम्बन्ध में बहुत कम लिखा है, उल्लिखित काल-क्रम भी भ्रमात्मक ही है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथकार उन्हें चैतन्य महाप्रभु के समकालीन, उनके दीक्षा प्राप्त शिष्य और उन्हें भागवत की कथा सुनाने वाले मानते हैं। वास्तविकता यह है कि महाप्रभु को भागवत सुनाने वाले गदाधर पंडित गोस्वामी थे न कि गदाधर भट्ट। इस भ्रम का मूल दोनों का नाम साम्य ही है। गदाधर भट्टजी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे जो वृन्दावन की भक्त मण्डली को भागवत की कथा सुनाया करते थे। इन्हें महाप्रभु से साक्षात्कार का सुयोग नहीं मिला क्योंकि जब वे वृन्दावन गये थे, उससे पूर्व ही चैतन्यदेव का तिरोधान हो चुका था। ये जीव गोस्वामी जी की प्रेरणा से वृन्दावन आकर रघुनाथ भट्ट के शिष्य हुए थे। जीव गोस्वामी जी के वृन्दावन आने का समय सं० १५९८ और रघुनाथ भट्ट के देहावसान का समय सं० १६२० बताया गया है। इसी बीच वे किसी समय वृन्दावन आये होंगे। वृन्दावन आगमन से पूर्व उन्हें संस्कृत और व्रजभाषा काव्य में निपुणता और भक्ति-मार्ग में प्रवीणता प्राप्त हो चुकी थी। इनकी वंश-परम्परा की विद्यमानता से यह निश्चित है कि ये विवाहित और गृहस्थ थे। सुप्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'प्रेम पत्तन' के प्रणेता रसिकोत्तम और व्रजभाषा के विख्यात वाणीकार वल्लभ रसिक इनके पुत्र कहे जाते हैं। इनके प्रारम्भिक जीवन के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी रचनाओं से निश्चित है कि इन्होंने संस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तथा श्रीमद्भागवत और भक्तिमार्गीय ग्रंथों का अनुशीलन किया था। गृहस्थ धर्म का अनासक्ति भाव से पालन करते हुए ये आश्रमोचित धर्म में संलग्न थे।

व्रजभाषा साहित्य में सूरदास की ही भाँति गदाधर नाम के कितने ही भक्त और कवि मिलते हैं। फलत एक की जीवनी व रचनाओं का समावेश दूसरे में सरलता से हो जाता है। गदाधर पंडित गोस्वामी के जीवन वृत्त को लेकर इतिहासकारों ने गदाधर भट्टजी का काल-निर्धारण गलत कर दिया। अन्य कवियों में गदाधर मिश्र व्रजवासी और गदाधरदास द्विवेदी वल्लभ सम्प्रदायी हैं प्रथम के कुछ कीर्तन पद हैं, दूसरे का 'सम्प्रदाय प्रदीप' ग्रंथ। बाबा कृष्णदास ने 'गदाधर भट्ट की वाणी' प्रकाशित की है। इन्होंने कुछ स्फुट पदों की रचना की, परन्तु इनमें उनकी काव्य-प्रतिभा प्रकट हो जाती है संस्कृत कोमल कांत पदावली के साथ व्रजभाषा की मधुर शब्दावली का सम्मिश्रण इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इनकी वाणी में माधुर्य भक्ति और व्रजरस का समुचित परिपाक हुआ है। इनके एक दो पद नीचे उद्धृत हैं :—

(१) जयति श्री राधिके, सकल-सुख-साधिके,
तरुन-मनि नित्य नव तन किसोरी

कृष्ण-तन लीन मन रूप की चातकी
कृष्ण-मुख हिम-किरन की चकोरी ।
कृष्ण-दृग-भृङ्ग बिस्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण-दृग-मृगज-बंधन सुडोरी ।
कृष्ण-अनुराग-मकरंद की मधुकरी,
कृष्ण-गुण-गान रससिंधु बोरी ।।
बिमुख पर चित्त तें चित्त जाको सदा,
करति निज नाह को चित्त चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनैं,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी ।।

(२) झूलति नागरि नागर लाल ।
मंद-मंद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल ।।
फरहरात पटपीत नील के, अंचल चंचल चाल ।
मनहुँ परस्पर उमगि ध्यान छबि, प्रकट भई तिहिं काल ।।
सिलसिलात अति प्रिया सीस तें, लटकत बेनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट बर्हि भ्रम बस तहँ, ब्याली विकल बिहाल ।।
मल्ली-माल प्रिया की उरझी, पिय तुलसीदल माल ।
जनु सुरसरि रवि-तनया मिलिकैं सोभित स्रेनि मराल ।।
स्यामल गौर परस्पर प्रति छबि, सोभा बिसद बिसाल ।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुँवरि मन, परयौ सुरस जंजाल ।।

चन्द्रगोपाल

गत पृष्ठों में हम कह आये हैं कि चन्द्रगोपाल अपने अग्रज रामराय जी की प्रेरणा से गौरांग-चरणों मे आस्था रखने लगे और चैतन्य मतानुयायी हो गये जिसके लिए उन्होंने अपने अग्रज का आभार प्रकट किया है :—

दोहा — अब बन्दौं दादा-चरन, रामराय जिन नाम ।
कृपा-भाव रस-दान करि, समुझायौ जहि ग्राम ।।
गौर-चरन की रति दई, दई दास-गति मोय ।
बलिहारी ता बधु की, जा सम कोऊ न होय ।।

'भक्तमाल', प्रियादास जी की 'भक्तमाल-टीका' तथा उस काल की भक्त नामावलियों और मिश्रबन्धु विनोद, 'ब्रजमाधुरीसार' तथा हिन्दी साहित्य के विविध इतिहास ग्रन्थों में भी उनका नामोल्लेख नहीं है । इस प्रकार ये हिन्दी जगत के लिए एकदम अपरिचित भक्त-कवि हैं । रामराय जी की भाँति ही इनका जीवन वृत्तान्त और रचनाओं का परिचय वृन्दावन निवासी श्री यमुनावल्लभ जी (जिनका उल्लेख गत पृष्ठों में हो चुका है और जो स्वयं को गीतगोविन्दकार जयदेव के वंशज इन्हीं चन्द्रगोपाल जी की वंश परम्परा में मानते हैं ।)

की सामग्री से ही मिलता है। ये अवस्था मे रामराय जी मे १२ वर्ष छोटे थे रामनवमी को इनका जन्म स० १५५२ मे लाहौर मे हुआ। प्रभुदयाल मीतल इनका जन्म स० १५७२ वि० के पूर्व नही मानते। वृन्दावन बस जाने पर रामराय जी ने इन्हे भी वहा बुला लिया। वे अपने उपास्य श्री राधामाधव जी के विग्रह और अपनी पत्नी सहित वृन्दावन आ गये। इनके पुत्र राधिकानाथ तथा शिष्य रसिकमोहनराय तथा अन्य वंशज ब्रजभाषा के बड़े अच्छे कवि हुए हैं।

रामराय जी की भाँति ही ये भी संस्कृत के विद्वान और ब्रजभाषा के बहुत अच्छे भागवतानुसारी कवि थे। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैः—

संस्कृत रचनाएँः—(१) श्री राधा-माधव भाष्य (२) गायत्री भाष्य (३) श्रीराधा माधवाष्टक है। श्री राधामाधव भाष्य ब्रह्मसूत्र के उन आरम्भिक ४ सूत्रों का भाष्य है, जिन पर रामराय जी ने 'वृत्ति' लिखी थी।

ब्रजभाषा रचनाएं :—(१) चन्द्र चौरासी (२) अष्टयाम सेवा सुधा (३) गौरांग अष्टयाम (४) ऋतु-विहार (५) राधा-विरहये सभी रचनाएँ सरस भावपूर्ण और ब्रज-भाषा की कोमल-कांत पदावली युक्त हैं।

(अ) चन्द्र चौरासीः—श्री हितहरिवंश जी की 'हित चौरासी' के आधार पर 'चन्द्र चौराशी' नाम रखा गया प्रतीत होता है। इसमे सिद्धान्त, उत्सव और नित्य सेवा सम्बन्धी ८४ पद हैं और प्रत्येक के साथ एक दोहा लगा हुआ है।

जैसे—

दोहा—कितने-कितने रस लिये, कौन कौन सी कुंज।
बतरावत आवत अली, गली-गली छवि पुंज ॥

पद—अरी अब कौन कुंज के माही।
विलसत गौर किसोर चोर चित, लियें दिये गलबाही ॥
बतरावत आवत जो पूछत, सो बतात जब नाही।
अपनी-अपनी बातन भूली, एक तान चित लाही ॥
मेला मच्यौ डगर मे दीसत, कोनु दरसन हित जाही।
श्री प्रभु 'चन्द्र' कलिंद-सुता की, छटा छई परछाही।

(आ) अष्टयाम सेवा-सुधा—

इसमें ३५ पद हैं, एक उदाहरण दिया जाता है—

श्री राधा-माधव मुसिक्यात।
परम सरस सुभ सुरति विजय, जुत मानत मोद प्रभात।
समकन बिंदु वदन पर सोहत, प्रविचल भूषन गात ॥
अलक कुटिल मुख पंकज ऊपर मानहु अलि बलि जात
श्री प्रभु 'चन्द्रगोपाल' स्वामिनी नैनन मे हरसात।

(इ) गौरागण अष्टयाम--

यथा—

[स्नान] राग विलावल

करहु हे गौर चन्द स्नान।
सीतल जल निर्मल सों सुन्दर सर्वस कृपा-निधान।
अतर गुलाब आव सो सुखकर, परम रम्य सुरमान॥
श्री नित्यानन्द महाप्रभु सग मिल, मुदित प्रेम धीमान।
श्री प्रभु 'चन्द्रगोपाल' सची-सुत, निज जन-जीवन-प्रान॥

(ई) ऋतु विहार—ऋतु बिहार मे षट ऋतुओ के बिहार का वर्णन किया गया है:-

[बसत]

श्री राधा-माधव जुगल, प्रेम बिहार निहार।
सखी सहेली कुज मे, करत रहत बलिहार॥
करत रहत बलिहार, निरखि कुसुमाकर अनुचर।
श्री राधा सुकुमार, स्याम सुन्दर सेवन कर॥

× × ×

नवल नेह जोरी कियौ, नव उत्सव अनुराग जस।
श्री प्रभु 'चन्द्र' मिलाप नव बसत ऋतु प्रियावस॥१॥

(उ) श्री राधा विरहः—मे एक सौ अरिल्ल छन्दो में राधा-बिरह वर्णित है—

'चन्द्र' गुसाई करी, अरिल्लै एक सौ।
मुजरा मुहरा मिल वो, तिनकौ एक सौ॥

चैतन्य मत के व्रज भाषा साहित्य की भागवतानुसारी काव्यधारा श्री रामराय जी के बारह और श्री चन्द्रगोपाल जी के ४ शिष्यों द्वारा प्रवाहित होती रही, इनमे भी रामराय जी के दो प्रमुख शिष्य भगवानदास और राधिकानाथ तथा चन्द्रगोपाल जी के शिष्य रसिकमोहन-राय की त्रिवेणी द्वारा इसका पावन पुनीत तीर्थराज बना। एक प्रचलित छन्द के अनुसार रामराय जी के १२ शिष्य क्रमशः इस प्रकार थे—

भक्ति भगवानदास, ज्ञान को गरीबदास[२]
बाँके वैराग विष्णुदास[३] के दिखाने है।
जोग कों जुगलदास[४], अन्तरगति राधानाथ[५]
काम कों किसोर[६] क्रोध केशव को माने है॥
मद को मनोहर[८], लोभ लाखादास[९], मोह मधु[१०],
मत्सर हरिदास[११] त्याग तीरथ[१२] पिछाने है।
क्षमा तत्त्व कीर्तन सुख
या विधि सो द्वादस गुरु सग लिपटाने है।

राधरमण परिकर के इन सोलह भक्त कवियों का ब्रजभाषा में विशाल साहित्य प्राप्त होता है। भागवत के सामान्य तत्त्वों के विवेचन के अतिरिक्त इनकी रचनाओं में वृन्दावन महिमा, रूप माधुरी प्रेम-निरूपण आदि का भी बड़ा सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। चैतन्य महाप्रभु की प्रशस्ति भी इन भक्त कवियों का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है।

श्री भगवत मुदित (सत्रहवीं शती)

चैतन्य मतावलम्बी ब्रजभाषा के पिछले खेवे के कवियों में आगरा निवासी प्रसिद्ध भावुक भक्त माधव मुदित जी के सुपुत्र भगवत मुदित जी हुए हैं। राजकीय कर्मचारी होते हुए भी भगवत मुदित उच्च कोटि के भक्त थे। नाभादास जी ने इनके बारे में इस प्रकार लिखा है—

> कुंज विहारी-केलि सदा अभ्यंतर भासैं।
> दम्पति सहज सनेह, प्रीति परिमिति परकासैं॥
> अनन्य भजन रस रीति, पुष्टि मारग करि देखी।
> विधि-निषेध बल त्यागि, पागि रति हृदय विसेखी॥
> माधव-सुत सम्मत रसिक, तिलक दाम धरि सेव लिय।
> भगवत मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय॥

चैतन्य मतावलम्बी होते हुए भी हित हरिवंश जी और उनके राधावल्लभीय सिद्धांत के प्रति उनकी निष्ठा थी। इसीलिए चैतन्यदेव की वन्दना के उपरांत उन्होंने हितहरिवंश के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है—

> प्रनवौं श्री चैतन्यवर, नित्यानन्द सरूप।
> श्री हरिवंस प्रतापबल, बरनौं कथा अनूप॥
>
> (रसिक अनन्य माल)

इनकी असंदिग्ध रचनाएँ दो हैं,—

(१) वृन्दावन शतक टीका।

(२) रसिक अनन्य माल।

वृन्दावन शतक की टीका प्रबोधानन्द सरस्वती कृत 'श्री वृन्दावन महिमामृत' के एक शतक का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है, जिसकी रचना चैत्र मास सं० १७०७ में हुई।

चैतन्य सम्प्रदाय में हरिनाम संकीर्तन का आधार श्रीमद्भागवत है। मुदित जी ने भी हरिकीर्तन को महत्व दिया है यद्यपि नाम महात्म्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं है:—

> श्री कृष्ण चैतन्य जय-जय विहारी॥
> नागरी रूप-गुन आगरी त्रिविमदै भागरी भक्ति कौ दयाकारी।
> भजन हौ अगम, सो सुगम कियौ सहज ही श्री राधाकांत कौ हित हियारी॥
> 'मुदित भगवत' रसवन जे रसिक जन, चरन-रज रहसि कै सीस धारी।
> कियौ उद्धार पै दया अनुसार तें. श्री कृष्ण चैतन्य जय-जय विहारी॥

माधव की केलि अनुराग का वर्णन मुदित जी ने बहुत सुन्दर किया है, जिसमें रूप माधुरी का समाहार हो जाता है

अति स्निग्ध घनस्याम काम कोटिकन कोटि छवि पावै
गौर माधुरी निरखि दीठि, उपमा नैंकहु नहि आवै ।।
ए किसोर चित-चोर मत्त जोबन, जोबन रंग भीने ।
घूमत झूमत नैंन बैंन मन, मैनहु आनन्द दीने ।।
'श्री भगवत' केलि अनुराग मे, मत्त मगन दोऊ रहत बन ।
नहि वरनि सकति कोऊ सारदा, आस्वादन करि रहसि मन ।।

श्रीमद्भागवत मे लीला-गान के महत्व के साथ ही साथ लीला स्थलों, तथा माध्यम का महत्व भी अनल्प हैं। श्री वृन्दावन, 'कालिंदी-कूल-कदम्ब की डारन' और वेणु का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भगवत मुदित जी की इस टीका मे वृन्दाविपिन तथा उन रमणीक स्थलों का भागवतानुसारी वर्णन हुआ है—

जयति बन फूल-फल, मूल-बल्ली बिसद, कुंज रस-पुंज बापी-तड़ागहि ।
ठौर सिरमौर जहाँ खग कुलाहल करैं, मत्त सारंग-सिखी-अलि परागहि ।।

× × ×

देखि दृग रूप छवि-भूप वृन्दाविपिन, स्रवन सुनि रहसि रसवन विहारी ।
गंध लै घ्रान अवधान ह्वै चरन चल, केलि-कौतुक जहाँ प्रेमचारी ।।
जीभ गुन गाइ हित चाह वृन्दाविपिन, रहे लपटाय जहाँ छवि अहारी ।
प्रेम रस धाम अभिराम मे लोट तू, हीत रज परसि तैं दरस प्यारी ।।

इस वृन्दाविपिन का ही प्रभाव है जो ऊसर मन मे भी हरि-भक्ति के बीज उगा देता है। इन्होंने कुछ स्फुट पदो मे प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं का सरस वर्णन किया है:—

रसिक सो बाते लाड़-लड़ौही ।
हँसि-हँसि जात समात हिये मे, फिर चितवत पिय सौही ।।
करत विहार उदार सकल अंग, प्रेम विवस लल चौही ।
'भगवत मुदित' लड़ावत छिन-छिन, छैल दसा गहि गौहीं ।।

माधुरीजी (सत्रहवीं शताब्दी)

यथा नाम तथा गुण को चरितार्थ करते हुए, चैतन्य मतानुयायी ब्रजभाषा कवियो मे माधवदास माधुरी जी अपने काव्य माधुर्य के लिए अग्रगण्य है। इनकी प्रकाशित रचनाएँ उत्कंठा माधुरी, वंशीवट माधुरी, केलिमाधुरी, वृन्दावन माधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी, होरीमाधुरी और प्रिया जी की बधाई हैं। इनमे एक वाणीकार की आत्मा साकार हो उठी है। अन्य गोस्वामियो—रूप, सनातन और रघुनाथदास प्रभृति की उक्तियो का भी इन्होने प्रचुरता से प्रयोग किया है। फलतः इनमे सरसता और भाव गाम्भीर्य है। समस्त रचनाओं मे इन्होंने गौराग महाप्रभु, रूप और सनातन गोस्वामी की वंदना की है। रूप गोस्वामी जी का उल्लेख उन्होंने वर्तमान कालीन क्रिया मे किया हैं इसीलिए कतिपय विद्वान इनको उनका शिष्य और चैतन्यमत का सबसे पुराना कवि मान बैठे परन्तु हम देखते हैं कि

चतन्य मत की भावना के अनुसार रूप गोस्वामी जी राधिका जी की अंतरंग सेविका रूप मंजरी के अवतार थे। वे सदैव उसी रूप में राधिका जी की सेवा में उपस्थित रहते हैं। यही भावना शायद उनके लिए इनके द्वारा वर्तमान काल की क्रिया प्रयोग करने के मूल में रही होगी।

उत्कंठा माधुरी—इसमें गोपियों का तीव्र अनुराग, असह्य विरह-वेदना और मिलनोत्कंठा का विशद चित्रण ३ कवित्त और २०३ दोहा छन्दों में हुआ है। इसका आधार रघुनाथ गोस्वामी कृत 'विलाप कुसुमांजलि' ग्रन्थ ज्ञात होता है। भक्त-हृदय की भावुकता इसमें सजीव हो उठी है :—

जा कारन छोड़ी सबै, लोक-वेद-कुल कानि।
सो कबहूँ नहि भूलि कैं, देन दिखाई आनि॥

× × ×

ऊरध स्वाँस समीर सों, सीतल ह्वै गई देह।
तन-मन डूबी जात है, इन नैनन के मेह॥

× × ×

कीये कों सब करत हैं, दीये को सब देत।
अनकीये को कीजियै, यहै प्रेम को हेत॥

वंशीवट माधुरी—प्रकृति-चित्रण, प्रिया-प्रियतम की सरस मनुहारों और संयोग शृङ्गार का अति सुन्दर चित्रण हुआ है इसमें २६ कवित्त, २२० दोहे ५ सवैया, १४ रोला, ३२ चौपाई और १ सोरठा छन्द है। छन्दों की यह विविधता इनके विशद छंद-शास्त्र के ज्ञान और कवित्व-कौशल की परिचायक है।

मधु ऋतु आगम जानि, बिपिन मिलि विहरत दोऊ।
एक बैस गुन-रूप, एक सम घटिन न कोऊ॥
ललितादिक सब सखी-सहेली परम सुहाई।
नवल माधुरी संग, सदा सहचरि सुखदाई॥
अति आरत सों अरस-परस, अंसन भुज दीये।
उमगात उर भरन, रूप-माधुरि रस पीयें॥

× × ×

फूलि रही नव लता, देखि लागत मन लोभा।
थकित रहे है नैन, देखि वृन्दावन सोभा॥

रास-लीला की एक झाँकी दर्शनीय है—

(१) माधुरी की रास सब सोभा को निवास जहाँ,
खेलत रसीले रास मंडल बनित री।
नूपुर कंकन कंठमाल कंठ सोभित है,
किंकिनी मुकुट कलि कूजति लजित री।

मृकुटी विलास मृदु पद न्यास नृत्य लास
वदन विकास कोटि मदन दलित री।
मुरली की धुनि मद-मंद गति बाजति है,
ताके अनुसार चारु लोचन चलत री ॥

(२) अपने-अपने कर जोर जुरि-जुरि ठाडी भईं,
चहुँ ओर मानों घन घेरो आय दामिनी ॥
रूप-गुन गान रस एक-एक तें सरस,
निर्तत सकल नाना भाइन सों भामिनी।
रस सीम रास सीम परम विलास सीम,
राजै रास मडल मे माधुरी की स्वामिनी ॥

श्री वल्लभ रसिक (सत्रहवीं शती उत्तरार्द्ध)

अपनी रचना की सात्विक मादकता से भक्त जनों को रसमत्त बना देने वाले ब्रजभाषा के भक्त कवियो मे वल्लभ रसिक जी अपनी सरस और अलकृत शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध सस्कृत काव्य 'प्रेमपत्तन' के रचयिता श्री रसिकोत्तसने इन्हे अपना अनुज स्वीकार किया है 'वल्लभरसिकोमदनुज'। ये दाक्षिणात्य तैलङ्ग ब्राह्मण तथा चैतन्यमत के भागवतानुसारी ब्रजभाषा के ख्याति प्राप्त कवि श्री गदाधर भट्ट जी की वंश-परम्परा मे हुए। कुछ लोग रसिकोत्तस और वल्लभ रसिक जी को गदाधर भट्टजी के पुत्र मानते है। परन्तु काल-क्रम से यह मान्यता उचित नही पड़ती। भट्ट जी और उनके वंशज संस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के साथ ही अपने इष्टाराध्य की जन्मभूमि की भाषा (ब्रजभाषा) के अनुरागी थे। वल्लभ रसिक जी की रचनाओं में लालित्य है, लकार का अत्याधिक प्रयोग और अनुप्रासों की मधुर छटा और गेयता दर्शनीय है। उन्होने संयोग शृङ्गार और मधुरा भक्ति का ही वर्णन किया है। वे स्वयं ही अपनी वाणी को राधा-कृष्ण की सहचरी और उनके प्रेमासव मे सनी हुई बताते हैं।

वल्लभ रसिक' सहचरी बानी। जुगल लगन आसव सो सानी ॥

वर्षा ऋतु में झूलनोत्सव का एक पद—

आज दोऊ झूलत रति-रस मानें।
ठाडे मचकें लचकि, तरुनि के गहि फल-फूलन आनें ॥
सूहे पर पहिरे हैं पटुली बैठे सामल-गोरी।
अलनि रंगीली तिय पद अँगुली पिय डोरी सों जोरी ॥
स्याम काम बस झूलि-झूलि पग, झूलनि झुलनि बढाहीं।
कामिनि चरन नामरस लुटि, अलि काम लूटि मचि जाहीं ॥
जीवन मधि जोबन मद झूलए, झूलनि फंदानि जानें।
'वल्लभ रसिक' सखी कै नैना, एही झूलनि झुलावे ॥

होली

श्री नवल बधू रंग-भीनी प्रीतम संग खेलें।
झूमि-झूमि रस तानन मारें रीझई छैल नवेलें

लाल रँगीली पिचकनि रंग भरि भरि उरजनि ऊपर मेलं ।
मुरि-मुरि बदन दुरावनि में मन-भावन को रस झेलं ।।
मटकति धरति चरन धरनी पर, लटकत हार हमेलं ।
प्रफुलित नव बेली सी लह लहैं, झेली अलि अलबेलं ।।
अंचल मवि चंचल चख अंचल, मैन-सैन को पेलं ।
'बल्लभ रसिक' पिय घुमडि गुलाल मे, नवघन अंक सकेलं ।

—

पूरन ससि-मंडल की किरनें, मनि-मंडल पर छाई ।
चमकि-चमकि चहुँ दिसि-दिसि पुलननि, बन चाँदनी बिछाई ।

× × × ×

झमकि चली सँग बाल, हाल करतालनि लै-लै गोरी ।
लाई गति मृदग उपजाई झाई बन घन घोरी ।।
थेई-थेई तत्तथेई थेई, थेई धुनि लै जोरी ।
'बल्लभ रसिक' बिहारी प्यारी, प्यारी तान झकोरी ।।

की माँझ— -

भरि गुलाब-जल विमल सरोवर, दंपति केलि मचाई ।।
फूली अमल कमल-नैनो अलि पंकज पाँति डुलाई ।।
गहि-गहि कलस तरंगनि, बदलत डूबन उद्धरनि लाई ।
'बल्लभ-रसिक' अंग-अंगनि तें, निज-निज छवि दरसाई ।।

× × × ×

लै-लै डुबकी अन्तर सुभ की, लुभकी परसनि भावें ।
लपटनि मे कपटनि भजि चोकनि, नोकनि नैन चलावे ।।
सरस हँसी बनसी रस हिलगी, लगी मीन जिम आवें ।
'बल्लभ रसिक' रसनि तन-मन मनि, निकसन मनहिं न ल्यावे ।

भ 'रसजानि' (अठारहवीं शती सं० १७७० लगभग)

...ुवदास जी 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के निकट आत्म... उन्ही के सत्संग से इन्हें काव्यतत्व और भक्ति रस का बोध हुआ... रसजानि' नाम से भूषित किया.—

श्री प्रियादास रस-रासि की, पौत्र वैष्णवदास ।
ताही को 'रसजानि' कै, कीनो नाम प्रकास ।।
श्री हरि जीवन गुरु-कृपा, पाय सोई 'रसजानि ।
श्री भागवत महात्म्य की, भाषा करी बखानि ।।

(भागवत महात...

...' नाम से निम्नलिखित ९ रचनाएँ प्रचलित हैं:—

...) भक्तमाल महात्म्य (२) भक्तमाल प्रसंग (३) भक्तमाल रस... ...ल टिप्पणी (५) भक्तमाल की उरवसी टीका (६) भागवत भाषा... ...षा (८) गीत गोविन्द भाषा और (९) भक्ति रत्नावली भाषा ।

ऐसी प्रतीत होता है कि भक्तमाल प्रसग भक्तमाल रसबोधिनी टीका और भक्तमाल टिप्पणी एक ही रचना के पृथक पृथक नाम है और यह रचना निम्बार्क सम्प्रदायी वैष्णवदास जी की कृति है, 'रसजानि' की नही। भागवत महात्म्य-भाषा कोई अलग ग्रन्थ नहीं अपितु 'भागवत भाषा' का ही अंश है। वास्तव में इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ दो ही हैं :—(१) भागवत भाषा (२) गीत गोविन्द भाषा। भक्तमाल महात्म्य और भक्त उरवसी प्रियादास जी की भक्तमाल की टीका पर टिप्पणी के रूप मे है।

इन्होने सम्पूर्ण भागवत का सरल ब्रजभाषा अनुवाद दोहा चौपाई छन्दो मे किया जिसमे कुल छन्द संख्या १५ हजार के लगभग है।इ सकी पूर्ति सं० १८०७ की ज्येष्ठ कृ० ६ मंगलवार को हुई।

संवत अष्टादस सन सात। जेठ वदी छट मगल गात॥

चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा के कवियों की शृङ्खला हमें आज तक प्राप्त होती हैं। अधिकांश रचनाएँ चैतन्य महाप्रभु की प्रशस्ति में लिखा गयी हैं और कुछ भगवान् कृष्ण की लीलाओ के आधार पर। चैतन्य मत के भक्तों ने 'ब्रजबुलि' मे भी कुछ रचनाएँ की हैं। 'ब्रजबुलि' ब्रजभाषा, बगला और मैथिली का सम्मिश्रण है। चैतन्यमत के सम्पूर्ण साहित्य का प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत ही रहा है।

भागवत में जिन विशिष्ट तत्त्वों का विवेचन हुआ है, उन्हीं का विस्तार ब्रजभाषा के भक्तकवियों ने किया है। कृष्ण की रूप-माधुरी और लीलाओं को लेकर इन कवियो ने अपनी कल्पना से अनेक चित्र प्रस्तुत किए है। भक्ति के विभिन्न रूपो और तत्त्वो का विवेचन भी उनकी रचनाओं मे हुआ है। भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा मे सबसे अधिक और प्राणवान् साहित्य की सर्जना बल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने की है। वास्तव में बल्लभ सम्प्रदाय का धर्म-क्षेत्र और कार्य-क्षेत्र प्रधान रूप से ब्रज ही रहा है। यही कारण है कि आज भी ब्रजक्षेत्र के गाँव-गाँव मे बल्लभ सम्प्रदाय का साहित्य बिखरा पड़ा है। हिन्दी के परवर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य को भी इससे बड़ी प्रेरणा मिली। इस सम्प्रदाय के अधिकाश ब्रजभाषा कवियों की एक यही विशेषता थी कि उनकी मातृभाषा ब्रजभाषा थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओं मे ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप मिलता हैं, साथ ही साथ उनकी रचनाओं में ब्रजक्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यक परम्पराओ का भी यथोचित सन्निवेश है। पुष्टि सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत का सविस्तर विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे। यहाँ उन भक्त कवियों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है जो सम्प्रदाय मुक्त थे परन्तु जिन पर श्रीमद्भागवत का साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से प्रभाव पड़ा। मध्ययुग में भक्ति के स्वर को प्रेरणा देने वाला मुख्य ग्रथ श्रीमद्भागवत ही था। यही कारण है कि देश की सम्पूर्ण भाषाओं के भक्ति साहित्य मे भागवत का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता हैं। जो कृष्ण-भक्त-कवि किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नही भी थे उन्होंने भी भक्ति का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया। जहाँ तक श्री मद्भागवत के सामान्य तत्त्वों का सम्बन्ध है, वे प्राय; सभी-भक्तों के समान है। सभी की रचनाओ में प्रेम तत्त्व का प्राधान्य है। इस युग में भागवत के अनेक अनुवाद हुए तथा के प्रमुख स्थलों को लेकर अनेक रचनाएँ हुई। कुछ कवियों के उदाहरण आगे दिये जाते हैं

मीराबाई (सं० १५५५—१६०३ वि०)

मीरांबाई महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३५–१५८७), महाप्रभु चैतन्य (सं० १५४२–१५९०), श्री हित हरिवंश (सं० १५५९–१६१०), श्री हरिराम व्यास (सं० १५६७–१६३५) आदि समर्थ वैष्णवाचार्यों और सगुण भक्तों की सम सामयिक मानी जाती है। उनकी भक्ति का आधार भी श्रीमद्भागवत था। यद्यपि मीरा में हमें निर्गुण और निराकार के ज्ञान की निष्ठा के दर्शन भी होते हैं परन्तु सगुण और साकार की माधुर्य-भक्ति की तन्मयी अवस्था का दर्शन कराने वाले उनके पद ही उनके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। युग चेतना के अनुसार व्यक्तित्व प्रभावित होता ही है। श्रीमद्भागवत में परम भगवद्भक्त की जिस गलदश्रु भावुकता भगवद् विरह व्याकुलता का अंकन हुआ है, वही दशा अपनी चरमसीमा में मीरा में मिलती है।

हरिनाम-सकीर्तन, सत्संग, भगवद्गुणगान आदि के सम्बन्ध में मीराबाई के विचार भागवतानुसार ही हे—

माई म्हा गोविन्द गुण गास्यां।
चरणाम्रित रो नेम सकारे नित उठ दरसण जास्यां॥
हरि मंदिर मां निरत करावां घूघर्‌या घमकास्यां।
स्याम नाम रा झांझ चलास्यां भौसागर तर जास्यां॥
यो ससार बीड़ रो काटो, गैल प्रीतम अटकास्यां।
मीरां रे प्रभु गिरधर नागर गुनगांवा सुख पास्यां॥

पूर्ववर्ती कृष्ण भक्त कवियो की भांति ही उसी परम्परागत वातावरण में मीराबाई ने कृष्ण की बाल-लीला प्रेम-लीला, कालिय-दमन, चीर-हरण, वशीवादन आदि का वर्णन भी किया है—

कालियदमन

कमल दललोचणा थे नाथ्यां काल भुजग।
कालिंदी दह नाग नाथ्यां, काल फण फण निर्त करत॥
कूदा जल अन्तर ना डरयो थे एक बाहु अणत।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ब्रजवणतारो कत॥

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के त्रैलोक विमोहन रूप, लावण्य, स्याम वर्ण और ललित वेशभूषा का वर्णन हुआ है। मीराबाई की श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी भागवतानुमोदित है:—

सांवरो नदनन्दन दीठ पड्या माई।
डार्‌यां सब लोक लाज सुध बुध बिसराई।
मोर चन्द्रका किरीट मुगट छब सोहाई।
केसर रो तिलक भाल, लोचन सुखदाई।
कुडल झलका कपोल अलका लहराई।
मीरा तज सरवर ज्यो मकर मिलन धाई।
नटवर प्रभु भेष धर्‌यां रूप जग लोभाई।
गिरधर प्रभु अग अग मीरां बलि जाई

श्रीमद् भागवत के अनुरूप ही मीरा के नन्द यशोदा के पुण्य से पु
ब्रजलीला नायक, गोपीवल्लभ, गोकुलनाथ कृष्ण को अविनाशी परब्रह्म परमेश

म्हारो गोकुल रो बासी।
ब्रज लीला लख जण सुखपावा ब्रज बणता सुखरासी।
णाच्याँ गावाँ ताल बजावाँ पावाँ आणँद हासी।
णद जसोदा पुन्नरी प्रगट्या प्रभु अबिनासी।

गोपियों की रूपासक्ति, दास्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, परमविरहा
के काव्य में प्रभूत मात्रा मे है। गोपी प्रेम का मूल है, लौकिक-पार लौकिक
त्याग। मीरा स्वय ही गोपी भाव से भावित है। वे श्रीकृष्ण को अपने
मानती है:—

रूपासक्ति

निपट बंकट छब अटके।
म्हारे नैणा निपट बंकट छब अटके।
देख्यां रूप मदन मोहन री पियत पियूख न अटके।
वारिज भवा अलक मतवारी नैण रूप रस अटके।

दास्यासक्ति

हरि म्हारा जीवण प्राण अधार।
और आसिरो णा म्हारा थे विण, तीनूं लोक मझार।
थेविण म्हाणे जगणां सुहावां निरख्यां सब संसार।
मीरा रे प्रभु दासी रावली, लीज्यो णेक णिहारी।

परमविरहासक्ति

स्याम मिलण रे काज सखी, उर आरति जागी।
तलफ तलफ कलना पड़ाँ बिरहानल लागी।
निसदिन पंथ निहारां पिव रो पलक ना पलभर लागी।
पीव पीव म्हा रटां रैण डिन लोक लाज कुल त्यागी।
बिरह भुअंगम डस्यां कलेजा लहर हलाहल जागी।
मीरां व्याकुल अति अकुलाणी स्याम उमंगा लागी।

भगवच्चरणारविन्दों की अनिर्वचनीय महिमा का ज्ञान भी श्रीमद्भागवता

मण थें परस हरि रे चरण।
सुभग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
इण चरण प्रहलाद परस्यां, इन्द्र पदवी धरण,
इण चरण ध्रुव अटल करस्या सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्माड भेट्या, नख सिखाँ सिरी भरण,
इण चरण कालियां नाथ्यां, गोपलीला करण।
इण चरण गोबरधन धारयां गरब मघवा हरण
दासि मीरां र अगम तारण तरण।

लालचदास (विक्रमीय १६वीं शती पूर्वार्द्ध)

अष्टछापी कृष्ण भक्त कवियों के समसामयिक और उन्हीं की भाँति श्रीमद्भागवता-नुमोदित श्रीकृष्ण लीला-गान करने तथा अवधी भाषा मे कृष्ण चरित लिखने के कारण लालचदास का महत्त्व है। इनका ग्रन्थ हरि चरित या भागवत दशमस्कन्ध भाषा उपलब्ध है। गार्सादतासी ने इनके भागवत दशमस्कन्ध भाषा का फ्रेंच मे अनुवाद होने की चर्चा की है।

• इस ग्रंथ की कई हस्त हस्तलिखित प्रतियाँ हमने स्वय देखी हैं। उनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १८४२ की है जो कैप्टिन शूरवीरसिंह जी के पास सुरक्षित है। गोस्वामी तुलसीदास से लगभग १०० वर्ष पहले का अवधी मे लिखा हुआ यह भक्ति-ग्रंथ है। ग्रन्थ का प्रारम्भ ही 'भागवते नमः' से हुआ है। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए कवि कहता है—'भक्ति-भागवत कै अनुहारी, गुरु प्रसाद कछु कहौं विचारी।' भागवत के प्राकट्य की कथा भी भागवत-महात्म्य के अनुसार है। ग्रंथ मे केवल भागवत के दशम स्कन्ध की ही कथा प्रारम्भ करने से पहले कवि की उक्ति है—

"नौ असकन्ध कहा न्रिप आगे।
अब रिषि दसम सुनावन लागे॥

इसके अनन्तर लालचदास ने सक्षेप मे भागवत दशम स्कन्ध के ९० अध्यायों की कथा अवधी भाषा मे लिखी है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में यह पुष्पिका है—

"इति श्री हरिचरित्रे दसम स्कंधे भागवते महापुराने······नाम·······अध्याय"

ग्रन्थ के ४५ अध्याय लालचदास के लिखे हुए है परन्तु इतना लिखने पर उनका स्वर्ग-वास हो गया और शेष ४५ अध्याय उनके मित्र आसानन्द कायस्थ ने लिखे। सम्पूर्ण ग्रन्थ की भाषा बड़ी सरल तथा सरस है।

नरोत्तमदास (वि० सं० १६०२)

'सुदामा चरित' की कथावस्तु श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध अध्याय ८० और ८१ पर आधृत है। सुदामा के चरित्र में हमे जिस भावुकता त्याग-भावना एव इष्टदेव के सम्मुख दीनता के दर्शन होते हैं वह भागवतानुसारी ही है। भागवत का निम्नलिखित श्लोक—

'नून मे भगवाँस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः।
येन नीतो दशामेता निर्वेदश्चात्मनः प्लवः॥ (श्रीमद्० ११।२३।२८)

सुदामा के इस कथन से कितना मेल खाता है :—

कह्यो सुदामा बाम सुनु वृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान को धर्म सहित जप जोग

भूले से भूप अनेक खरे रहौ, ठाढ़े रहौ तिमि चक्कवै भारी।
देव गन्धर्व रु किन्नर जच्छ से, रोके जे लोकन के अधिकारी।
अन्तरजामी वै आपुहीं जानि हैं, मानो यहै सिख आजु हमारी।
द्वारकानाथ के द्वार गए सबतें पहले सुधि लैहें तिहारी।

भगवान् का अवतार ही 'गो-ब्राह्मण हिताय' हुआ है इसीलिए जिनके जगत्-संताप मिटता है ऐसे भगवान् कृष्ण विप्र सुदामा का पद-प्रक्षालन कर रहे हैं

षडैश्वर्य सम्पन्न वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज विष्णु ही द्वारिकाधीश कृष्ण नरोत्तमदास जी के काव्य में चित्रित हुए हैं। श्रीमद्भागवत में जय-विजय कथ विष्णु के जिस लोक-रंजक एवं परम ऐश्वर्य पूर्ण वैकुण्ठ धाम का चित्र है नरोत्तमदास जी ने द्वारकापुरी के वैभव एवं द्वारकाधीश के स्वरूप का खींचा है, श्रीकृष्ण का चतुर्भुज स्वरूप उन्होंने स्वीकार किया है—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत बसन गरे में बैजयन्ती माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम संदीपन गुरु के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारका के गए हरि दारिद हरैंगे पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥

श्रीमद्भागवत मे विष्णु का विग्रह भी ऐसा ही वर्णित है :—

प्रसन्नवदनाम्भोज, पद्मगर्भारुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदलश्याम शंखचक्रगदाधरम्॥
लसत्पंकजकिञ्जल्कपीतकौशेय वाससम्।
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्त कन्धरम्॥
मत्तद्विरेफ कलया परीतं वनमालया।
परार्ध्यहारवलयकिरीटांगदनूपुरम्॥

(श्रीमद्० ३।२८।१३

प्रिथीराज (पृथ्वीराज) (वि० सं० १६०६-१६५७)

सम्राट् अकबर के सम्मानित सामन्त होते हुए भी महाराणा प्रताप स्वतंत्रता संग्राम को जारी रखने के हेतु प्रोत्साहित करने वाले राठौड़ राउ व्यक्तित्व में देशभक्त, भगवद्भक्त और विद्वान् का अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य मिलत द्वारा ग्रथित 'वेलि किसन रुकमणी री' का उपजीव्य श्रीमद्भागवत दशमस्कंध ५५ हैं, जिसे इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—

वल्ली तसु बीज नायौ महि थाणौ पृथुदास मुख
मूल ताल जड़ अरथ मण्डहे सुथिर करणि चढि छाह सुख

मणी के शृंगार सज्जा प्रसंग में भी कवि भागवत का उल्लेख श्लिष्टार्थ से क

नासा अग्नि मुताहल निहसति ।
भजति कि सुक मुख भागवत ।। (वेलि० ९८)

इन्होंने मूल कथा का अनुसरण भी बड़े कौशल से किया है, विदर्भाधिपति
ागवत में इस प्रकार हुआ है—

राजासीद् भीष्मकोनाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
तस्य पंचाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ।।
रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसासती ।। (श्रीमद्० १०।५२।

बेलिकार इसका अनुसरण करते हुए कहता है—

दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति पुर दीपनि अति कुन्दणपुर ।
राजति एक भीखमक राजा सिरहर अहिनर असुर सुर ।।
पंचपुत्र ताइ छटी सुपुत्री कुअर रुकम कहि विमल कथ ।
रुकमबाहु अनै रुकमाली रुकमकेस नै रुकम रथ ।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण के गुणों का ध्यान कर श्रेष्ठ वर की प्राप्ति हेतु हर गौर
२—

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यं गुणश्रियः ।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ।।

पृथ्वीराज ने लिखा है—

साँभलि अनुराग थयौ मन स्यामा वर प्रापति वंछती वर ।
हरि गुण मणि ऊपनो जिका हर हर तिणि वन्दे गवरि हर ।। (वे

वेलि में रुक्मिणी के व्याज से श्रीमद्भागवत सम्मत पृथ्वीराज की भक्ति
में मुखरित है—

हरि हुए वराह हुए हरिणाकस, हूँ ऊधरी पाताल हूँ ।
कहो तई करुणाम केसव सीख दीध किण तुम्हां सूं ।।
आणे सुर असुर नाग नेत्रै नहि, राखियौ जई मन्दर रई ।
सहण मथे मूलीघ महमहण तुम्हाँ किणी सीखव्या तई ।।
रामा अवतार वहे रणि रावण, किसी सीख करुणा करण ।
हूं ऊधरी त्रिकूटगढ़ हूती, हरि बन्धे वेलाहरण ।।
चौथीआ वार वाहर करि चत्र भुजा, सख चण्ड धर गदा सरोज ।
मुख करि किसूं कहीजै माहव, अन्तरजामी सूं आलोज ।।

श्री कृष्ण का परब्रह्मत्व भी पृथ्वीराज को मान्य है । कुण्डिनपुर पहुँचने
ी कृष्ण को जिन विविध रूपों में देखते है उस कल्पना का स्रोत श्रीमद्
संग ज्ञात पड़ता है जहाँ श्रीकृष्ण कंस की रंगशाला में पदार्पण करते हैं
ने अपनी भावना के अनुसार रूप धरे ज्ञात होते हैं ।

मल्लानामशनिनृ णां नरवर स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोज पतेर्विराड् विदुषां तत्वं परं योगिनां ।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ।।

इसी की संपुष्टि पृथ्वीराज के निम्नांकित दोहला में हुई है—

कामिणि कहि काम काल कहि केवी, नारायण कहि अवर नर ।
वेढारथ इम कहै वेदवत जोगतत जोगेसवर ।।

रसखान (सं० १६८५ लगभग)

रसखान ने जो प्रेमी हृदय पाया था, वह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की कारा में बन्द नहीं हो सकता था । उस इश्क मजाजी से परिपूर्ण हृदय को इश्क हकीकी में परिणत कर देने वाली महती शक्ति थी श्रीमद्भागवत । श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति ही इनके प्राणों का स्पन्दन है, गोपजनों की सख्य भक्ति भी रसखान को मान्य है । उन्हें गोपियों की माधुर्य भक्ति ही सर्वाधिक मान्य है ।

प्रेमाभक्ति—'प्रेमवाटिका' में वर्णित इनका प्रेम का पारमार्थिक रूप श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति ही है, अन्य कुछ नहीं ।

लोक वेद मरजाद लाज काज संदेह ।
देत बहाए प्रेमकरि, विधि निषेध को नेह ।
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान गरूर बढ़ाय ।
बिना प्रेम फीको सबै, कोटिन किए उपाय ।।
जेहि बिनु जाये कछु नहीं, जान्यौ जात विसेस ।
सोई प्रेम जोहि जानिकैं, रहि न जात कछु सेस

× × × ×

जेहि पाए वैकुण्ठ अरु हरि हूं की नहिं चाहि ।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि ।।

श्रीमद्भागवत का यह श्लोक भी देखिए—

न किंचित्साधवो धीरा भक्ताह्येकान्तिनो मम ।
वाछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ।

रसखान मानते हैं कि यद्यपि प्रेम के अनेक प्रकार हैं और श्रीकृष्ण के प्रति अनेक भावों से नन्द, यशोदा, ग्वाल-बाल प्रेम रखते हैं परन्तु श्रेष्ठता तो गोपियों के प्रेम-भाव की ही है, जिनकी कृपा से उद्धव जैसे ज्ञानी को भी कुछ प्रेमसक्ति का प्रसाद मिल गया ।

इन्होंने कृष्ण चरित के कुछ स्फुट प्रसंगों यथा माखन चोरी, वेणुवादन, गोचारण आदि का भी वर्णन किया है । बालकृष्ण के स्वरूप की भी एक सुन्दर झाँकी प्रस्तुत है—

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना पग पैंजनी बाजत पीरी कछोटी ।

ना

राधा माधव सखिन संग, विहरत कुंज कुटीर।
रसिकराज रसखानि जहं कूजत कोइल कीर।

रसखानि का सर्वाधिक प्रिय विषय श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का चित्रण है, उ
ोर आकृष्ट करता है।

कानन कुण्डल मोर पखा, उर पै वनमाल बिराजति है।
मुरली कर मे अधरा मुसकानि, तरंग महाछवि छाजनि है।
रसखानि लखै तन पीत पटा, सतदामिनि की दुति लाजति है।
वह बांसुरि की धुनि कान परै, कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

उन्होंने श्रीकृष्ण के परब्रह्म रूप को भी भागवत के अनुसार ही माना है।

(क) सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहुँ जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावें॥
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें॥

(ख) ब्रह्म मे ढूढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनि चौगुन चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥

गोपी प्रेम की तो ये मूर्ति ही है। एकादश आसक्तियों में से रूपासक्ति, त
मविरहासक्ति विशेष रूप से इनके काव्य मे मिलती है।

रूपासक्ति—लोक की लाज तजी तबही जब देख्यो सखी ब्रज चन्द सलोनो
खंजन मीन सरोजन की छवि गंजन नैन लला दिन होनो
रसखानि निहारि सकै जु सम्हारि कै को तिय है वह रूप सुठो
भौंह कमान सो जोहन को सब बेधत प्रानिनि नन्द को छोनो

गासक्ति:—

उनहीं के सनेहन सानी रहे, उनही के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन त्यों सैन सो चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनही संग डोलन में रसखानि सबै, सुख सिंधु अघानी रहैं।
उनही बिन ज्यों जलहीन है मीन सी आंखि मेरो असुवानी रहैं॥

परमविरहासक्ति—भ्रमर गीत मे व्यक्त गोपियो की विरह भावना कं
्रकट करता है:—

लाज के लेप चढ़ाइ कै अंग पचीं सब सीख को मंत्र सुनाइकै।
गारुड़ ह्वै ब्रजलोग थक्यो करि औषद वेसक सौंह दिवाइ कै॥
ऊधो सो को रसखानि कहै जिन चित्त धरौ तुम एतै उपाइकै।
कारे बिसारे को चाहै उतार्‌यो अरे विष बावरे राख लगाइकै।

श्रीकृष्ण के वंशीवादन का गोपियों पर पड़ने वाले मोहक प्रभाव की व्यंजना करने में रसखान को असाधारण सफलता मिली है। बाँसुरी के प्रति गोपियों का जो सापत्न्यभाव श्रीमद्भागवत मे व्यक्त हुआ है, उसी का विशदीकरण इस सवैया मे देखा जा सकता है—

'कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमकौ चहि है।
निस द्यौस है संग साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यों सहि है ।।
जिन मोहि लियौ मनमोहन कौ, रसखानि सदा हमकौ दहि है।
मिलि आओ सबै सखि भाजि चलैं अब तौ ब्रज मे बंसुरी रहि है ।।

इस प्रकार हम देखते है कि इन सम्प्रदाय मुक्त कवियों के काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव सम्प्रदायवादी कवियों से कहीं अधिक सूक्ष्म और व्यापक है।

हम पहले कह चुके है कि श्रीमद्भागवत का प्रभाव चैतन्य तथा बल्लभ मत पर सबसे अधिक है। मात्रा की दृष्टि से ब्रजभाषा मे बल्लभ सम्प्रदाय का ही सबसे अधिक साहित्य है। बल्लभ सम्प्रदाय का बहुत सा ब्रजभाषा साहित्य अभी भी प्रकाश मे नही आसका है। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना ही श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी तथा जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं इस सम्प्रदाय के भक्तो का कार्य-क्षेत्र ब्रजभूमि ही रही। इन सब कारणों से श्रीमद्भागवत के सदर्भ में बल्लभसम्प्रदायी ब्रजभाषा साहित्य का विशिष्ट महत्त्व है। इसीलिए इस साहित्य का विवेचन हम अलग से अग्रिम अध्याय मे करेंगे।

श्रीमद्भागवत तथा पुष्टि सम्प्रदाय का व्रजभाषा-साहित्य

पुष्टिसम्प्रदायेतर व्रजभाषा के कृष्ण-भक्त-कवियों की रचनाओं पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव की चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। हम पहले कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत से भारतीय भाषाओं का सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति साहित्य प्रभावित हुआ है। बात यह है कि श्रीमद्भागवत मे कुछ तो भक्ति के ऐसे सामान्य तत्त्वों का विवेचन हुआ है जो परम्परागत तथा सार्वभौम कहे जा सकते हैं तथा जो निर्गुण तथा सगुण, राम तथा कृष्ण सभी प्रकार की भक्ति-साधनाओं मे समान हैं। भक्ति-मार्ग का अन्य-मार्गों से वैशिष्ट्य आस्तिक मात्र के लिए अभिप्रेत है। इसी प्रकार भगवान् का ध्यान, नाम महिमा, गुरु-महिमा, सत्संग का महत्त्व तथा भक्ति के अंतराय सभी भक्ति सम्प्रदायों मे समान हैं। कहना न होगा कि इन सभी तत्त्वों का श्रीमद्भागवत मे विशद तथा व्यवस्थित रूप मे विवेचन हुआ है। भारतीय भाषाओं के भक्त-कवियों ने इन सभी तत्त्वों पर कुछ न कुछ लिखा है अन्तर केवल सम्प्रदाय विशेष की भक्ति-भावना तथा भक्ति के आचरण पक्ष मे है। सामान्यतत्त्व तो पुराणों तथा अन्य धर्मग्रन्थों में भी भागवत के अनुसार ही है तथा वहाँ भी वैभिन्न्य इष्ट तथा भावना के आधार पर है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण को ही स्वयं भगवान् कहा गया है तथा अन्य अवतारों को अंश रूप में स्वीकार किया है। सबसे बड़ी विशेषता श्रीमद्भागवत की यह है कि उसमे कृष्ण-तत्त्व का विकास क्रमिक जीवन से संबद्ध है। कृष्ण की जीवन-लीला ही श्रीमद्भागवत का सर्वस्व है तथा वही भगवान् का अलौकिक चरित है।

श्रीमद्भागवत में भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन है। कृष्ण-भक्त वैष्णवों के अनुसार लीलामय होना ही मुक्ति है। पुष्टि सम्प्रदाय में इन सभी लीलाओं को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है तथा प्रत्येक लीला के लिए एक दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भगवान् की लीला के उपकरणों को नित्य स्वरूप प्रदान किया गया है। स्वयं भागवतकार ने लीला के उपकरणों को बड़ा महत्त्व दिया है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध मे तत्-तत् स्थलों पर इन उपकरणों की बड़े भक्ति-भाव से चर्चा हुई हैं। श्रीमद्भागवत के प्रथमस्कंध में सूत ने मधुवन को परम-पवित्र और सर्वश्रेष्ठ बताया है जहाँ भगवान् ने स्वयं जन्म लिया। व्रज-क्षेत्र का महत्त्व तो और पुराणों में भी वर्णित है परन्तु जिस भाव से लीला के क्षेत्रीय उपकरणों का श्रीमद्भागवत में वर्णन हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, यमुना, गोवर्द्धन गौएँ तथा गोप तथा गोपियाँ सभी लीला के उपकरण श्रीमद्भागवत मे परिगणित हैं, यहाँ तक कि गह्वर-वनाकीर्ण व्रज की उन वर्षा और शरद जैसी ऋतुओं का भी श्रीमद्भागवत मे वर्णन हुआ है जिनमें

ब्रज के बनों की अद्भुत और अलौकिक श्री हो जाती थी। लीला के इन सभी उपकरणों को पुष्टि सम्प्रदाय मे जितना अलौकिक महत्त्व प्रदान किया गया है उतना और किसी सम्प्रदाय में नहीं।

ब्रज के इस अलौकिक सौन्दर्य मे कृष्ण की रूप-माधुरी चार चाँद लगा देती है तथा सम्पूर्ण बनश्री को एक स्फूर्तिमय अलौकिक जीवन प्रदान कर देती है। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत मे कृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य, उनकी वेषभूषा, अंगविन्यास तथा मुद्राएँ बडे विस्तार से वर्णित हैं। पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों ने कृष्ण की रूप-माधुरी के सम्बन्ध मे इन सभी का वर्णन बडे कवित्वमय ढग से किया है। ये सभी वर्णन भगवान् कृष्ण मे अहेतुकी प्रीति के साधन है। इस प्रीति अथवा प्रेम का प्रमुख माध्यम गोप तथा गोपियाँ हैं। पुष्टि सम्प्रदाय मे इसी गोपीभाव की प्रधानता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो गोपियों को ही अपना गुरु स्वीकार किया है तथा उनकी अनेक कोटियाँ निश्चित की हैं। शृंगार की अपेक्षा वात्सल्यभाव अधिक स्वाभाविक तथा मर्यादानुकूल है। इसीलिए पुष्टि सम्प्रदाय मे वात्सल्य को अधिक महत्व मिला है। भगवान् कृष्ण की लीलाओ में रास-लीला सर्वोपरि है। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने रास-लीला को बडा महत्व दिया है तथा उसके सम्बन्ध मे एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत में रास-लीला के सम्बन्ध मे वेणु अथवा मुरली के विशिष्ट महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है तथा वहाँ वेणुगीत की रचना ही अलग से की गयी है। पुष्टि सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त कवियो ने वेणु प्रसंग मे अनेक पद लिखे हैं। श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत प्रसंग को जितनी महत्ता पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों ने दी है उतनी अन्य किसी सम्प्रदाय के कवियो ने नही। विरह को लेकर इन कवियों ने अनेक कल्पनाएँ की हैं तथा अलग से ही उपालम्भ काव्यों की सृष्टि कर डाली है। विरह भक्ति का चरमोत्कर्ष है। श्रीमद्भागवत के भ्रमर-गीत के सम्बन्ध में हम पञ्चम अध्याय मे लिख चुके हैं। इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भागवत महापुराण की मान्यता यद्यपि अनेक सम्प्रदायो में है फिर भी उसके सम्पूर्ण आधारभूत तत्वो का विवेचन पुष्टि सम्प्रदाय मे सबसे अधिक हुआ है।

आचार्य वल्लभ ने पुष्टि सम्प्रदाय के नाम की प्रेरणा भी श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण की। भागवत के द्वितीय स्कन्ध दशम अध्याय के चतुर्थ श्लोक में भगवान् के अनुग्रह को पोषण कहा गया है—'पोषणं तदनुग्रहः'। पोषण को ही पुष्टि कहते हैं, भगवान् के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय मे भक्ति का उदय होता है। भगवान् के प्रति अनन्यता प्राप्त करने के लिए भक्त को अपना सब कुछ उसे समर्पण करना पड़ता है, यही पुष्टि सम्प्रदाय का मूल तत्त्व है। मूल मे पुष्टि भक्ति का स्वरूप श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रेमलक्षणा निर्गुणा ही है। सम्भवत. निर्गुण और सगुण के सामञ्जस्य के लिए ही आचार्यजी ने अपने मार्ग में विशिष्ट सेवा का निरूपण किया था। आचार्यजी के मत-प्रचार का एकमात्र साधन श्रीमद्भागवत की कथा थी। पुष्टि सम्प्रदाय के हिन्दी कवि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समय में विशेष रूप से पल्लवित हुए। सम्भवतः सम्प्रदाय की सागोपाग व्यवस्था गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने ही की थी तथा उन्होंने ही पुष्टिमार्गीय सेवा को क्रियात्मक रूप दिया तथा श्रीनाथजी के आठ शृंगारों, झाँकियों तथा उत्सवों आदि का सन्निवेश में किया आठों झाँकियों में

नियमित कीतन के लिए आठ सगीताचार्य कीतनकार नियुक्त किए तथा उन कीतनकारों के अनेक टेककार तथा झालरिया भी नियुक्त किये गये।

हम पहले कह चुके है कि वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत को वेद, ब्रह्मसूत्र और गीता की भाँति प्रमाण माना तथा अपने सभी सिद्धान्त ग्रन्थों मे भागवत को आधार भूत स्वीकार किया। महाप्रभु के 'सिद्धान्त रहस्य' नाम के ग्रन्थ की विवृत्ति मे गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है कि भक्ति पुष्टि प्रवाह तथा मर्यादा भेद से तीन प्रकार की होती है। प्रवाह भक्ति का विवेचन तो वेद तथा पुराणों मे हुआ है तथा मर्यादा और पुष्टि के निरूपण के लिए श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। मर्यादा भक्ति का फल है, प्रभु स्नेह जो पुष्टि-भक्ति का आधार है। सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार पुष्टि भक्ति का विवेचन श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध मे हुआ है जहाँ भगवान् के अनुग्रह का प्रत्यक्ष रूप दिखाया गया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने 'तत्त्व दीप' निबंध के भागवतार्थ प्रकरण मे इस स्कन्ध को पुष्टि स्कन्ध माना है। इस स्कन्ध का सारांश हम चतुर्थ अध्याय में दे चुके हैं। स्कन्ध के प्रथम अध्याय के १५, १६ १७ वें श्लोकों को पुष्टि भक्ति के तत्वो का विवेचन करने वाला कहा गया है। उनका सारांश यह है कि भगवान् की शरण मे रहने वाले भक्तजन, जो विरले ही होते है, केवल भक्ति के द्वारा ही अपने पापो को इस प्रकार भस्म कर देते है जैसे सूर्य कुहरे को। पापी पुरुष की जैसी शुद्धि भगवान् को आत्म-समर्पण करने तथा उसके भक्तों की सेवा करने से होती है वैसी तपस्या आदि के द्वारा भी सम्भव नही। भक्ति का यही मार्ग भय रहित और कल्याण स्वरूप है। तथा इसी मार्ग पर भगवत् परायण साधुजन चलते हैं। इसी अध्याय मे अजामिल के आख्यान से भगवान् की इस कृपा का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है। इस स्कन्ध के एकादश अध्याय का इन्द्र वृत्रासुर आख्यान पुष्टि सम्प्रदाय का सर्वस्व है। इस आख्यान मे भी वृत्रासुर की प्रार्थना के चार श्लोक बड़े महत्त्व के है। पुष्टि मार्ग मे इन श्लोकों को 'वृत्रासुर चतुःश्लोकी' का नाम दिया गया है। सम्प्रदाय के अनुसार इन चारो श्लोको में पुष्टिमार्गीय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन है। श्रीमद्भागवत के प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्कन्ध की व्याख्या करके जब महाप्रभु दशम स्कन्ध की व्याख्या करने लगे तो उन्होंने व्याख्या से पहले भागवत में पुष्टि तत्त्व का विवेचन करना आवश्यक समझा तथा इन चारों श्लोको की सुबोधिनी में व्याख्या की। इस चतुःश्लोकी पर ही श्री पुरुषोत्तम जी का प्रकाश है। पहले श्लोक द्वारा पुष्टिमार्ग का निरूपण हरिनाम स्वरूप स्मरण, हरिगुण कीर्तन तथा प्रेम-सेवा का विवेचन हुआ है तथा दास्य भक्ति को महत्त्व प्रदान किया गया है। द्वितीय श्लोक से पुष्टिमार्गीय अर्थ का निरूपण किया गया है, तृतीय श्लोक से पुष्टिमार्गीय काम की प्रार्थना की गयी है, इसी श्लोक के माध्यम से भगवान् कृष्ण के शृङ्गार रस-रूप की कल्पना की गयी है। चतुर्थ श्लोक में पुष्टि मार्गीय मोक्ष का निरूपण है। निष्कर्षरूप मे निम्न-लिखित कारिका कही गयी है।

पुष्टिमार्गे हरेर्दास्यं धर्मोऽर्थो हरिरेव हि।
कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्षः कृष्णस्य चेद्ध्रुवम्।

अर्थात् पुष्टिमार्ग में ब्रजाधिपति श्रीकृष्ण की सर्वात्म भाव से सदा सेवा करना ही परम धर्म है, अन्य कोई धर्म कर्तव्य नहीं यही अर्थ है यही काम है और यही मोक्ष है।

आगे चलकर पुष्टिमार्ग में सेवा को बड़ा महत्त्व प्राप्त हुआ तथा इस पर अनेक ग्रंथ तथा टीकाएं लिखी गयीं। ऋतु एवं समय के अनुसार आठों झाकियों में कीर्तन की व्यवस्था की गयी। यहाँ तक कि सेवा-मंडान के लिए ही गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की। यह अष्टछाप की स्थापना भी श्रीमद्भागवत के आधार पर हुई। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् कृष्ण के निम्नलिखित आठ सखा थे—

हे स्तोक कृष्ण हे अंशो ! श्रीदामन् ! सुबलार्जुन।
विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप।
(श्रीमद्० दशमस्कन्ध, अध्याय २२, श्लोक ३१)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप के आठों कवियों को ठाकुर जी के आठों सखाओं के रूप में माना और आठों झाँकियों में उन्हें भगवान् की कीर्तन सेवा करने का आदेश दिया। इन आठों कीर्तनकारों ने ब्रजभाषा के विशाल साहित्य की सर्जना की है, इनके साथ-साथ जो झालदिया थे, उन्होंने भी ब्रजभाषा में असंख्य पद लिखे थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने श्रीकृष्ण की उन सात दिव्य मूर्तियों जो उन्हें अपने पूज्य पिता से सप्तनिधि के रूप में प्राप्त हुई थीं अलग-अलग अपने सातों पुत्रों को दे दिया जिन्होंने उन स्वरूपों की पृथक्-पृथक् सेवा आरम्भ की। इन्हीं सात स्वरूपों के कारण पुष्टि सम्प्रदाय के सात गृहों अथवा सप्त पीठों का नामकरण हुआ है। पुष्टि-सम्प्रदाय में सहस्रों की संख्या में भक्त दीक्षित हुए, उनमें अनेक उच्च कोटि के कवि तथा कीर्तनकार थे। ये कीर्तन-पद विशेष रूप से सम्प्रदाय के सेवा पक्ष से सम्बद्ध हैं। सेवा के तीन रूप माने गये हैं—गुरु-सेवा, सन्त-सेवा तथा प्रभु-सेवा। पुष्टिमार्ग में क्रियात्मक सेवा का विशेष महत्त्व है जो तनुजा, वित्तजा और मानसी रूप में तीन प्रकार की होती है। आत्म-निवेदन और शरणागति भी पुष्टिसेवा के क्रियात्मक स्वरूप हैं। पुष्टि मार्ग में नित्य सेवा विधि और वर्षोत्सव विधि का भी बड़ा महत्त्व है। नित्य सेवा विधि प्रातःकाल से लेकर शयन पर्यन्त तक होती है, जिसके आठ समय होते हैं। वर्षोत्सव विधि का पालन विशिष्ट उत्सवों पर किया जाता है। इन विभिन्न प्रकार के सेवा पक्षों को लेकर पुष्टि-सम्प्रदाय में कोटिशः पदों की रचना हुई। भोग, राग और शृंगार के भेद से इन पदों में ब्रज-संस्कृति के सम्पूर्ण अंगों का समावेश हुआ। पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों ने भोग की विविध सामग्री और प्रकारों का विशद विवेचन किया है। भोग की भाँति राग भी कीर्तन भक्ति का मुख्य अंग माना गया है। यही कारण है कि इन कवियों के पदों में अनेक राग-रागिनियों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार भगवान् के मस्तक के आठ शृंगारों के अतिरिक्त कंठ, हस्त, कटि, चरण और मुखादि के शृंगारों की भी कल्पना की गयी है। शृंगारों के अतिरिक्त इन कवियों ने वस्त्रों का भी वर्णन किया है। पुष्टि-सम्प्रदाय की क्रियात्मक सेवा में सदाचार का भी महत्त्व है इसलिए उसके साहित्य में सदाचार और सत्संगति के भी अनेक पद हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुष्टिमार्गीय साहित्य में भागवतोक्त विशेष तथा सामान्य सभी तत्त्वों का विस्तार से समावेश हुआ है।

पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों का राधा-वर्णन अपनी विशेषता है। हम पहले कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है केवल एक गोपी-विशेष का उल्लेख है। राधा के विकास पर हमने अपने ग्रन्थ 'सूर और उनका साहित्य' में विस्तार से विवेचन किया

है। यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि भागवत सम्प्रदाय के नये विकसित रूपों में राधा-कृष्ण सम्पूर्ण भाव जगत् के व्यक्ति हो चुके थे यही कारण है कि १४ वीं शताब्दी के अनन्तर सभी सम्प्रदायों मे युगल-उपासना को इतना महत्त्व मिला है। प्रत्येक सम्प्रदाय में इस युगल-उपासना के सम्बन्ध मे निजी मौलिक कल्पनाएँ हैं। राधा कवि-मानस के सम्पूर्ण नारी-सौन्दर्य तथा सम्पूर्ण नारी-प्रेम-माधुर्य की अपरूप प्रतिमा है। पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों का युगल-उपासना का स्थूल रूप निश्चित रूप से भागवतानुसारी नही कहा जा सकता परन्तु सूक्ष्म रूप अवश्य ही भागवतानुसारी है।

यों तो पुष्टि सम्प्रदाय का आज भी विपुल ब्रजभाषा साहित्य अन्धकार के गर्त में है, फिर भी हम कह सकते है कि उसका जितना भी साहित्य प्रकाशित हो चुका है वह मात्रा की दृष्टि से तो अन्य सम्प्रदायों के साहित्य की अपेक्षा अधिक है ही, उत्कर्ष की दृष्टि से भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। आज विशेषरूप से अष्टछाप के कुछ कवियों का ही कुछ साहित्य उपलब्ध होता है इसलिए भागवत की तुलना मे हम उन्ही के साहित्य का विवेचन प्रस्तुत करते है। अष्टछाप के आठों कवि श्रीनाथ जी के अन्तरंग सखा माने गये है जो उनकी नित्य-लीला में सदा उनके साथ रहते है। पुष्टि-सम्प्रदाय मे ऐसी मान्यता है कि जब संवत् १५३५ में श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ, तभी ये सखा भी उनकी सेवा करने के लिए भूतल पर प्रकट हुए। गिरिराज तलहटी नित्य लीला भूमि है जहा श्रीनाथ जी स्वामिनी सहित नित्य लीला करते हैं और ये आठों सखा उनकी लीलाओं मे आठों पहर उनके साथ रहते है। इन सखाओं के लीलात्मक स्वरूपों की स्थिति यह है कि वे दिन मे ठाकुर जी के सखा रूप से उनकी बन-लीला का सुखानुभव करते है तथा रात्रि मे स्वामिनी जी की सखी रूप से निकुञ्ज-लीला का सुख-लाभ करते हैं। गिरिराज नित्य निकुञ्ज के आठ द्वार हैं, अष्टछाप के आठों सखा इन द्वारों के अधिकारी है जो सदैव ठाकुर जी की सेवा में रत रहते है। लौकिक लीला में वे भौतिक शरीर से इन द्वारों पर स्थित रहते है और लौकिक लीला की समाप्ति पर वे अपने भौतिक शरीर को त्यागकर अलौकिक रूप से नित्यलीला मे विराजमान रहते है, पुष्टि सम्प्रदाय की भावना के अनुसार अष्टछाप के लीलात्मक उभय स्वरूप, उनकी लीलासक्ति और उनके अधिकृत द्वारों का विवरण इस प्रकार है.—

सं०	अष्टसखा	लीलात्मक स्वरूप	लीलासक्ति	अधिकृतद्वार
१.	कुम्भनदास	अर्जुनसखा-विशाखा सखी	निकुञ्जलीला	आन्यौर
२.	सूरदास	कृष्णसखा-चंपकलता सखी	मान लीला	चन्द्र सरोवर
३.	परमानन्ददास	तोकसखा-चन्द्रभागा सखी	बाल लीला	सुरभी कुंड
४.	कृष्णदास	ऋषभसखा-ललिता सखी	रास लीला	बिलछू कुंड
५.	गोविन्दस्वामी	श्रीदामासखा भामा सखी	आँखमिचौनी	कदम खंडी
६.	छीतस्वामी	सुबल सखा-पद्मासखी	जन्म लीला	अप्सरा कुंड
७.	चतुर्भुजदास	विशालसखा-विमलासखी	अन्नकूट लीला	रुद्र कुंड
८.	नन्ददास	भोजसखा-चन्द्ररेखा सखी	किशोरलीला	मानसी गंगा

अष्टछाप के कवियो मे कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास तो महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे तथा गोविन्दस्वामी नन्ददास छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास

गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे अष्टछाप की स्थापना स० १६०२ में की गयी। श्रीमद्भागवत के एकादश कृष्ण सखाओं का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं उन्हीं में से आठ सखाओं का सम्बन्ध अष्टछाप के कवियों से है। इस सम्बन्ध में द्वारकेश जी का एक छप्पय इस प्रकार मिलता है—

सूरदास सो तो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास, चत्रभुजदास विसाला।
विष्णुदास सो भोज, स्वामिगोविंद श्रीदामाला॥
अष्टछाप आठो सखा, 'श्री द्वारकेस' परमान।
जिनके कृत गुनगान करि, निज जन होत सुथान॥

उपर्युक्त पद में नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम है, बात यह है कि नन्ददास जी सं० १६०७ में सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे, तभी विष्णुदास की जगह उनका नाम अष्टछाप मे जोड़ा गया था। अष्टछाप के इन आठों कवियो का काल सामान्य रूप से इस प्रकार माना गया है—

१.	कुम्भनदास	सं० १५२५–१६४०
२.	सूरदास	सं० १५३५–१६४०
३.	परमानन्ददास	सं० १५४०–१६४१
४.	कृष्णदास	सं० १५५३–१६३६
५.	गोविन्दस्वामी	सं० १५६२–१६४२
६.	छीतस्वामी	स० १५७३–१६४२
७.	चतुर्भुजदास	सं० १५८७–१६४२
८.	नन्ददास	सं० १५९०–१६४०

इन कवियो का जीवन-परिचय सम्प्रदाय के वार्ता-साहित्य में मिलता है। इनके भागवतानुसारी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय हम काल-क्रम के अनुसार से प्रस्तुत करते हैं—

कुम्भनदास

कुम्भनदास जी का कोई विशेष ग्रन्थ तो प्राप्त नही होता, परन्तु कीर्तन-संग्रहों में उनके पद पर्याप्त मात्रा में मिलते है। कुम्भनदास जी के पदों में युगल-उपासना का ही वैशिष्ट्य है फिर भी भागवत की बाल-लीला तथा गोपी-प्रेम के भी इनके अनेक पद मिलते हैं। भागवत की प्रेम-लक्षण भक्ति, रासलीला तथा दानलीला का भी इन्होंने अच्छा वर्णन किया है। इनके अनेक पदों में भागवत का साम्य स्पष्ट आभासित होता है। इनके रूपासक्ति सम्बन्धी केवल दो पदों का उल्लेख किया जाता है—

१— नैननि टकटकी लागि रही।
नख सिख अंग लाल गिरिधर के देखत रूप बही॥
प्रातकाल घर तें उठि सुन्दर जाति ही बेचन मही।
सु मई भेंट सों पथ बिच ही।

घर-व्यौहार सकल सुधि भूली, ग्वालिन मनसिज दही ।
'कुम्भनदास' प्रभु प्रीति विचारी, रसिक कचुकी गही ।।

२— कबहूँ देखि हो इन नैननु ।
सुंन्दर स्याम मनोहरि मूरत अंग-अंग सुख दैननु ।।
वृन्दावन विहार दिन-दिन प्रति, गोपवृन्द संग लैननु ।
हँसि-हँसि हरिष पतौवन पावन, बाँटि-बाँटि पय फैननु ।।
'कुम्भनदास' किते दिन बीते, किये रैन सुख सैननु ।
अब गिरिधर बिन निसि अरु बासर, मन न रहत क्यो चैननु ।।

श्रीमद्भागवत की रास पञ्चाध्यायी मे इस प्रकार के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं भागवत के दशमस्कन्ध के २१ वे अध्याय के कई श्लोको का हमे ज्यों का त्यों अनुवा दास के पदों में मिलता है । यह अध्याय 'वेणुगीत' के नाम से प्रख्यात है । वेणु क व्यापक प्रभाव बताते हुए भागवतकार लिखता है—

'अस्पन्दनं गतिमता पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृत लक्षणयोर्विचित्रम्' ।।१६।।

रास के भी कई पद ज्यो के त्यो भागवत से अनूदित से लगते हैं, केवल दो पद देखिये-

गावत गिरधरन संग, परम मुदित रास रग,
उरपति रयमान लेत नागर-नागरी ।
सरी गम पध नि गम पधनि उघत कल सब्द,
सुरन लाग डाट लेत ताल अति उजागरी ।।
चवित तांबूल देत, ध्रुव ताल गति लेत, गिड़ि-गिड़िता,
गिड़ि-गिड़िता, तता थुग थेई अलाग लागरी ।
सुरति केलि बन विलास, बलि-बलि-बलि 'कुम्भनदास'
श्री राधावर नंदनंदन वर सुहाग री ।।

भागवत के निम्नलिखित श्लोकों को देखने से भागवतानुसरण की बात स्पष्ट हो जाती है—

१— 'नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्द कुमुदामोद वायुना' ।। (१०।२६।४५)

२— 'वलयानां नूपुराणां किङ्किणीना च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले' ।। (१०।३३।६)

३— 'कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या आदात्ताम्बूल चर्वितम्' ।। (१०।३३।१३)

कुम्भनदास जी का लीला-गान बहुत कुछ भागवत का अनुसरण करता है । एक दूस कुम्भनदास जी का निम्न प्रकार है—

कृष्न तरनि-तनया तीर रास-मंडल रच्यौ,
अधर केल मुरलिका वेणु बाजैं ।
जुवतीं जन जूथ सग, निर्तत अनेक रंग,
निरखि अभिमान तजि काम लाजै ।

स्याम तन पीत कौसेय सुभ पद नखनि
चन्द्रिका सकल कलिमल-हर भुवभ्राजे ।
ललित अवतंस संभु धनुष लोचन चपल,
चितवनि मानों मदन-बान साजे ॥
मुख मंजीर, कटि-किंकनी कुनित रव,
वचन गभीर जनु मेघ गाजे ।
दास 'कुम्भनदास' कुंभदास हरिदास वर्य,
धरनि नख-सिख स्वरूप अद्‌भुत विराजे ॥

कुम्भनदास के इन पदो में 'चर्वित ताम्बूल देत' तथा 'हरिदास वर्य' विशेष रूप से दर्शनीय हैं। भागवतकार ने स्पष्ट ही 'आदात्ताम्बूलचर्वितम्' लिखा है तथा दशमस्कन्ध के २० वे अध्याय के १८ वे श्लोक मे गोवर्द्धन पर्वत के लिए 'हरिदास वर्य' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार भागवत के अनेक पदों की समानता कुम्भनदास मे देखी जा सकती है।

सूरदास

अष्टछाप-माला में सूरदास सुमेरु के तुल्य है, जहाँ सूरदास अपने कवित्व विषय प्रतिपादन तथा भाव-गाम्भीर्य मे पुष्टि सम्प्रदाय में सर्वोपरि है, वहाँ भागवतानुसरण मे भी उनके समकक्ष हिन्दी का दूसरा कवि नही है। 'सूरदास तथा श्रीमद्‌भागवत' शीर्षक एक शोध-प्रबन्ध हमने अलग से ही प्रस्तुत किया है। 'सूर और उनका साहित्य' नामक ग्रन्थ मे एक निबन्ध अलग से इसी विषय पर लिखा गया है। सूरदास जी के तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध है—सूरसागर, सूर-सारावली और साहित्य-लहरी। पुष्टि सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले सूरदास जी विनय पदों की रचना किया करते थे, महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रेरणा से उन्होने भगवत लीला-गान प्रारम्भ किया। जब महाप्रभु ने उन्हे 'पुरुषोत्तम सहस्त्र नाम' का पाठ कराया, उन्हे सम्पूर्ण भागवत का स्फुरण हुआ तथा उन्होंने भागवत की कथा को पद बद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। सूरदास की वार्त्ता मे इस घटना का स्पष्ट उल्लेख है.—

"ता पाछे श्री आचार्य जी ने सूरदास कूँ पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायो, तब सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी, सो सूरदास ने प्रथम स्कन्ध श्री भागवत सो द्वादस स्कन्ध पर्यन्त कीर्तन वर्णन किये। तामे अनेक दान लीला, मान-लीला आदि वर्णन किये हैं।" (सूरदास की वार्ता, अग्र० प्रे० मथुरा, प्रसंग १, पृष्ठ १०)

प्राय: विद्वानो की यह धारणा है कि सूरदास जी का सूरासगर श्रीमद्‌भागवत का अनुवाद है। शायद इस धारणा का कारण सूरसागर के वे अनेक पद हैं जिनमे भागवत का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। श्रीमद्‌भागवत और सूरसागर का हमने तुलनात्मक विवेचन अपने ग्रन्थों मे किया है। बात यह है कि सूरसागर की दो प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। सग्रहात्मक तथा द्वादश स्कन्धात्मक। यह देखकर आश्चर्य होता है कि स्कन्धात्मक प्रतियों मे भागवत का उल्लेख नहीं के बराबर है जबकि द्वादशस्कन्धात्मक प्रतियों के प्रत्येक स्कन्ध मे एकाधिक बार भागवत के अनुसार कथा वर्णन करने की बात को दुहराया गया है। यह आवृत्ति प्रथम, चतुर्थ तथा नवम स्कन्धों में सबसे अधिक हुई है दशम स्कन्ध में तो यह बात सात बार

गयी है। इस आवृत्ति मे दो बाते लक्ष्य करने की हैं–(१) किसी भी आवृत्ति
योग नही हुआ है, केवल भागवत के अनुसरण की बात है। (२) भागवता
परक न होकर कथापरक हैं अर्थात् कथा विशेष का वर्णन करता हुआ
र का परिचय मात्र देता है।

सूरदास जी के इस सम्बन्ध में केवल दो पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

(१)

श्री मुख चारि, श्लोक दए ब्रह्मा को समझाइ
ब्रह्मा नारद सो कहे नारद व्यास सुनाइ।
व्यास कहे सुकदेव सौं, द्वादस-स्कन्ध बनाइ
सूरदास सोई कहे पद-भाषा करि गाइ। (सूरसागर

(२)

व्यास देव जब सुकहि पढायो सुनि कँ सुक सो हृदय बसायो।
सुक सौं नृपति परीक्षित सुन्यौ तिनि पुनि भली भाँति कर गुन्यौ।
सूत सौनकादि सौं पुनि कह्यौ विदुर सो मैत्रेय पुनि लह्यौ।
स्तुति भागवत सवन सुख पायो सूरदास सो बरन सुनायौ॥ (सूरसाग

श्रीमद्भागवत के महात्म्य में भागवत का मूल 'चतुःश्लोक समन्वित' ही ब
था भागवत की कथा को वेदों और उपनिषदो का सार कहा गया है। सूर
वत का महात्म्य बड़े भक्ति-भाव से कहा है, एक दो पद देखिए—

(अ) नर तैं जनम पाइ कह कीनो ?
उदर भर्यो कूकुर सूकर लौं प्रभु को नाम न लानौं।
श्रीभागवत सुनी नहि स्रवननि गुरु गोविन्द नहि चीनौं॥

× × ×

(आ) श्रीभागवत सुनी नहि स्रवननि नैकहु रुचि उपजाइ।
आनि भक्ति करि, हरि भक्तन के कबहुँ न धोए पाइ॥

× × × ×

(इ) श्री भागवत सुन्यौ नहि कबहूँ, बीचहि भटकि मर्यौ।
सूरदास कहै सब जग बूड्यो, जुग जुग भक्त तर्यौ॥

भागवत की वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा का वर्णन भी सूरदास जी ने ठीक भागवत
किया है।

भयो भागवत जा परकार। कहौं सुनौ सो अब चित धार॥
सतजुग लाख बरस की आइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ॥
द्वापर सहस एक की भई। कलजुग सत संवत रहि गई॥
सोउ कहन सुनन कों रही। कलि मरजाद जाइ नहि कही॥
ताते हरि करि व्यासऽवतार। करी संहिता वेद विचार॥
बहुरि पुरान अठारह किए। पै तऊ सांति न आई हिए॥
तब नारद तिनकें ढिग आइ। चारि स्लोक कहे समुझाइ॥

× × × ×

दासी-सुत तैं नारद भयौ। सोष दासपन कौ मिटि गयौ ॥
व्यास देव तक करि हरि ध्यान। कियौ भागवत कौ व्याख्यान ॥ (सूरसागर पद २३०)

पुष्टि सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य भागवत-प्रकरण की जिस प्रकार व्याख्या किया करते थे सूरदास जी उसी प्रकार उस प्रकरण की व्रजभाषा मे पद रचना किया करते थे। यहाँ सूरदास जी के समस्त भागवतानुसारी पदों का तुलनात्मक विवेचन आवश्यक नही है, नमूने के लिए कुछ स्थल पर्याप्त होगे। सूरदास जी ने भागवत के सामान्य तथा विशेष सभी तत्वों पर पद रचना की है। श्रीमद्भागवत के लगभग सभी स्कन्धों में भक्ति का महत्त्व प्रतिपादत हुआ है परन्तु विशेष रूप से प्रथम तथा अष्टम स्कन्ध मे भक्ति की महिमा का का अधिक गान हुआ है। सूरसागर में भी स्थान-स्थान पर भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। भक्त के लक्षण भी सूरदास जी ने भागवत के ही आधार पर गिनाये हैं। भगवन्नाम महिमा, गुरुमहिमा, आदि के अनेक पद भागवत से तुलनीय हैं।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भागवत मे भक्ति के उन सामान्य भक्ति-तत्वों का विवेचन हुआ है जो सभी सम्प्रदायों मे सर्व साधारण तथा मान्य हैं। भागवत मे उनको व्यवस्थित रूपमात्र दे दिया है। सूर-साहित्य मे जो विशेष बात लक्ष्य करने की है वह यह है कि सूर ने भागवत के विशिष्ट तत्वो का ही अधिकाश मे अनुसरण किया है। सूर की रचनाओं से हमे यह बात स्पष्ट झलकती है कि उनका उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का ही गान करना था, वार्त्ता-साहित्य के अनुसार महाप्रभुजी का उन्हें आदेश भी यही था। श्रीमद्भागवत का दशमस्कन्ध ही भगवान् की लीलाओ का प्रधान स्थल है यहाँ तक कि महाप्रभु वल्लभ ने भी दशम स्कन्ध की व्याख्या में ही विशेष रुचि दिखायी है। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार श्रीमद्भागवत में व्यास की समाधि भाषा है, शायद इसीलिए भक्तो ने भागवत की लीलाओ का विस्तार से वर्णन किया है। कर्मयोग तथा ज्ञानयोग से विरत होकर सूरदासजी ने लीला-गान को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बनाया था जैसा कि उन्होंने सूर-सारावली मे लिखा भी है—

कर्मयोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ-गुरु तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ ॥
ता दिन ते हरि-लीला गाई एक लक्ष पद-बन्द।
ताको सार सूर-सारावलि गावत अति आनन्द ॥ (सूर-सारावली)

सूर-सागर तथा भागवत की तुलना करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं—

(१) सूरदासजी ने विशेष रूप से भागवत के दशम स्कन्ध का ही अनुसरण किया है, अन्य स्कन्धों के उन्होंने वही स्थल लिये हैं, जहाँ भक्ति के सामान्य तत्वों का विवेचन है। दशम स्कन्ध के स्थलों में भी अनुवाद की बात नही है बल्कि महाकवि ने सकेतों को बीज रूप में ग्रहण कर उन्हें अपनी कल्पना के उन्मुक्त वातावरण मे पल्लवित-पुष्पित तथा फलित किया है।

(२) सूर ने न तो भागवत के दार्शनिक पक्ष पर ही विशेष ध्यान दिया है तथा न ही उसके पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों में उनकी वृत्ति रमी है, उल्टे जिस स्थल पर भागवत के वर्णन को सूर ने ज्यों का त्यों अपनाने का प्रयास किया है, वहीं उसमें शिथिलता ही आ गयी है।

(३) सूर-साहित्य की लीलाओं का क्रम भागवत से भिन्न है। उनकी कुछ लीलाएँ ऐसी भी है जिन्हें पूर्णतया मौलिक, स्वतन्त्र और भागवत निरपेक्ष कह सकते हैं, जैसे राधा-कृष्ण-मिलन, पनघट-प्रस्ताव, दान-लीला आदि।

श्रीमद्भागवत मे वर्णित दर्शन तथा भक्ति के सिद्धान्तों का विवेचन हम पहले कर चुके हैं। सूरदासजी ने भागवत के इन सभी सिद्धान्तों का ब्रजभाषा मे खुलासा प्रस्तुत किया है। इतनी बात अवश्य है कि सूर के पद भागवत के श्लोकों के अविकल अनुवाद न होकर स्वतन्त्र विवेचन हैं। भागवत के सभी सामान्य तथा विशेष तत्व सूरसागर में आ गये हैं। सभी पदों के तुलनात्मक विवेचन का यहाँ अवसर नहीं है, केवल कुछ नमूने के पद हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं। कृष्ण-जन्म के अवसर पर भागवतकार ने तृतीय अध्याय मे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आनन्दातिरेक का वर्णन किया है—

> दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम्। मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्राम अजाकरा ॥
> नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः। द्विजालिकुलसंनादस्तवका वनराजयः ॥
> ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः। अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥
> मनांस्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम्। जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥
> जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः। विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥
> मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः। मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनु सागरम् ॥
> निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने। देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥
>
> (श्रीमद्० १०/३/२–८)

सूरदासजी ने कृष्ण के जन्मोत्सव को लेकर सैकड़ों पदों की रचना की है, कई पद तो श्रीमद्भागवत के अनुवाद से लगते हैं, एक पद देखिए –

> आनन्दे आनन्द बढ्यो अति।
> देवनि दिवि दुंदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादव पति।
> विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ अमित गति।
> गावत गुन गंधर्व पुलक तन, नाचतिं सब सुर नारि रसिक अति।
> बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय जय कार करत मानत रति।
> सिव बिरंचि इन्द्रादि अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मति ॥
>
> (सूरसागर पद ६२४)

कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसंग में सूर-सागर से ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते जो भागवत के अनुवाद से प्रतीत होते हैं। सूर-सागर की संग्रहात्मक प्रतियों में 'ब्रजभये महर के पूत जब यह बात सुनी' वाला पद बड़ा प्रसिद्ध है यह सम्पूर्ण पद श्रीमद्

सप्तम अध्याय के १८ से २१ वें श्लोकों तक का ठीक अनुवाद सा लगता है कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ जैसे तृणावर्त-वध, पूतना-वध आदि सूर सागर म ठीक भागवत के अनुसार है। सूरदासजी ने कृष्ण की बाल-लीलाओं को भी बडे विस्तार से गाया है। यह ठीक ही है कि श्रीमद्भागवत मे कृष्ण-लीलाएँ सूत्ररूप मे वर्णित है, जबकि सूर-सागर में उनका विस्तार से भाष्य है, फिर भी अनेक पद भागवत के अनुवाद से लगते हैं। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के ११ वे अध्याय के १४ से २० श्लोक तक देखिए, जिनमें यशोदा के पुत्र-वात्सल्य का चित्रण हैं। सूर-सागर में इस विषय पर अनेक पद प्राप्त होते हैं। भागवतकार ने श्रीकृष्ण के अपार सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखा है कि यदि सृष्टि के सम्पूर्ण सौदर्य को एक स्थान पर रख दिया जाय तो कही कृष्ण के सौन्दर्य की झलक मिल सकती है। सूरदासजी ने इस सूत्र के आधार पर बड़े-बडे रूपक बाँधे है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत के वेणु-गीत और युगल-गीत से भी सूरदासजी को विशेष प्रेरणा मिली। सूर-सागर मे श्रीमद्भागवत की भाँति कृष्ण-चरित्र के दो स्वरूप मिलते हैं :—एक तो, ब्रज के क्रीडामय जीवन से सबद्ध और दूसरा अलौकिक लीलाओं का। सूरदासजी ने इन दोनो ही स्वरूपो मे अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। सबसे बडी बात सूर के वर्णन मे यह है कि उन्होंने अपनी कला को ब्रज-सस्कृति का रूप दिया है।

सूर का राधा चित्रण भी भागवत-निरपेक्ष है तथा रास-लीला का क्रम भी कुछ भागवत से अलग है। बात यह है कि श्रीमद्भागवत की लीला का वातावरण धार्मिक तथा दार्शनिक है जबकि, सूरसागर की लीलाएँ सरल, स्वाभाविक तथा मनोहर हैं। दूसरे, श्रीमद्-भागवत मे श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व और योगेश्वरत्व पर विशेष बल दिया गया है जबकि सूर ने कृष्ण का मानव रूप ही चित्रित किया है। सूरदास की रास-पञ्चाध्यायी में कई मौलिक उद्भावनाएँ है। महाकवि सूरदास केवल भागवत का भाष्य ही प्रस्तुत नही करते, बल्कि अपनी ओर से भी अनेक सुन्दर-सुन्दर टिप्पणियाँ जोड़ देते है, श्रीमद्भागवत के युगल-गीत का भाष्य बडे विस्तार और भावपूर्ण ढंग से हुआ है। सूर का भ्रमर-गीत भी अनेक मौलिक उद्भावनाओं से पूर्ण है। भागवत मे उद्धव को ब्रज भेजने का उद्देश्य केवल नन्द-यशोदा को संदेश देकर सुखी करना तथा गोपियो को सान्त्वना देना बताया गया है जबकि सूर ने उद्धव के पाण्डित्य एवं ज्ञान-गर्व को खण्डित कर उन्हें प्रेमाभक्ति में ही दीक्षित करना उद्देश्य माना है। भागवत का अनुसरण करते हुए भी सूरदास ने अपनी कल्पना को भावना के विस्तृत प्रांगण मे चौकड़ी भरने का अवसर प्रदान किया है।

परमानन्ददास

भागवतानुसारी रचना करने वाले पुष्टि सम्प्रदाय के भक्त कवियों में परमानन्द जी का नाम दूसरे दर्जे पर आता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में परमानन्द जी के सम्बन्ध मे लिखा है—

"तब आचार्य जी ने आपु परमानन्ददास सों कहे जो परमानन्ददास बैठो। तब परमानन्ददास श्री आचार्य जी को साष्टांग दण्डवत करिके बैठे। पीछे श्री आचार्य जी आपु भीतर पधारि भोग सराय के को बुलायके श्री नवनीत प्रियाजी की सन्निधान कृपा करके नाम सुनायो ता पाछे ब्रह्म सम्बन्ध करवायो पीछे श्री भागवत की

अनुक्रमणिका सुनाए। तब जी ने श्री आचार्य जी के आगे बाल-लीला के पद गाए।" —(चौ० वैं० की वार्ता परीख संस्कृत पृष्ठ ८०४)

सूरदास जी की भाँति परमानन्ददास जी भी सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले पद-रचना किया करते थे। चौरासी वार्ता के अनुसार इनका साम्प्रदायिक जीवन क्रम उस समय से प्रारम्भ होता है जबकि परमानन्द जी ने अडैल मे जाकर महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ली। नाभादास जी के भक्तमाल मे चार भक्त इस नाम के मिलते है, उनमें पुष्टि सम्प्रदाय के परमानन्द के वर्णन इस प्रकार है—

पौगंड, बाल, कैसोर, गोप-लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात, हुतौ पहिलौ जु सखाई॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन-दिन।
गदगद गिरा उदार, स्याम सोभा भीज्यौ तन॥
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देन।
ब्रज-बधू-रीति कलिजुग-विषै, परमानंद भयौ प्रेम-केत॥

परमानन्ददास जी अपने जन्म-काल से ही 'सागर' कहलाने लगे थे। पुष्टि-सम्प्रदाय मे सूरदास और परमानन्द दो ही भक्तो को 'सागर' की उपाधि मिली थी। परमानन्ददास जी ने भगवान् कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा गमन और भ्रमरगीत तक के प्रसंगों पर अनेक पद लिखे हैं, परन्तु उन्होंने सूरदास की भाँति भागवतानुसरण की बात कहीं नहीं कही। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी ने उन्हें श्रीकृष्ण की बाल-लीला वर्णन करने का ही आदेश दिया था तथा इसी उद्देश्य से उन्हे श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनायी थी। परमानन्ददास जी महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से भागवत की कथा और सुबोधिनी सुना करते थे तथा उन्ही प्रसंगों पर गायन-शैली मे पद रचना करते थे। उन्होंने भागवत दशम स्कन्ध की लीलाओं का ही विशेष रूप से वर्णन किया है। शृंगार भक्ति के भी उन्होंने अनेक पद लिखे हैं। परमानन्ददास जी ने अपने पदो में भागवत तथा शुकदेव मुनि का बडी श्रद्धा से स्मरण किया है। कुछ उदाहरण देखिए :—

(१) जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब गोकुल गाय गुसाँई।
जब लग श्री भागवत कथा तब लग कलियुग नाही॥

(२) माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न हो तो अरु भागवत पुरान।
× × × ×

(३) सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठी॥

(४) जो इस रसिक कीर मुनि गायो।
सो रस रटत रटत निसि वासर सेष सहसमुख पार न पायो॥

परमानन्द जी के लीला-विषयक पद सम्प्रदाय मे 'निरोध लीला' के पद माने जाते है। निरोध लीला का अभिप्राय है कि भगवान् कृष्ण अपनी लीलाओं से अपने भक्तों का निरोध करते हैं। निरोध सिद्धि ही आनन्द प्राप्ति का हेतु है उन्होंने अपने भगवत लीला

सम्बन्धी पदों में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध का अनुसरण किया है तथा भगवान् की बाल, पौंगड तथा किशोर-लीलाओं को ही अपने काव्य का विषय बनाया है।

परमानन्ददास जी के लीलापद भागवत के अनुवाद तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु अनुसरण अनेक पदो में भागवत का हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

श्रीमद्भागवत—

महार्हवस्त्राभरण कञ्चुकोष्णीष भूषिताः। गोपा समाययू राजन् नानोपायनपाणयः ॥
(१०।५।८)

परमानन्ददास—

घर घर तें नर नारी मुदित जूरि जूथन धायो है।
लैलै साज समाज सबै व्रजराज पै आयो है।

श्रीमद्०— 'ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके।
हरिद्राचूर्ण तैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः।
अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥
गोपा परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥
(१०।५।१२–१४)

परमानन्ददास— फूले ग्वाला मानो रण जीते आनन्द फूले बाग।
हरद दूबि दधि गोरोचन छिरके मच्यो भदैव्या फाग ॥

श्रीमद्०— 'नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कार गोधनम्।
सूत मागध वन्दिभ्यो नेऽन्ये विद्योपजीविनः ॥
तैस्ते कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥
(१०।५।१५,१६)

परमानन्ददास— 'दई सुवच्छ लच्छ द्वै गैया नन्द बढायो त्याग।
गुनी गनक बंदीजन मागध पायौ अपनो भाग ॥'

श्रीमद्०— या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो क्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयानाः ॥
(१०-४४-१५)

परमानन्द— हरिलीला गावत गोपीजन आनन्द मे निसिदिन जाई।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नयन व्रज जन सुखदाई।
दोहन मण्डन खण्डन लेपन मण्डन गुरु सुत, पति सेवा।
चारि याम अवकास नही पल सुमिरत कृष्ण देव देवा ॥

श्रीमद्०— यानि यानीह गीतानि तद्वालचरितानिच।
दधि निर्मन्थने काले यत १० ९ २

परमानन्द मात जसोदा दह्यौ बिलोवे प्रमुदित बाल-गोपाल जस गावे

श्रीमद्०— रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च ।
स्विन्नं वक्त्रं कबर विगलन्मालती निर्ममन्थ ॥
तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिं ।
गृहीत्वा दधिमन्थ न न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥
(१०।९।३–४)

परमानन्द— दधि मथति ग्वालि गर्वीली री ।
कनक झुनक कर कंगन बाजे बाँह डुलावति ढीली री ।

× × ×

परमानन्द नन्द नन्दन को सर्वसु दियो है छबीला री ।

तथा 'चचल अचपल्न कुच हारा वली वेणी चल स्वासित कुसुमाकर' ।

श्रीमद्०— मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति ।
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् । (१०।८।२९)

परमानन्द— 'ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाट सुचालिगोऊ की माई ।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गारि दै मुरि मुसुकाई ।

श्रीमद्०— कथ्यतां मे पितः कोऽयं सभ्रमो व उपागतः ।
किं फलं कस्य चोद्दिशः केन वा साध्यते मखः ॥ (१०।२४।३)

परमानन्द— यह विसमय चित मोहि कौन की करति पुजाई ।
याकौ फल है कहा कहो तुम ब्रजपति राई ।
नाम कहा या देव को कौन लोक को राज ।
इतनो बलि यह लागत है हमारो करत कहा काज ।

श्रीमद्०— हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द व्रज कुमारिका. ।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्
आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृ'प सैकतीम् ॥

× × × ×

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुत देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।
(१०।२२।१–४)

परमानन्द— मान री मान मेरो कह्यौ ।

× × ×

प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ,
नन्दगोप सुत मागि भलौ वर भाग अपनेते जु लह्यौ ।

इस प्रकार के साम्य परमानन्ददास जी के अनेक पदों में प्राप्त होते हैं । भागवतोक्त
भी में मिल जाते हैं

कृष्णदास

कृष्णदास का जीवन वृत्तान्त भी चौरासी वैष्णवन की वार्ता में मिलत उल्लेख नाभादास जी के 'भक्तमाल' मे भी हुआ है। उनकी जीवन घटनाएँ बा बड़ी विवादास्पद है। सम्प्रदाय के विद्वानो के सत्संग से कृष्णदास जी को काव्य का अच्छा ज्ञान हो गया था। सम्प्रदाय मे उनकी ख्याति सुकवि और कीर्तनका है। उन्होंने शृंगार भक्ति-पूर्ण अनेक पदों की रचना की है। उनके रास-लीला सरस और कवित्वमय है। बाल-लीला, रूप-माधुरी तथा रास से सम्बन्ध रख अनेक ऐसे पद है जो श्रीमद्भागवत से तुलनीय है। कृष्णदास ने कुम्भनदा गिरिराज को 'हरिदास वर्य' ही कहा है—

> "बन्यो अद्भुत भेष गाजत मुरलिका उल्लास,
> कृष्णदास नमित चरण हरिदास वर्य निवास।"

गिरिराज को देखने से इन्हे बड़ा आनन्द होता था तथा उसके दर्श उन्होंने भागवत के शब्दों मे ही वर्णन किया है। हम इनके दो-चार पद करते हैं—

(१) नन्द को लाल व्रज पालने झूले।
अलक अलकावली, तिलक गोरोचना, चरन अंगुष्ट मुख किलकि फूले
नैन अजन-रेख, मुख अभिराम सुठि, कठ केहर करज किंकिनि कटि मूले
'कृष्णदास' नाथ रसिक पिय गिरवर-धरन, निरखि नागर देह-गेह भूले

(२) जै-जै लाल गोवर्धनधारी, इन्द्र-मान भंग कीनों।
बाम बाहु राख्यौ गिरि-नायक, दासन को सुख दीनों॥
सात दिवस सुरपति पचि हारचो गोसुत-सींग न भीनो।
'कृष्णदास' स्वामी मोहन के, पांय परचो मति-हीनों॥

(३) रास-रस गोविन्द करत विहार।
सूर-सुता के पुलिन रम्य महँ, फूले कुँद मँदार॥
अदभुत सत दल निकसति कोमल, मुकुलित कुमुद कछार।
मलय पौन बहै, सरद पूनिमा-चन्द्र, मधुप झंकार॥
सुघर राय, संगीत-कला-निधि, मोहननन्द कुमार।
व्रज-भामिनि संग प्रमुदित नाँचत, तन चर्चित घनसार॥
उभय स्वरूप सुभ्राता सीमा, कोक-कला सुखसार।
'कृष्णदास' स्वामी गिरिधर पिय, पहिरें रसमय हार॥

(४) गिरिधर देखेंई सुख होय।
नैनवत कों यहै परमफल, यों ही विधित भई लोय॥
महामत्त नील अंबुज कों, रूप लियो है निचोय।
नाथ नव रगहि मिल बिरहै दुख होय

(४) तरनि तनय तीर आवत है प्रात सम गेंदुक खेलत देख्यौ आनँद को कंदवा।
काछिनी किंकिनी कटि पीतांबर कसि बाँध, लाल उपरना सिर मोरन के चंदवा।
पंकज नैना सलोल बोलत मधुरे बोल, गोकुल सुन्दरि सँग आनँद सों छँदवा।
'कृष्णदास' प्रभु गिरि गोवरधनधारी लाल, चारिचित मनि खोलत कंचुकी के बँदवा।।

गोविन्दस्वामी

गोविन्दस्वामी का जीवन-वृत्तान्त 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्ट सखान की वार्ता' में मिलता है। सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले भी गोविन्दस्वामी एक अच्छे संगीतज्ञ तथा सुकवि थे। कहा जाता है कि प्रसिद्ध संगीतकार तानसेन ने भी उनसे संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। उनके स्फुट पदों का संकलन कांकरौली से प्रकाशित हो चुका है जिसमें लगभग ५७५ पद हैं। अष्टछाप के कवियों में संगीतकार की दृष्टि से इनका नाम सूरदास तथा परमानन्ददास जी के बाद आता है। इनके पदों में राधा कृष्ण की श्रृङ्गारात्मक लीलाएँ हैं। बाल-लीला सम्बन्धी इनके अनेक पद ऐसे हैं जो भागवत की बाल लीला से मिलते हैं। इन्होंने भागवत का ज्ञान कथा वार्ताओं के माध्यम से प्राप्त किया था, इसलिए इनके पदों में भागवत की झलक मात्र मिलती है वैसे पुष्टि सम्प्रदाय के अन्य कवियों की भाँति इन्होंने भागवत के मुख्य-मुख्य सामान्य तथा विशेष सभी तत्त्व ग्रहण किए हैं। एक दो पद नमूने के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१)

प्रात समय उठि जसुमति जननी, गिरिधर सुत कों उबटि न्हवावति।
करि सिंगार, बसन भूषन सजि, फूलन रचि-रचि पाग बनावति।।
छूटे बंद, बनो अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति।
सूथन लाल फुँदना सोभित, आजु की छबि कछु कहत न आवति।।
विविध कुसुम की माला उर धरि, श्रीकर मुरली बेनु गहावति।
लै दर्पन देखें श्री मुख कों, 'गोविन्द' प्रभु-चरनन सिर नावति।।

(२)

निर्तत लाल गोपाल रास में, सकल ब्रज-बधू संगे।
गिड़ गिड़ तैथग, ततथेई ततथेई, भामिनि रति-रस रंगे।।
सरद विमल नभ उडुपति राजत गावत तान तरंगें।
ताल, मृदंग, झाँझ और झालरि बाजत, सरस सुगंधें।
सिव, बिरचि मोहे, सुर धुनि सुनि, सुर, नर, मुनि गति भंगे।
'गोविन्द' प्रभू रस-रासि रसिक मनि, भामिन लेत उछंगे।।

कहीं-कहीं उनके पद भागवत के श्लोकों के अनुवाद से भी लगते हैं। नीचे के उदाहरण देखिये—

(क) अहो पिय कैसेक धरत मृदुल चरन धरनि।
गिरि की कांकरी अति कठिन तृन अंकुर रसनाधर
जियहि सुधि सुधि करि करि छतियाँ जरनि।

सरसि सुजात गरभ को प्रिय मुसत हमारे कठिन ।
उर सहसा हीम धरि सक डरनि ।।
तुलनाय श्रीमद्भागवत १०।३१।१९ तथा १०।३१।२

(ख) वेनु बाजत री मोहन कल ।
बाम कपोल बाम भुज पर धरि वलगित भ्रु व रस चपल द्रगंचल ।
सिन्दूराहरण अधर सुधारस पूरत रन्ध्र मृदुल अंगुलीं दल ।
× × × ×
मोहत व्योम विमान वनिता खसित नीवी सुध्यौ न अंचल ।।
तुलनीय श्रीमद्० १०।३५।२-३

(ग) धनि धनि वृन्दारन्य कुरंगिनि ।
श्रीमुख कमल पीवति सखी, सादर कृष्णसार पति संगनि ।
चरन कमल कुंकुम रूपित तृन कुच अवलेप करति,
तजति आधि मनसिज पुलिंदिनि ।
गोविन्द प्रभु को जु अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरंगिनि ।।
तुलनीय—श्रीमद्० १०।२१।११ तथा १०।२१।१७

छीतस्वामी

इनका जीवन-चरित्र भी वार्ता-साहित्य मे प्राप्त होता है। इनका रचा हुआ कोई अलग से ग्रन्थ तो प्राप्त नही होता, कीर्तनों-संग्रहों में इनके स्फुट पद अवश्य मिलते हैं, जिनकी संख्या २०० से अधिक है। बाललीला रूपासक्ति, रास-रंग तथा भक्त की भावना के इनके अनेक पद हैं। भागवत का ज्ञान इन्हे भी कथा-वार्ता से ही प्राप्त हुआ था। भागवत कथा की प्रशंसा करते हुये इन्होने लिखा है—

'जब लगि श्री भागवत कथा रस तब लगि कलजुग नाही ।'

श्रीमद्भागवत को इन्होने वेद-वाणी के रूप मे स्वीकार किया है:—

गो बानी जु वेद की कहियत श्री भागवत भलें अवगाही ।'

भागवत के प्रति अपने अनन्य प्रेम के लिए उन्होने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का ऋण स्वीकार किया है।

'तन-मन-प्रान समर्पन कीनो श्री भागवत विधि नई सिखाई'

गोस्वामी विट्ठनाथ जी को इन्होंने कृष्ण रूप में ही स्वीकार किया है जैसा कि इन्होंने लिखा भी है—

श्री कृष्न कृपालु कृपानिधि, दीनबन्धु दयाल ।
दामोदर बनवारी मोहन, गोपीनाथ गुपाल ।।
राधारमन बिहारी नटवर, सुन्दर जसुमति बाल ।
माखन चोर गिरिवर मनहारी, सुखकारी नंदलाल ।।
गोचारी गोविंद गोपपति भवन मंजुल ग्वाल
'छीत स्वामी सोई अब प्रगटे कलि में वल्लभ लाल ।

इनके लीला विषयक पदों में राधावल्लभीय सम्प्रदाय के भक्तों में पदों
है काव्य सौष्ठव की दृष्टि से तो इनके पद बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है
का उनमें स्पष्ट प्रतिबिम्ब है।

जदास

अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कुम्भनदास जी के ये सबसे छोटे पुत्र थे। वार्ता
ीवन के सम्बन्ध मे अनेक चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख हुआ है। उन
ह प्राप्त होते हैं। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उनके अनेक पद उच्च कोटि के
जन्म से लेकर गोपी-विरह तक की व्रज-लीलाओं का वर्णन किया है।
पद श्रीमद्भागवत से तुलनीय हैं। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते है-

(१) मोहन चलत बाजत पंजनि पग।
सब्द सुनत चकृत ह्वै चितवत, त्यों ठुमकि ठुमकि धरत है डग।
मुदित जसोदा चितवति सिसु तन, लै उछग लावै कंठ सु लग।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल को, ब्रज जन निरखत ठाड़े ठग-ठग

(२) कान्ह सों कहत जसोदा मैया।
मेरे मोहन अनत न जैये, घरहि खेलौ दोऊ भैया॥
ए तरुनी जोबन मदमाती, झूठेंहि दोष लगावैं दैया।
तुम तो मेरे प्रान जीवन-धन, मथि कें दूध पिवाऊँ छैया॥
'चतुजर्भुदास' गिरिधरन कह्यो तब हौ बन जाऊँ चरावन गैया।
सुनि जननी मन अति हरषानी, मुख चूंमत और लेत बलैया॥

(३) घर-घर डोलत माखन खात।
ग्वाल-बाल सब सखा संग लिये, सूने भवन धँसि जात।
जब ग्वालिनि जल भरि घर आई, तबहिं भजे मुसिकात।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल सों, नाहिंन कछू बसात॥

(४) सुन्दर सिला खेल की ठौर।
मदन गुपाल जहाँ मधिनायक, चहुँ दिसि सखा-मंडली और॥
बाँटत छाक गोवरधन ऊपर, बहु बिधि कानन बैठे ठौर।
हँसि-हँसि भोजन करत परस्पर, चाखि-चाखि लै अरोगत कौर॥
कबहुँक बोलि गिरि के सिखर पर, लै-लै नाम धूँमरी धौर।
'चतुर्भुज' प्रभु लीला रस रीझे, श्री गिरिधरलाल रसिक सिरमौर॥

(५) मथनियाँ दधि समेत छिटकाई।
भूली सी रह गई चितै उत, छिनु न बिलोमन पाई॥
आगें ह्वै निकसे नंदनंदन, नैनन हू की सैन जनाई।
छाँड़ि नेति दई कर तें, उठि पाछैं ही बन धाई॥
लोक-लाज अरु वेद मरजादा, सब तन तें बिसराई।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन मम हँसि कठिन ठगौरी लाई

(६) प्यारी भुज ग्रीवा मेलि, नृत्यत पीय सुजान ।
मुदित परस्पर, लेत गति में सुगति,
रूप-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ।।
सरस मुरली-धुनि सों मिले सप्त सुर,
रास-रग भीने गावैं और तान बंधान ।
'चतुर्भुज' प्रभु स्याम-स्यामा को नटनि देखि,
मोहे खग मृग अरु थकित व्योम विमान ।।

नन्ददास

कवित्व तथा प्रेमाभिव्यक्ति की दृष्टि से ब्रजभाषा के कवियों मे नन्ददास
स्थान माना जाता है। कहा जाता है कि यदि अष्टछाप के कवियों मे सूर-सूर हैं,
निश्चित रूप से चन्द्र है। ध्रुवदास जी ने उनकी प्रशंसा इस प्रकार की है—

नन्ददास जो कछु कह्यौ, राग-रग में पागि ।
अच्छर सरल सनेहमय, सुनत होति हिय जागि ।।
रसिक-दसा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुधार ।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटत प्रेमजल-धार ।।
रसिक बावरों-सो फिरै, खोजत हित की बात ।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात ।।

नाभादास जी ने भी अपने भक्त-माल मे उनकी प्रशंसा की है, उन्होंने लिख

लीला-पद-रस-रीति-ग्रन्थ-रचना मे नागर ।
सरस-उक्ति-युत-युक्ति, भक्ति-रह-गान-उजागर ।।
प्रचुरय पथ लौं सुजसु रामपुर ग्राम-निवासी ।
सकल सुकल-सवलित भक्त-पद-रेनु-उपासी ।।
चन्द्रहास-अग्रज-सुहृद परम प्रेम-पथ में पगे ।
नंददास आनन्दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित-रगमगे।।

नन्ददास जी के काव्य का कलापक्ष इतना मोहक तथा आकर्षक है कि उनक
सामान्यरूप से यह उक्ति प्रसिद्ध है, 'औरै कवि गढिया, नन्ददास जड़िया ।'

उन्होंने अपने पदों मे भिन्न-भिन्न शैलियों तथा छन्दों का प्रयोग किया है
माधुर्य तथा शब्दो की साज-सज्जा इनकी कविता की विशेषता है। इनकी छोटी-बडी
प्रसिद्ध है जिनमें रस-मंजरी, रूप-मंजरी, बिरह-मंजरी, रुक्मिणी-मंगल, भंव
पञ्चाध्यायी, सिद्धान्त-पञ्चाध्यायी, दशमस्कन्ध-भाषा तथा गोवर्द्धन-लीला विशे
इनकी लगभग सभी रचनाओं में श्रीमद्भागवत का अनुसरण हुआ है। दशमस
तो भागवत के दशमस्कन्ध के पहले उन्तीस अध्यायों का भावानुवाद ही है। श्रीम
इनकी अपार निष्ठा थी जैसा कि इन्होंने लिखा भी है—

'जब दिन मनि श्रीकृष्ण दृगनि तैं दूरि भए दुरि ।
पसरि परयो अँधियार सकल संसार घुमडि घुरि

तिमिर ग्रसित सब लोक ओक लखि दुखित दया कर ।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभानु भागवत विभाकर ।।

श्रीमद्भागवत का इनके काव्यो में सबसे अधिक अनुसरण हुआ है । इनके कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भागवत की कथाओ के आधार पर लिखे गये हैं । जिस प्रकार रामचरित के विविध रूपो का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने विविध शैलियो तथा विभिन्न ग्रन्थो मे किया है, उसी प्रकार नन्ददास जी ने कृष्ण चरित का निरूपण विविध शैलियो तथा विविध ग्रन्थो मे किया है । कहा जाता है कि नन्ददास जी ने रामचरितमानस की भाँति समस्त भागवत का ही ब्रजभाषा पद्य मे अनुवाद किया था । भागवत के कथावाचक पण्डितों के अनुरोध से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास जी को यह आदेश दिया कि रास-पञ्चाध्यायी को छोड़कर वे भागवत के शेष अनुवाद को यमुना जी को अर्पित कर दें । नन्ददास जी ने उनकी आज्ञा का पालन किया । उनकी 'रास-पञ्चाध्यायी' मे भागवत के केवल पाँच अध्यायो की कथा है । भागवत के रास पञ्चाध्यायी को उन्होंने 'निगम-सार' माना है—

'श्री भागवत' सुनाम परम अभिराम, परम मति ।
निगम-सार सुकुमार बिना गुरु-कृपा अगम अति ।।
ताही मे मनि अति रहस्य यह 'पंचाध्यायी' ।
तन मे जैसे पंच प्रान, असि सुक मुनि गाई ।।
परम रसिक इक मित्र मोहिं तिन आग्या दीनी ।
ताही ते यह कथा जथा मति भाषा कीनी ।।

सम्पूर्ण रास-पञ्चाध्यायी, उसका विधान, क्रिया-कलाप, उक्ति-प्रत्युक्ति तथा प्रेम-भाव भागवत के अनुसार है । नन्ददास की 'रास-पञ्चाध्यायी' का अध्ययन करने पर भागवत की 'रास-पञ्चाध्यायी' का अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है । केवल एक उदाहरण देखिए—

जदपि जगत् गुरु नागर जसुमति नन्द दुलारे ।
पै गोपिन के प्रेम अग्र अपने मुख हारे ।।
तब बोले पिय नव किसोर हम ऋनी तिहारे ।
अपने हिय तें दूरि करौ, सब दोस हमारे ।
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जो ।
हे मन हरनी तरुनी, उऋन न होउँ तबौं तो ।।

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०।३२।२२)

इसी प्रकार दशमस्कन्ध भाषा के पद भी भागवत के आधार पर लिखे हैं । नन्ददास जी ने कलात्मक ढंग से श्रीमद्भागवत के विभिन्न प्रकरणो की व्याख्या की है । उन्होंने अनुवाद का दावा कहीं नही किया । रास पचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या मे उन्होंने भागवत के आधार पर रास पञ्चाध्यायी मे की है । गोवर्द्धन लीला मे भी दशमस्कन्ध के छन्दों का ही समावेश है । भँवर-गीत में नन्ददास जी ने गोपियों के व्यग्य में अवश्य भागवत को आधार बनाया है परन्तु गोपियों की उक्ति-प्रत्युक्ति मे उन्होंने अपनी पूर्ण मौलिकता का परिचय दिया है ... भी प्रेम भक्ति के पट में तनिक सी खोंच भी बर्दाश्त नहीं कर सकते और उन्होंने

गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का बड़े तीखे छन्दो मे प्रत्याख्यान कराया है कृष्ण की बाल लीलाओ के निरूपण मे भी उन्होंने अपनी कल्पना का पूरा उपयोग किया है। नन्ददास जी के सब ग्रंथो को मिलाकर श्रीमद्भागवत के सभी मुख्य-मुख्य स्थलो का भाव-निरूपण प्रस्तुत किया जा सकता है। भागवत के सामान्य और विशेष सभी तत्व उनके ग्रन्थों मे आ गए हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में भगवतानुसारी ब्रज-भाषा साहित्य परिमाण तथा सौष्ठव की दृष्टि से अन्य भाषाओ की अपेक्षा सबसे अधिक है। सम्पूर्ण साहित्य की मूल प्रेरणा श्रीमद्भागवत ही है परन्तु सभी कवियों ने अपनी-अपनी प्रतिभा तथा वैदुष्य के अनुसार भगवतोक्त सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन कवियों का हिन्दी के परवर्त्ती कवियो पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा था, तथा श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण भक्ति साहित्य का मूल स्तम्भ बन गया।

श्रीमद्भागवत तथा हिन्दीतर मध्ययुगीन भाषाओं का साहित्य

हम पहले कह चुके है कि श्रीमद्भागवत का भारत की मध्ययुगीन साधना-पद्धति में बड़ा योगदान रहा है। निश्चितरूप से आचार्य रामानुज के पश्चात् श्रीमद्भागवत का सम्पूर्ण भारत में बड़ा व्यापक प्रचार हुआ। श्रीमद्भागवत के महात्म्य में भक्ति-आन्दोलन की रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है। नारद के पूछने पर भक्ति स्पष्ट रूप से कहती है :

उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता। क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतांगता ॥
तत्रघोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका। दुर्बलाहं चिरं याता पुत्राभ्यां सह मन्दताम् ॥
वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी। जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥

(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४–५)

अर्थात् मैं द्रविड देश मे उत्पन्न हुई। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते हुए कर्नाटक देश में मुझे पोषण प्राप्त हुआ परन्तु महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रदेश मे यात्रा करते हुए मुझे कुछ जीर्णता का अनुभव होने लगा। घोर कलिकाल के प्रभाव से, अनेक पाखण्डों के कारण मेरे अंग छिन्न-भिन्न हो गए। मैं बहुत दिनो तक दुर्बल रही तथा ज्ञान, वैराग्य नाम के अपने इन दोनों पुत्रों के साथ मुझे और भी मान्द्य हो गया लेकिन वृन्दावन-प्रदेश में आकर मैं फिर नयी-नवेली, यौवन-सम्पन्न सुन्दर युवती के रूप मे परिणत हो गयी हूँ। भागवतकार का यह कथन निश्चित रूप से सम्पूर्ण भारत के भक्ति आन्दोलन की ओर संकेत करता है। ब्रज के सम्प्रदायों के भक्ति-साहित्य पर हम विचार कर चुके हैं। अब हमे भक्ति के कथन के संदर्भ में अन्य भाषाओं के भागवतानुसारी साहित्य को भी देखना चाहिए।

दक्षिण की भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्य मे निश्चित रूप से भक्ति-भावना का वेग अधिक है और उनका साहित्य अपेक्षाकृत प्राचीन भी है। इस अध्याय मे हम पहले दक्षिण की भाषाओं के साहित्य पर विचार करेंगे। परिमाण की दृष्टि से तेलुगु का भक्ति-साहित्य बड़ा विशाल है। तेलुगु मे वैष्णव काव्य की धाराएँ बड़ी समृद्ध है। राम और कृष्ण दोनों ही भगवत्स्वरूपों को लेकर वहाँ विराट साहित्य की सर्जना हुई है। केवल राम-कथा को लेकर लगभग २०० रचनाएँ हुईं, तथा अनेक रामायण लिखी गयी। इन राम-परक ग्रन्थो में श्रीमद्भागवत के सभी सामान्य तत्त्व मिल जाते है। यहाँ हम राम-काव्यों को न लेकर केवल उन कृष्णपरक रचनाओं को ले रहे है जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव पड़ा है।

तेलुगु के पश्चात् तमिल का साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव में भागवतकार का द्रविड देश से अभिप्राय तमिल प्रदेश ही लगता है। तमिल का वैष्णव काव्य बहुत प्राचीन है और कहना न होगा कि प्रेमाभक्ति को रूप देने वाला तमिल का प्रबन्ध साहित्य ही था।

तथा कन्नड में भी भागवतानुसारी साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। आर्य परिवार की भाषाओं में बंगला का कृष्ण-काव्य म से चैतन्य परवर्ती है। मराठी का भक्ति-काव्य सन्तों की भावना से अधिक आछन्न है। गुजराती मे कृष्ण-काव्य काफी मिलता है, पर उनमें व्रज के सम्प्रदायों की झलक ही अधिक है। आगे के पृष्ठों में हम इन भाषाओं के साहित्य पर थोड़ा-थोड़ा विचार करेंगे।

तेलुगु का भागवत साहित्य

मडिकिसिंगन्न

तेलुगु भाषा मे भागवतविषयक साहित्य के अन्तर्गत मडिकिसिगन्न[1] का भागवत दशम स्कन्ध का अनुवाद कदाचित् सर्वप्राचीन है। मडिकिसिगन्न का काल ई० सन् १३७५ से १४३५ तक माना जाता है। उक्त अनुवाद के केवल तीन काण्ड उपलब्ध हैं। मथुरा काण्ड, कल्याण काण्ड और जगदभिरक्षा काण्ड। प्रथम काण्ड मे अक्रूरकृत कृष्णस्तुति से लेकर जरासंध के मथुरा पर द्वितीय आक्रमण तक, दूसरे मे रुक्मिणी के विवाह प्रसंग से उषाहरण तक तथा तृतीय में नृग-शाप से लेकर शिशुपाल बध तक का वर्णन है। यह रचना प्रसादगुण से ओत-प्रोत सरस शैली में लिखित है। इससे कवि का संस्कृत ज्ञान तथा शास्त्रीय पाण्डित्य भी प्रकट होता है। शृङ्गार-वर्णन मे नितान्त समय और मर्यादा का निर्वाह किया गया है। उदाहरणार्थ रुक्मिणी के नख-शिख वर्णन को ही ले लीजिए जिसमें औचित्य की तनिक भी अवहेलना नही की गई, कवि ने अपनी कविता की उपमा शिव के जटाजूट से निर्गत गंगा की धारा से दी है।

बम्मेर पोतन्न

बम्मेर पोतन्न (१४५०—१५१० ई०) की अमरकृति 'महाभागवत' तेलुगु साहित्य का एक अत्यन्त प्रदीप्त रत्न है जिसका मङ्गलाचरण ही अद्वैतवाद की समन्वय भावना का गम्भीर प्रभाव सूचित करता है। मङ्गलाचरण मे भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणपति, सरस्वती, दुर्गा तथा लक्ष्मी की प्रार्थना है। सरस्वती की स्तुति में चार और अन्य देवताओं की स्तुति में एक एक श्लोक कहा गया है। यों तेलुगु के पुराने कवियों में सुकवि प्रसंशा और कुकवि निन्दा के पश्चात् मूल विषय प्रारम्भ करने की परिपाटी थी फिर भी पोतन्न ने सच्चे सन्त की भांति पर-निन्दा छोड़कर केवल सुकवि प्रशंसा का ही समावेश किया। यह प्रसंसा भी किसी के नाम निर्देश के बिना सामान्य रूप से ही की गई है। उन्होंने अपनी महान् कृति को अपने इष्टदेव भगवान् राम को समर्पित किया है। वैष्णव होते हुए भी वे शिव पूजा के समर्थक थे। साम्प्रदायिक भेद-भाव उन्हे छू तक न गया था। एक स्थान पर वे कहते हैं 'जो अपने करो से भगवान् शिव का अर्चन न करे और भगवान विष्णु का मुख से गुणगान न करे सत्य एवं दया से दूर हो उस मनुष्य का जन्म व्यर्थ है। वह पुत्र नही 'मातृजठरकुठार' है।'[2]

---

१ आपरमेश्वर मकुटव्यापित गङ्गा प्रवाह कविता स
ल्लापुड्गु मडिकिसिंगन्न जे पङ्क कीर्तिगल दें श्रीमंतुनकुन्

२ चेतुलारंग शिवुनि बूजिपडेनि नोरु नोव्वंग हरिकीर्ति नुडुवडेनि न।
दमयु सत्यमु लोनुगादल-पडेनि मलुगनेटिकि तल्लुल कुडुप चेटु

प्रसिद्ध है कि एक दिन पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण वेला में नदी किनार वे महेश्वर के ध्यान से मग्न थे, तभी उनके हृदय में एक सुन्दर राजकुमार का साक्षात् हुआ जिसने अपने आपको रामचन्द्र बताया और पोतन्न से तेलुगु मे भागवत का प्रणयन करने को कहा। वे हर्ष से गद्गद हो उठे। अपने ऊपर असीम हरिकृपा समझ कर उन्होंने स्वयं को निमित्तमात्र और राम को वास्तविक प्रणेता मानते हुए भागवत की रचना प्रारम्भ की जिसे उन्होंने भगवान् कृष्ण को समर्पित किया है। किंवदन्ती है कि इस ग्रन्थ की प्रशंसा सुनकर सिंगभूपाल ने कवि से कहा कि इस कृति को मुझे समर्पित करो। पर भक्तप्रवर पोतन्न प्राकृतजन को कैसे समर्पित करते। राजा रुष्ट हो गया। उसने ग्रन्थ की समूची पाण्डु लिपि को भूमि में गड़वा दिया। कुछ दिन बाद उखाड़ने पर वह कृमिजीर्ण मिला उसके कुछ अंश नष्ट हो चुके थे जिन्हें पोतन्न के शिष्यो ने पूरा किया।

प्रथम उल्लेख से पोतन्न के भक्ति विषयक उदार दृष्टिकोण का पता चलता है। महेश का ध्यान करते हुए राम का साक्षात्कार और राम के प्रति ग्रन्थ-समर्पण स्वीकार करके भी कृष्ण को समर्पित करना इस तथ्य का द्योतक है कि वे शिव, राम और कृष्ण में तत्वत कोई अन्तर नही समझते थे, और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनके मङ्गलाचरण से भी इसकी पुष्टि हो जाती है।

दूसरी किंवदन्ती का यदि कुछ अर्थ हो सकता है तो यही कि पोतन्न के महाभागवत का कुछ अंश कालक्रम से नष्ट हो गया जिसे उनके शिष्यो ने फिर से रचकर जोड दिया। 'रसार्णव सुधाकर' नामक संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के रचयिता, पण्डित-पालक नृप सिंगभूपाल ने महाभागवत जैसे पवित्र ग्रन्थ को पृथ्वी में गड़वा देने का गर्हित कार्य किया हो यह विश्वास नहीं होता। जो भी हो, आन्ध्र महा भागवतमु में पोतन्न की रचना के साथ अन्य कवियों की रचना भी सम्मिलित है। पंचम स्कन्ध के प्रथम एवं द्वितीय आश्वास गंगन्न ने, षष्ठ स्कन्ध एर्चूरिसिंगन ने तथा एकादश एवं द्वादश स्कन्ध का प्रणयन वेलिगंदलन्नारूप ने किया। इसके अतिरिक्त द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा दशम स्कन्ध में जहाँ तहाँ खण्डित अंशों की पूर्ति भी वेलिगंदल ने की। आन्ध्र समाज में इस ग्रन्थ का बड़ा महत्व है। इसका प्रतिदिन पारायण करने वाले सहस्रों व्यक्ति हैं। प्रचार और प्रभाव की दृष्टि से इसकी तुलना महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस से की जा सकती है। आन्ध्र मे इतना व्यापक प्रचार अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं है। शायद ही कोई तेलुगुभाषी शिक्षित व्यक्ति हो जिसे इसके कुछ पद्य कण्ठस्थ न हो।

पोतन्न की यह कृति संस्कृत के श्रीमद्भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद मात्र ही नहीं है। इसमें कवि की मौलिक कल्पनाओं एवं नवीन विचारोत्तेजक भावनाओं का समावेश होने के कारण जो नवीनता और रमणीयता आ गई है वह किसी सहृदय पाठक से छिपी रह नहीं सकती। आकार की दृष्टि से भी यह अपने आधारग्रन्थ की अपेक्षा अधिक विशाल है। मत्स्य, स्कन्द आदि पुराणों के अनुसार मूल श्रीमद्भागवत में अठारह सहस्र पद्य थे जबकि उपलब्ध प्रति में बाईस सहस्र तक मिलते है। महाकवि पोतन्न के अनुवाद में पद्यों की संख्या तीस सहस्र है। कारण यह कि पोतन्न ने श्रीधरीय भाष्य के आधार पर अर्थविशदता का समावेश करने का स्तुत्य प्रयास किया है। भक्ति भाव एवं काव्य-सौन्दर्य के इस संगम में अवगाहन करने से मन का मल ही नहीं कटता परम शान्तिदायिनी तृप्ति भी प्राप्त होती है।

भक्ति भावातिरेक से ओत प्रोत स्थलो मे प्रह्लादकथा गजेन्द्र मोक्षण वामनावतार कुचेलो पाख्यान (सुदामाचरित) तथा संपूर्ण दशम स्कन्ध उल्लेखनीय है एक उदाहरण लीजिए। भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए प्रह्लाद अपने पिता से कहते है—

'अधेन्दूदयमुल, महाबधिर शंखारावमुल, मूकसद्ग्रन्थाख्यानमुल नपुंसकवधूकांक्षल, कृतघ्नावली वधुत्वंबुलु, भस्महव्यमुलु, लुब्धद्रव्यमुलु क्रोधसडबबुल हरिभक्तिवर्जितुलरिक्तव्यर्थ ससारमुल ।

हरि भक्तिशून्य मनुष्य का जीवन व्यर्थ है। जैसे अन्धे के सम्मुख चन्द्रोदय, बहरे के लिये शंख का शब्द, मूकजन द्वारा की हुई सद्ग्रन्थ व्याख्या, नपुंसक का युवतिप्रेम और सूअर के शरीर पर चन्दन का लेप।

भागवत के इति वृत्तात्मक स्थलों मे भी कमनीय-काव्य गुणों का समुचित समावेश कर सर्वथा नवीन रूप देने मे पोतन्न की प्रतिभा स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। श्रीमद्भागवत मे प्रह्लाद के गुरु एवं प्रह्लाद का वार्तालाप इस प्रकार हुआ है—

> वत्स प्रह्लाद ! भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा।
> बालानिति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः।
> बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत्।
> भण्यतां श्रोतुकामाना गुरूणां कुलनन्दन।[1]

अर्थात् वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो। ठीक बतलाओ, झूठ मत बोलना। तुम्हारी बुद्धि विपरीत कैसे हो गई ? और किसी बालक की बुद्धि तो ऐसी नही हुई। बताओ तो सही, हम जानना चाहते है कि किसी ने तुम को बहका तो नही दिया या स्वतः ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गई है ?

इस पर प्रह्लाद उत्तर देता है—

> यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसन्निधौ।
> तथा मे विद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया[2] ॥

गुरुजी ! जिस प्रकार लोहा स्वतः ही चुम्बक की ओर खिचा चला जाता है इसी प्रकार मेरा चित्त भी स्वतः चक्रपाणि भगवान् की ओर खिच जाता है।

पोतन्न ने इसका अनुवाद तो किया ही है परन्तु अपनी कल्पना से और भी कुछ जोड़कर प्रसङ्ग को इतना मार्मिक बना दिया है कि चित्त गद्गद् हो उठता है। वे लिखते हैं—

> मन्दारमकरंद माधुर्यमुन देलु मधुपंबु वोवुनें मदनमुलकु।
> निर्मल मन्दाकिनी वीचिकलद्गु रायंच जनुने तरङ्गिणुलकु।
> ललित रसालपल्लव खादियै चोक्कु कोयिल सेरुने कुटजमुलकु।
> पूर्णेन्दुचन्द्रिकास्फुरितचकोरकं बरुगुने सान्द्रनीहारमुलकु।
> अम्बुजोदर दिव्यपादारविन्द चिन्तनामृतपानविशेषमत्त।
> चित्त मेरीति नितरंबु चेरनेर्चु विनुतगुणशील ! माटलु वेयुनेल।

१ सप्तम स्कन्ध

२ ...

अर्थात् मन्दार पुष्पों के मधुर मकरन्द का स्वाद लेने वाला भ्रमर कभी धतूर की ओर जायेगा ? मन्दाकिनी नदी की निर्मल लहरियों पर तैरने वाला हंस क्या क्षुद्र नदियों में विहार करेगा ? कोमल रसालपल्लवों का आस्वादन कर मदमत्त कोयल क्या कभी कुटज की ओर आकृष्ट होगा ? पूर्णिमा के उज्ज्वल चन्द्र की शीतल किरणों को चखने वाला चकोर ओस की बूँदों पर रीझेगा ? इसी भाँति भगवान् विष्णु के चरणारविंदो के स्मरणरूपी अमृत के पान से मत्त मन भला अन्य किसी भी विषय की ओर आकृष्ट होगा ?

कहने की आवश्यकता नहीं कि पोतन्न की इस उक्ति को पढ़ते ही भक्तप्रवर सूरदास का यह पद स्वतः सामने आ जाता है।

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै।
जैसे उडि जहाज को पंछी पुनि जहाज पर आवै।
परम गङ्ग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।

कविता कामिनी के प्रत्येक पद के साथ छठती हुई नूपुरों की झनक और उमड़ती हुई रसधारा की कलकल ध्वनि मिलकर पोतन्न के काव्य में एक अद्भुत संगीत की सृष्टि करता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ध्रुवकीर्तिन् हरि पेड्लियाडे, निजचेनोहारिणिन् भानवै।
भवगांभीर्यविहारिणिन् निखिलसंपत्कारिणिन्।
साधुबाधव सत्कारिणि पुण्यचारिणि महादारिद्रमहारिणिन्।
श्रुतिभूपाबन्धारिणिन् गुणवतीचूडामणिन् रुक्मणिन्।

रुक्मिणी के इस वर्णन में शब्दों का अनुरणन कितना श्रुतिसुखद है। लगता है जैसे नवविवाहिता रुक्मिणी के नूपुर ही झनक रहे हैं।

संस्कृत के कवियों की भाँति पोतन्न श्लेषमूलक उपमाओं की योजना में बड़े दक्ष हैं। पद्यों के बीच में जहाँ-तहाँ जो गद्यांश उनके महाभागवत में मिलते हैं उनमें बाण की ओजपूर्ण शैली का सफल अनुकरण किया गया है। उदाहरणार्थ नैमिषारण्य वर्णन में उद्धृत कतिपय पंक्तियाँ लीजिए—

'मधुवैरिमंदिरबुनु बोले माधवमन्मथचिह्नितं बै, ब्रह्मगेह बुनु बोले शारदान्वितं बै,''' मरुनि कोदण्डंबुनु बोले, पुन्नागशिलीमुखभूषित बै, शैलजानिटलबुनु बोले पुन्नागशिलीमुख-भूषितं बै।'

अर्थात् नैमिषारण्य मधुवैरि के मन्दिर के सदृश माधवमन्मथचिह्नित (विष्णु एव काम से युक्त, वसन्त एवं कामचिह्नों से युक्त) है, ब्रह्मा के भवन के समान शारदान्वित (शारदा से युक्त, शरत्कालीन शोभा से युक्त) कामदेव के धनुष के समान पुन्नागशिलीमुख भूषित (पुन्नाग नामक वृक्ष एवं भौंरों से युक्त, पुन्नाग पुष्प के बाणों से युक्त) तथा पार्वती के मस्तक के समान चन्दन कर्पूर तिलकालंकृत (चन्दन और कपूर के तिलक से अलंकृत चन्दन कपूर और तिलक वृक्षों से शोभित है

कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि पर बाण की कादम्बरी के अन्तर्गत विन्ध्याटवी वर्णन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। केशव के दण्डकारण्य वर्णन से भी इसका आकस्मिक साम्य समझना चाहिए। इस प्रकार की परिश्रमसाध्य शैली का आश्रय सर्वत्र नहीं लिया गया है, अधिकांश कोमल, मधुर एवं प्रसादपूर्ण शैली में है। पीछे प्रह्लादाख्यान से सम्बद्ध एक पद उद्धृत किया गया है जो इस तथ्य का प्रमाण है। समूचा दशमस्कन्ध ऐसी ही सरस, प्रासादिक, मधुर शैली मे है। भाव एव भाषा का अद्भुत सामञ्जस्य काव्यकला का उदात्त निदर्शन प्रस्तुत करता है जिसमे कल्पना की छटा देखे ही बन पड़ती है। चीर-हरण, रासलीला, भ्रमरगीत आदि के प्रसङ्ग विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

हम यह संकेत कर चुके है कि पोतन्न ने अनुवाद करने में 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' का सिद्धान्त नही अपनाया है बल्कि आवश्यक काट-छाँट और परिवर्तन-परिवर्धन द्वारा उसे सामयिक जनरुचि के अनुकूल सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणार्थ श्रीमद्भागवत में चीरहरण-लीला प्रसङ्ग के अन्तर्गत नग्न गोपियो का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ततो जलाशयात् सर्वा दारिका. शीतवेपिताः।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीत कर्शिताः।

तब शीत से ठिठुर कर काँपती हुई वे कुमारियाँ दोनों हाथो से अपने गुप्ताङ्ग को आच्छादित कर जल से बाहर निकलीं।

इस का रूपान्तर महाकवि पोतन्न ने इस प्रकार किया है—

चञ्चरपल्लवकोमल
काञ्चन नव रत्न घटित ककणरुचिरो
दञ्चित कर संछादित पञ्चायुधगेहलगुचु पडतुलवरुसन्।

चञ्चल किसलय के सदृश कोमल एवं रत्न-जटित स्वर्ण-कंकण से शोभित हाथों से पञ्चायुध (काम) के आवास का आच्छादन कर वे जल से बाहर आईं।

दोनो का अन्तर स्पष्ट है, एक में घटना का कथनमात्र है, दूसरे में शब्दों का नादात्मक योजना द्वारा क्रिया का ध्वनिचित्र प्रस्तुत किया गया है, और सबसे बड़ी बात यह है कि 'योनिमाच्छाद्य' जैसे ग्राम्य प्रयोग को इस खूबी के साथ टाल दिया है कि भाव मे किसी प्रकार के परिवर्तन का तो प्रश्न ही नहीं, प्रत्युत अनवद्य हृद्यता का समावेश हो गया है। पोतन्न की यह मौलिकता तेलुगु महाभागवत का सर्वस्व है।

पोतन्न को भागवत का अनुवाद करने का अवसर मिला, इसे उन्होने अपना अहोभाग्य समझा। उनके ही शब्दों में नन्नय्य तिक्कन आदि कवि पुराणों का अनुवाद करके भी श्रीमद्भागवत का अनुवाद न कर पाये। निःसन्देह यह मेरे पूर्व पुण्यो का फल ही है कि मुझे इस पवित्र ग्रन्थ का अनुवाद करने का स्वर्णिम अवसर मिला। इसका अनुवाद कर मैं अपने जीवन को सफल बनाऊँगा जिससे पुनर्जन्म का कष्ट छूट जाये।[1]

---

1 ओनरन् नन्नय तिक्कनादि कवुली युर्विन् पुराणवलुल
तेलुगु जेयुचु मत्पुराकृत शुभाधिक्यं बु दानेद्दिदो।
थेनुगु जेयम्मुन्नु दीनि नेनिंगिंचि ना
जनन बुन सफलबु जेसेद कुल्यवद्य व

वस्तुत यह कृति का सौभाग्य था कि उसका अनुवाद पोतन्न जैसे भक्तप्रवर सहृदय कवि द्वारा सपन्न हुआ जसा कि कहा जा चुका है पोतन्न ने भक्ति के क्षेत्र मे समन्वय किया। राम, कृष्ण, शिव मे अभेद स्थापित कर उन्होंने वही काय किया जो उत्तरी भारत में तुलसी ने। इसी प्रकार दर्शन के क्षेत्र मे भी वे मतवैभिन्य को दूर कर अभेद के पक्षपाती थे। काव्य क्षेत्र में भी उन्होंने भाव और भाषा, विषय और शैली, पुरातन एवं नूतन का उचित सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है।

अन्नमाचार्य (१४०८-१५०३)

अन्नमाचार्य भी दक्षिण के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवि हुए हैं। श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत का अनुशीलन तथा तमिल के आलवार भक्तो के प्रबन्धों का श्रवण-गान इनकी पृष्ठभूमि है। ये वैष्णव क्षेत्र तिरुपति में विराजमान भगवान् बालाजी वेंकटेश्वर के भक्त थे जिनकी स्तुति एवं लीला-गान मे इन्होंने बत्तीस सहस्र पदो के विपुल साहित्य की सर्जना की। इनकी भक्ति एव काव्यनिष्ठा इस बात से प्रमाणित होती है कि इन्होंने अपने संकीर्तनो को ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण कराया। ताम्रपत्रो पर उत्कीर्ण चौदह सहस्र पद आज भी उपलब्ध है। तिरुपति मन्दिर के व्यवस्थापक इस विशाल साहित्य के प्रकाशन कार्य में उत्तरोत्तर रुचि ले रहे है। किसी एक कवि का इतना प्रचुर पद-साहित्य भारत की किसी भी क्षेत्रीय भाषा मे शायद ही उपलब्ध हो सके। सूर के विषय में सवा लाख पदों के प्रणयन की किवदन्ती अवश्य है, पर उनके भी लगभग छ सहस्र पद ही प्राप्त हैं। इन पदों की स्तुतिपरक अथवा अध्यात्मकपरक और लीलापरक दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। अध्यात्मकपरक पदों मे दास्यभाव का उदात्त उन्मेष हुआ है और लीलापरक पदो में वात्सल्य एव शृङ्गार को प्रमुख स्थान मिला है। बाल, पौगण्ड और यौवन-लीलाओं तथा शृङ्गार के सयोग-वियोग, मान, प्रवास आदि विविध रूपो का ऐसा मनमोहक कवित्वपूर्ण चित्रण इनके पदो मे हुआ है कि पाठक की समूची सौन्दर्य-चेतना रसमग्न हो जाती है।

शब्दो के प्रयोग मे अन्नमाचार्य 'निरकुशाः कवयः' के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे और व्याकरण के नियमों की परवाह अधिक नहीं करते थे। 'भाव चाहिए साँच' उनका लक्ष्य था। शब्दों के चयन में ये बड़े उदार थे। मराठी और हिन्दी के शब्दों का भी इन्होंने प्रयोग किया है। तेलुगु भाषा की प्रकृति के अनुसार उनमें कुछ परिवर्तन तो किया ही गया है। जैसे जूटारि = झूँठ बोलने वाला, झटकारि = झटकारने वाला आदि। भाषा और प्रदेश की क्षुद्र सीमाएँ इनके असीम उदार हृदय को बाँध भी कैसे पातीं। उनके समक्ष आसेतु हिमाचल भारत था और हृदय में प्रभु की सर्वव्यापकता। उन्ही के शब्दों में,

अन्निचोट्ल परमात्मनीवु
इन्तिरूपुन अमिथिन्तुवुगा
पाल जलधिनुण्डि बदरीवनाननुण्डि
आलय मै गयलो प्रयागनुण्डि...।

भगवान्! तू सर्वत्र सब रूपों में विराजमान है। क्षीर सागर में, बदरिकाश्रम मे, गयाक्षेत्र में, प्रयाग में

वे वैष्णव थे परन्तु किसी अन्य सम्प्रदाय से उन्हें द्वेष नहीं था यह संयोग ही है कि उनके पदों मे शिवपरक रचना नहीं है उन्होंने स्पष्ट घोषणा की है

'एव्वरि गोलिचिन नेमि गोरत मरि
येव्वरि दलचिन नेमि,
अव्वलिव्वल श्रीहरिरूपुगानि वा
रेव्वरुलेरनि येरुक दोचिनजालु'

किसी भी देवी-देवता की उपासना करो, कोई दोष नहीं है। केवल यह जान लेना चाहिए कि आन्तरिक एवं बाह्य जगत् मे ऐसा कुछ नहीं है जो हरिरूप न हो।'

लगता है, उनकी आध्यात्मिक चेतना विशिष्टाद्वैत की आचरण सम्बन्धी रूढियों से प्रभावित थी।

महाराजाधिराज श्रीकृष्णदेवराय (१५०९-१५३०)

तेलुगु के गुरुतर प्रौढ प्रबन्ध काव्य एवं भक्ति-साहित्य की विख्यात कृति आमुक्तमाल्यदा' के यशस्वी प्रणेता महाराज श्री कृष्णराय एक सुकवि एवं कविवत्सल ही नहीं, एक विशाल साम्राज्य के अधिनेता भी थे। उस काल की राजनीतिक हलचल मे साम्राज्य की रक्षा एवं प्रशासनिक कार्यों मे व्यस्त रहकर भी 'आमुक्तमाल्यदा' जैसी प्रौढ कृति का प्रणयन कवि की अवदात काव्य प्रतिभा एवं उदात्त भक्ति-भावना का ज्वलन्त प्रमाण है। अत. ये 'साहिती-समराङ्गण-सार्वभौम के विरुद से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध है कि कलिंग के प्रति अभियान के समय श्रीकाकुल में आन्ध्र विष्णु की अर्चना एवं एकादशी व्रत-परायण के पश्चात् स्वप्नावस्था मे रात्रि के चौथे पहर उन्हे आन्ध्र-विष्णु ने दर्शन देकर 'चूडिकोडुत्ताल' कथानक पर आधारित प्रबन्ध काव्य की रचना कर उसे श्रीवेंकटेश्वर का समर्पित करने का आदेश दिया और कहा कि मुझ मे और श्रीवेंकटेश्वर मे कोई भेद नहीं है। फलतः 'आमुक्तमाल्यदा' की रचना हुई। आमुक्तमाल्यदा 'चूड़िकोडुत्ताल' का ही संस्कृत रूप है यह आण्डाल अथवा गोदादेवी का ही दूसरा नाम है। कहा जाता है कि वह भगवान् के लिये गूंथी गई माला को पहले स्वयं धारण कर उस शोभा की एक झलक सरोवर के जल मे देख लेती थी। तब वह माला भगवान् मन्नारु स्वामी को समर्पित कर दी जाती थी। आमुक्तमाल्यदा का कथानक इस प्रकार है—

श्रीविल्लिपुत्तूर नामक नगर में भगवान् मन्नारु (श्रीकृष्ण) का मन्दिर था जिसमें भक्त विष्णुचित्त (पेरियाल्वार) भगवत्सेवा करते थे। पाण्ड्य देश के राजा ने विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों की श्रेष्ठता का पता लगाने के लिये देश के पण्डितो को निमन्त्रित किया। भगवान् मन्नारु ने विष्णुचित्त को राजदरबार मे उपस्थित हो वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादन का आदेश दिया। विष्णुचित्त भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी न जानते थे, किन्तु प्रभु के आदेश से वे राजसभा में गये और आश्चर्य की बात है कि उन्होंने सभी पण्डितों को शास्त्रार्थ में हरा दिया। एक दिन विष्णुचित्त को वाटिका मे एक कन्या मिली जो आगे चलकर गोदा (आण्डाल) नाम से प्रसिद्ध हुई। वह श्रीरंगनाथ के प्रति माधुर्य-भावापन्न हुई और प्रतिदिन वियोग मे कृश होने लगी। विष्णुचित्त ने भगवान् मन्नारु से यह बात कही। भगवान् ने आज्ञा दी कि अपनी कन्या को श्रीरंगम् ले जाओ, वह श्रीरंगेश्वर पर आसक्त है। विष्णुचित्त श्रीरंगम् पहुंचे और गोदादेवी का विवाह के साथ कर दिया

सम्प्रदाय मे गोदादेवी भूदेवी का अवतार माना जाता है और तिरुप्पाव भक्ति-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। गोदादेवी की कथा दिव्यसूरिचरित्र आदि कई ग्रंथो मे मिलती है किन्तु कृष्णदेवराय ने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से उसे सर्वथा नवीन रूप दे दिया है। यामुनाचार्य के प्रसंग तथा खाण्डिक्य केशिध्वज सवाद आदि के समावेश मे कवि का वीरवैष्णव भाव स्पष्ट लक्षित होता है। ऐसा लगता है कि उन्होने स्वय अपने आप पर ही रूपक रूप में यह काव्य लिखा है। इस रूपक में स्वयं कृष्णदेवराय ही विष्णुचित्त हैं, उनकी कृति 'आमुक्त-माल्यदा' ही कन्या आमुक्तमाल्यदा है और श्रीवेंकटेश्वर के हाथों मे इस कृति का समर्पण ही श्रीरंगनाथ के साथ गोदादेवी का विवाह है, इस काव्य मे विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की रहस्यपूर्ण उक्तियाँ आद्योपान्त गुम्फित हैं।

आमुक्तमाल्यदा तेलुगु साहित्य का एक अप्रतिम प्रबन्ध काव्य है। इसके विशद वर्णनो को देखकर आश्चर्य होता है कि महाराज कृष्णदेव का 'लोकावेक्षण' कितना व्यापक था। सार्वजनिक जीवन की सहज अनुभूतियाँ इसमे यत्रतत्र भरी पड़ी हैं। तत्कालीन नरपतियों की शृङ्गारी एवं राजसी दम्भभरी प्रवृत्तियो को देखते हुए श्रीकृष्णदेव की यह भक्तिभावपूर्ण मधुर-वाणी हृदय को पुलकित कर देती है। इसकी शैली व्यजना-प्रधान है। लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग खूब किया गया है, परन्तु उसके कारण प्रासादिकता एव कथानक के प्रवाह मे कोई बाधा नहीं आती। एक उदाहरण लीजिए। भगवान् से पाण्ड्यराज की सभा मे जाने का आदेश पाकर विष्णुचित्त कहते है —

गृहसम्मार्जनमो, जलाहरणमो, शृङ्गारपल्यङ्किका।
वहनंबो, वनमालिकाकरणमो, वाल्लभ्यलभ्यध्वज।
ग्रहणंबो, व्यजनातपत्रधृतियो, प्रादीपिकारोपमो।
गृहरीवादमुलेल! लेरे यितरुल् नीलीलकु पात्रमुल्।

भगवन्! मन्दिर में झाड़ू देना, पानी लाना, पालकी ढोना पुष्पमाला गूथना, ध्वज फहराना, पखा करना, छत्र पकडे रखना आदि कार्य मैं कर सकता हूँ (शास्त्रार्थ मेरे जैसे जड़मति के बस का नहीं) क्या मेरे अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नही है जो आपकी लीला का पात्र बन सके।

सन्तों को कहा सीकरी सो काम वाला पूरा भाव आगया है और इस खूबी के साथ कि सीधी स्पष्टवादिता मे अनिवार्यत: जो अक्खड़ता आ जाया करती है उसका आभास तक नही होता। इतना ही नहीं अन्तिम पंक्ति का व्यङ्ग्य और भी अधिक हृदयस्पर्शी है। विष्णुचित्त का उलाहना है—भगवन्! मुझसे पीछा छुड़ाने के फेर मे हो क्या? या मुझे बना रहे हो? जो नाटक आप मुझसे कराना चाहते हैं, वह मेरे बस की बात नहीं।

श्री तेनालिरामकृष्ण कवि (१६ वी शताब्दी)

रामकृष्ण कवि का मूल नाम रामलिङ्ग था। वैष्णव होने के पश्चात् वे रामकृष्ण कहलाये। इन्होने 'पाण्डुरंगविजय' नामक प्रबन्धकाव्य का प्रणयन किया जिसकी गणना तेलुगु के पाँच प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्यो मे की जाती है। भीमा नदी के तट पर स्थित पुण्डरीक क्षेत्र पण्ढरपुर में देवाधिदेव पाण्डुरंग विट्ठल विराजमान हैं यहाँ पुण्डरीक नामक एक भक्त

को बालकृष्ण का साक्षात्कार हुआ था अत यह क्षेत्र पुण्डरीक क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है पुण्डरीक क्षेत्र या पण्ढरपुर दक्षिण भारत की सास्कृतिक धाराओ का त्रिवेणी सङ्गम है। यहाँ महाराष्ट्र, आन्ध्र एवं कन्नड प्रान्तों के सन्तों का शताब्दियों से संगमन होता रहा है। मराठी, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं के उन प्रतिनिधि भक्त कवियों मे तुकाराम, अन्नमाचार्य और पुरन्दरदास लोकविश्रुत हैं जो अपनी वाणियो से पण्ढरपुर को त्रिवेणी संगम ही बनाकर सरस काव्य धारा के पवित्र जल से इष्टदेव पाण्डुरंग विट्ठल को स्नान कराते रहे है। इन्ही पाण्डुरंग भगवान् की महिमा का गान रामकृष्ण कवि ने अपने 'पाण्डुरङ्गविजय मे किया है जिसमें अनेक उपाख्यान संगृहीत है। इन में निगमशर्मोपाख्यान अत्यन्त रोचक और अजामिल-उपाख्यान से मिलता-जुलता है। निगम शर्मा एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मणकुल मे उत्पन्न होकर भी यौवन जीनत चपलताओं के वशीभूत हो कामुक जीवन व्यतीत करने लगा। उसकी गुणवती साध्वी बहिन ने मार्ग पर लाने के लिये बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु मब व्यर्थ। अन्त मे पण्ढरपुर में भगवान् पाण्डुरङ्ग के दर्शन से निगमशर्मा को बोध हुआ और वह परम भक्त बन गया।

इस प्रकार पाण्डुरङ्ग भगवान् का जो श्रीकृष्ण का ही एक अन्य स्वरूप है, महिमा-वर्णन अनेकानेक उपाख्यानो द्वारा किया गया है जिनमे लोकानुभूति और काव्यशिल्प का मणिकाञ्चन योग हुआ है।

क्षेत्रय्य (सत्रहवी शती)

आन्ध्रकोकिल क्षेत्रय्य का जन्म कृष्णा जिले मे स्थित मुव्व नामक ग्राम मे हुआ था। इस गाँव मे गोपाल कृष्ण का एक मन्दिर है जिसमे प्रतिष्ठित स्वरूप 'मुव्वगोपाल भगवान्' कहलाते है। एक किंवदन्ती के अनुसार क्षेत्रय्य अपने यौवन काल मे किसी सुन्दरी पर मुग्ध हो गये थे जिसने उन्हे इसलिये स्वीकार नही किया कि वे अपढ़ थे। इस पर क्षेत्रय्य ने गोपाल मन्दिर मे जाकर भगवान् कृष्ण का ध्यान किया। भगवान् के प्रसाद से इनकी काव्य-प्रतिभा का चमत्कारी उन्मेष हुआ, पर अब उन्हे भक्तिरस का चसका लग चुका था जिसके सामने गोरस फीका था, इस प्रकार इनके लौकिक प्रेमका उन्नयन अलौकिक प्रेम में परिणत हुआ। गोपालकृष्ण की शृङ्गार लीलाओं मे इनकी चित्तवृत्ति बहुत रमी है। भगवान् के सौन्दर्य का पान करने के लिये इन्होने दक्षिण भारत के पुण्य क्षेत्रो की यात्रा की। इसलिये इनका नाम क्षेत्रय्य या क्षेत्रज्ञ पड़ा। इनका वास्तविक नाम तो वरदय्य था।

क्षेत्रय्य की पदावली मे विद्यापति की पदावली के समान लौकिकता का पुट ही प्रबल प्रतीत होता है, फिर भी माधुर्य-भक्ति की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति इसमे हुई है। इनके उपलब्ध पदो की सख्या लगभग चार सौ है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि तेलुगु मे 'संकीर्तन' और 'पद' शब्द भक्ति साहित्य के दो भिन्न स्वरूपो के द्योतक है। संकीर्तन आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होते है जबकि पद शृङ्गार-प्रधान हुआ करते हैं।

क्षेत्रय्य के पद साहित्य का तेलुगु-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। महाकवि पोतन्न की अमरकृति 'महाभागवत' काव्य-प्रधान है तथा अन्नमाचार्य त्यागराजु आदि भक्त कवियों की रचनाऐं सगीत प्रधान हैं परन्तु क्षेत्रय्य की पदावली में काव्य सगीत एव नृत्य की त्रिवेणी

बहती है। नायिका भेद के उदाहरण भी इसमें भरे पड़े हैं एक अज्ञात कवि ने की रसमञ्जरी का तेलुगु में अनुवाद करते हुए प्रत्येक लक्षण के उदाहरण रूप के ही पदों को उद्धृत किया है। विजयराघव नायक (१६३३—७३ ई०) नाम आश्रयदाता नृप की प्रशंसा में भी क्षेत्रय्य ने कुछ पद लिखे हैं। प्रतीत होता है कि एषणाओं की कुण्ठा से ग्रस्त होकर इनका मन मधुप भटक गया। दुर्बलता के इ से उन्होंने 'प्राकृतजन' के गुणों का गान किया और उनसे दूर होते ही वे अनन्तल भगवान् के चरण कमलों में जा गिरे। मुव्वगोपाल के अतिरिक्त भगवान् वेंकटे कांची में विराजमान भगवान् वरदराजस्वामी आदि अन्य वैष्णव स्वरूपों की का गान भी इनकी पदावली में मिलता है।

भक्ति के झीने से आकर्षक अवगुण्ठन से झाँकती हुई क्षेत्रय्य की कवित संगीत की स्वरलहरियों के साथ सविलास लास्य में थिरकती प्रतीत होती है पदावली ने संगीत के ही नहीं नृत्यकला के आचार्यों को भी आकृष्ट किया है। उन पदों की ताल पर नृत्य का अभ्यास किया जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मोहन राग, जपताल

मगुव तनकेलिका मन्दिरमु वेडलेन्।
वगकाडा माकचि-वरद तेल्लवारे ननुचु ॥ मगुव० ॥
विडजारगोज्जगि-बिरिदडजडतोनु।
कडुचिक्कुबडिनेगु - कटसरितोनु।
निडुद कन्नुलदेस - निदुरमब्बुलोनु।
तोडरिपद युगमुन दडबडेडुनडनोनु।

सो गसि मोगयनिवलपु-सोल्पु जूनुलतोन।
वगवगल घनसार वासनल तोनु।
जिगमिंचु केम्मोवि चिगुरु केंपुलतोनु।
सगमु कुचमुल विदिय चन्द्ररुच तोनु।
तरितीपु मेयु सममुरति बडलिक तोनु।
जरुत पावडबेरगु जार्रिटतोनु।
इसगडल कंदडन्चिचु नरुणलतोनु।
परमात्ममुव्वगोपाल तेल्लवारे ननुचु।

युवति (राधा) प्रातःकाल प्रियतम के केलिगृह से निकली। उसका हार टूट केशपाश शिथिल था, संयोग के कारण (आलिंगन में) कण्ठमाला मलिन हो गई थी। उनींदे कमल से सुन्दर नयनों में वह लड़खड़ाते पैरों जा रही था और तृप्त होकर सी लग रही थी। वह कपूर के परिमल से वायु को महका रही थी, उसके अधर समान अरुण थे और उरोज द्वितीया के चन्द्र जैसे नखचिह्नों से सुशोभित, उसका वस्त्र शिथिल था (अतः) दोनों ओर से सखियाँ उसे सहारा दिए थीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हरि स्मरण के साथ विलास कथा कौतूहल औ कान्त पदावली जो जयदेव के पदों की जान है क्षेत्रय्य के पदों में भी पूर्णतया प्रतिष्ठि

त्यागराजु

आन्ध्र के श्रेय महान् भक्त त्यागराजु यद्यपि राम के भक्त थे तथापि कृष्ण की लीलाओं का भी उन्होंने गान किया है। इनका जन्म ब्राह्मण दम्पती राम ब्रह्म एवं सीताबा के घर सन् १७६७ ई० मे हुआ। शैशव से ही इनका मन सासारिक वासनाओं से हटने लगा था। सगीत के प्रकाण्ड पण्डित थे। राम के अनन्य भक्त थे और अपनी सगीत कला से राम की उपासना करते थे। इन्होंने लगभग ७०० सकीर्तन लिखे जिन्हे दक्षिण भारत में अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हुआ। ये संकीर्तन कर्नाटक संगीत-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इनके संगीत की प्रशंसा सुनकर तजौर के तत्कालीन शासक ने इन्हे अपनी राजसभा में बुलाया था परन्तु 'सतन को कहा सीकरी सो काम' त्यागराज नही गए।

त्यागराजु की भक्ति दास्य कोटि की है। उनकी दैन्यानुभूति चरमकोटि तक पहुँच गई है। मधुरा भक्ति अथवा शृङ्गार भावना इनके संकीर्तनों मे बहुत ही कम मिल सकेगी। उनमें शान्त रस की निर्झरिणी कलकल ध्वनि से बहती रहती है। उनके जीवन का सरलता, पवित्रता और उदात्तता उनके संकीर्तनो पर पूर्णतया छा गई है और यह बेधड़क कहा जा सकता है कि त्यागराजु की कला, कला एव जीवन का तादात्म्य प्रस्तुत करती है त्यागराजु की भक्ति एवं आदर्शों की तुलना गोस्वामी तुलसीदास से की जा सकती है। उनके जीवन से भी अनेक चमत्कार सम्बद्ध हो गये हैं। कहा जाता है एक बार उनकी पालकी पर चोरों ने पत्थर बरसाये तब उन्होंने राम-लक्ष्मण को सहायता के लिये पुकारा। चोरो के प्रहार व्यर्थ हुए और उन्होने त्यागराजु से क्षमा माँगी। इसी प्रकार एक दिन वे अपने शिष्यो के साथ तिरुपति के मन्दिर मे पहुँचे। उस समय भगवान् के सामने पर्दा पडा हुआ था। त्यागराजु ने प्रार्थना की तो पर्दा स्वतः ही हट गया और उन्हे प्रभु के दर्शन हो गए।

त्यागराजु का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। उसकी विचारधारा अद्वैत की भावना से प्रेरित थी। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी वे तुलसी की भाँति शिव, गणेश, त्रिपुर सुन्दरी आदि देवी-देवताओं की भी स्तुति किया करते थे। इनके नौका चरित की कथा कृष्ण एवं गोपियों को केन्द्र बिन्दु मानकर चली है।

राधाभाव

दक्षिण मे राधाभाव का प्रचार चैतन्य महाप्रभु की यात्रा के पश्चात् हुआ। महाप्रभु की दक्षिण यात्रा ई० सन् १५१०-११ मे हुई थी। गोदावरी नदी के गोस्पद घाट पर महाप्रभु से तत्कालीन उत्कलाधीश के सामन्त राजा रायरामानन्द की भेंट हुई। सप्रदाय के विश्वासानुसार दोनों मे आध्यात्मिक चर्चा भी चली थी और महाप्रभु ने राधाकृष्ण तत्त्व एवं दिव्य प्रेम का उपदेश दिया। शिष्ट साहित्य में राधाकृष्ण विषयक सर्व प्रथम काव्य एलुनार्य कृत राधामाधव है। एल्लनार्य सम्राट् कृष्णदेवराय के समसामयिक थे। कहा जाता है कि उनके काव्य को सुनकर कृष्णदेवराय ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हे 'राधामाधवकवि' का विरद दिया। 'राधामाधव काव्य' पाँच उच्छ्वासो का शृङ्गार परक काव्य है। तेलुगु में राधाकृष्ण विषयक साहित्य मे भक्ति की अपेक्षा शृङ्गार का ही समावेश अधिक रहा है। कहना न होगा कि तेलुगु ही नहीं लगभग सभी भाषाओं का राधाकृष्ण काव्य अन्ततोगत्वा शृङ्गार में ही परिणत हुआ है उस समय तेलुगु साहित्य मे प्रबन्ध-काव्य की पूर्णतया विकसित थी अब

उसका पालन करते हुए शृङ्गार का आद्योपान्त समावेश कर राधामाधव लीलाओं का सात्विक चित्रण करने में कवियों का मन अधिक रमता था। एलनाग्र मदनगोपाल के भक्त थे और उनके अनुसार इष्टदेव ने ही स्वप्न में उन्हें काव्य रचना का आदेश दिया था, इनकी कविता इतनी संस्कृतनिष्ठ है कि कहीं-कहीं तो जयदेव की कृति होने का सा भ्रम हो जाता है। एक उदाहरण लीजिये:—

'श्री राधाधरमधुरसुधारसधारा प्रशान्तदारुणनिशित
स्मरशरानल धीरोदार गुणावलि नवमदन गोपाला'

इस परम्परा की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं वेलिदेड्लवेंकट पति कवि का 'राधामाधव सवाद' तथा मुद्दुपलनि का 'राधिकासान्त्वनमु।'

लोक साहित्य में राधाकृष्ण विषयक मान-विप्रलम्भ रचनाओं की प्रचुरता है। ये प्रायः सवादरूप में हैं और इनका अभिनय किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ये तेलुगु क्षेत्र में वही स्थान रखते हैं जो व्रजक्षेत्र में प्रचलित 'रास'। कहा जाता है कि सिद्धेन्द्रयोगी नामक किसी व्यक्ति ने कूचिपूडि गाँव के ब्राह्मणों को आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार विविध हाव-भावों के साथ इन नृत्य नाटकों के अभिनय की शिक्षा दी। ये रचनाएं दो प्रकार की हैं, कलाप और भागवत नाटक। कलापों में सत्यभामा कलापमु' 'गोल्लभामाकलापमु' तथा 'वोडिगानि कलापमु मुख्य हैं और भागवतनाटकों में प्रह्लादचरित्रमु रुक्माङ्गदचरित्रमु, उषापरिणयमु एवं सारंगधरचरित्रमु आदि। पर्व दिवसों तथा मन्दिरों के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर आन्ध्र प्रदेश के कोने कोने में इन गेय रूपकों का अभिनय हुआ करता है। कलापों को परिजात भी कहते हैं। प्राय कलाप शृङ्गारपरक तथा भागवत नाटक भक्तिपरक होते हैं। कुचिपूडि की अभिनयकला का समूचे दक्षिण में प्रचार हुआ मेल्लट्टूर के भागवत अभिनेता आज भी बड़े प्रसिद्ध हैं। नाट्यशास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार 'सत्यभामाकलापमु' श्रीगदित नामक उपरूपक के, गोल्लभामकलापमु भाणिका के तथा वोडिगानि कलापमु डोंबी नामक उपरूपक के अन्तर्गत आते हैं।

तेलुगु में मान शृङ्गार की नायिका केवल सत्यभामा है। लोक साहित्य में भी और शिष्ट साहित्य में भी हिन्दी एवं बंगला साहित्य में राधा को और मराठी में रुक्मिणी को जो स्थान प्राप्त है वही तेलुगु में सत्यभामा को। सोलहवीं शती के पूर्वार्ध में नन्दितिम्मन नामक महाकवि ने तो लोक साहित्य में प्रतिष्ठित इस मानिनी (सत्यभामा) को आलम्बन मानकर परिजातापहरण नामक एक उत्कृष्ट प्रबन्धकाव्य का प्रणयन किया। इसमें मानशृङ्गार का जो व्यापक चित्र खींचा गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसका कथानक हरिवंश से लिया गया है। हरिवंश में केवल दस श्लोकों में यह कथा वर्णित है। परन्तु इसी सूक्ष्म वस्तु के आधार पर अपनी अनोखी कल्पना से कवि ने एक अत्यन्त सुन्दर सरस काव्य की सृष्टि की है। दिव्य महर्षि नारद श्रीकृष्ण से मिलने आते हैं तो एक पारिजातपुष्प भेंट करते हैं जिसे श्रीकृष्ण बाद में रुक्मिणी के केशों में गूंथ देते हैं। सहेली से इस बात को सुनकर सत्यभामा रुष्ट होकर कोप भवन में पड़ी रहती है। श्रीकृष्ण उसके महल में पहुँचते हैं और खोजते खोजते कोपभवन में उसे पाकर अनुनय विनय करते हैं. सत्यभामा का मान नहीं टूटता अन्त में वे के अन्तिम उपाय (चरणों में गिरने) का आश्रय लेते हैं तो सत्यभामा अपने बायें पैर से उनका सिर हटा देती है मान की पकड ढीली होते ही रसिक शिरोमणि प्रतिज्ञा

करते हैं कि मै न दनवन से परिजात क पूरा वृक्ष ही लाकर तुम्हारे आगन म लगादूंगा। और अत म अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते ह मान मनाव का बडा ही सु दर वर्णन इस काव्य म हुआ है। मनुहारें करते हुए कृष्ण की एक उक्ति देखिये—

ओ ललितेन्द्रनीलशकलोपमकैशिक इत्तवत नी।
केललतात मात्रमुन के गलुगन् विनु नीकु देवता
केलिवनवु सोच्चि यलिकिनु वलसूदनुडेत्तिवच्चिनम्
दीलुपंडगदोलि इट देच्चे दनिच्चेद पारिजातमुन्॥

ललित इन्द्रनील मणि के सदृश केशों वाली प्रिये! एक फूल के लिये इतनी चिन्ता! नन्दन वन जाकर मै परिजात वृक्ष लाकर तुम्हें दूंगा। चाहे इन्द्र ही युद्ध करने क्यो न आये मैं उसे भी पराजित कर परिजात लाऊँगा।

तमिल

तमिल साहित्य में आलवार सन्तों की भक्ति-भाव-पूर्ण उक्तियों की प्रचुरता है। इन्होने भगवान् विष्णु, कृष्ण आदि वैष्णव इष्टदेवो का मधुर वाणी मे लीला-गान किया है। भक्ति का जो मधुमय रसायन इन्होने ससार को दिया है, वह सदैव भक्तों के जरामरणभय का उच्छेद कर उन्हे अमृत बनाता रहेगा। आलवार भक्तो मे बारह अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जिनके नाम इस प्रकार है—

१—पोयिगैयालवार (सरोयोगी)
२—पूदत्तालवार (भूतयोगी)
३—पेयालवार (महायोगी)
४—तिरुमलिशैयालवार (भक्तिसार)
५—पेरियालवार (विष्णुचित्त)
६—आडाल (गोदादेवी; श्री)
७—श्रीकुलशेखरालवार
८—तिरुप्पाण आलवार (योगिवाह)
६—तोण्ड रडिप्पोडियालवार (विप्रनारायण, भक्तांघ्रिरेणु)
१०—तिरुमगैयालवार (परकाल)
११—नम्मालवार (शठकोप)
१२—मधुरकवि आलवार।

एक संस्कृत श्लोक मे आलवारो का परिगणन इस प्रकार किया गया है—

भूतं सहश्च महदाह्वय भट्टनाथ।
श्रीभक्तिसारकुलशेखर योगिवाहान्।
भक्तांघ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्।
श्रीमत्पराङ्कुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥

इस श्लोक मे श्रीरामानुज का भी समावेश है जो यतीन्द्र माने जाते हैं। परम्परा के अनुसार प्रथम तीन आलवार तो द्वापर युग मे उत्पन्न माने जाते हैं। वस्तुत. आलवारों का समय श्रीमद्भागवद्गीता के रचना-काल से श्रीरामानुज तक का समय है। संप्रदाय के अनुसार पोयिगै आलवार पाञ्चजन्य के, पूदत्तालवार कौमोदिकी गदा के तथा पेयालवार नन्दक खड्ग के अंशावतार थे। एक बार भक्ति का प्रचार करते हुए ये संयोगवश तिरुक्कोवलूर नामक गाँव में पहुँचे सोने के लिये स्थान देखते हुए ये एक घर के चबूतरे पर बैठे बातें कर रहे थे कि भगवान ने इनकी परीक्षा के उद्देश्य से उसे अत्यन्त सकीर्ण कर दिया इन्होंने

ध्यानावस्थित होकर देखा तो भगवान् विष्णु दिखाई पड़े। आनन्दमत्त होकर तीनो ने भगवान् की स्तुति की मक्ति के इन पदों को तिरुवदादि' कहते हैं आधुनिक आलोचक इनका काल सातवीं शती मानते हैं।

तिरुमलिशै आलवार का जीवन-काल सातवीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार ये किसी ऋषि एवं अप्सरा के पुत्र थे तथा एक निम्न जाति के परिवार मे इनका पालन-पोषण हुआ था। 'तिरुवदादि' तथा 'तिरुच्चन्दविरुत्तम' इनके प्रसिद्ध प्रबन्ध है। प्रथम कृति मे ९६ तथा द्वितीय मे १२० छन्द मिलते हैं।

पेरियालवार के मूल नाम विष्णुचित तथा भट्टनाथ है। इनका जीवन-काल नवीं शताब्दी ई० माना जाता है। ये श्रीविल्लिपुत्तूर मे विराजमान वटपत्रशायी भगवान् के पुजारी थे।

कहा जाता है कि एक दिन पाण्डराज वल्लभदेव गुप्त वेश मे रात्रि के समय राजधानी मे घूम रहे थे कि उनकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई। राजाने पूछा—आर्य ! अर्धरात्रि के समय आप यहाँ कैसे लेटे है ? ब्राह्मण ने कहा—'मैं परदेशी हूँ, रामेश्वर यात्रा के लिये आया हूँ। यहाँ पहुँचते-पहुँचते रात हो गई और मैं उसे बिताने के लिये यहाँ लेट गया हूँ। राजा ने ब्राह्मण को अनुभवी समझ कर सारभूत उपदेश की इच्छा की तो ब्राह्मण ने यह श्लोक पढ़ा—

> वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्थमर्धं दिवसं यतेत।
> वार्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च।

अर्थात् वर्षा के लिये आवश्यक प्रबन्ध शेष आठ महीनों में, रात्रि के लिये दिन में, बुढ़ापे के लिये जवानी मे और परलोक के लिये इहलोक मे कर लेना चाहिए।

यह सुनकर राजा को बोध हुआ। प्रातःकाल ही अपने पुरोहित शल्वनम्बि को बुलाकर उसने विद्वानों को एकत्र कर धार्मिक दर्शनों मे उत्कृष्टतम दर्शन को जानने की इच्छा प्रकट की। वटपत्रशायी भगवान् की आज्ञा से विष्णुचित्त अथवा पेरियालवार भी उपस्थित हुए और उन्होंने भगवत्कृपा से शास्त्रार्थ मे सभी आचार्यों को हरा कर विशिष्टाद्वैत की उत्कृष्टता सिद्ध की। राजा ने हाथी पर बिठा कर उनका जलूस निकाला। विष्णुचित्त ने देखा कि स्वर्ग विष्णुभगवान् श्रीदेवी सहित उसका जलूस देखने पधारे है। हर्षातिरेक से 'पल्लाण्डु' 'पल्लाण्डु' कहते हुए उन्होंने भगवान् विष्णु को ११ पाशुरों (भक्तिपूर्ण पदों) मे आशीर्वाद दिया। साधारणतः भक्त निर्हेतु की कृपा के लिये भगवान् की प्रार्थना किया करता है, किन्तु विष्णुचित्त ने उन्हे आशीर्वाद दिया। अतः ये पेरियालवार (बड़े आलवार) कहलाये।

वास्तव में विष्णुचित्त की भक्ति वात्सल्य भक्ति है। उन्होंने विष्णु को बालकृष्ण रूप में और अपने आपको यशोदा के रूप मे देखा है। अतः उनके पाशुरों में वात्सल्य रसकी अजस्र धारा बहती रहती है। श्रीकृष्ण की विविध बाललीलाओं के वर्णन मे इनके ४७२ पाशुरों का प्रबन्ध उपलब्ध है जिसका नाम है पेरियालवार तिरुमोलि, कहा जाता है कि भट्टनाथ की उपाधि इन्हे स्वयं भगवान् ने दी थी। इनके 'तिरुप्पल्लाण्डु' के लीला-गान का एक उदाहरण लीजिये।

पल्लाण्डु पल्लाण्डु पल्लाइरत्ताण्डु
पलकोडि नूराइरमम्
मल्लाण्डतिण्डोल मणिवण्डाउन ।
शेवडि शेव्वि तिरुक्काप्पु ।

जय हो प्रभो ! जय हो । तुम्हारी भुजाओं ने चाणूर और मुष्टि नामक दुर्धर्ष मल्लों को पछाड़ा है । इन्द्रनीलमणिसदृश कान्ति वाले दिव्य मङ्गलमय शरीर धारिन् ! आपका मङ्गल हो । अनेक शतसहस्र कोटि वर्षों तक तुम्हारे चरण कमलो की शोभा बनी रहे । तुम चिरायु हो ।

पेरियालवार की प्रशस्ति मे नाथमुनि ने निम्नलिखित श्लोक की रचना की है—

गुरुमुखमनधीत्य प्राहवे वेदानशेषान् ।
नरपतिपरिक्लृप्त शुल्कमादातुकाम. ।
श्वशुरममरवन्द्य रंगनाथस्य साक्षात् ।
द्विजकुलतिलक तं विष्णुचित्त नमामि ।

आण्डाल

आण्डाल विष्णुचित्त की पालिता पुत्री थी । कहा जाता है कि एक दिन जब विष्णुचित्त तुलसी के बिरवे की गुड़ाई कर रहे थे तो पृथ्वी से एक कन्या का आविर्भाव हुआ । उन्होने स्नेह से उसका पालन किया और गोदा नाम रखा । विष्णुचित्त नित्य वटपत्रशायी प्रभु की पूजा के लिये माला गूँथ कर ले जाते थे । गोदा भगवान् पर अनुरक्त थी । वह माला को पहले स्वय धारण कर लिया करती थी और सरोवर के जल मे अपना रूप देखकर पुन: उतार देती थी । विष्णुचित्त उसकी इस चर्या से अनभिज्ञ थे । एक दिन उन्होने देख लिया तो सकपका गये । खिन्न होकर उस दिन उन्होने भगवान् को वह माला समर्पित न की । भगवान् ने स्वप्न में उनसे कहा कि गोदा द्वारा पहनी हुई माला मुझे अत्यन्त प्रिय है । तुम उसे माला पहनने से मना मत करना । गोदा का भगवत्प्रेम बढता ही गया । उसने सुना था कि गोप कन्याओं ने भगवान् की प्राप्ति के लिये कात्यायनी का व्रत किया था । उसने भी धनुर्मास मे व्रत किया । प्रतिदिन एक पाशुर (भक्तिपूर्ण पद) रचकर भगवान् की प्रार्थना करती थी । यह महान् भक्तिपूर्ण आत्म निवेदन तमिल साहित्य मे 'तिरुप्पावै' नाम से प्रसिद्ध है और दक्षिण मे भक्तजनो का कण्ठाहार बना हुआ है । मन्दिरों मे आज भी इसके पदो का प्रतिदिन गान होता है ।

एक दिन पेरियालवार ने वटपत्रशायी से कहा कि भगवन् मेरी कन्या सुध-बुध भूली-सी रहती है । भगवान् ने मुस्कराकर कहा कि उसे श्रीरङ्गम् ले जाओ, वह वहाँ के अर्चावतार श्रीरङ्गनाथ पर आसक्त है । विष्णुचित्त गोदा के साथ श्रीरङ्गनाथ के मन्दिर पहुँचे । श्रीरङ्गनाथ के दर्शन कर गोदा प्रेमोन्मत्त हो उठी और श्रीरंगनाथ के विग्रह की ओर बढती चली गई । भगवान् ने भी उसका आलिंगन किया । विष्णुचित्त चिंतित हुए तो श्रीरंगनाथ ने उनसे कहा तुम निश्चित रहो मैंने गोदा से विवाह किया है ।

गोदादेवी भूदेवी का अंशावतार मानी जाती है। अपनी पहनी हुई माला को भगवान् को समर्पित करने के कारण वह 'चूडिकोडुत्ताल' भी कहलाई। भक्तजनों की रक्षा करने से वह आण्डाल कहलाई।

आण्डाल के जीवन की उपर्युक्त घटनाएँ ऐतिहासिक हो या न हो, किन्तु एक बात स्पष्ट है। वह यह कि आण्डाल का गोपीभाव परम प्रशस्त एवं अनुभूतिमय है। तिरुप्पावै का अनुवाद तेलुगु आदि दक्षिण की सभी भाषाओं मे बहुत पहले हो चुका है। इसे संस्कृत मे श्रीव्रत कहा जाता है। इसका एक पद लीजिये। मनमोहन कृष्ण की प्राप्ति के लिये व्रत का उपदेश करती हुई कोई बाला अपनी सखी को जगाती है—

पुल्लिन् वाय कीण्डानैप्पोल्लाव रक्कनै
किळ्ळिक्कलैन्डानैकीर्ति मै पाडिप्पोय
पिल्लैगलेल्लारु पावैक्कलम्बुक्कार
वेल्लियेरुन्दु वियाऱ्मुरगिन्ड
पुल्लु शिलुम्बिन गाणपोदरिक्कण्णिनाय
कुल्लक्कुलिरक्कुडैन्दु नीराडादे
पल्लिक्किडत्तियो पावाय नीनन्नाल़ाल
कल्लन्दविरन्दुकलन्देलो रेम्बावाय।

मायावी कंस द्वारा प्रेषित बकासुर के घाती तथा रावण निहन्ता राम के गुण-गान करती हुई गोपिकाएँ कृष्ण का आलिंगन पाने के लिये संकेत स्थल पर पहुँच गई हैं, लेकिन तुम अभी तक सो रही हो। उठो, शुक्र का उदय हो गया। गुरु अस्त हो गये। विहग आहार की खोज में चहचहाते अपने घोंसलो से उड रहे है। सखियो की यह बात सुनकर गोपिका ने उनीदी आँखें कुछ खोली। सखियाँ फिर बोली—कमल पर बैठे भ्रमर से नयनो वाली! इस भुलावे मे न रहना कि तुम्हारे सौन्दर्य मान के लिये कृष्ण स्वयं आ जायेंगे। आओ, शीतल जल से स्नान करें और व्रत का पालन करें। तुम हमारी गोष्ठी मे सम्मिलित हो जाओ। अपूर्व व्रत के आचरण से हमे अवश्य श्रेय की प्राप्ति होगी। आण्डाल के अन्य प्रबन्ध नच्चियार तिरुमोलि मे १४३ पाशुर है।

कुलशेखर आलवार

इनका जीवन-काल नवीं शती के पूर्वार्ध में माना जाता है। ये तिरुवांकूर के राजा थे और श्री रामचन्द्र तथा श्री वेंकटेश्वर के परम भक्त थे। संस्कृत में इनकी लिखी मुकुन्दमाला अत्यन्त प्रसिद्ध है। भगवान् राम के ऐश्वर्य-वर्णन मे इन्होंने १०४ पाशुरो का एक प्रबन्ध तमिल में लिखा है जिसमें दस पाशुर तिरुमलै पर विराजमान भगवान् वेंकटेश्वर की भक्ति मे रचित हैं। एक उदाहरण लीजिये—

आनादशेलदत्तर वंयरगलनरङ्गूल।
वानालु शेलवमु मण्डरशु यान्वेण्डेन्।
ते नार पू शोलै तिरुवेङ्कडच्चुनैयिल्।
मीनाय पिरक्कु विन्यिुडै ये नावेन

मैं नहीं चाहता कि भूलोक का राज्य करके मैं स्वर्ग का राज्य करूँ और रम्भा आदि अप्सराओं से घिरा रहूँ। मैं तो इस सौभाग्य का इच्छुक हूँ कि तिरुमलै पर एक कुए में मछली बनकर रहूँ।

प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवि रसखान ने अपने प्रसिद्ध सवैये 'पाहन हो तो वही गिरि को' में ऐसी ही इच्छा व्यक्त की है।

ये श्रीरङ्गम् की यात्रा करना चाहते थे किन्तु इनके मन्त्री चिन्तित थे कि वहाँ जाकर ये श्रीरङ्गनाथ के मङ्गलविग्रह का सौन्दर्य निहार वापिस लौटने का नाम तक न लेंगे, अतः किसी न किसी बहाने यात्रा को टाल देते थे। इससे इनके भावुक हृदय का पता चलता है। एक अन्य घटना के अनुसार जब ये एक बार रामायण की कथा सुन रहे थे तो सीता-हरण का प्रसङ्ग आने पर एक दम क्षुब्ध होकर बोल उठे, 'मैं इसी समय लंका पर चढाई कर राक्षसाधम रावण समेत लङ्का को नष्ट कर दूँगा और माता को लौटाकर भगवान् राम को समर्पित करूँगा।" बड़ी कठिनाई से मन्त्री राजा को समझा पाये कि यह सब कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।'

शरीर के प्रत्येक अङ्ग को ये भगवद्भक्ति का साधन बना देना चाहते थे। मुकुन्दमाला का यह मनोबोधात्मक श्लोक द्रष्टव्य है—

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतो भज श्रीधरम्।
पाणिद्वन्द्व! समर्चयाच्युतकथां श्रोत्रद्वय! त्वं शृणु।
कृष्णं लोकय लोचनद्वय! हरेर्गच्छाङ्घ्रियुग्मालयम्।
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसीं मूर्धन्नमाधोक्षजम्।

जिह्वे! भगवान् मुरारि कृष्ण का कीर्तन करो चित्त! श्रीपति का भजन कर पाणियुग्म! प्रभु की सपर्या करो, कान! भगवान् की कथा सुनो, नेत्रयुगल कृष्ण का दर्शन करो, चरणद्वय! हरि के मन्दिर जाओ, नासिके! मुकुन्द के चरणों में चढ़े तुलसी का गन्ध ग्रहण करें। मस्तक! भगवान् विष्णु को प्रणाम करो।

तिरुप्पाण आलवार

ये श्रीवत्स के अंशावतार माने जाते हैं। इनका प्रादुर्भाव एक हरे भरे खेत में हुआ। एक हरिजन दम्पती ने उधर से गुजरते हुए उन्हें पाया और गोदुग्ध से उनका पालन किया। इनका स्थान चूलापुर श्रीरङ्गम् के निकट था और बचपन से ही ये भगवान् श्रीरङ्गनाथ के भक्त हो गये। कहा जाता है कि कावेरी के तट से ही वे श्रीरङ्गनाथ का दिव्य सौन्दर्य निहारते रहते थे। एक दिन मंदिर के पुजारी लोकसारङ्गमुनि जल लेने आये। तिरुप्पाण को देखकर उन्होंने उससे हट जाने को कहा पर ये तो अपने प्रभु के साक्षात्कार में लीन थे। न हटे, पुजारी ने क्रुद्ध होकर एक पत्थर मारा तो हट गये, परन्तु सारंग ने मन्दिर में आकर देखा तो भगवान् श्रीरङ्गनाथ के मुख से रुधिर निकल रहा था। सारंग समझ गये, प्रभु की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा तिरुप्पाण मेरा भक्त है। उसे यहाँ लाओ। वह पैदल आने के लिये मना करेगा पर तुम उसे कन्धे पर बिठा कर लाना। सारंग ने ऐसा ही किया। तिरुप्पाण ने भगवान् के दर्शन से भावविभोर हो दस पद गाये जो 'अमलनादि पिरान' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त घटना की ओर सकेत करता हुआ एक श्लोक इनकी प्रशंसा में प्रसिद्ध है

श्री लोकसारंग महा मुनीन्द्र स्कन्धाधिरूढ कल्यामि नित्यम् ।
कलकहीन कमनीयभक्ति कवीश्वरं गायकसार्वभौमम् ।

अर्थात् श्री लोकसारंग मुनि ने जिन्हें अपने कन्धे पर बिठाया उन निर्मल कमनीय भक्ति वाले गायक चक्रवर्ती तिरुप्पाण को मैं प्रणाम करता हूँ।

तोण्डरडिप्पोडि आलवार

ये भक्ताङ्घ्रिरेणु नाम से भी प्रसिद्ध है। बचपन का नाम विप्रनारायण था। मंडंगुडि नामक गाँव में एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। बड़े होने पर ये श्रीरङ्गनाथ का मालाकैंकर्य करते थे। प्रसिद्ध है कि ये स्वयं भी वनमाला के अंशावतार थे। भगवान् को प्रतिदिन माला समर्पण करने के उद्देश्य से इन्होंने एक उपवन भी लगाया था। एक दिन देवदेवी नामक वाराङ्गना अपनी बहिन के साथ राजसभा में गाँव जा रही थी। मार्ग में थककर इनके बगीचे में बैठकर सुस्ताने लगीं। विप्रनारायण बगीचे में काम कर रहे थे। इधर इन दोनों बहिनों में कुछ बहस हुई। देवदेवी ने कहा—मैं इस ब्राह्मण को अपने प्रेम-जाल में फँसा सकती हूँ। बहिन ने कहा कि यदि तुम ऐसा कर सको तो मैं दो महीने तक तुम्हारी दासी बन कर रहूँगी। शर्त तय हो गई। देवदेवी धीरे से विप्रनारायण के पास जाकर बोली 'भगवान् मैं आपकी शरण हूँ, ज्ञान और भक्ति का उपदेश चाहती हूँ आपके चरणों में रहकर आपकी सेवा करती रहूँगी और भक्ति-अमृत पाऊँगी। विप्रनारायण ने अनासक्त भाव से हाँ करदी। देवदेवी उपवन में लता-पौधों को सींचती और घर का काम-काज भी देखती। एक दिन वह बाहर काम कर रही थी कि वर्षा हुई और भीग गई। विप्रनारायण ने उसे अन्दर आने की अनुमति दी वह अन्दर आकर बैठ गई और कुछ देर बाद बोली—प्रभो। मुझ दासी को अपने चरण दबाने की आज्ञा दीजिये। विप्रनारायण मान गये और यहीं से उनका अतःपतन प्रारम्भ हुआ। वे उस वेश्या के कुचक्र में फँस गये। भगवान् अपने भक्त का पतन कैसे देख सकते थे। मन्दिर से एक स्वर्णपात्र देवदेवी के घर पहुँच गया। पुजारियों की शिकायत पर तलाशी हुई और विप्रनारायण तथा देवदेवी जेल में डाल दिये गये। विप्रनारायण को देवदेवी से घृणा हो गई। भगवान् ने राजा को स्वप्न में दर्शन देकर कहा—'विप्रनारायण निर्दोष है। उसका मोह हटाने के लिये ही ऐसा किया गया था। विप्रनारायण मुक्त कर दिये गये जेल से ही नहीं, उस भयंकर जाल से भी जिसमे वे फँसा लिये गये थे। उन्होंने भगवद्भक्ति में 'तिरुमालै' तथा 'तिरुप्पल्लियेलुच्चि नामक' दो प्रबन्ध लिखे।

तिरुमंगै आलवार

शत्रुओं के लिये काल सम होने के कारण ये परकाल नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन का जीवन बड़ा रोमांचकारी वर्णित है। ये नवीं शती में चोलदेश के तिरुक्करयलूर ग्राम में हुए। इस समय के चोलराज का नाम नील था और इनका भी बचपन का नाम यही था। इन्हे धनुर्विद्या और राजनीति में रुचि थी। बड़े होने पर चोलराज ने इन्हे ही गाँव का शासक बनाया। एक दिन इनकी भेंट कुमुदवल्ली नामकी किसी अप्सरा-पुत्री से हुआ। नील इस पर मुग्ध हो गये किन्तु उसने शर्त रखी कि यदि तुम नित्य १००८ वैष्णवों को भोजन करा सको तो मैं तुम से विवाह कर लूं। नील ने स्वीकार किया। शीघ्र ही इनका धन समाप्त हो गया

तो अपनी बात रखने के लिये ये वैष्णवेतर जनों को लूटने लगे। बटमारी के कारण राजा ने इन्हे कारागृह में डाल दिया तब काची के वरदराजस्वामी ने अपार धन देकर इन्हे छुड़ाया। श्रीरङ्गनाथ ने इनका उद्धार करने के लिये एक लीला की। एक दिन नील को इस जगल मे जहाँ वे लूटमार करते थे, एक बरात दिखाई पडी, इन्होंने लूटमार की। अन्त मे वर की उँगली मे से अँगूठी निकालना चाहा पर न निकाल सके। वर से पूछा कि क्या कोई मन्त्र जानते हो, कि अंगूठी निकलती ही नही। वर ने कहा हाँ, मैं मन्त्र जानता हूँ और, चाहो तो तुम्हे भी सिखा सकता हूं, यह कहकर उसने अपना वास्तविक रूप दिखाया तो नील के समक्ष साक्षात् भगवान श्रीरङ्गनाथ विराजमान थे। उसी समय से वे श्रीरङ्गनाथ के भक्त बन गये। भगवद्भक्ति मे विभोर होकर इन्होंने अनेक प्रबन्धों की रचना की जो इस प्रकार है—

१	पेरियतिरुमोलि	१०८४	पाशुर
२	तिरुकुरुताण्डकम्	२०	,,
३	तिरुनेडु ताडण्कम्	३०	,,
४	तिरुवेलिकूतिरुक्कै	१	,,
५	शिरियतिरुमडल	४०	,,
६	पेरियतिरुमडल	७८	,,

ये प्रकाण्ड पण्डित तथा पक्के वैष्णव थे। इन्हें चतुष्कवि कहा जाता है जिसका अर्थ है आशु कविता, मधुर कविता, चित्र कविता और विस्तार कविता करने वाला कवि। इनकी प्रशस्ति में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

परकालहरिं वन्दे हरिपादगुहाशयम्।
उन्नत प्रतिकूलेभकुभसंभेद विभ्रयम्।
वाद प्रसभसत्रस्त शैवशाक्यादिदुर्द्विपम्।
परकालमृगेन्द्र' त्वां प्रपद्येऽच्युत वन्दिनम्।

'हरिचरण रूपी गुहा में शयन करने वाले तथा शत्रु रूपी हाथी के कुम्भस्थल को खेल-खेल में ही विदीर्ण कर देने वाले परकाल रूपी सिंह की मैं वन्दना करता हूँ जो शास्त्रार्थ मे भयभीत शैव्य शाक्य आदि मस्त हाथी के लिये मृगेन्द्र हैं।

मधुर कवि आलवार तथा नम्मालवार

नम्मालवार शठकोप, परांकुश, वकुलाभरण आदि नामों से भी ये प्रसिद्ध है। शठकोप का सभी आलवारों मे विशिष्ट स्थान है। ये ताम्रपर्णी नदी के किनारे कुरुकूर में एक शूद्र के घर इनका जन्म हुआ था। ये बचपन से ही भागवत-ध्यान में इतने लीन हो जाते थे कि लोग इन्हें जड समझते थे। आदिनाथ के मन्दिर के बाहर स्थित इमली के पेड़ के खोखले मे बैठकर इन्होने कड़ी तपस्या की। इनके तेज से वह दिशा भी आलोकित हो उठी। मधुर कबि आलवार इन दिनों उत्तर भारत की यात्रा कर रहे थे और अयोध्या में थे। दक्षिण दिशा में दिव्य प्रकाश देखकर उन्होने किसी अप्राकृत दिव्य पुरुष का अनुमान किया और खोजते हुए वही पहुँचे। उन्होंने खोखले मे एक पत्थर गिराया तो नम्मालवार की समाधि खुली। मधुर कवि ने पूछा कि जीव प्रकृतिगर्भ में जन्म लेकर क्या खाकर कहाँ रहता है। उत्तर मिला

उसी को खाकर वहीं रहेगा जिसका तात्पर्य है कि जीव शरीर पुण्य दुखों का भोग करता हुआ शरीर में ही पड़ा रहेगा। नम्मालवार के इस समाधान से मधुर कवि बहुत प्रभावित हुए और उनको ही अपना आराध्य समझने लगे। अपना शेष जीवन उन्होंने नम्मालवार की सेवा में ही बिताया। प्रपन्न जनों के उज्जीवनार्थ नम्मालवार ने अनेक प्रबन्धों की रचना की। वे प्रपन्नजन कूटस्थ समझे जाते हैं।

नम्मालवार के प्रबन्ध इस प्रकार है—

१	तिरुविरुत्तम्	१०० पाशुर
२	तिरुवाशिरियम्	७ ,,
३	पेरियतिरुवदादि	७७ ,,
४	तिरुवायिमोलि	११०२ ,,

ये चारों प्रबन्ध क्रम से ऋग्, यजु साम, एवं अथर्व वेदों के समान सम्मानित है, मन्दिरों में वेदपाठ के साथ साथ इनका भी गान किया जाता है। नाथ मुनि ने शठकोप के वाङमय को भक्तामृत. विश्वजनानुमोदन. सर्वार्थप्रद, सहस्त्रशाखोपनिषत्समागम तथा द्राविड़ वेदसागर विशेषण दिये है। तिरुवायिमोलि में एक उदाहरण लीजिए—

कूविक्कोल्लाय वन्दन्दो वेनपोल्लाक्करुमाणिक्कमे
आविक्कोर पन्नुकोम्बु निन्नला लरिकिल रिल्लेनन्नान्
मेवित्तोरुम् पिरमन् शिवनिन्दिरनादि केल्लाम्
नाविक्कमल मुर्तीकरगे युम्वरन्दतुवे।

ब्रह्मा इन्द्र आदि सब देवता आपन्निवारणार्थ एकत्र हुए है। इन सबका आविर्भाव तुम्हारे नाभि कमल से हुआ है। तुम नित्य सूरियों के लिये परमप्राप्य और मेरे लिये परम भोग्य हो। हे स्वामिन्! तुम्हारे बिना मेरे लिये कोई अन्य आश्रय नहीं है। अब मुझे बुलाओ और अपना सान्निध्य दो।

मधुर कवि आलवार ने गुरुमहिमा वर्णन में ११ पाशुरों का एक प्रबन्ध 'कण्णिनुण-शिरुत्ताम्बु' लिखा है।

इस प्रकार आलवार भक्तों ने भगवद्भक्ति का जो प्रवाह प्रवाहित किया वह समूचे भारत को सरस बनाता हुआ अजस्र रूप में बहता रहा। परन्तु उसे सिद्धान्त और आचार के कूलों में बाँधकर प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीनाथमुनि, यामुनाचार्य, श्री रामानुज, वेदान्तदेशिक आदि आचार्यों को है। आलवारों की कथाओं को लेकर अनन्ताचार्य ने संस्कृत में 'प्रपन्नामृत' नाम से एक ग्रन्थ लिखा। दिव्यसूरिचरितम्' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है किन्तु इन दोनों का ही आधार है तमिल में उपलब्ध 'गुरुपरम्पराप्रभाव' नामक ग्रन्थ जिसके रचयिता एक प्राचीन वैष्णव आचार्य श्री पिन्बलियपेरुमालजीयर थे। तेलुगु में नंबूरि केशवचार्य की 'आचार्यसूक्तिमुक्तावली तथा वंगल सीतारामचार्य की 'आचार्यरत्नहार' नामक कृतियाँ हैं।

मलयालम

भाषा में भी भागवतानुसारी साहित्य की पर्याप्त मात्रा है। अनेक कवियों ने पुराण के आधार पर लाभा नायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को लेकर

रसपूर्ण रचनाएँ [illegible] भाषा में प्रस्तुत की हैं। [illegible] के कृष्ण-भक्त कवियों में प्रमुख हैं—'निरणम' कवि। ये तीन कवि थे, जिनका काल सन् १३७५ और १४७५ ई० के बीच में पड़ता है। इनमें सबसे बड़े माधव पणिक्कर थे, जिन्होंने मलयालम में पहले पहल गीता का अनुवाद किया था। दूसरे शंकर पणिक्कर जिन्होंने 'श्रीकृष्णविजय' और 'भारतमाला' नाम के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। तीसरे 'निरणम' कवि राम पणिक्कर थे, जिन्होंने अन्य अनेक ग्रन्थों के साथ 'भागवत का दशम स्कन्ध' की भी रचना की। इस ग्रन्थ में कवि ने अपनी विलक्षण काव्य-प्रतिभा का परिचय दिया है।

'कृष्ण गाथा' के रचयिता चेरुश्शेरी नम्पूतिरि को मलयालम के भक्त-कवियों में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनकी 'कृष्ण गाथा' मलयालम के समस्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य में सर्वाधिक सुन्दर कृति मानी जाती है। यद्यपि यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर ही लिखी गयी है फिर भी यह कवि की मौलिक रचना कही जा सकती है। इस कृति के कारण चेरुश्शेरी को 'महाकवि' होने का गौरव प्राप्त हुआ। चेरुश्शेरी ने 'कृष्ण गाथा' के अतिरिक्त 'भारतम्' की कथा भी गाथा-शैली में प्रस्तुत की है, जो 'चेरुश्शेरी भारतम्' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। चेरुश्शेरी की 'कृष्ण-गाथा' भक्त जनों के गले का हार है। इसमें कवि ने गीत-शैली को अपनाया है। इसके पदों का गायन करते-करते भक्त आत्मविभोर हो जाते हैं। सरस कोमल-कान्त पदावली में रचित यह काव्य मलयालम के गौरव-ग्रन्थों में से है।

चेरुश्शेरी की 'कृष्ण गाथा' में ऐसे सैकड़ों पद हैं जिनमें वात्सल्य और मधुर भक्ति-भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। माखन चोरी के प्रसंग में बालक कृष्ण की कुशलता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—"एक दिन कान्हा के हाथ में यशोदा ने कुछ मक्खन दे दिया। तुरन्त ही उसे खाकर वे कहने लगे—'अरी माँ! मैंने जो मक्खन खाया, वह मेरे गले के अन्दर अटक गया है। बड़े संकट में हूँ। जब तक दूध न पीऊँ या और मक्खन न खाऊँ, वह गले के नीचे नहीं उतरेगा। कृष्ण के मुख-भाव को देखकर यशोदा ने समझा कि कान्हा का कहना ठीक ही होगा। यशोदा ने जब दूध पीने दिया तो कान्हा अपनी विजय पर मुस्कराने लगे।[1]

कृष्ण-वियोग में तड़पने वाली गोपियों की दशा का जो हृदय-विदारक वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है, वह भक्त-हृदय को अनायास ही द्रवित कर देता है। गोपियां कहती हैं—"हे कृष्ण! हमारे प्रति आपने जो कृपा की थी वह अब कहाँ गई। चातक जिस प्रकार घनश्याम की प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार हे घनश्याम! हम आपके दर्शन के लिए तड़पती हैं। हम आपकी अनुपस्थिति में जल से अलग होने पर छटपटाने वाली मछलियों की तरह बहुत ही व्याकुल हैं। अपने दर्शन-सुख से आप हमें वंचित क्यों रखते हैं और क्यों इस तरह सताते हैं?[2] दास्य और सख्य भक्ति के तो अनेक पद चेरुश्शेरी ने रचे हैं।

१ नित्य मायप्पड्डु विङ्ङियवेण्णेये। संलर मिन्नु विङ्ङिनेरम्। मारिल तट विलङ्ङिन्नु पोयिते। अप्पोले निन्ने जानिंगने वंचिन्चे। निप्पोलिन्नुळ्ळं कुलुङ्ङुवल्लो। कृष्णगाथा सं० राजराज वर्मा पृ० ७३

२ कृष्ण गाथा सं० राजराज वर्मा पृ० ८४

मलयालम भाषा के साहित्य में महाकवि तुंचत्तु रामानुजन एलुत्तच्छन[1] का नाम अमर हो गया है। इन्होंने भारतीय संस्कृति के प्राणभूत एवं भक्ति भावना के महत्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण, महाभारत और भागवत की अवतारणा मलयालम में की है। इतने विपुल साहित्य के सृष्टा के रूप में कीर्ति प्राप्त करने का सौभाग्य विरले ही कवि महारथियों को प्राप्त हुआ है। हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी का जो स्थान है, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण स्थान एलुत्तच्छन का मलयालम में है। एलुत्तच्छन की महत्वपूर्ण कृतियों में 'अध्यात्मरामायण', भारतम, 'श्रीमद्भागवतम्' 'चिन्ता-सन्तानम्', हरिनामकीर्तनम् 'ब्रह्माण्ड-पुराणम्' देवी महात्मयम् आदि मुख्य हैं।

एलुत्तच्छन रचित 'भागवतम्' श्रीमद्भागवत का कोरा अनुवाद नहीं है। पौराणिकता के शुष्क पंजर में सरस भावनाओं और मनोरम कल्पनाओं के प्राण फूंककर, उन्होंने घटनाओं को जो सजीवता प्रदान की है, वह अत्यन्त स्तुत्य है। एलुत्तच्छन ने अपनी रचना 'भारतम्' में कृष्ण चरित्र का अलौकिक महत्व प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है तो 'भागवतम्' में उन्हीं लीला नायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का रमणीय वर्णन प्रस्तुत किया है। केरल के भक्त सन्ध्या-वन्दना के समय 'भारतम्' और 'भागवतम्' के अंशों का गायन करते हैं, जो इन रचनाओं के धार्मिक महत्व को स्पष्ट करता है।

नवधा भक्ति के अनेकानेक उदाहरण एलुत्तच्छन की 'भागवतम्' कृति में उपलब्ध हैं। एलुत्तच्छन लिखते हैं कि भगवान् की लीलाएं सुनते और सुनाते रहें तो इस संसार के प्रति हमारा जो ममत्व है वह टूट जायगा। फिर धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा और आत्म ज्ञान की प्राप्ति होगी।[2] एलुत्तच्छन की भक्ति भावना का परिचय देने के लिए दो एक उदाहरण पर्याप्त हैं। वात्सल्य और मधुर भावों की भक्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है। गोपियों की विरह-भावना का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। गोपियाँ कृष्ण से प्रार्थना करती हैं— हे, कृष्ण ! तुम्हारे प्रेम को प्राप्त करने के लिए हम तड़पती हैं। तुम्हारी प्रतीक्षा करके हम थक गई हैं। अब ऐसी दशा आ गई है कि तुम से अलग होकर एक क्षण के लिए रहना भी असम्भव ही हो गया है। हमें इस तरह तड़पाना ही तुम्हें अच्छा लगता है ? हे, प्राणनाथ ! हमें बचाओ।[3]"

आत्म निवेदन करते हुए एलुत्तच्छन कहते हैं, "आशा रूपी डाकिन के पंजे में पड़ने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जगत् सत्य है, हमारा जीवन जगत के बुलबुले के समान क्षण भंगुर नहीं है, स्थायी है। संसार के माया मोह में फंस जाने के कारण ही मैंने ऐसा समझ लिया था। हे कृष्ण ! मैंने जाने अनजाने अनेक पाप किये हैं। आप की कृपा के बिना वे पाप नहीं मिट सकते। आप ही करुणा निधान हैं।[4]

१ इनके जीवनकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इनका जीवन-काल सन् १५२६ और १७२५ ई० के बीच में डोलायमान है।

२ चिन्ता सन्तानम् ले० एलुत्तच्छन, पृ० ७२

३ गोपके रमिच्चु कोलक मनान्नु । कामाग्नि तन्निल दहिक्कुन्न जंगले ।
कृष्णमडा, रक्षिप्पतिनेन्तु ना मन । प्राणन् नशिच्चु पोकुन्नतिन्नु मुन्नमें ।
प्राणात्मका प्राणनाथा नमो नम ॥ श्रीमद्भागवतम्, दशम स्कन्ध एलुत्तच्छन, पृ० २६४

४ उटलोराशपिश.चिन्त आयाल चट्टुवारमेयियन बालमुक नीलतुम ।
नष्टमाकये नन् कृपा पूर्णम ... पानत्ल ... जय कीर्तनम् ... पृ० २

केरली साहित्य के कृष्ण भक्त कवियो मे पून्तानम नपूतिरि का एक विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म सन् १५५७ ई० म हुआ य जन्म से ही ईश्वर भक्त थे धार्मिक कार्यो मे बडी निष्ठा से तत्पर रहते थे। इनकी दृष्टि मे सारा जगत् 'कृष्णमय' है। ये केरल के "गुरुवायूर" नामक स्थान के प्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर मे जाकर सदा कीर्तन-भजन मे डूबे रहते थे। श्रीमद्भागवत का परायण करना उनका दैनिक कार्य था। इनकी तीव्र भक्ति-भावना को व्यक्त करने वाली अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित है। पून्तानम नंपूतिरि के भक्ति-रस स्निग्ध पदों का गायन आज भी केरल के भक्त बड़े चाव से करते है और आत्म-विभोर हो जाते है। भक्त-हृदय को अनायास ही आकृष्ट करने का सामर्थ्य पून्तानम् के पदो मे निहित है।

पून्तानम की प्रमुख रचनाए है, सन्तानगोपालम् पाना, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना, घनमघ-स्तोत्रम, पार्थ-सारथी-स्तवम्, आनन्दामृतम, नूट्टट्ट० हरि आनन्दवृत्तम् और कृष्णलीला।

श्रीकृष्ण कर्णामृत मे भागवत के दसम स्कन्ध के समस्त प्रसगों का वर्णन है। कवि ने विशेष रूप से लीला नायक कृष्ण की बाल लीलाओ मे ही अधिक तल्लीनता दिखाई है। यह ग्रन्थ इतना प्रसिद्ध और लोक प्रिय है कि इसके अधिकाश पदो को भक्त लोग बडे सबेरे उठकर श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते है। यह भक्ति-रस की उच्च कोटि की कृति है। श्री बिल्व मगल नामक एक आचार्य ने भी 'श्रीकृष्ण कर्णामृतम' लिखा है। यह भी भक्ति-रस प्रधान एक उत्तम कृति है। इसमे कृष्ण की विविध लीलाओ के साथ रास-लीला का विस्तार से वर्णन है। पून्तानम ने अपनी कृति 'कृष्ण कर्णामृतम' मे श्रीकृष्ण की सभी लीलाओ का वर्णन प्रस्तुत किया है।

"ज्ञानप्पाना" पाना काव्य-पद्धति मे लिखी गई कृति है। पून्तानम ही इस पद्धति के जन्मदाता कहे जाते है। इस पद्धति का अनुसरण अन्य मलयालम कवियो ने भी किया है। किन्तु अधिक सफलता पून्तानम को ही मिली है। इनमे कवि के दास्य-भक्ति-भाव तथा आत्म निवेदन के पद हैं। शैली सरल और प्रसाद गुण से युक्त है। 'घनसघ-स्तोत्रम' एक कीर्तन काव्य है "पार्थसारथीस्तवम्" एक खण्डकाव्य है। "आनन्दनृत्तम' नामक काव्य की रचना के विषय मे यह किवदन्ती प्रचलित है कि एक दिन कवि ने भगवान् कृष्ण के चरणोदक से ही अपने मित्रो को प्रीति-भोज देकर सन्तुष्ट करने का निश्चय किया। समस्त आमन्त्रित मित्र पून्तानम की इस मूर्खता पर हँसने लगे और पूछने लगे, 'अरे पून्तानम! कृष्ण कहाँ हैं? अभी तक आये नही। देर हो रही है। उन्हे बुला लाओ।' इतने मे श्रीकृष्ण के पांचजन्य शख की ध्वनि सुनाई देने लगी। मित्र लोग तो कृष्ण के दर्शन कर न सके किन्तु भक्त प्रवर पून्तानम ने कृष्ण के दर्शन किये और उनकी स्तुति की। कृष्ण के दर्शन करने से उन्हे जो आनन्दानुभूति हुई, उसको लक्ष्य करके उन्होंने "आनन्दनृत्तम" की रचना की। श्री पून्तानम की एक दूसरी रचना 'कृष्णलीला' के नाम से है। यह अकारादि अक्षरों से प्रत्येक पंक्ति को आरम्भ करके लिखी गई है। इसमें पून्तानम् की काव्य कुशलता का परिचय मिलता है।

पून्तानम की भक्ति भावना का परिचय देने के लिए हम उनके दो एक पद का साराश देते है। उनके पदों में नवधा भक्ति की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। एक पद में पून्तानम कहते हैं—हे भगवान आपके पैर वृन्दावन के लिए भूषण, रिपु समूह को भयदाता, दूध-मक्खन आदि को चोरी करने में सहायक क्रूर आत्माओं के लिए घातक बडे पापों का नाश करने वाले

वनिताओं के आनंददाता तथा मंजुल ध्वनि से युक्त हैं। आपके ऐसे चरण मेरी मति का दोष दूर करें।[1] कृष्ण की मोहिनी मूर्ति पर मुग्ध होकर वात्सल्य भक्ति-भाव में पून्तानम कहते हैं—कृष्ण नन्हे पैरों से नाचते-कूदते हैं। कमरबन्द की सोने की घंटिकाएं आपस में टनाटन बजती रहती हैं। सिर पर उन्होंने मोर मुकुट पहना है। वह तोतली बोली बोलते हैं। उनका शरीर सुन्दर है। सखाओं के साथ वे वंशी बजाते हैं। यह रूप सर्वदा मेरे सामने प्रत्यक्ष हो।[2] कृष्ण की बाल सुलभ-चेष्टाओं का सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत करने वाले अनेक पद पून्तानम ने लिखे हैं। उनके माधुर्य भक्ति-भाव के भी सैकड़ों पद मिलते हैं। मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियों में से एक गौरव पूर्ण स्थान पून्तानम को प्राप्त है।

कुंचन नंप्यार केरल के कृष्ण-भक्ति-साहित्य के एक अमूल्य रत्न हैं। ये एक श्रेष्ठ कवि, समाज-सुधारक और कलाकार थे। इनका जन्म सन् १७०५ ई० में हुआ। केरल की कलाओं की श्री वृद्धि करने में नप्यार का बड़ा हाथ रहा। नप्यार मलयालम और संस्कृत के प्रकाड पंडित थे। भाषा पर उनका अधिकार सराहनीय है। इनकी काव्य-प्रतिभा से इनकी रचनाएँ मलयालम साहित्य में स्थायी महत्व की बन गयी हैं। इन्होंने विभिन्न काव्य-शैलियों को अपनाकर कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में 'श्री कृष्ण चरितम्' 'मणिप्रवालम्' 'भगवद्दूत', 'भागवतम् इरुपुत्तिनालुविरुत्तम्' 'पतिनालुवृत्तम्', 'शीलावति-नल-चरित्र, 'शिव पुराण', 'विष्णु गीता' आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ श्रीकृष्ण सम्बन्धी मुख्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है :—

'श्री कृष्ण चरितम् मणिप्रवालम्' मलयालम के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों में से है। यह नप्यार की प्रारम्भिक रचना है। इसमें बारह सर्ग हैं। श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन प्रथम सर्ग में किया गया है। द्वितीय सर्ग में पूतनामोक्ष की कथा हास्य रस प्रधान शैली में दी गई है। नलकूबर आदि की कथा तीसरे सर्ग में है। इसमें कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। वन-वर्णन और कालिय नाग के अहंकार का दमन आदि चौथे सर्ग में वर्णित है। पंचम् सर्ग में रास लीला का विस्तृत वर्णन है। कंस की कथा, रुक्मणी परिणय, जाबवान के साथ युद्ध, उसकी पुत्री को पत्नी के रूप में स्वीकार करना बाणासुर युद्ध, कौरव-पांडवों का युद्ध और सन्तान गोपाल आदि की कथाएं शेष सर्गों में दी गयी हैं।

---

१ आमाटिक्कोरु भूषणं रिपुकुलानामिन्नडो भीषणन्,
पैपाल वेसरणा नयिक्कुमोनयान् मन्निकुलत्तमर्ना येयम्मन्॥
वन् पापत्तिनु शोषणं वनितामार्क्कानन्द सयोषणम्।
निपादम मति दूषण हरन में मंजीर सघोषणम्।
पून्तानम की कृतियां, म० मृस्सत पृ० ६४

२ उणिणुक्कान्न कोट्टु नृत्तंकुमर तिरने किङ्किणी दपोन्नन्ना।
तुणिणक्कै कोट्टुं तार्न्नलुमरेण मुर्टिते पिन्नुं कोन्तलवान्नुं॥
उणिणु ककरयान्टे पूं पै कुलल विलियु अट्टनुम्मा निलविल्लखमे।
कणिणल मम्मनुन्न पोने मनक्कालिनिलविलेम मेकु म पोल्लेल्ल म॥
वही पृ० १०

भगवद्दूत' नम्प्यार की कृतियों में सबसे अधिक लोकप्रिय है यह भी कवि के की रचना है। फिर भी सरसता या गांभीर्य की इसमें कमी नहीं है। य० काव्य चौदह भिन्न वृत्तों में लिखा गया है। इसमें कौरव और पांडवों के बीच शांति स्थापित करने के लिए किये गये श्रीकृष्ण के प्रयत्नों का वर्णन है। कृष्ण-शान्ति-दूत के रूप में वर्णित हैं। श्रीकृष्ण के उपदेशों का भी यथा स्थान समावेश हुआ है। यद्यपि इस काव्य की रचना श्री भट्टतिरि के दूत-वाक्य तथा महाभारत के आधार पर हुई है; फिर भी इनमें नम्प्यार का व्यक्तित्व तथा उनकी स्वतन्त्र चिन्तन-धारा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

'भागवतम् इरुपतिनालुवृत्तम्' नामक कृति में नम्प्यार ने श्रीमद्भागवत की कथावस्तु चौबीस सर्गों और विभिन्न वृत्तों में प्रस्तुत की है। प्रथम सर्ग में प्रार्थना तथा आत्मा-निवेदन के पद हैं; द्वितीय सर्ग में श्री कृष्णावतार के समय का सुन्दर वर्णन है। तीसरे सर्ग में पूतना-वध, चौथे में तृणावर्त का आगमन, पांचवें में वृकासुर का वध, छठे में सर्पासुर का निधन, सातवें में कालि नाग का दर्पहरण, आठवें में गोपियों को श्रीकृष्ण के उपदेश नवें में रास लीला वर्णन, दशम सर्ग में कंस का अपशकुनों को देखना तथा एकादश में गुरुदक्षिणा आदि का वर्णन है। द्वादश सर्ग में रुक्मिणी का प्रेम-निवेदन है। रुक्मिणी का सन्देश कृष्ण को पहुँचाने वाला दूत इस प्रकार रुक्मिणी की दशा का वर्णन करता है— 'हे भगवान्! वे आप का नाम हमेशा रटती रहती है। चन्दनादि शीतोपचार से भी उनको सताप होता है। मन्द वायु के स्पर्श से उनको मूर्छा आ जाती है। चन्द्र भी उन पर अग्नि की वर्षा करता है। कोयल की मंजुल वाणी सुनते ही मानों उनके प्राण पखेरू शरीर को छोड़कर उड़ जाने के लिए छटपटाते हैं। फुलवारी में भी वे मूर्छित हो जाती है।[1] त्रयोदश सर्ग में रुक्मिणी का परिणय है। चौदहवें सर्ग में सत्राजित की पुत्री का पाणिग्रहण और पन्द्रहवें सर्ग में परिजात की कथा है। सत्रहवें सर्ग में बाणासुर की नगरी पर श्रीकृष्ण तथा उनकी सेना का आक्रमण, अठारहवें में असुर विविद की धमकी, उन्नीसवें में सुदर्शन चक्र का वर्णन, बीसवें में जरासन्ध वध और इक्कीसवें सर्ग में दुर्योधन की स्थल-जल-भ्रांति का वर्णन है। बाईसवें में सुदामा चरित्र है। तेईसवें में श्री कृष्ण का अपनी माता देवकी से मिलना है और चौबीसवें सर्ग में अर्जुन का अग्नि-प्रवेश और श्री कृष्ण का वहाँ आकर उसे रोकने की कथाएं है। इनके अतिरिक्त कई अन्य सरस प्रसंगों का भी वर्णन कवि ने इस ग्रन्थ में किया है।

भक्त प्रवर नंप्यार को केरल-राजा मार्तण्ड वर्मा का आश्रय भी प्राप्त था। उक्त राजा ने नम्प्यार का बड़ा आदर किया और राज्याश्रय में रहकर नंप्यार ने बहुत अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की जो मलयालम साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। नम्प्यार मूलतः भक्त थे। उनकी भक्ति-रस-स्निग्ध कविता भक्तों के हृदय की प्यास बुझाने वाली है। नवधा भक्ति के अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं में मिल जाते है। एक पद में नंप्यार दीनता दिखाते हुए वन्दना करते हैं।—"हे नन्दलाल! सुन्दर मुरारि, मन्दर पर्वत को उठाने वाले केशी के घातक तथा कैवल्यमूर्ति! मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। आप अच्युत, सच्चिदानन्दमय निश्चल,

१ भागवतम् इरुपतिनालु वृत्तम बारहवां सर्ग पद ५६ ५९

निरंजन कारण पुरुष कंस विनाशक चरण सेविन श्री दयालु हे मैं आपकी वंदना करता हूँ ।[१]

मलयालम भाषा के अन्य अनेक कवियों ने भी भागवत कथा को लेकर स्वतन्त्ररूप में रचनाएँ प्रस्तुत की है । इस प्रकार मलयालम के मध्य युगीन साहित्य में भागवत निरन्तर प्रेरणा-स्रोत रहा है ।

कन्नड़

यों तो कन्नड-प्रदेश प्रायः शैव एवं जैन साहित्य के लिए प्रसिद्ध है, फिर भी कन्नड भाषा में कृष्ण-भक्ति साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है । कन्नड के भागवत-साहित्य पर मध्वाचार्य के द्वैत सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा है । मध्व-मतावलम्बी भक्त-कवि 'हरिदास' कहलाये । ईसा की १३ वीं शती से १८ वीं शताब्दी तक कर्नाटक में हरिदासों की परम्परा चली और कहा जाता है कि इस काल में लगभग दो सौ हरिदास भक्त हुए हैं, जिनमें श्री नरहरितीर्थ, श्री जयतीर्थ, श्री पादराय, श्री व्यासराय, श्री पुरन्दरदास, श्री कनकदास, श्रीवादिराज, श्री गोपालदास, प्रसन्न वेंकटदास, श्री जगन्नाथदास आदि प्रमुख माने जाते हैं । इन कवियों ने न्यूनाधिक रूप में श्रीमद्भागवत का आश्रय लेकर कन्नड भाषा में उच्चकोटि की भक्ति-रस-स्निग्ध रचनाएँ की हैं । इन हरिदास भक्तों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने संकीर्तन-पद्धति में भक्ति-भावना पूर्ण गेय पद रचे थे । प्रायः सभी हरिदास संगीत-कला में निपुण थे तथा गीत-पद्धति का उन्हें अच्छा ज्ञान था । इनके गेय पदों को गा-गाकर भक्तजन आत्म विभोर हो जाते थे । पुरन्दरदास तो संगीत के आचार्य थे और उन्हीं के द्वारा दक्षिण की संगीत कला को एक नयी दिशा प्राप्त हुई । कहा जाता है कि तेलुगु के भक्तप्रवर त्यागराजु स्वामी ने पुरन्दरदास से ही संगीत शिक्षा प्राप्त की थी । पुरन्दरदास के भजनों के कारण ही दाक्षिणात्य संगीत आगे चलकर 'कर्नाटक संगीत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

श्री पादराय का हरिदासों में एक विशिष्ट स्थान है । इनका जीवन-काल पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पड़ता है । प्रारम्भ में इनका नाम लक्ष्मीनारायण था । श्री पादराय ने कन्नड़ में 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीत', 'गोपी गीत' आदि रचनाएँ प्रस्तुत कीं । इन्होंने अपने गीतों के गायन का प्रबन्ध भी मन्दिरों में कराया था । बंगलौर से प्रकाशित हरिकीर्तन तरंगिणी के छठे भाग में श्री पादराय के लगभग साठ पद दिये गए हैं । इनमें विनय, सख्य, वात्सल्य तथा दास्य भाव के अतिरिक्त गोपियों की विरह-वेदना का भी मार्मिक चित्रण हुआ है । 'भ्रमरगीत' में गोपियों की उक्तियाँ बड़ी रोचक और सरस हैं । श्री पादराय ने 'रुक्मिणी सत्यभामा विलास' नामक एक लघु गीत-काव्य भी रचा । इसमें कृष्ण को प्राप्त करने के लिए रुक्मिणी और सत्यभामा दोनों के बीच में होने वाली स्पर्धा का परिचय दिया गया है । कृष्ण की बाल-लीलाओं और गोपियों की विरह-भावना का वर्णन करने वाले श्री पादराय के पद बहुत ही

---

१ नन्द नन्दन स्वजनानन्द सुन्दरानन वन्दे वन्दे
नन्दित लोक मुकुन्द दुरान्तक मन्दर पर्व धारक शौरे...
कारण पुरुष कंस विनाशन चरण सेविन चारु दन्त्यलो
चारण पालक वारिज लोचन दारुण वैरि विदारण वन्दे
—केरल भाषा साहित्य चरित्र भाग २
स० आर० नारायण पणिक्कर पृ० २

सुन्दर बन पडे है। बाल-छवि तथा बाल-सुलभ-चेष्टाओं के वर्णन में कवि की तन्मय-भावना का परिचय मिलता है। कृष्ण को पालने मे लिटाकर यशोदा द्वारा लौरी सुनाने का वर्णन करते हुए स्वयं कवि कहते है :— हे रंगा ! सो जाओ, रण भीम ! सो जाओ, भक्तो के कष्ट दूर करने वाले ! सो जाओ। भूमि को सोने का पालना बनाकर, सोम, सूर्य को कलश, वेदो को जजीर बनाकर तथा महा आकास की खूँटी मे पालने को लटकाकर ब्रह्मा, गरुड शेष, सरस्वती, सुर, किन्नर-किंपुरुष, नारद आदि ने तुम्हारी स्तुति की है। तुम वसुदेव पुत्र मुरारि हो, तुमने पूतना के प्राण हर लिये है। तुम दैत्यों के वैरी हो, असाधारण साहसी हो और तुमने शिशु बनकर यशोदा को आनन्द प्रदान किया है। तुमने जगत् अपने उदर मे समा लिया है। जगत् का निर्माण किया है। तुम निगम-अगोचर और नित्यानन्दमय हो। तुम्हे शिशु समझकर हम कैसे भुला सकते है ? तमासुर का नाश करके तुम वेदो को लौटा लाए, देवताओ के हित तुमने मन्दर पर्वत को उठा लिया। क्षमा करने के लिए जाकर तुमने हिरण्य को मार डाला। घर-घर जाकर तुमने दूध-दही समाप्त कर दिया है। भक्तवत्सल श्री पद्मनाभ, सो जाओ।"[1]

श्री पादराय के अनेक पदों मे माधुर्य-भक्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। उनके एक गीत मे कृष्ण का मुरली बजाते हुए आना और गोपिकाओं के रति-भाव से विकल होने, कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए गोपियों के अपने शरीर को नाना प्रकार की सुगंधित वस्तुओं से अलकृत तथा आकर्षक बनाने आदि का वर्णन मिलता है।[2] परन्तु अन्त मे यह गीत भी स्तुति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। श्री पादराय ने अपनी रचनाओं मे चीर-हरण-लीला, रास-लीला, जल-क्रीड़ा, वसत-लीला, व्रज मे उद्धव के आगमन आदि प्रसंगो का भी वर्णन किया है। उन्होंने 'भ्रमरगीत' के नाम से भी कुछ पद रचे हैं। इनमे विरह-वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। एक पद मे एक गोपी कहती है—सखी री ! मुरली बजाकर और हमारे मन मे विश्वास पैदा करके कृष्ण चले गये, हम विकल होकर तड़प रही हैं। सखि री ! हमे घर का काम-काज जरा भी नही रुचता। मन किसी चीज मे रमता नही है। एक पग भी आगे बढ़ नही पातीं। पैरों ने जबाव दे दिया है। प्रियतम के साथ ही हमारी वाणी भी चली गयी है। हम ऐसी हो गयी है कि मन मे एक बात तक नही उठती। प्रियतम के दर्शन किये बिना रहा नही जाता। कल से नीद भी नही लगती। उस नटवर से मिलकर इस नारी-जन्म की क्या दुर्दशा हो गयी है। हमारा विरह-ताप बढता जा रहा है।[3]

व्यासराय

हरिदासों के भक्ति-संप्रदाय को लोक-व्यापी बनाने का श्रेय श्री व्यासराय को है। है। श्री व्यासराय का जन्म सन् १४४७ ई० मे हुआ था। हरिदासों में श्रेष्ठ माने जाने वाले श्री पुरन्दरदास और कनकदास इन्ही के शिष्य थे। व्यासराय संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इनके रचित ग्रन्थों मे 'न्यायामृत' 'तर्क-ताण्डव' और 'चन्द्रिके' प्रमुख हैं। इन संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने कन्नड़ में भक्ति-रस-प्रधान अनेक पद रचे हैं जिनमें एकांतिक भक्ति,

१ श्री हरिदास कीर्तन तरंगिणी. भाग ६ पृ० २२, २३
२ वही पृ० १५ १७
३ हरि भक्ति सुधे पृ० ७१०

नवधा भक्ति, पवित्र जीवन, कीर्तन, नाम-स्मरण, कृष्ण के विविध रूपों का वर्णन, आत्म-निवेदन, हरि-महिमा आदि अनेक विषयों की सुन्दर और भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

श्री व्यासराय ने अपने एक गीत में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मुरली बजाने वाले कृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम-भाव का परिचय इस प्रकार दिया है—हे सखी ! चलो उस वृन्दावन में। हम गोविन्द की लीला का सौदर्य देखे, जिसमें मुनिगण, मृग, पक्षी, पेड़ो के रूप मे है, सनकादि गायों के रूप में हैं। वहाँ की गाएँ मुरली की रस माधुरी का आस्वादन करके उन्मत्त है और उनके मन में आनन्द रूपी सागर उमड रहा है। कृष्ण के चरणों की नख-छवि रूपी चाँदनी से चन्द्रकांत-शिला पानी बनकर बहने लगी और यमुना से इस तरह जाकर मिल रही है मानो एक दूसरा ही संगम हो। श्रीपति के मन्दहास रूपी चन्द्रमा और कौस्तुभ मणि रूपी बाल-रवि को देखकर चक्रवाक इस भ्रम मे पड़े है कि अब दिन है या रात्रि। कृष्ण के वक्ष पर शोभित वनमाला रूपी इन्द्र-धनुष, पीताम्बर रूपी विद्युत्, वेणु-नाद रूपी घन-गर्जन और श्याम वर्ण के कृष्ण रूपी मेघ को देखकर चातक इसलिए नाचने लगा है कि उसे वर्षा ऋतु के मेघों का भ्रम हो रहा है"।[१] श्री व्यासराय के एक दूसरे पद में एक गोपी दूसरी गोपिकाओं को सबोधित करके कहती है—मैं कसम खाकर कहती हूँ कि मुझसे यह सहा नहीं जाता। सुनो सखी ! उस मुरली का भाग्य कितना महान् है। यह मुरली कृष्ण के अधरों का रस-पान स्वयं कर रही है और कृष्ण की प्रसन्न प्रिय सखियों को भी उनसे वंचित कर रही है।[२]"

"उद्धव-गोपी-संवाद" प्रसंग मे व्यासराय के एक पद का भाव इस प्रकार है—'हे उद्धव ! इस वृन्दावन और गोकुल में अब रखा ही क्या है ? अब स्नेह कहाँ रहा ? प्रियतम तो उस कुब्जा से जाकर मिल गये है। उनका कटाक्ष अब हमें कैसे मिलेगा ? तन मे ताप की वृद्धि हो रही है। हमारी बेबसी बढ़ रही है। हमारे वल्लभ को हमसे अलग करके अक्रूर ले गए है। हे उद्धव ! मल्लों का मर्दन करके कंस का वध करने वाले हमारे वल्लभ को दिखाओ। आदर से अधरामृत पिलाकर आनन्द देने वाले और मन के मर्म को समझकर मधुर वचनो से तंग करने वाले कृष्ण अब हमको स्वप्न-से लगते हैं। कपट-नाटक करने वाले कृष्ण को करुणा-सागर कहते है और जो उनका स्मरण करते है वे उनका सम्मान करते हैं। तब उन्होने हमें कैसे भुला दिया। जल्दी जाओ, और हमारा यह गाना उन्हें सुनाओ और उन्हें यहाँ बुला लाओ। जिन्होंने उनका विश्वास किया है उनको इस प्रकार भुला देना क्या उचित है ?[३]

पुरन्दरदास

श्री पुरन्दरदास हरिदासों मे सर्वश्रेष्ठ ही नहीं बल्कि कर्नाटक के सबसे बड़े संत और गायक भी थे। पुरन्दरदास का जन्म पूना के निकट पुरन्दर गढ नामक गाँव में हुआ था। उनका जीवन-काल सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पड़ता है। हरिदासों मे यह प्रसिद्ध है कि पुरन्दर ने 'पुरन्दर विट्ठल' नामक उपनाम से चार लाख पचहत्तर हजार पद बनाए थे।

१ हरिदास कीर्तन तरंगिणी—भाग ६ पृ० १४२-१४४

२ वही भाग ६ पृ० १६६

३ ६ पृ १४२ १४२

किन्तु उनके उपलब्ध पदों की सख्या पांच हजार के लगभग ही है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पुरन्दरदास ने द्रौपदी वस्त्रापहरण सुदामा चरित्र और 'परतत्त्वसार' नामक और तीन कृतिया भी रची थी। किन्तु ये कृतियां अब तक प्रकाश में नही आयी हैं।

कन्नड के भक्ति-साहित्य में श्री पुरन्दरदास का स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने कोई महाकाव्य तो नही रचा, लेकिन इनके भक्तिपरक पदो ने कन्नड़ भाषी जनता पर जितना गहरा प्रभाव डाला है, उतना किसी अन्य बडे ग्रन्थ ने नही। कन्नड साहित्यकार श्री मास्ति वेंकटेश अय्यगार ने पुरन्दर के पदों के विषय में ठीक ही लिखा है—

"They (the songs of Purandardas) indicate a mind familiar with the world and its ways and inclined as much to see without as within. Wide knowledge, deep experience and a great love of humanity are visible in them. Their range is great"[1]

पुरन्दर के समस्त पद भक्ति-भावना से ओतप्रोत है जिनमें नवधा भक्ति की भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। भागवत कथा के विभिन्न प्रसंगों का विस्तृत वर्णन उन्होने प्रस्तुत किया है। कन्नड़ कवियों में वात्सल्य-वर्णन मे पुरन्दर अद्वितीय हैं। कृष्ण को पालने मे लिटाकर सुलाने के प्रसंग मे स्वयं कवि यशोदा के स्थान पर कहते हे—"श्री कृष्ण परमानन्द ! सो जाओ। गोपी के पुत्र मुकुन्द ! सो जाओ। क्षीर सागर पर सोने वाले ! वटपत्र पर शयन करने वाले ! हे बालक ! तुम्हे गाने सुनाकर रत्न जटित सुन्दर पालने मे, चमकीले मंजीठे पर सुलाऊँगा, रोओ नही मेरे लाल ! तुम्हे गा गाकर सुलाऊँगा। हे गुणनिधि ! यदि मैं तुम्हें गोद मे उठा लूं तो घर का काम कौन करेगा ? शीघ्र ही सो जाओ। प्रभु पांडुरग ! पुरन्दर विट्ठल ! सो जाओ।"

कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का पुरन्दर ने सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। पुरन्दरदास का कृष्ण शुरू-शुरू में हौए का नाम सुनकर भयभीत हो जाता है, और यशोदा से कहता है—"हौए को मत बुलाओ, मैं चुप रहूँगा, खाना खाऊँगा। पीछे से जाकर गोप बालिकाओं की आँखें बन्द नही करूँगा, भैया को गाली नही दूँगा। लड़को को नहीं पीटूँगा। मक्खन, मिट्टी नही खाऊँगा। बछड़ों को नही खोलूंगा, भगवान् की तरह एक ही जगह बैठा रहूँगा।" कृष्ण की इन बातों को सुनकर यशोदा मुस्कराती हे और जगत् के प्रभु पुरन्दर विट्ठल को बड़े प्रेम से छाती से लगा लेती हैं।[2] आगे चलकर जब कृष्ण को हौए की बात पर सन्देह होता है तब माता से कहता है "दिखाओ तो सही हौआ कहाँ है ?[3] झूठमूठ मुझे मत डराओ। मां ! चौदह लोको को अपने उदर में समाकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मैंने अपने मुँह मे धारण किया है। भयंकर हवा का रूप धारण करके आने वाले राक्षस को मार डाला है, पर आज तक किसी हौए को नही देखा। कालिया के फणों पर चढ़कर मैंने नाच किया और नागपत्नियों का उद्धार किया। तब भी मैंने हौआ नहीं देखा। अक्रूर को विश्व रूप दिखाया,

---

1 Popular Culture in Karnatak—Masti Venkatesh Iyngar pp 74.

२ श्री हरिदास कीर्तन तरंगिणी भाग १ पृ० ७५

३ श्री हरिदास कीर्तन तरंगिणी भाग १ पृ० ५३

रथ पर बैठकर मथुरा गया, पर मा, मैंने कही भी हौम्रा नहीं देखा। पुरन्दर विट्ठल भाज गोपाल को इस तरह मत डराम्रो[1]।"

पुरन्दरदास के पदों में माधुर्य-भक्ति की भी भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने आध्यात्मिक श्रृङ्गार के संयोग पक्ष का चित्रण महात्म्य-भाव की पुष्टि मे किया है। उनके एक पद से यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक गोपिका कृष्ण से कहती है—हे कृष्ण, तुम्हारे पैरो पर पड़ती हूं, कुछ आवाज़ न करो। जो लोग सो रहे है, वे जाग पड़ेगे और तुम्हारे यहाँ आने की खबर लग जायगी। हाथ पकड़कर खींचो नही, चूडियाँ बज उठेंगी। छाती पर से अचल न उठाम्रो, कही गले के गहनों से आवाज न निकलने लगे; इधर उधर की बात क्यों करते हो ? यह तो कुछ गाना गाने का समय नही है। यह तो पुरन्दर विट्ठल की स्तुति करके पथ मे मिल जाने का समय है।[2] दास्य भाव की भक्ति की अभिव्यंजना करने वाले पुरन्दर के एक पद का भाव इस प्रकार है—हे कृष्ण ! मुझे अपना दास बनालो। मेरी दुष्ट बुद्धि को दूर करो। अपना करुणा रूपी कवच मेरे प्राणों पर पहना दो, अपने चरणों की सेवा का कार्य मुझे सौप दो और अभय रूपी फूल से मेरे सिर को अलंकृत करो। दृढ भक्ति की याचना करते हुए मैं बार बार तुम्हारे चरण पर पडता हूँ। आँखो की कोर से निहार कर मुझे छोड न दो। मेरे चित्त को निर्मल करके मुझे इस योग्य बना दो कि मैं तुम्हारा ही ध्यान कर सकूं। 'करुणा-निधान' तुम्हारी उपाधि है। मेरे भी संकट दूर करो।[3]

कनकदास

हरिदास भक्तों की परंपरा मे पुरन्दर के पश्चात् कनकदास को ही गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। कनकदास की तीव्र भक्ति-भावना की ओर सकेत करने वाली अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। ये अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध भक्त और कवि थे। इन्होने सहस्रों पद लिखे हैं। इन पदों के अतिरिक्त पाँच काव्य-कृतिया भी रची हैं—वे है, नरसिंह-स्तोत्र, मोहन तरंगिणी, रामधान्य मंत्र, हरि-भक्ति सार और नल चरित्र। नल-चरित्र एक साधारण खण्डकाव्य है। मोहन तरंगिणी एक काफी बड़ा काव्य है जिसमे महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। इसमे भारत और भागवत में वर्णित कामदहन, उषा अनिरुद्ध-प्रणय हरिहर की समानता को प्रतिपादित करने वाले कृष्ण-बाणासुर युद्ध आदि घटनाओं-का उल्लेख करते हुए कृष्ण कथा का विस्तार किया गया है।

कनकदास के पदों में नवधा भक्ति की भावपूर्ण अभिव्यजना हुई है। अनेक पद वात्सल्य और माधुर्य भाव से ओत-प्रोत हैं। कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन करने मे कवि का मन अधिक रमा है। कृष्ण को पाकर यशोदा कितने आनन्द का अनुभव कर रही है, इसका परिचय कनकदास एक पद में देते हैं, 'कृष्ण के मुँह को देखकर वह हँस रही है, पुत्र समझकर खेल रही है। जगत् के उद्धारक का मुँह अपने मुँह पर रखकर खिला रही है। नील वर्ण का परिधान पहने बालक को बुलाकर दूध पिलाने का कैसा पुण्य यशोदा ने पाया है। रंग-बिरंगे

१ श्री हरिदास कीर्तन तरंगिणी-भाग १ पृ० ६०
२ हरि भक्ति सुधे पृ० १२५-२६
३ वही पृ० १०६

हार सोने की करधनी में लटकी चमकीली स्वर्ण घंटिया जब झन झन करती हैं तब यशोदा कृष्ण को नचा-नचाकर हसती है। सारी पृथ्वी को दो कदमो मे नापने वाले देव की उँगली पकडकर 'धीरे चलो, धीरे चलो' कहने का यशोदा ने कैसा पुण्य पाया है।[१] एक दूसरे पद मे गोपियों का यशोदा से कृष्ण की शिकायत करने का वर्णन कवि इस प्रकार करते है—सुनो री, यशोदा ! तुम्हारा लडका बडा चोर है। जब मै दूध दुह रही थी तब इसने छींके पर रखा हुआ सारा दूध उडेल दिया। इस शिकायत पर कृष्ण कहते है—नही अम्मा ! नाहक यह मेरी शिकायत कर रही है, मै कोई बडा पहलवान हूँ कि छीके पर कूद सकूँ। तब दूसरी गोपी कहती है—"तुम्हारे लडके ने अन्दर रखा हुआ सारा मक्खन खिड़की से उठाकर खा लिया है। मेरे बच्चों के लिए भी कुछ नहीं बचा है। उसका उत्तर कृष्ण यो देते हैं—"मेरा मुँह मानो बडा तालाब है कि मैं घडे का सारा मक्खन खा डालू। इसने जो मक्खन छिपा रखा था वह इसके बच्चो ने उड़ा लिया है"[२] इस प्रकार बाल-लीलाओ का बडा ही विस्तृत वर्णन कनकदास ने प्रस्तुत किया है।

श्री वादिराज

श्री वादिराज श्री व्यासराय के शिष्य थे। इनका जन्म सन् १४८० ई० के आस पास दक्षिण कन्नड जिलेके हूविनकेरे नामक गाँव मे हुआ था। ये गुरु व्यासराय के साथ बहुत समय रहे। माध्व सम्प्रदाय मे मध्वाचार्य के पश्चात् श्री वादिराज का ही स्थान है। श्री वादिराज कन्नड़ और संस्कृत दोनों भाषाओं के बड़े विद्वान् थे दोनो भाषाओ के ही वे श्रेष्ठ कवि थे। कन्नड़ मे रचित इनके सहस्रो पद मिलते है। संस्कृत मे रचित इनकी प्रमुख कृतियां इस प्रकार हैं—'तत्व-प्रकाशिका', तात्पर्य-निर्णय टीका, तत्व-सार टीका, भगवद्गीता टिप्पणी, महाभारत-टिप्पणी, रुक्मिणी-विजय, युक्ति-मल्लिका, एकादशी-निर्णय, संकल्प-पद्धति तथा श्रीकृष्ण-स्तुति। इनकी कन्नड रचनाओं में कन्नड तात्पर्य-निर्णय, वैकुण्ठ-वर्णन, गुण्ड-क्रिया लक्ष्मी शोभन, भ्रमरगीत आदि मुख्य हैं। भागवत कथा के कुछ विशिष्ट प्रसंगों का भी श्री वादिराज ने अपनी रचनाओ मे वर्णन किया है। उनके भक्तिपरक पदों मे उच्च कोटि की भक्ति-भावना की अनुभूति होती है, साथ ही साथ सरस काव्य के भी दर्शन होते है। बाल-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने में कवि-हृदय प्रफुल्लित हो उठा है। कृष्ण जैसे पुत्र को पाकर यशोदा किन-किन सुखो को लूट रही हैं, इसका वर्णन श्री वादिराज अपने एक पद मे इस प्रकार करते है—

'यशोदा ने कैसा भाग्य पाया है ! श्रीनिधि कृष्ण को हाथ में उठाकर चूमती है, गंगा के जनक को घड़े से नहलाती है, नित्य मंगल को अलंकृत करती है, जिसने भूधर को उठाया है उसे पालने में सुलाती है, जो अगोचर है उसे उठाकर लाड-प्यार करती है ब्रह्मा के पिता को पुत्र की तरह हाथ मे उठाती है, जिसकी श्रुतियाँ स्तुति करती है उसे सुलाने के लिए लोरी गाती है। जिसमे शत-रवि-तेज है उसकी आरती उतारती है, जिसको कोई भय नहीं है उसका रक्षा-बन्धन करती है—जिसमें अगणित सद्गुण है उसे रस्सी से बाँधती है, जो नित्य तृप्त है उसे दूध पिलाती है। उडुपि के कृष्ण को अपनी गोद मे उठाती है।'[३]

१ कनकदास-कीर्तन मंजु-भाग १ पृ० ४१

२ वही भाग १ पृ० २७

३ हरिदास कीर्तन तरंगिणी भाग ५ पृ० १०

हरिदासो की परपरा मे उपयुक्त कवियो के अतिरिक्त कुछ अन्य अच्छे कवि भी हुए जिन्होने भागवत कथा के प्रसगो को लकर रचनाएं की है। इनम श्री विजयदास, श्रीगोपालदास, श्री राघवेन्द्र, श्री वेंकटदास, श्री जगन्नाथदास आदि मुख्य है। श्री प्रसन्न वेंकटदास ने भजनों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध का कन्नड भाषा मे अनुवाद किया है। श्री जगन्नाथदास की रचनाओ में श्री हरिकथामृतसार एक बहुत ही प्रसिद्ध काव्य है।

मध्व मतावलम्बी हरिदास भक्तों के अतिरिक्त कन्नड मे कुछ अन्य वैष्णव भक्त कवि भी हुए हैं जिनमे रुद्रभट्ट, सोमनाथ और चौण्ड रस, विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रुद्रभट्ट ने 'विष्णुपुराण' भारत और भागवत में वर्णित कृष्ण कथा के आधार पर अपने 'जगन्नाथविजय' नामक काव्य मे कृष्ण जन्म से लेकर साल्व वध तक की कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। रुद्रभट्ट ने जगन्नाथ विजय को सभी प्रकार से महाकाव्य का रूप देने का प्रयत्न किया है। जैसा कि इस काव्य के नाम मे स्पष्ट है इसके कथानायक श्रीकृष्ण हैं। कवि ने भागवत कथा के विभिन्न प्रसंगो को लेकर उस काव्य को अपनी काव्य-प्रतिभा से सजाया है। कन्नड की प्रौढ शैली में लिखा गया यह बृहद् काव्य एक श्रेष्ठ रचना है।

सोमनाथ ने भी श्रीमद्भागवत के आधार पर अपने काव्य मे कृष्ण-कथा का वर्णन कृष्ण के जन्म से लेकर कंस-वध, वसुदेव देवकी-बन्ध-विमोचन उग्रसेन को राज्य दिलाने, अक्रूर की इच्छा-पूर्ति करने तथा गोकुल के लिए प्रस्थान तक किया है। इस काव्य मे कृष्ण-भक्ति का जो भावपूर्ण वर्णन मिलता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सोमनाथ एक बडे भागवत थे। इस काव्य में नवधा भक्ति का बडा ही सुन्दर वर्णन हुआ है।

१६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड भाषा में श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड़ भाषी जनता के बीच कृष्ण-भक्ति के प्रचार मे इस ग्रन्थ का बडा योगदान रहा है। १६ वीं शताब्दी मे ही लक्ष्मीश नामक एक दूसरे कवि हुए थे जिन्होंने सस्कृत, जैमिनि भारत के आधार पर कन्नड में 'जैमिनि भारत' नामक काव्य रचा। भागवत सप्रदाय के अन्तर्गत अठारहवी शती के आरम्भ में मैसूर राजाओ के आश्रय मे कुछ कवियों ने रचनाएँ की, इन कवियों मे तिरुमलार्य, सिगरार्य, चिक्कुपाध्याय आदि प्रमुख है। तिरुमलार्य की कृतियों मे गीत गोपाल, भागवत, शेष धर्म आदि मुख्य हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि भागवत सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य कन्नड मे रचा गया है। यह देखकर और भी आश्चर्य होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्तो ने कृष्ण की जिन लीलाओ को लिया है, उनका बड़ा भावपूर्ण वर्णन कन्नड़ के साहित्य मे पहले से ही मिलता है।

मराठों का मध्ययुगीन साहित्य और श्रीमद्भागवत

मध्ययुग मे महाराष्ट्र मे अनेक राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई हैं फिर भी वहाँ के भक्ति साहित्य मे एक व्यवस्थित रूप मिलता है। मराठी साहित्य के पहले दो युगों मे अर्थात् यादव काल (११८९-१३२०) तथा बहमनी काल (१३२०-१६०० ई०) भक्ति प्रधान साहित्य ही लिखा गया। इस प्रकार भक्ति-साहित्य-रचना की दृष्टि से मराठी, गुजराती और हिन्दी से भी आगे है। यादव काल धर्म शास्त्रों की रचना मे निःसन्देह अग्रणी है। रामदेव राव के प्रतिभाशाली अमात्य हिमाद्रि ने वैदिक धर्म की पुन. स्थापना मे बड़ा योग दिया था। उनके समय में धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थो की रचना हुई। बोप देव ने 'हरिलीलामृत' भी उन्ही के आश्रय मे लिखा था। चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' भी इन्ही के समय मे लिखा गया। यही कारण है कि मराठी के सन्त साहित्य पर भी सगुण भक्ति भावना का व्यापक प्रभाव है। बोपदेव का 'हरिलीलामृत' निश्चित रूप से भागवतानुसारी ग्रन्थ है। कृष्णलीलाओ को महाराष्ट्र मे व्यापक रूप देने मे इस ग्रन्थ का बड़ा हाथ रहा है।

मराठी कवियो की दूसरी बात लक्ष्य करने की यह है कि उनमें से अधिकांश ने हिन्दी में भी रचनाएँ की है तथा वे हिन्दी की रचनाएँ साहित्य तथा भाषा के विकास की दृष्टि से बडी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ हम मराठी भाषा की भागवतानुसारी रचनाओ का उल्लेख करेंगे।

आज तक के अन्वेषणों और खोजों के आधार पर 'मुकन्दराज' मराठी भाषा के 'आद्य कवि' माने जाते हैं। शालिवाहन शक १११०, विक्रम सम्वत् १२४५ मे लिखित 'विवेकसिन्धु' उनकी प्रथम रचना मानी जाती है। मुकुन्दराज द्वारा रचित द्वितीय ग्रन्थ का नाम परमामृत' है। यह दोनों ग्रन्थ वेदान्तपरक है। तथापि 'परमामृत' ग्रन्थ में उन्होंने अनेक बार सगुणोपासना का महत्त्व स्वीकार किया है। जो लोग निर्गुणोपासना करने में असमर्थ हों, उन्हे सगुणोपासना करनी चाहिये, ऐसा उनका मत है। नवलक्षण युक्त 'भजन' से यदि सर्वेश्वर का पूजन किया तो वह ज्ञान देकर अपने भक्तों के बन्धन काट डालता है।

> नवलक्षण भजने। सर्वेश्वर आभारलें परों।
> ज्ञान देऊनि बंधने। तोडी निज सेवाकाचीं॥

इसलिये भगवान् का षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए:

> तेथे हृदयाच्या शेजारीं। षोडशोपचारें पूजा करी॥
> उपासावा श्रीहरी। अनन्यभावें॥

मुकन्दराज का काल शक १०४० से ११२० तक माना जाता है। मुकन्दराज के पश्चात् और ज्ञानेश्वर के पूर्व विदर्भ में श्रीकृष्णोपासना का एक नवीन पथ उदित हो रहा था। इस का नाम है महानुभाव पंथ। प्रारम्भिक काल में इस पंथ की दीक्षा लेने के सम्बन्ध मे पंथ के आचार्यों द्वारा विशेष प्रतिबंध निर्धारित नही किये गये थे। किन्तु आगे चलकर इस पंथ का साहित्य भी सांकेतिक लिपियों में लिखा जाने लगा। पंथ के बाहर जो लोग

थे उन्हे पंथ के ग्रन्थ देखने का अनुमति नही दी जाती थी। इस पथ की शाखाएँ पंजाब तक फैली हुई हैं।

इस पथ मे चार युग के चार अवतार माने जाते हैं। (१) कृतयुग में हंसावतार (२) त्रेता मे दत्तावतार (३) द्वापर में द्वारकाधीश श्री कृष्ण चक्रवर्ती और (४) कलियुग मे श्री चक्रधर स्वामी. श्री चक्रधर स्वामी इस पथ के संस्थापक हैं। विदर्भ के ऋद्धिपूर निवासी गोविन्द प्रभु श्री चक्रधर के गुरु थे। श्री गोविन्द प्रभु महान् तपस्वी एवं श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। चक्रधर भडोच के राजा मल्लदेव के प्रधान विशालदेव के पुत्र थे। मल्लदेव के पश्चात् विशालदेव भडोच के राजा हुए। उनके पुत्र हरिपाल ने जो आगे चलकर चक्रधर कहलाए, अनेक युद्ध जीते, ऐश्वर्य का उपभोग किया। किन्तु आगे चलकर उन्हे वैराग्य हुआ और वे यात्रा पर निकलपड़े। मार्ग में उनकी श्री गोविन्द प्रभु से भेंट हुई। वहीं उनका साप्रदायिक नाम, 'चक्रधर' प्रचलित हुआ। इस पथ में भगवान् श्री कृष्ण को चक्रधर कहते हैं। 'पंचकृष्णोपासना' इस पंथ की एक प्रमुख विशेषता है। इसमें निम्नांकित पंच कृष्ण माने जाते हैं—

(१) द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण (२) दत्तात्रय (३) द्वारवती के चागदेव (४) गुण्डम राऊल (गोविन्द प्रभु) और (५) श्री चक्रधर। इस पन्थ की स्थापना शालिवाहन शक ११८५ मे हुई। नौ वर्ष के अन्दर ५०० लोगो ने इस पथ की दीक्षा ली। इनमे १३ महिलाएँ थी। श्री चक्रधर स्वामी के प्रमुख शिष्य का नाम नागदेव था। इन दोनो की एक भी रचना उपलब्ध नही है। किन्तु चक्रधर के वचनों का एक संग्रह, इस पंथ के एक प्रसिद्ध आचार्य श्री केशवराज, सूरी ने किया। इस सूत्रबद्ध ग्रथ को सिद्धान्तसूत्र पाठ' कहते है। श्री चक्रधर स्वामी के लीलाओं का वर्णन महीभट्ट द्वारा रचित 'लीला चरित्र' मे मिलता है। इसमे १५०० से अधिक लीलाओं का वर्णन है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता और श्री मद्भागवत का इस पंथ मे विशेष आदर किया जाता है। इस पथ में आज भी सात ग्रंथों को विशेष महत्व प्राप्त है। उनके नाम निम्नांकित है—

ग्रंथ नाम	रचनाकाल	रचयिता का नाम
(१) शिशुपाल वध	शक ११९५	कवीश्वर भास्कर
(२) एकादश स्कंद	,, ११९६	कवीश्वर भास्कर
(३) वत्सहरण	,, १२००	दामोदर पंडित
(४) रुक्मिणीस्वयंवर	,, १२१३	नरेन्द्र कवि
(५) ज्ञान बोध	,, १२५३	विश्वनाथ बालापुरकर
(६) सह्याद्रि वर्णन	,, १२५४	रवलो व्यास
(७) ऋद्धपूरवर्णन	,, १२८५	नारो व्यास

यह 'साती ग्रंथ' पंथ मे विशेष पूज्य हैं। इनमें से प्रथम चार ग्रंथों में श्रीकृष्ण चरित्र वर्णित है। इन ग्रथों पर श्रीमद्‌भागवत का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

शिशुपाल वध—इस ग्रंथ के रचयिता कवीश्वर भास्कर का जन्म 'कासारबोरी' ग्राम में हुआ और शिक्षा पैठण और काशी में हुई। वे कृष्णोपासक थे। इन्हे कुछ दिन उज्जैन म कारागृह म रहना पडा तत्पश्चात् इन्होंने महानुभाव पथ की दीक्षा ली। आपका

शिशुपाल वध काव्य अत्यंत सरस है नाम से तो यह काव्य वीर रसात्मक प्रतीत होता है किंतु वास्तव में उस में भक्तिमय शृङ्गार की प्रधानता है इसमें कुल १०८७ ओवियां हैं। पदलालित्य, विचार सौंदर्य, उपमा चातुर्य और भक्ति की उत्कटता आदि गुण इस में द्रष्टव्य हैं। इसका मूलाधार यद्यपि श्रीमद्भागवत है, तथापि माघकवि के 'शिशुपाल वध' का भी इस पर प्रभाव है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन बड़ा ही मनोहारी है—

देखोनि श्रीमूर्ति उघड़ी। ब्रह्म विद्या डोले मोडी।
मुक्ति धावे उघड़ी। पाठोपाठी ॥
आंगांचा मेलाऊ देखिजे। तरी मद नाची कुरवडी कीजे।
लावण्याचे उतरिजे। निंबलोण ॥

भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति देखकर ब्रह्मविद्या की आँखे चौंधियाँ जाती हैं, मुक्ति उसके पीछे-पीछे दौडती है। शरीर सौष्ठव मदन को नीचा दिखाता है और लावण्य उसके सामने फीका पड़ता है।

संतदर्शन का महत्त्व निम्नांकित ओवियों में वर्णित है—
चंद्र निववी जगाते। मेघो वरुपे अमृताते।
तेंचि साधु आपणेयातें। दारवविती स्वभावत् ॥
साधुसंगाचेनि भाडवले। ज्ञान मार्गाचा व्यवसाऊ फले ॥
जो न जोड़े पुण्याचेनि वले। ब्रह्मादिकांसी ॥

चन्द्रमा संसार को शीतलता देता है, मेघ अमृतवर्षा करते है उसी प्रकार साधु हमें संतुष्ट करते हैं। सज्जन संग एक पूंजी है जिससे ज्ञानमार्ग का व्यापार फलित होता है। ज्ञान मार्ग बहुत पुण्य करने पर श्री ब्रह्माजी को भी अप्राप्य है।

इसमें वर्णित 'वीर रस' का नमूना देखिये—

यह उस समय का वर्णन है जब भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी सेना के साथ राजसूय यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान किया:—

तंव डौडीची वीरघटा। सनसनिती भेंगटा।
वाजिताती एकदटा। एकेवेले ॥
तरारिलो काहाला। घुरघुरिती टिवाला।
रणमथा सूरा ढोला। मेरू थरारी ॥

....

डमडमितियां हुडुकां। कडकडितियां शंखा।
वाजता ब्रह्मगोलकां। तढा तुटतसे ॥

इस वर्णन में तत्कालीन रणवाद्यों का उल्लेख है। जब घुड़सवारों ने और पदातियों ने चढाई की उस समय का वर्णन देखिए:—

उठविसे असिवाऊ सवार) जैसे कालकूटाचे घुघुकार
तसे प यामचे मोगरू (पदाति नायक

ना ते प्रलयानिलाचे धावणे । की कालाचे आमत्रण ।
देवाक्या निगाले मीभणे । शिशुपालासी ।।

• घुड़सवार और पदाति निकल पड़े । मानो वह प्रलयानिल ही है, अथवा शिशुपाल को काल का आमत्रण देने हेतु ही मानो वे निकल पड़े है ।

ग्रंथ समाप्ति के पश्चात् गुरुबंधु भावे व्यास को जब कवि ने अपना यह ग्रन्थ पढ़कर सुनाया तब भावे व्यास ने कहा, "भट्टो हा ग्रन्थु निका जाला असे । परि निवृत्ताजोग । नव्हे चि हा शृङ्गारिया प्रवृत्ताजोगा जाला असे ।' पण्डित, यह रचना अच्छी है, किन्तु विरक्तो के योग्य यह ग्रथ नही हुआ है, यह तो प्रवृत्तो के, प्रापंचिक रसिको के योग्य है ।' इस कारण कवीश्वर भास्कर ने तत्पश्चात् श्रीमद्भागवत के एकादश स्कध पर टीका लिखी । इस ग्रथ के प्रारभ मे ही कवि ने यादव कुलतिलक श्रीकृष्ण को नमन किया है—

नमीन यादव कुल तिल्लकु । जो चैतन्यलताकुसमस्तबकु ।
उदैला आनद मृगाकु । मोहाधकारी ।।

इस ग्रथ मे ८२७ ओंवियाँ हैं ।

इसी कवि ने गद्यात्मक 'श्रीकृष्ण चरित' लिखा है । प्राचीन मराठी गद्य के रूप में इस ग्रथ का अत्यधिक महत्व है । इसमे वर्णित श्रीकृष्ण की अग्रपूजा—के समय का कुछ वर्णन निम्नाकित है—

"यज्ञ मडपी आसनु रचिलेः श्रीचरण प्रक्षालनु करौनि आसनी उपविष्ट हो आदेया प्राथिलेंः आसनी उपविष्ट जाले. मग युधिष्ठिरे मगल महा-छाश्रेनसी श्रीचक्रवर्तीची यथोचितु अग्र पूजा केलीः बैसोनि अग्रपूजा स्वीकारीन्निली." यज्ञमडप मे आसन की रचना की । श्रीकृष्ण के चरन प्रक्षालन कर उन्हे आसन पर बैठने की प्रार्थना की । वे आसन पर बैठे । तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने मंगल उपचारों से श्रीकृष्ण चक्रवर्ती का यथोचित पूजन किया ।

वत्सहरण—दामोदर पडित नामक महानुभाव कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में १३ वे और १४ वे अध्याय मे वर्णित कथा के आधार पर इस रस पूर्ण काव्य की रचना की । कवि का कहना है कि वत्सहरण की यह कथा जीवमात्र के हृदय को आनन्द और सतोष देने वाली एवं भक्ति भावना को पुष्ट करने वाली है । भक्तो को श्रीकृष्ण-कथा स्वभाव से ही प्रिय है ।

जे जीवाते चोखालिती । का मनाते तीव विती ।
भक्तिभावातें पोखिती । श्रवण मात्रे ।।

कवि कहता है जिस प्रकार कुलागना की गुणसंपत्ति उसे एक ही पति के सम्बन्ध में भक्ति देती है उसी प्रकार हरिकथा रस में भक्तों के बिना अन्य किसी को 'रति' नही रहती ।

कुलस्त्रियेची गुणसपत्ती । भोगावी एकेची पती ।
तैसी हरिकथा रसी रती । भक्तावाचौनि नाही ।।

इस काव्य में जो वृन्दावन-वर्णन है वह पूर्णतया मूल पर आधारित है । कवि का कथन है कि [illegible] कथा नित्यनूतन मधुर है [illegible] महान तम नरश्रेष्ठ भूप है [illegible]ने वाली है इस प्रकार का अभिमत कवि ने एक [illegible]वी म व्यक्त किया है

जे अज्ञान तमाचा तरणी । कैवल्य पदाची निसाणी
ते श्रीकृष्ण कथा वत्सहरणी । सांघिजेल ।।

कवि का कथन है कि श्रीकृष्ण कथा मे भक्तो को नव रसों का आस्वाद तो निश्चयरूप से मिलता है।

जे देऊँ रासक्रीडा खेळिन्निला: तें मूर्त शृङ्गारू जाला· गौलणी विनोदे नाचवीजा। तें हास्य रसू ।। यशोदा भेडाविला. तें करुणारसू उठेवला विपारू कालिया जिंतिला: तें रुद्रू जाला: माते श्रीमुख दाविले ते अद्भुता रूप जाले, विश्वरूप प्रगटिलें: तें भयानकू ।। दैत्या करी सहारू: तेंचि बीभत्सु आणि वीरू. शातु तो निरंतरु तेथेचि असे ।।

जिस समय भगवान्‌ने गोपियों के साथ रासक्रीडा की. तब शृङ्गार रस आविर्भूत हुआ। गोपियों द्वारा जिस समय भगवान् को नचाया गया, उस समय हास्यरस उद्भूत हुआ। कृष्ण-वियोग पर करुणारस उत्पन्न हुआ। विषैले कालियानाग के मर्दन के अवसर पर रौद्र रस की उत्पत्ति हुई। जब माता को श्रीमुख दिखाया तब अद्भुतरस प्रकट हुआ, जब विश्वरूप प्रकट किया तब भयानकरस की निष्पत्ति हुई और शान्तरस तो उस कथा मे निरतर ही विद्यमान है।

एक स्थान पर कवि ने इस काव्य मे अनेक प्रश्न उपस्थित किये है। वह पूछता है—

निर्गुण कां जाहले सगुण ? निराकारा साकारपण. निरभिमाना दैत्यनिर्दलिण: हें का घडे ? ।। अरूपा रूप सुन्दर: अमूर्ता मूर्ति मनोहर: अद्वैता अनत अवतार: हें नवल देखा ।।

निर्गुण सगुण क्यो हुआ ? निराकार साकार क्यों हुआ ? निरभिमानी को दैत्यों का नाश क्यो करना पड़ा ? अरूप को सुन्दर रूप क्यों धारण करना पडा ? अमूर्त को मूर्त स्वरूप किस लिये लेना पड़ा ? अद्वैत को अनन्त अवतार लेने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? देखिए, यह एक महान् आश्चर्य है।

कवि कहता है कि इस प्रकार विरुद्ध धर्म की प्रवृत्ति केवल एक परमेश्वर में ही है, इसका कारण वेदशास्त्र तर्कों द्वारा नही जाना जा सकता, वह तो केवल भक्तजन ही जान सकते है। भक्त-जनों के सामर्थ्य का पार जानना असभव है। समस्त भुवनो की जिसने उत्पत्ति की, जिसकी वेद-पुराणादिको ने स्तुति की है, उस पर ब्रह्म परमात्मा को गोपिकाएँ मक्खन देकर नचाती है, यह भक्तो का सामर्थ्य ?

ऐसिया विरुद्ध धर्मांचिया प्रवृत्ति: एकी ईश्वरीचि आती: ।
ते वेदशास्त्रें तर्कें नेणती. जाणती भक्तजनु ।।
सकल भुवने जयाची करणी, जो वाखिजे वेदीं पुराणी ।
तेयातें लोणी देऊनी गौलणी: नाचविताती ।।

इन पंक्तियों को पढ़कर सहसा रसखान की निम्नांकित पंक्तियो का स्मरण हो उठता है—

सेस गनेस महेश दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावें ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावें ।।
नारद से सुक व्यास रटें पचि हारितऊ पुनि पार न पावें ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें

रुक्मिणी स्वयंवर इस काव्य के रचयिता का नाम है नरेन्द्र कवि जिन्होंने शक १२१३ में इस ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ का प्रथम १८०० ओवियों तक का भाग राजा रामदेवराय जाधव को बहुत पसन्द आया। राजा ने कहा—इस ग्रंथ के रचयिता के स्थान पर मेरा नाम अंकित किया जावे। नरेन्द्र ने अनिच्छा से वह ग्रन्थ राजा को दिया और स्वयं नगर छोड़कर सन्यस्त वृत्ति धारण कर ली और तत्पश्चात् महानुभाव पंथ की दीक्षा ली। महानुभाव पंथ में प्रविष्ट होने के पश्चात् उस ग्रन्थ को पुनः लिखा और उसे पूर्ण किया। ग्रन्थ की कुल ओवी संख्या ३००० है। यह काव्य कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत है। कवि कहता है—

श्रीकृष्णाचा वर्णिता कीर्ति चन्द्रु। चढवीन सुखाचा समुद्रु।
जलसन करीन म्हणे नरेन्द्रु। सभेचे लोक॥

श्रीकृष्ण भगवान् के कीर्तिचन्द्र का वर्णन कर मैं सुख के समुद्र को चढाऊँगा—ऊँचा करूँगा और सभा के समस्त लोगों को आनन्द मग्न करूँगा। रुक्मिणी स्वयंवर के विषय को लेकर मराठी भाषा में १०-१२ कवियों ने काव्य-रचना की है। महानुभाव पंथ की एक कवयित्री ने इसी विषय पर बहुत सरस रचना की है। यह कवयित्री थी नागदेवाचार्य की चचेरी बहन महदंबा। इस पंथ के मूल पुरुष श्री गोविन्द प्रभु ने एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के विवाहोत्सव का आयोजन किया। उस समय महदंबा को 'करवली' (सखी) का काम दिया गया। उसने 'श्रीकृष्ण विवाह को तैयार खड़े हैं', ऐसी कल्पना कर गीतों की रचना की है। इन गीतों को 'ढवले' कहते हैं। इनकी कुल संख्या १४९ है। रचना-काल शक ११८२ के आसपास का है। इन गीतों में श्रीकृष्ण भक्ति का उत्कट स्वरूप अंकित किया गया है। श्रीमद्भागवत की कथा के आधार पर इनकी रचना की गई है। तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज के रीति-रिवाजों का प्रतिबिम्ब इन गीतों में दिखाई देता है। महदंबा को मराठी की आद्य कवयित्री माना जाता है।

रुक्मिणी का संदेश पाकर जब भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर गये, उस समय की रुक्मिणी की मनोवस्था का मनोरम चित्रण देखिए—

सुन्दरु श्रीकृष्णु झलकीता देखिन्निला।
आठे सात्त्विकु प्रगटले चित्ता संभ्रमु जाला।
उपरिग्ने वरौनि वालों ठेलों भेपु तव विप्रें मावरिलो बाला।
वदे देवि हे नोहे नृम उचितु यया काला॥

रुक्मिणी ने सुन्दर श्रीकृष्ण को देखा। उस समय अष्ट सात्त्विक भाव उभर आये। वह संभ्रमित हुई। सौध से वह नीचे कूदने ही वाली थी, किन्तु पास खड़े विप्र ने कहा, "देवि, इस समय ऐसा करना तेरे लिये उचित नहीं।"

महानुभाव पंथ के विशाल साहित्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है। इस पंथ का कार्यक्षेत्र प्रमुखतः महाराष्ट्र का विदर्भ-भाग रहा है। महाराष्ट्र के अन्य भाग में इसी काल में वैष्णव सम्प्रदाय में पूज्य माने जाने वाले ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता पर संत शिरोमणि ज्ञानेश्वर भाष्य लिख रहे थे। इस गीता-टीका के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित अनेक अभंग भी उपलब्ध हैं। इन अभंगों में भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है; गोप-गोपियों की क्रीड़ा, उनकी विरह-व्यथा, मुरली का अद्भुत सामर्थ्य आदि के सम्बन्ध में भक्तिभावपूर्ण विवेचन है। इन अभंगों में भी श्री   का प्रभाव परिलक्षित होता है।

श्रीकृष्ण भगवान् के बाल स्वरूप का और बाल-लीलाओं का वर्णन देखिए

तुझिये निढली कोटिचन्द्र प्रकाशे। कमलबदन हास्य वदन हांसे ॥१॥
हाल का रे कृष्णा डोल का रे कृष्णा। घडिये घडिये गुज बोल का रे कृष्णा ॥२॥
उभा राहोनियां कैसा हालवितो बाहो। बापरखुमादेवीवरू विठ्ठलु नाहो ॥३॥

गोपी कहती है—तेरे ललाट भाग मे मानो कोटि चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहे हैं। तेरा कमल समान सुन्दर मुख स्मित हास्य के कारण सुहावना दिखाई दे रहा है। हे लाडले कृष्ण जरा चलकर दिखा, इधर-उधर डोलकर दिखा, बार-बार मधुर बोल तो सुना। देखो तो नाथ विट्ठल-श्रीकृष्ण खड़े रहकर अपना हाथ हिला रहे हैं, देखो तो कितनी सुहावनी मूर्ति है।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार के सुहावने रूप और दिव्य गुणों के कारण गोपियां पागल सी हो गयी है। मथुरा के बाजार में वह निकली तो है दहि और दूध बेचने किन्तु मुख से कह रही हैं गोविन्द लीजिये, दामोदर लीजिये।

दुडीवर दुडी साते निघाली। गौलणी गोरसु म्हणों विसरली।
गोविंदु घ्यावो दामोदरु घ्यावो। तंव बोलती मथुरेच्या नारी वो ॥

वारकरी सम्प्रदाय के लोग विठ्ठल को कृष्ण का ही स्वरूप मानते हैं। 'वसुदेव कुमरु देवकीनंदनु हाच।' (वसुदेव सुत देवकीनंदन कृष्ण ही विठ्ठल है) ऐसी उनकी मान्यता है। वारकरी कीर्तनारंभ में ज्ञानेश्वर का जो अभग गाते है उसमे यही भाव व्यक्त किया गया है—

रूप पाहतां लोचनी। सुख झाले वो साजणी ॥
तो हा विठ्ठल बखा। तो हा माधव बखा ॥

हे सहेली, यह सुन्दर रूप देखकर चित्त प्रसन्न हो गया है। यह वही सुन्दर विठ्ठल है, यह वही माधव है। इस सम्प्रदाय में ज्ञानेश्वर को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। 'ज्ञानबा तुकाराम' का घोष किये बिना वारकरी सप्रदाय के भजन की समाप्ति नही होती। ज्ञानेश्वर के साथ-साथ नामदेव को भी इस संप्रदाय में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नाम देव के अभगों में कृष्ण-लीला का वर्णन है। संत-सगति का और पढरपूर निवास का उनके जीवन मे अत्यधिक महत्व है। इसके आगे वे मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं। वे कहते हैं कि 'हे विठ्ठलनाथ, तेरे चरणों के दर्शन से मेरी भवव्यथा दूर हो गई है, किन्तु इसी के कारण एक चिंता उद्भूत हुई है, वह यह कि तू अब मुझे मुक्तिपद देगा। तब फिर मुझे यह सत्संग कहाँ प्राप्त होगा ? फिर यह पंढरपूर और यहां प्राप्त होने वाला आनंद किसकी आँखों से देख पाऊँगा ? फिर इस हरि कथामृत का श्रवण किसके कानों से कर सकूँगा ? नामदेव कहते हैं कि "हे पाण्डुरंग ! मुझे पंढरी इसी लिये प्रिय है।"

पाहतां तुझे चरण हरलो भवव्यथा। पुढती एक चिंता वाटतसे ॥
झणिं मुक्तिपद देसी पांडुरंगा। मग या संतसंगा कोठें पाहूँ ॥
मग हे पंढरी आनंद सोहळा। कवणाचे डोळा पाहूँ देवा ! ॥
मग हे हरिकथा अमृतसंजीवनी। कवणाचे श्रवणी ऐकों देवा ? ॥
नामा म्हणे मज पढरीची सोय। अनंत जन्म होय याचि लागि ॥

नामदेव विठ्ठल के—श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। जागृतावस्था में या स्वप्नावस्था मे एक श्रीकृष्ण चिन्तन के अतिरिक्त उन्हें और कुछ भी प्रिय नहीं था सर्न्वितम

अन्योन्यं तत्प्रबोधनम्', यही उनके जीवन का साध्य था। नामदेव ज्ञानेश्वर के साथ जो अन्य सन्त, भगवद्भक्त थे वे भी विट्ठलोपासना-कृष्णोपासना में ही निमग्न थे। इस भक्तमण्डली में सब जाति के और सब श्रेणी के लोग थे। अपना अपना व्यवसाय कर्तव्य बुद्धि से कर ईशभजन में ही वे अपना समय बिताया करते थे। इसमें 'जनाबाई' नामक नामदेव की 'दासी' भी थी। वह 'पढरी' के 'वारकरी' के पाव अपने माथे पर रखने को तैयार थी। भक्त, उत्तम या चाण्डाल किसी भी जाति का क्यों न हो, उसके चरणों पर वह अपना माथा रखने को सिद्ध थी।

> पंढरीचा वारकरी। त्याचे पाय माझे शिरी॥
> हो का उत्तम चांडाल। पायीं ठेकीन कपाल॥
> मुरवीं नाम गर्जे वाणी। म्हणे नामयाची जनी॥

वैष्णवों की भगवान् पर और भगवद्भक्तों पर समान ही भक्ति होती है। इस वारकरी परम्परा में चोखा मेला, सेना नाई, गोरा कुम्हार, सावता माली, नरहरि सुनार, सजन कसाई, कान्होपात्रा वेश्यापुत्री आदि सब प्रकार के लोगों का समावेश होता था। आषाढ और कार्तिक मास की एकादशी को पढरपुर में यह सब वारकरी एकत्र हुआ करते थे। कृष्ण सखाओं के रूप में दही और ज्वार के फूले मिलाकर 'गोपालकाला' का प्रसाद ग्रहण करते थे। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप से चल रही है। उपरिनिर्दिष्ट सब भक्तों के अभंगों में कृष्णभक्ति ओतप्रोत है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कध में वर्णित भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं ने इन सब पर समान रूप से मोहिनी डाली थी।

वारकरी सप्रदाय के अनुयायियों के अतिरिक्त भी अन्य अनेक कवियों की कृतियों पर हमें श्रीमद्भागवत का प्रभाव दिखाई देता है। शालिवाहन शक की चौदहवी शताब्दी के मध्य में बहिरा जातवेद नामक कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर मराठी में टीका लिखी थी। इस टीका को भैरवी टीका भी कहते है। यह कवि पैठण निवासी था। व्युत्पन्न पंडित होने के कारण उसके अनेक शिष्य थे। एक दिन भोज्यपदार्थ में लवण कम होने से अपनी पत्नी से शिकायत की। तब उसने कहा, "वेदान्त ज्ञान सम्पन्न महापंडित होकर भोजन की ओर इतना ध्यान? जिह्वा पर जिसका नियंत्रण नही, वह आत्मज्ञान कैसे प्राप्त कर सकेगा?" इस बात का जातवेद पर पड़ा प्रभाव पड़ा। वह गृहत्याग कर जंगल की ओर चल दिया। रास्ते में एक मस्जिद दिखाई दी। वहाँ कुछ आत्मज्ञान प्राप्त हो सकेगा, इस आशा से वह मुसलमान हो गया। परन्तु वहाँ उसको मन शांति न मिली, इस कारण वह पुनः ब्राह्मणों के पास गया, ब्राह्मणों ने उसे प्रायश्चित कराकर शुद्ध कर लिया। तब मुसलमान उन ब्राह्मणों के पास गए और उनसे पूछने लगे कि आपने इसे पुनः ब्राह्मण कैसे बना लिया? यह बात सुनकर जातवेद ने कहा, 'क्यो, मैं पूरा मुसलमान हुआ ही कब था? अभी मेरे कान के छिद्र तो वैसे ही हैं।" यह तर्क सुनकर मुसलमान चुप होकर वापिस चले गये। फिर उसने ब्राह्मणों से कहा "मेरी तो सुन्नत हो गई है मैं हिन्दू कैसे हो सकता हूँ?" इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान-दोनों ने ही उसका त्याग किया। यह देख वह पागल की भाँति इधर-उधर भटकने लगा। हर मिलने वाले से 'मैं हिन्दू हूँ, या मुसलमान?' यह प्रश्न पूछने लगा। कुछ काल पश्चात् उसकी वडवाल के सिद्ध नागनाथ से भेंट हुई। उनसे भी उसने वही प्रश्न किया तब सिद्ध नागनाथ ने उसके आँखों में अंजन

लगाया और कहा तू स्वय सिद्ध आत्माराम है सद्गुरुकृपा से पागल बहिरा अच्छा हो गया। उसने तत्पश्चात् पढरपूर जाकर श्री विठ्ठल का दशन किया इस बहिरा जातवेद न श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर अत्यन्त सुरस टीका लिखी है। इस टीका का मूल आधार 'श्रीधर स्वामी की टीका' है। यशोदा माता की गोद मे भगवान कृष्ण बैठे है, उन्हें उपहार देने के लिये गोपललनाएँ आयीं, उस समय का वर्णन देखिए।

पाणवरी बालांतिणी। त्या बैसविती कामिणी॥
मग करिती आक्षवाणी। कृष्णे सहित॥
गोपिका कृष्ण वोवालती। वोवालिता ऐसे भागती।
'चिरकाल आमुते श्रीपती। पालिता होये॥
मग अलकार अर्पिले। पूर्णासि अगुले लेबविले।
जसवंसिनंदा वैसविले। पाटावरी॥
मग वस्त्रे अर्पिती। मगुलतुरे वाजती।
त्यासह पुत्रा पडली। वोवालणि॥
हलदि स्नेहे मिश्रित। उदकयात्रे सिचन करित।
तौ सर्वद्रष्टा पाहत। टकमकित॥

उन महिलाओ ने बालक और जच्चा दोनो को को पटे पर बिठाया और उनका नीराजन किया। गोपिकाओं ने कृष्ण का नीराजन किया। नीराजन करते समय भगवान् से वर मांगा कि श्रीपति हमारा हमेशा पालन करे। तत्पश्चात् भगवान् को अलकार आभूषणादि भेट किये और पूर्ण को अंगुलिभर वस्त्र से सुशोभित किया। जसोदानन्द को पटे पर (आसन) पर बिठाया। वस्त्रादि अर्पण किये। उस समय मंगलवाद्य बजाये गये। पुत्र का नीराजन किया। हरिद्रा मिश्रित पानी का सिञ्चन किया। यह सब सर्वद्रष्टा भगवान् टकटकी लगाकर देख रहे थे।

बहिरा जातवेद ने अनेक पदों की भी रचना की है परन्तु उनकी रचनाएं आज अप्राप्य हैं।

शालिवाहन शक की चौदहवी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे और पन्द्रहवी शती के प्रारभ काल मे मराठी मे ग्रन्थ रचना हुई ही नही, इस प्रकार की धारणा बहुत दिन से प्रचलित थी, किन्तु यह धारणा गलत है। महाराष्ट्रसारस्वतकार श्री भावे का कथन है कि इस काल की अधिकाश रचनाएं धर्मान्ध मुसलमानो ने और ईसाइयों ने जला डाली।

भानुदास—एकनाथ महाराज के प्रपितामह भानुदास (शके १३७०-१४३५) का भी कुछ साहित्य उपलब्ध है। आप परम वैष्णव एवं कृष्णोपासक थे। अनागोंदी के विजयानगर के विख्यात राजा श्रीकृष्णराय भक्ति से पंढरपूर की श्री विठ्ठल मूर्ति को अपनी राजधानी मे ले गये। इसमे उसकी सुरक्षा की भी कल्पना निहित थी। परन्तु विठ्ठल मूर्ति पढरपूर में न रहने के कारण वारकरी भक्तों को बड़ा दुख हुआ। भानुदास जी से न रहा गया। वे अनागोंदी गये और मध्यरात्रि मे उस मन्दिर के सामने (जहाँ श्री विठ्ठल का मूर्ति रखी थी।) जा खड़े हुए मन्दिर के पट अपने आप खुल गये और श्री विठ्ठल ने अपने गले का हार भजन में निमग्न भानुदास के गले में डाल दिया प्रात हारकी चोरी हो गई जान सिपाही उसका पता लगाने

लगे तब भजन में निमग्न भानुदास पर जो मन्दिर में विट्ठल मूर्ति के सम्मुख खड़े थे, उनकी दृष्टि गई। हार समेत चोर मिल गया।

मराठी साहित्य मे भानुदास विट्ठल भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। विट्ठल भक्ति कृष्णभक्ति का ही एक रूप है। एकनाथ जी के कुल में कृष्ण भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है जैसाकि स्वयं एकनाथ ने लिखा है:—

एकनाथ लिहितो कि आपले कुलात कृष्ण भक्ति पूर्वी पासून चालत होती ?

भानुदास जी का मराठी तथा हिन्दी दोनों में ही साहित्य उपलब्ध है। मराठी में उनके अनेक अभंग मिलते हैं जिनमें कृष्ण-लीलाओं का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है उनके हिन्दी के पद भी भक्ति-भाव पूर्ण हैं दो पद देखिए—

उठो तात मात भये प्राप्त रजनी सो तीमीर गई।
मीलत बाल सकल गुवाल सुन्दर कन्हाई ॥१॥
जागो गोपाल लाल जागो गोविन्दलाल जननी बलि जाई ॥२॥
मगो मठ फिरत बिमन तुम बीन नहीं छुटत दयन।
त्यजो शयन कमल नयन सुन्दर सुखदाई ॥३॥
मुखते पट दूर कीजो, जननी कु दर्श दीजो।
दधी क्षीर माग लीजो खाड मिठाई ॥४॥
जपत-जपत शाम राम सुन्दर मुख सदा नाम।
थाटी की लुट कछु भानुदास पायी।

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत
गावत है गैया, मोहन मेरो सैया
मोर पत्र सिर छत्र सुहाये, गोपी धरत बहिया।
भानुदास प्रभु भगत को वत्सल, करत छत्र छइयां।

श्री एकनाथ

भानुदास के प्रपौत्र श्री एकनाथ का जन्म शक संवत् १४५० के लगभग पैठण में हुआ। आपकी ग्रन्थ-रचनाओं का आरम्भ ही चतुः श्लोकी भागवत की टीका से हुआ। आपके गुरु श्री जनार्दन स्वामी भगवान् दत्तात्रेय के उपासक थे। श्री एकनाथ बचपन से ही ईश्वरानुरागी थे। छः वर्ष की अवस्था में आपके पितामह ने आपका यज्ञोपवीत संस्कार किया। माता पिता शैशवावस्था में ही कालवश हो गये थे। आपके भरण-पोषण का भार आपके दादा (पितामह) दादी ने वहन किया। व्रतबन्ध के पश्चात् अल्पकाल में ही आपने ब्रह्मकर्म का अध्ययन पूर्ण कर लिया। एक दिन उन्हें स्वप्नदृष्टान्त हुआ और वे गुरु-अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से देवगिरि गढ के अधिकारी श्री जनार्दन स्वामी के पास गये। वहाँ दत्तचित्त रहकर पठन-पाठन पूरा किया। गुरु की अनन्यभाव से सेवा की। फाल्गुन बदी ६ शके १४८० को गुरु जनार्दन स्वामी ने आपको उपदेश दिया फाल्गुन बदी ६ का

श्री एकनाथ जी के जीवन म बहुत महत्व है यही दिन आपके गुरु का और आपका निर्वाण दिन भी है महाराष्ट मे यह एकनाथ षष्ठी के रूप मे आज भी अत्यन्त श्रद्धाभाव से मनाया जाता है। एक बार जनार्दन स्वामी के साथ आप तीर्थ यात्रा पर गये। एक दिन गोदावरी नदी के किनारे पर एक ब्राह्मण के घर पर चतु श्लोकी भागवत पर प्रवचन हो रहा था। इन दोनों ने वह सुना। थोड़े दिन बाद जब आप दोनों ने पुनः अपनी तीर्थ-यात्रा प्रारम्भ की तब यह ब्राह्मण भी उनके साथ हो लिया। प्रति रात्रि में वह भागवत पर प्रवचन करता था। थोडे दिन बाद वह तीनो त्र्यंबकेश्वर (नासिक) पहुँचे। वहाँ जनार्दन स्वामी ने श्रीएकनाथ चतु.श्लोकी भागवत पर टीका लिखने की आज्ञा दी। गुर्वाज्ञा के अनुसार श्रीएकनाथ ने टीका लिखना प्रारम्भ किया और नासिक में ही उसे पूरा किया। इसकी ओवी संख्या १०३६ है। आपने हस्तामलक, शुकाष्टक, स्वात्मसुख आदि ८-१० अध्यात्मपरक ग्रन्थ लिखे हैं। इनके अतिरिक्त भागवत के एकादश स्कंध पर भी आपने विस्तृत टीका लिखी है। यह ग्रन्थ महाराष्ट्र मे अत्यन्त लोकप्रिय है। ज्ञानेश्वरी के बाद लोकप्रियता मे और पूज्यता में नाथ-भागवत का ही क्रमांक लगता है। आपने रुक्मिणी स्वयंवर पर भी एक काव्य-ग्रंथ लिखा है। इसमे भी अध्यात्मपरकता है। आपने रामायण भी लिखी है। स्फुट अभंग और पदो की भी आपने रचना की है। अभगो में भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला वर्णित है। अन्य विषयों पर भी आपने अभग रचना की है। बाललीला के अभंगों का आधार श्रीमद्भागवत का दशम स्कंध है। श्रीकृष्ण भगवान् की मुरली के अद्भुत सामर्थ्य का वर्णन आपके अभंगों मे अनेक स्थान पर मिलता है। उदाहरण के लिये निम्नांकित अभंग द्रष्टव्य है —

भुल घिलें वेणुनादें। वेणु वाजीवला गोविंदे ॥१॥
पांगुललें यमुना जल। पक्षी राहिले निश्चल ॥२॥
तृण चरें लब्ध झाली। पुच्छ वाहू नियां ठेली ॥३॥
नाद न समाये त्रिभुवनी। एका भुलला जनार्दनी ॥४॥

गोविन्द की मुरली की ध्वनी ने सबको मोहित कर लिया है। मानवी सृष्टि भी इस वेणुनाद से मोहित है, इसमे तो कुछ आश्चर्य नही, किन्तु यमुना-जल उस ध्वनि से मोहित हो, बहना बन्द हो जाता है। तृण यही जिनका खाद्य है ऐसे पशु भी उस से लुब्ध हो जाते हैं, पक्षी भी उडना भूल कर निश्चल हो जाते हैं। त्रिभुवन में भी वह नाद नहीं समाता। जनार्दन स्वामी का शिष्य एकनाथ उस ध्वनि से मोहित हो गया है। इन पंक्तियों को पढकर भक्तप्रवर सूरदास की 'मुरली-स्तुति' का सहसा स्मरण हो आता है।

सूरदास कहते हैं—

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहैं, जमुना-जल न बहत॥
खग मोहे, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छबि छरत॥
पसु मोहैं, सुरभी विथकित, तृन दंतनि टेकि रहत॥
सुक सनकादि सकल मुनि मोहे ध्यान न तनक गहत॥
सूरदास भाग हैं तिनके जे या सुखहि लहत

साम्य की दृष्टि से दोनों पदों की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है

'नाम-महिमा' वर्णन देखिए—

नामापाशी तिष्टे देव। नामापाशीं वसे भाव।
नामापाशीं मुक्ति गौरव। अहर्निशीं वसतसे ॥१॥
नामापाशी ऋद्धि सिद्धि। नामापाशीं ते समाधि।
नामें तुटती उपाधि। जन्मो जन्मीच्या ॥२॥
नामापाशी भुक्ति मुक्ति। नामापाशी ते विरक्ति।
नामें पातकें नासती। बहुत जन्माची ॥३॥
एका जनार्दनी नाम। गातां निरसे भवभ्रम।
साधन उत्तम। कलियुगा माझारीं ॥४॥

नाम के पास 'देव' खड़ा रहता है। नाम के पास ही भक्ति रहती है। नाम के पास दिनरात मोक्ष-सुख (गौरव) रहता है। नाम के पास ऋद्धि-सिद्धि, समाधि रहती है। नाम के कारण संसार यातनाएँ दूर होती हैं। भुक्ति और मुक्ति तथा विरक्ति नाम के पास रहती है। नाम से जन्मजन्मान्तर के सब पाप भस्म हो जाते हैं। जनार्दन स्वामी के शिष्य एकनाथ कहते हैं कि नाम-गान से भव-भ्रम दूर होता है, इसलिये इस कलियुग में यह उत्तम साधन है।

कृष्ण भक्ति-परक अभंगों और पदों के अतिरिक्त श्री एकनाथ ने लीला विनोदपरक काव्य-रचना भी की है। उनमें आध्यात्मिकता अधिक है, किन्तु मूल कथा-भाग कृष्ण चरित्र विषयक ही है। 'हलदुली' नामक स्फुट काव्य में भगवान् कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह समारोह में परस्पर हल्दी लगाने के प्रसंग का वर्णन है। 'कृष्णदान' नामक अन्य काव्य में, 'सत्यभामा ने नारद को कृष्ण भगवान् का दान दिया' इस सुन्दर और विनोद पूर्ण कथा का निरूपण किया है। एकनाथ ने भक्त चरित्रों का वर्णन किया है, उसमें कृष्ण सखा सुदामाजी का चरित्र वर्णित है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आधार लेकर श्री एकनाथ जी ने प्रचुर मात्रा में रचना की है। वारकरी सम्प्रदाय में श्री एकनाथ जी को ज्ञानेश्वर का अवतार माना जाता है। महाराष्ट्र में भागवत धर्म का प्रसार करने वाले संतों और भक्तों में एकनाथ अग्रगण्य हैं। आपने 'रुक्मिणी स्वयंवर' नामक काव्य की भी रचना की है। मराठी साहित्य में रुक्मिणी स्वयंवर पर अनेक काव्य रचे गये हैं किन्तु एकनाथ का काव्य श्रेष्ठ है। रुक्मिणी-कृष्ण (जीव और शिव का) विवाह इसमें वर्णित है। इसका मूलाधार दशम स्कंध अध्याय ५२-५४ हैं। एकनाथ की रचनाओं में भागवत ग्रंथ सर्वप्रिय और सर्वपूज्य है। उनने परवर्ती कवियों को भी प्रभावित किया है।
के एकादश स्कंध पर की यह टीका विस्तृत एवं हृदय ग्राही है यह टीका शक १४१९ में काशी क्षेत्र में पूर्ण हुई थी

भक्तीच्या पाटा मुक्ति पै आली   भक्तीनें मुक्तीतें वाढविलें ॥
भक्ती ते माता मुक्ति ते दुहिता । जाणोनि तत्त्वता भजन करी ॥

भक्ति के गर्भ से मुक्ति का जन्म हुआ। भक्ति ने मुक्ति का भरणपोषण किया। भक्ति माता है और मुक्ति दुहिता, यह जानकर परमेश्वर-भजन करना चाहिये।

एक स्थान पर भक्ति और ज्ञान का सम्बन्ध स्पष्ट करते समय वे कहते है—

भक्तीचे उदरी जन्मले ज्ञान। भक्तीने ज्ञानासी दिधले महिमान।
भक्ती तें मूल ज्ञान ते फल। वैराग्य केवल तेथीचे फूल॥

भक्ति के गर्भ से ज्ञान का जन्म हुआ। भक्ति ने ज्ञान का माहात्म्य बढ़ाया। भक्ति मूल है और ज्ञान फल, वैराग्य तो केवल उस का फूल ही है।

इसलिये—

भक्ति प्रेमावाचुण ज्ञान नको देवा। अभिमान नित्यनवा तयाभाजी।
प्रेमसुख देई प्रेम सुख दई। प्रेमेवीण नाही समाधान॥

हे भगवन्! भक्ति प्रेम के बिना मुझे ज्ञान नहीं चाहिए। ज्ञान से तो नित्य नवीन प्रकार से गर्व बढ़ता है। इसलिये मुझे भक्ति-सुख दो, भक्ति-सुख के बिना समाधान नही। एकनाथ का यह ग्रंथ यद्यपि टीकात्मक है, तथापि उसमे स्थान-स्थान पर उनकी स्वतंत्र प्रज्ञा और पूर्णानुभव तथा ज्ञान का दर्शन होता है।

एकनाथ के पश्चात् श्रीमद्भागवत पर जिन कवियों ने टीका लिखी, उनमें शिवकल्याण नामक कवि भी एक हैं। आपने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध पर टीका लिखी है। यह टीका शके १५५० के लगभग लिखी गई। इसमें कवि की स्वतंत्र प्रज्ञा के दर्शन अनेक स्थानों पर होते है। कवि कृष्णोपासक थे। अध्यात्म प्रेमी होने के कारण आपने अध्यात्मपरक अर्थ लगाते हुए, कृष्णचरित्र का ज्ञान किया है। दशम स्कध पर आधारित श्रीकृष्ण 'जन्मपचाध्यायी', 'रासपचाध्यायी', 'ब्रह्म स्तुति', 'वेदस्तुति' और 'प्रकरण' रसपूर्ण है। सगुण परमात्मा ही निर्गुण है, उन दोनो मे अभेद है, यह तथ्य कवि ने निम्नांकित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है—

जेवि नटासी अर्पिता दान। नटव्यासीच जालें अर्पण।
तेवि प्रतिपादितां सगुण। निर्गुणाचि लाभे॥

नट को पारितोषिक दिया तो वह जिस प्रकार स्वांग करने वाले को ही मिलता है, उसी प्रकार सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन से निर्गुणता ही प्राप्त होती है।

एकनाथ की भागवत की टीका ने इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परवर्ती कवियों पर प्रभाव डाला है।

शके १४१० के आसपास महाराष्ट्र में रमावल्लभ नाम के एक कवि विद्यमान थे। आपने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के आधार पर 'दशकनिर्धार' नामक प्रकरण की रचना की है। आपने कृष्ण-भक्तिपरक अनेक पदो की भी रचना की है। आप कृष्णभक्ति का प्रसार करने हेतु नीचे दक्षिण मे भी गए। कारवार जिले में आपकी शिष्या आवडी के मठ मे आज भी कृष्ण जन्मोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है आपने 'श्रीकृष्ण जयन्ती व्रतोत्सव मयन नामक एक पुस्तिका लिखी है उसमें श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मनाने का विधि-विधान

वर्णित है। उसमें प्रातः स्मरण, काकड आरती, नित्य-भजन सप्ताह के प्रत्येक दिन के भजन, ध्यानोपासना, पूजोपचार श्रीकृष्ण-जन्म महोत्सव, होलोत्सव आदि पर आपके द्वारा रचित अनेक सुन्दर पदों का संग्रह है। आपका—

"चिमरणेसे मूल याचा चिमणासा पावा।" ('छोटा-सा बालक उसकी छोटी-सी बाँसुरी') यह पद अत्यन्त सरस है। इसमें भगवान् कृष्ण का बाल स्वरूप वर्णित है।

जनी, जनार्दन नामक कवि ने भी श्रीमद्भागवत के आधार पर 'निर्विकल्प ग्रंथ' अर्थात् 'उद्धव बोध' नामक ग्रंथ लिखा है। इस कवि का समाधि शक १५२३ है।

परमात्मा सृष्टि से अलिप्त है—किस प्रकार ?

जैसे अग्नि बिना। लोहो न पिटवे जागा।
परन्तु लोखंडासी अग्नि जाना। अलिप्त असे ॥
कि फुलाचा परिमलु जैसा। फुली सामावला आपैसा।
अलिप्त रूपे जैसा। फुली असे ॥
फुलाभाजि जैसा परिमलू। तसा जगाभाजि मी गोपालु।
ऐसा ही सर्व भूगोलू। अलिप्त परणे रचिला ॥

अग्नि के बिना लोहा पीटा नहीं जा सकता, किन्तु जिस प्रकार अग्नि लोहे से अलिप्त है जिस प्रकार पुष्प का परिमल सहजता से पुष्प में ही रहते हुए भी पुष्प से अलिप्त है, वह परिमल जिस प्रकार पुष्प में समाया हुआ है उसी प्रकार मैं गोपाल भी इस जगत् में समाया हूँ। मैंने अलिप्त रहकर इस भूगोल की रचना की है।

शिव कल्याण के समकालीन कवि लोलिंबराज ने भी दशम स्कंध पर एक विस्तृत टीका लिखी है।

इसी काल में वारकरी सम्प्रदाय के आधार-स्तंभ श्री तुकाराम महाराज का (शके १५३०) प्रादुर्भाव हुआ। आप एक महान् विट्ठल भक्त थे। प्रपंच में आपको वैराग्य हो गया था। आपने भंडारा पर्वत पर श्री एकनाथ के भागवत का पारायण किया। आपके सहस्रावधि अभंग उपलब्ध हैं। आपकी रचना पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्ट रूपेण दृष्टिगोचर होता है। नाम संकीर्तन की महत्ता आपने अनेक स्थानों पर प्रकट की है—

नाम संकीर्तन साधन पै सोपें। जलतील पापें जन्मां तरींचीं ॥
न लागती सायास जावें वनान्तरा। सुखें येतो घरा नारायण ॥

नाम संकीर्तन एक अत्यन्त सरल साधन है। उसका अवलम्ब करने से जन्म जन्मान्तर के पाप भस्म हो जावेंगे। इस साधन को अपनाने में कुछ विशेष कष्ट नहीं उठाने पड़ते। नारायण मकान पर सुख से आते हैं।

आपके नाम संकीर्तनपरक, उपदेशपरक, समाज-सुधारक-परक अनेक अभंग हैं। आप महान् वैष्णव थे। वारकरी सम्प्रदाय में आपके सम्बन्ध में बहुत पूज्य भाव है। आपको भागवत-मन्दिर का कलश माना जाता है। 'तुका झालासे कलस', आपका निर्माणकाल शके १५७१-७२ है। आपकी अभंग-रचना बहुत प्रसिद्ध है। 'अभंगवाणी प्रसिद्ध तुकयाची' ॥ तुकाराम महाराज कहते हैं—

ज्याचें जया ध्यान। तेंचि होय त्याचें मन ॥
म्हणउनि अवघें सारा। पांडुरंग दृढ धरा ॥ ५०॥

जो जिसका ध्यान करता है वह उसी के रूप मे जाकर मिलता है. इसलिये सबकुछ छोड़कर पाडुरंग-विट्ठल (श्रीकृष्ण) के चरणों का ध्यान करो।

× × × ×

महाराष्ट्र मे भागवत-मन्दिर की रचना करने वाले चार महाकवि ज्ञानेश्वर, नामदेव एकनाथ व तुकाराम हुए। इन सबको भागवत-सम्प्रदाय (वारकरी सम्प्रदाय) मे अत्यन्त पूज्य भाव से देखा जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित अभग बहुत प्रसिद्ध है—

संत कृपा झाली। इमारत फला आली॥
ज्ञानदेवे रचिला पाया। उमारिले देवालया॥
नामा तयांचा किंकर। त्याने केला हा विस्तार॥
जनार्दनी एकनाथ। स्तम्भ दिला भागवत॥
भजन करा सावकाश। तुका झालासे कलस॥

सत कृपा से भागवत-मन्दिर की यह इमारत फलित हुई है। ज्ञानदेव ने नीव डालकर यह मन्दिर खड़ा किया। नामदेव उमके सेवक हैं, उन्होंने इस मन्दिर का विस्तार किया। जनार्दन-स्वामी के शिष्य एकनाथ थे। ये इस मन्दिर के आधार-स्तम्भ हैं। आनन्द से सावकाश भगवद् भजन कीजिये। इस मन्दिर के कलश श्री तुकाराम हैं।

तुकाराम महाराज के अनेक शिष्य थे। उनमे सोलह बहुत प्रसिद्ध थे। इन्हे टालकरी कहते थे। इनकी भक्तिपरक रचना उपलब्ध है। इस रचना पर भी श्रीमद्भागवत का अप्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

× × × ×

शके १५८६ के आस-पास देवदास नामक कवि ने 'व्यकटेशस्तोत्र' नामक स्तोत्र लिखा है। व्यंकटेश अर्थात् वैकुण्ठ नायक। सगुण भक्ति से यह स्तोत्र ओत-प्रोत है। शके १५६४ के आस-पास महाराष्ट्र में 'वामन' नामक एक महान् सगुणोपासक भक्त विद्यमान थे। आपने भगवद् गीता पर यथार्थ दीपिका नामक टीका लिखी श्रीकृष्ण मे अव्यभिचारिणी सगुण भक्ति रखना यही भगवद् गीता का सार है। ये कवि महान् विद्वान् थे। इसलिये इन्हे वामनपण्डित कहा जाता है। आपके गुरु सच्चिदानन्द स्वामी थे। सच्चिदानन्द स्वामी ने वामनपण्डित को भार्गवी-वारुणी' विद्या की शिक्षा दी। ये शके १५६४ के आसपास विद्यमान थे। भगवद्गीता पर टीका लिखने वाले कवि को श्रीकृष्ण भगवान् का अनन्य-भक्त होना चाहिए, उसे अन्य किसी देवता की भक्ति नही करनी चाहिये' इस प्रकार का स्पष्टमत आपने अपने ग्रन्थ मे अनेक बार स्पष्ट किया है। आपने भागवत के आधार पर अनेक प्रकरण लिखे हैं—जैसे ब्रह्म स्तुति' चतु श्लोकी भागवत, अपरोक्षानुभूति, ध्यानमाला' आदि। भगवान् कृष्ण की बाललीला वनविहार, रासोत्सव आदि पर भी भागवत दशमस्कन्ध के आधार पर आपके द्वारा रचित काव्य अत्यंत सरस और मनोहारी हैं। आपके 'राधा भुजग' 'राधा विलास' कात्यायनी व्रत, आदि प्रकरण भी सरस है। किन्तुइनमें यत्र तत्र उत्तान शृङ्गार परक वर्णन भी आता है। आपके द्वारा किया हुआ भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वर्णन आज भी मराठी भाषी लोगों को प्रिय है इन सब काव्य-ग्रन्थों मे शब्द लालित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है

भावनाओं का चित्रण भी सरल तथा स्वाभाविक है। मानिनी सत्यभामा का यह चित्र देखिए भगवान् कृष्ण की पटरानी सत्यभामा भगवान से जब रुष्ट हो गया, उस समय का यह वर्णन है।

> गडबडा धरणीवर लोलते। वदवती नकळीसहि लोलते।
> रडत मूर्छित होय घडी घडी। पवन निश्चल नेत्र न ऊघडी।
> अलकहार गलयांतिल तोडिते कुरल केश मुखावरि ओढिते।
> कर युगे उर मस्तक ताडिते। वसन आणिक कंचुकि फाडिते।।

वे भूमि पर लेटी हुई है, कवि भी उसकी दशा का वर्णन करने मे असमर्थ हैं। वे रोती हैं और बार बार मूर्छित हो जाती है। नेत्र-पलक निश्चल है उन्हे वे खोलतीं ही नही हैं। गले का हार तोड़ रही हैं और घुघराले बाल मुख पर बिखेर रही है। दोनों हाथों से सीना और मस्तक पीट रही हैं और वस्त्र और कंचुकी फाड रही हैं।

वामन पण्डित का जिन पर प्रभाव पडा है ऐसे दो कवियो ने भागवत दशमस्कन्ध के आधार पर रुक्मिणी-स्वयवर काव्य की रचना की। इनमे से एक का नाम है नागेश और दूसरे का विट्ठल। नागेश के काव्य मे अश्लील वर्णनो का आधिक्य है। विट्ठल ने अपने रुक्मिणी-स्वयंवर काव्य की रचना संस्कृत काव्यो के अनुसार करने का भरसक प्रयत्न किया है। इस काव्य मे भिन्न भिन्न छन्द भिन्न भिन्न बंध, चमत्कृतिजनक यमक, आह्लाददायक अनुप्रास आदि का प्राचुर्य है। अपना छन्द-शास्त्र नैपुण्य और चित्रकाव्य रचना कौशल का प्रदर्शन कर विद्वज्जनो से प्रशंसा प्राप्त करने की इनकी हार्दिक इच्छा थी। इस कारण उसके काव्य मे अनेक स्थलो पर क्लिष्टता आ गई है। लगभग शके १६५८ मे कृष्णदयार्णव नामक कवि ने भागवत के दशम स्कन्ध पर टीका लिखी। शके १६४० मे महारोग से पीड़ित हो जाने के कारण उन्होने गुरुआज्ञा से यह टीका लिखना शुरु किया था। छः साल की उपासना से इन्हें महारोग से तो छुटकारा मिल गया, किन्तु साठ वर्ष की अवस्था मे स्वीकृत कार्य पूरा हो सकेगा या नही इस सम्बन्ध मे उन्हे आशंका थी। किन्तु भगवान् पर भरोसा रखकर उत्तरार्ध लिखने का कार्य आपने किया। शके १६६२ मे आप समाधिस्थ हुए, तब तक उत्तरार्ध के केवल ३७ अध्याय पूर्ण हो पाये थे। इनके पश्चात् इनकी आज्ञा से इनके शिष्य 'उत्तमश्लोक' ने यह ग्रन्थ पूर्ण किया। भगवान् कृष्ण के जन्मकाल के समय का वर्णन देखिये—

दिशा सुप्रसन्न सकल। गगन निरभ्र निर्मल। उदय पावला तारकमेळ। वर्षा काल असतां ही।।१।। मंगलोत्साह घरोघरीं। शोभा आनन्द नगरो नगरी। दु:ख शोक दोष दरिद्री। सुखसागरी बुडाले।।२।। (तुलनीय भागवत)

सब दिशाये प्रसन्न थी। आकाश निर्मल और निरभ्र था और वर्षाकाल होने हुए भी तारे उदित थे प्रत्येक घर में मंगल उत्सव हो रहे थे और नगर नगर में आनन्द का वातावरण था। दुखी और दरिद्री सुख समुद्र मे मज्जन कर रहे थे

सर्वासी। नद्या वाहति प्रसन्न जल शुद्ध सत्वात्मक सुविमनी त्यजिली रजतमाची डहुले शुद्ध मेले ज्याचेनी

भगवान् कृष्ण का जन्मकाल होने से जल भी आनन्द से युक्त था। गोपाल कृष्ण के सर्व भूतात्मा होने से सब चराचर सृष्टि सुखी थी। सरिताएँ प्रसन्न एवं सात्विक जल से परिपूर्ण हो प्रवाहित हो रही थीं। रजतम के कीचड़ का उन्होंने त्याग कर दिया था।

कृष्ण दयार्णव के इस ग्रन्थ की ओवी संख्या ४२,००० है।

इसी काल के दूसरे कवि हैं, श्रीधर स्वामी। आपने 'हरिविजय' नामक एक काव्य ग्रन्थ लिखा है। आबालवृद्ध और महिलाएँ भी आपके ग्रन्थ का पाठ करती हैं। आपकी भाषा सरल एवं ओजवती है। इस ग्रन्थ मे रसपूर्ण वाणी में भगवान् कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है। इस ग्रन्थ का मूल आधार श्रीमद्भागवत ही है। श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन अत्यन्त सरस है। एक बार श्रीकृष्ण के नटखटेपन से त्रस्त यशोदा माता ने गोपियो के परामर्श से गणेश चतुर्थी का व्रत किया। संकटा चतुर्थी को माता ने पूजा-सामग्री और इक्कीस 'मोदकों' का प्रसाद तैयार कर थाल में श्रीगणेश के सम्मुख रखा। वे अन्दर धूप दीप आदि लाने गईं, यह देख भगवान् ने चुपचाप सब लड्डू-मोदक खा डाले। यशोदा माता को वापिस आने पर थाल खाली दीखा तब कृष्ण के सम्बन्ध में आशका उत्पन्न हुई। उनसे इस सम्बन्ध मे जब पूछताछ की तब भगवान् ने कहा, "माँ, अभी-अभी यहाँ एक सहस्र चूहे आये थे. एक बड़े चूहे पर गणेशजी बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी सूण्ड से सबके सब लड्डू खींच लिये। डर के मारे मैं कुछ बोल न सका। माँ, अब मुझे बहुत भूख लगी है, जल्दी कुछ खाने को दो।" तब क्रुद्ध होकर माता बोलीं, "दिखा अपना मुँह।" तब भगवान् ने कहा, "लड्डू तो बहुत थे, मेरे इस छोटे से मुख मे वे कैसे समायेंगे, मुझे दंड न दो। गणेशजी लड्डू ले गये और मुझ पर व्यर्थ मे ही आशंका करती हो।" यशोदाजी नही मानीं, तब भगवान् ने मुख खोलकर दिखाया।

इस प्रकार की अनेक बाललीलाएँ श्रीधर स्वामी के इस ग्रंथ मे वर्णित है। इस ग्रन्थ की रचना शके १६२८ में हुई। 'रामविजय', 'पाण्डवप्रताप' आदि अन्य ग्रन्थो की भी श्रीधर स्वामी ने रचना की है।

शके १६५१ में मोरोपंत नामक सुप्रसिद्ध मराठी कवि का जन्म हुआ। आपने अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना की है। आप विद्वान्, बहुश्रुत एवं भाषा पडित थे। आपकी रुक्मिणी-गीत नामक एक अत्यन्त सरस काव्य-रचना उपलब्ध है। यह अत्यन्त सरल भाषा मे है। कृष्ण विजय नाम का एक अन्य काव्य ग्रन्थ भी आपने लिखा है। यह ग्रन्थ संस्कृत प्रचुर शब्दों के कारण बहुत क्लिष्ट है। इस ग्रन्थ को 'बृहद्दशम' भी कहते हैं। मूल भागवत के अनुसार इसके भी ९० अध्याय है। प्रथम ५४ अध्याय 'आर्या' छंद मे है। किन्तु आगे के २५ अध्याय बहु छन्दात्मक है और इसके बाद के अध्यायो का छन्द सुलभ-आर्या छन्द अर्थात् गीति छन्द है। अन्तिम १०-११ अध्याय अत्यन्त सरल, सरस एव मनोहारी है। सुदामाजी को मणिकनक मडित आसन पर बिठाकर भगवान् ने उन्हे स्वर्ण की थाली मे भोजन कराया, इस प्रसंग का बड़ा ही मनोहारी वर्णन कवि ने किया है, उसमें की कुछ पंक्तियाँ है

ब्राह्मण त्या रात्रींत प्रभु मणिक नकमंडिता पाटीं ।
बैसविला, सन्मानें जेवविला कांचनाचिया ताटीं ।।
स्वकरें साक्षात् लक्ष्मी या भावोजीस आग्रहें वाढी ।
काढी गुरुगोष्टी मुख कर्ण युगाहि तृप्ती दे गाढी ।।

भगवान् ने उस रात उस ब्राह्मण को मणिकनकमंडित आसन पर (पटे पर) सम्मान के साथ बिठाया और उसे कांचन की थाली मे भोजन कराया। साक्षात् लक्ष्मीदेवी ने अपने हाथों से देवर को आग्रह के साथ भोजन परसा। इसी समय भगवान् ने गुरुग्रह की बातें सुनाकर उसके मुख और श्रवणेंद्रियो को तृप्त किया। (भोजन से मुख को और बचपन की बातों से श्रवणेन्द्रियों को) द्रौपदी कृष्ण सखियों से उनके विवाह समय की पुरानी बाते पूछ रही है, इस प्रसंग का बहुत मनोरम चित्र कवि ने खींचा है—

द्रौपदी वैदर्भी से पूँछती हैं—

हे वैदर्भि ! स्वमुखें स्वविवाहोत्सव कथा मला सांगे ।
कैसें वरिलें तुजला श्रीकृष्णें दीनवत्सलें आंगें ।।

हे वैदर्भी, दीनवत्सल श्रीकृष्ण ने तेरा वरण किस प्रकार किया। यह विवाहोत्सव कथा अपने मुख मे मुझे सुना।

इसी प्रकार—हे सत्यभामा,

'भामे' या मेघानें कैसें सौदामिनीस तुज वरिलें ? ।।

तुझ-सौदामिनी का इस मेघने कैसे वरण किया यह बता। और जाम्बवन्ति से,

हे जाम्बवन्ति ! स्वत्कर-सरसिज कैसें रमाधवें धरिलें ?

तेरे कर-सरसिज का रमापति श्रीकृष्ण ने किस प्रकार ग्रहण किया, यह मुझे निवेदन कर।

इन प्रश्नो का कृष्ण-सखियो का दिया हुआ उत्तर भी उतना ही मनोरम है। जब वैदर्भी को रथ मे बिठाकर भगवान जाने लगे उस समय का वर्णन देखिए—

हंसें मुक्ता नेली मग केला कलकलाट काकांनीं ।
हाकांनीं नभ भरिलें जाय सुरांच्या हि नाद हा कानीं ।।

हंस मुक्ता को ले गया यह देख काक चिल्लाने लगे, उनकी इस चिल्लाहट से नभ भी निनादित हुआ और वह नाद सुरो के कानो तक पहुँचा।

सुभद्रा-हरण की कथा भी अत्यन्त मधुर है।

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का कुछ अंश क्लिष्ट होने से मोरोपंत ने दशम स्कंध पर सरल भाषा मे दूसरा काव्य ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में हर गीति के आद्याक्षरों से 'नमो भगवते वासुदेवाय' यह मंत्र पूरा किया है। इस प्रकार ११८८ गीतियाँ लिखकर १०८ बार इस मंत्र का पारायण किया है। प्रारंभ में 'श्रीमानुर गायो मुकुन्दो जयति। इस मंत्र से बारह आर्या पूर्ण की हैं और यह 'साष्टशत' मंत्रमणियों की माला प्रभुचरणो मे अर्पण की है केवल दशम स्कंध पर समाधान न मान कर मोरोपंत ने शेष ११ स्कंधों पर भी

रचना की इस संपूर्ण ग्रन्थ में नमो भगवते वासुदेवाय' इस एकादशाक्षरी मंत्र की तीन मालाएँ पूर्ण की हैं। प्रत्येक माला में ३३३ मंत्र हैं।

इस ग्रन्थ के पश्चात् शके १७०८ के लगभग मोरोपंत ने 'हरिवंश' नामक काव्य ग्रंथ की रचना की।

इसके अतिरिक्त आपने रामायण महाभारत आदि महाकाव्यों के आधार पर अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। आपकी कुछ स्वतंत्र रचनाएँ भी हैं, किन्तु वे सब भक्तिपरक ही हैं। आप वृत्ति से पौराणिक थे। आपका 'महाभारत' बहुत लोकप्रिय है। आपने १०८ रामायणों की भी रचना की है। उनमें से कई में 'श्रीराम जयराम जयजयराम' यह मंत्र सावना' है। अनेक रामायण चित्र-रामायण है। आपकी सार-रामायण में अनेक नवी छन्दों का प्रयोग हुआ है।

मोरोपंत का अनुकरण कर अनेक कवियों ने आर्यागीति छन्द में रचना की। इसी काल के नारायण नामक कवि की भागवत के अष्टम स्कंध में वर्णित शिवमोहिनी आख्यान पर आधारित रचना उपलब्ध हुई है। यह काव्य भी सरस है। इसमें वर्णित मोहिनी का यह चित्र देखिए—

रुण झुण पेंजण वाजवि तैशा छुम-छुम नितंबकिंकिणिका।
वेणी फणिवत् लोले झलकति रद पंक्ति रत्नमणिकणिका ॥
उजव्या हस्ते खेले डाव्यानें सावरूनि वस्त्रातें।
लाजे 'हर' वश केला तीनें टाकूनि काम शस्त्रातें ॥

कन्दुक-क्रीड़ा करने वाली उस मोहिनी ने अपने नूपुरों की 'रुमझुम रुमझुम' ध्वनि की और नितंब किंकिणिकाओं का भी मधुर शब्द किया। फणि के समान उसकी चोटी हिल रही थी और रत्नमणिकणिकाओं जैसी दंतपंक्ति शोभायमान हो रही थी। वह अपने बाएँ हाथ से कन्दुक-क्रीड़ा कर रही थी और दाहिने हाथ से वस्त्र सम्हाल रही थी। धीरे से लज्जित होने का उसने अभिनय किया और इस प्रकार काम शास्त्र से उसने 'हर' को वश में कर लिया।

मराठी में संपूर्ण भागवत पर टीका लिखने वाले जो कतिपय कवि हुए हैं, उनमें ज्योतिपंतदादा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने सम्पूर्ण भागवत पर टीका लिखी है। यह टीका ओवी छन्द और अभंग छन्द में है। आप विट्ठल के परम भक्त थे। आप सतारा जिले के मूल निवासी थे। आपको पेशवा ने बड़ी जागीर देकर झाँसी प्रान्त में भेजा था। पानीपत की लड़ाई में आपने भाग लिया था। तत्पश्चात् आपको विरक्ति हुई। नौकरी छोड़कर आप काशी गये। वहाँ आपको किसी ने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भेंट किया। दैवी कृपा से प्राप्त इस ग्रन्थ पर आपने मराठी में विस्तृत टीका लिखी है। आप एक बार पंढरपूर विट्ठल दर्शनार्थ गये। वहाँ उन्होंने एक सहस्र विट्ठल मन्दिर बनाने की प्रतिज्ञा की और उसे पूरी करने के लिए जीवन पर्यन्त कोशिश की। इनके बनाये हुए लगभग ७५० देवालय आज भी विद्यमान हैं। ज्योतिपंतदादा शके १७१० में समाधिस्थ हुए। शके १६९६ में भिक्षु कवि द्वारा 'उद्धव-गीता' पर रचित 'भक्ति अनुभव' नामक एक और ग्रन्थ उपलब्ध है। यह रचना भी अत्यंत सरस है

इन कवियों के अतिरिक्त जानपद भाषा मे लावणी और पोवाडों की रचना भी इसी काल में होने लगी थी। इनकी रचना करने वाले 'शाहीर' शृङ्गारपरक और वीर रसात्मक लोक गीतों की रचना तो करते ही थे, किन्तु इनमें से अनेक शाहीरो ने भागवतान्तर्गत कृष्ण-कथा पर भी लावणियो की रचना की है। रामजोशी नाम के एक बहुत प्रसिद्ध कवि ने राधा-सखि संवाद नामक एक अत्यत सरस प्रकरण की रचना की है। छेकापह्नुति का एक उत्कृष्ट उदाहरण देखिए—

> अम्बरगत परि पयोधरातें रगडुनि पळतो दुरी।
> काय हार्धीट म्हणावा तरी।
> तो नंदाचा मूल काय गे सांग कन्हैया हरी?
> नव्हे गे मारुत मेघोदरी॥

पयोधर अबरगत (वस्त्राच्छादित) होते हुए भी उसे रगडकर यह दूर भाग रहा है, देखो तो कितना ढीठ है।

सखि राधा से पूछती है—तो क्या यह नन्द का लडका, नटखट कन्हैया है?

राधा ने उत्तर दिया—नहीं सखि वह तो आकाश स्थित (अम्बरगत) मेघों (पयोधर) के अन्दर बहने वाली वायु है।

इस प्रकार अनेक श्लेषात्मक प्रश्नोत्तर इसमे वर्णित हैं। इसका मूल आधार दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण लीलाएँ हैं। यह एक लोक-गीत है किन्तु एक विद्वान् परिष्कृत कवि द्वारा रचित। इसके रचयिता कविराय रामजोशी सोलापूर के निवासी थे। आपके कुल में अनेक विद्वान् पुरुष हुए। आप भी स्वय विद्वान् थे। किन्तु आपने अपना वशपरम्परागत व्यवसाय त्यागकर लोक गीतकारो का व्यवसाय अपनाया।

इन्ही लोक-गीतकारो मे साताप्पा नामक महार था। इसने भी कृष्ण लीलाओं पर लावणियों की रचना की है। इसका भतीजा होनाजी एक बहुत प्रसिद्ध लावणीकार था। इसकी कृष्ण चरित्र पर रचित लावणियाँ बहुत सरस एव मनोहारी हैं। 'राधे हा मुकुन्द उचलुनि कडिये घेई' हे राधा इस मुकुन्द को गोद मे उठाले। 'मुकुन्द यमुने थडी थडी। खेलतसे मिलवून गडी (यमुना के तीर पर मुकुन्द बालगोपालो को एकत्र कर खेल खेलता है।) 'श्रीरंगा कमलाकाता हरि पदराते सोड' (हे श्रीरग, हे कमलाकात, हे हरि, मेरा आंचल छोड़ दे) आदि लावणियाँ आज भी रसिकों का मन मोह लेती हैं। होनाजी द्वारा रचित 'घनश्याम सुन्दरा श्रीधरा' भी है। यह भूपाली (प्रभाती) उनकी रचनाओ मे सर्वोत्कृष्ट है। आज भी महाराष्ट्र मे प्रभात समय मे इस भूपाली का गान किया जाता है। अरुणोदय के समय जब इस भूपाली के मधुरस्वर सुनाई देते है, तब हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है। इसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिये कितनी मधुर हैं माता यशोदा कन्हैयाजू को जगा रही हैं वे

हे धन.श्याम सुन्दर श्रीधर, उठो उठो अरुणोदय हो गया है,

उदयाचल पर भगवान् भास्कर आगये है। होनाजी अंतिम पेशवा बाजीराव के समय विद्यमान था। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक शाहिरो ने कृष्णभक्तिपरक लावणियों की रचना की है। 'सगन भाऊ' नामक एक मुसलमान लावणीकार ने भी कृष्णभक्तिपरक सुन्दर लावणियो की रचना की है।

गंगूहैबत्ती नामक लावणीकार की, कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने वाली लावणियाँ प्रचुरमात्रा में मिलती हैं। ये सब लावणियाँ नाद-मधुर एव सरस हैं।

गुजराती

मध्ययुगीन भक्ति-भावना की दृष्टि से गुजराती भाषा साहित्य भी प्रौढ़ तथा विशाल है। गुजराती भाषा का प्रारम्भ प्राय. १२वीं शताब्दी से माना जाता है, परन्तु उसमें स्थिरता १५वीं शताब्दी के लगभग आयी। गुजराती साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभाजित किया गया है। पहला काल १२५० ई०–१४५६ ई० तक का माना जाता है। गुजरात जैन धर्म का गढ रहा है। इसीलिए गुजराती का प्रारम्भिक साहित्य जैन धर्म प्रधान है। गुर्जराती भाषा के आदिकाल में वीर रस प्रधान रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा में मिलती हैं। गुजराती भाषा मे वैष्णव साहित्य उसके दूसरे काल (१४५६–१६५०ई०) मे लिखा गया जबकि जैन धर्म साहित्य प्रेरणा का स्रोत नही रह गया था तथा उसका स्थान पौराणिक धर्म ने ले लिया था। श्रीमद्भागवत पुराण इस युग की रचनाओ का सबसे प्रबल प्रेरणा-स्रोत रहा है। पन्द्रहवी शताब्दी मे गुजराती के प्रसिद्ध कवि श्रीधर व्यास ने भागवत दशम स्कंध की सम्पूर्ण कथा कवित्त मे लिखी। शायद इसीलिए इस ग्रन्थ को 'कवित्त भागवत' कहा जाता है। कवि ने अपने कल्पना-कौशल से भागवत के आधार पर बड़े सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं।

मध्ययुग मे गुजराती भाषा के सबसे समर्थ कवि नरसिंह (१४१४-१४८० ई०) हुए हैं। उनकी रचनाओ मे भक्ति का बडा रोचक वर्णन हुआ है तथा साथ ही साथ दार्शनिकता का भी पुट है, संगीत के समावेश से नरसिंह की रचनाएँ शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी। इनकी आकर्षक तथा प्रौढ रचनाओ के कारण ही इन्हे गुजराती का आदि कवि माना गया है। इनकी रचनाओं का आधार सर्वथा पौराणिक है। नरसिंह मेहता ने अपने आपको एक गोपी के रूप मे ही प्रस्तुत किया है तथा भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन किया है। उनकी रचनाओ मे 'गोविन्दगमन', 'सुरत संग्राम' और 'सुदामा चरित्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राधाकृष्ण के रति-रास का एक चित्र देखिए—

"मर्यादा ने लोपी ने दुःखकरी गोपी ने, धोत्री ने, धाइ रण बीच राधे,
दृग असि सज करी, ढाल उरनी धरी भुव नरासन बीच शने सांधे।"

नरसिंह का ११३ पदों वाला 'रास-सहस्र पदी' ग्रन्थ इसी प्रकार के वर्णनों से ओत-प्रोत है। बाल कृष्ण-लीला के वर्णन में भी उन्होंने अद्भुत कौशल दिखाया है। दही मथने के समय गोपियों की सहायता करते हुए बालक कृष्ण का एक चित्र देखिए—

"मोकलो जशोदा जी कुंवर तमारो अम घरे मह्रिडां बोलववा रे जो
तमारा कानजी ने धूमता रे आवडे तेडवाने मसे आवी हुं यारे जो।

सात समुद्रनी गोली रे कीधी, मेरु कीधो रैवैये रे जो,
वासुकि नागनां नेतरां रे कीधां चांदा सूरज बे सवैया रे जो।
एक पास कान्हजी कालो रे घूमे, बीजि पास राधिका गोरी रे जो,
खमके छे कंकणी, लपके छे बेलिया, लटके ते नेतरानी दोरी रे जो।''

'राससहस्त्र पदी' के अतिरिक्त उनके कृष्ण लीला सम्बन्धी पदों के और भी कई संग्रह है, जैसे बाललीला, रासलीला, दानलीला, कृष्ण जन्म की बधाई आदि।

श्रीमद्‌भागवत के लीला सम्बन्धी विशिष्ट पक्ष के अतिरिक्त उसके अद्वैतपरक सामान्य पक्ष का भी नरसिंह मेहता पर बड़ा प्रभाव पड़ा, वह सम्पूर्ण सृष्टि को भगवान् कृष्ण की लीला-स्थली ही मानता है—

"सच्चिदानन्द आनन्द क्रीडा रे सोनाना पारण माहि झूले।"

उनके अध्यात्मपरक पदों को देखकर श्रीमद्‌भागवत के दार्शनिक पक्ष का स्मरण हो आता है। एक उदाहरण देखिए—

'नीरखने गगन मां कोन घूमी रह्यो ? तेज हुँ तेज हुँ शब्द बोले,
श्यामना चरणमां इच्छुं छुं मरणरे अहीया कोई न थी कृष्ण तोले।
श्याम शोभा घणी बुद्धि ना शके कली अनत ओच्छव मा पंथ भूली,
जड अने चेतन रस करो जणायो पकड़ी प्रेम सजीवन मूली।
झलहल ज्योति उद्योत रवि कोटमां, हेमनी कोर ज्यां नीसरे तोले,
सच्चिदानन्द आनन्द क्रीडा करे सोनाना पारणां माहि झूले—
बत्ती विन तेल विण सूत्र विण जो वली अचल झलके सदा अनल दीवो,
नेत्र विण नीरखवो रूप विण परखवो विण जिह्वाए रस सरस पीवो।
अकल अविनाशी एमनाज जीए कलयो अरध ऊरध नी माहि मगाले,
नरसैंयाचो स्वामी सकल व्यापी रह्यो प्रेमना तंत या सन्त झाले।'

गुजराती साहित्य के इतिहासकार मीरांबाई को भी गुजराती भाषा की कवयित्री मानते हैं। यह मान्यता विवाद का विषय हो सकती है परन्तु जहाँ तक हमारे विषय का सम्बन्ध है हम मीरांबाई का विवेचन दशम अध्याय मे कर चुके हैं।

नरसिंह मेहता के उपरान्त भागवत के आधार पर रचना करने वालों में वीरसिंह का नाम आता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'उषाहरण' है, जो एक सफल कृति है। श्रीमद्‌भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर केशवदास कायस्थ ने ४० सर्गों मे 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा-काव्य' की रचना की। यह ग्रंथ भिन्न-भिन्न रागों तथा तर्जों मे लिखा गया। इस ग्रंथ मे कृष्ण के साथ राधा का चित्रण भी किया गया है—राधा-प्रसंग को छोड़कर केशवदास ने कठोरता से भागवत का अनुसरण किया। केशवदास संस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—

'सतावने श्रीभागवत रूपक छत्रेवीस।
सोल स्वयकृत सस्कृत अपनी कथा जगदीश॥'

केशवदास के पश्चात् भागवत के फुटकल प्रसंगों को लेकर 'भाडण बंधारो नाम के कवि ने रचना की। उनका ग्रंथ 'सतभामा नूं रूसणूं' है। गुजराती मे प्रौढ आख्यानों का समर्थ कवि

भालरण मध्ययुगीन गुजराती साहित्य का एक नेदीप्यमान रत्न है इसकी आध्यात्मिकता भी भक्ति भावना मे ओत प्रोत है राम कृष्ण और शक्ति सबकी समान भाव से उपासना की है उनका झुकाव स्वामी रामानद की ओर अधिक है। उनकी रचनाओ में कादम्बरी, दशमस्कन्ध नलाख्यान और राम-बाल-चरित विशेषरूप से उल्लेखनीय है। भालरण ने गुजराती को गुर्जर भाषा नाम से विभूषित किया। श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके फुटकल आख्यान भी मिलते हैं जैसे ध्रुवाख्यान मृगी आख्यान इत्यादि। वात्सल्य भाव के चित्रण मे उन्हे अद्भुत सफलता मिली है।

भीम—इनके दो ग्रथ प्रसिद्ध है—'हरि-लीला षोडश कला' तथा 'प्रबोध प्रकाश'। हरि-लीला षोडश कला, दो हजार पदो का एक सुन्दर ग्रन्थ है जो भागवत के आधार पर लिखा गया है। यद्यपि यह ग्रथ बोपदेव के हरि लीला विवेक' ग्रन्थ की परम्परा मे आता है, फिर भी इसका प्रसंग क्रम भागवत के अनुसार ही है। ग्रंथ की बारहवीं कला मे रास-लीला के प्रसंग में कवि कहता है—

आनंद एक अभिनवु रे वृन्दावन मझारि।
वश बजावइ विठलु रे तेणई छंदइ नाचि नारि॥
वृन्दावनि गोपी नाचइ रे तेणइ रंगि-राचि राम॥
नाद मधुर स्वरि झालयइ रे गाइ हरि विलास।
सुन्दरी सवि नव यौवन रे रंगभरि खेलइ रास॥

जनार्दन त्रवाड़ी—इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उपाहरण' भागवत के आधार पर लिखा गया है। यह ग्रन्थ गुजराती छन्द 'कडवा' मे है। कथा मे कवि ने अपनी कल्पना से अनेक स्थानो पर मोड दिये हैं तथा उसे रुचिकर बनाने का सफल प्रयास किया है। एक उदाहरण देखिये—

निज गुरु मागइ वधामणी ए रा घरि बेटी पाऊ धारि।
रुपि ते त्रिभुवन मोहनी ए लक्षण नई गुणसार॥
नहि रम्भा नरि उर्वसी ए मेनका नहीं एह समान।
द्विजवर नइ राय रीझि उए बूझिउ वचन प्रमाण॥
रा कहई कन्या दान देसु ए लेशु जगफल कोड़ि।
देव गधर्व नहि नागमांहीए जोस्यू एहनी जोड़ि॥
आकाश शब्द इम उच्चरइए इच्छावर वरसि कुमारि।
जनार्दन भणइ प्राणि काइ नुहई 'ए हुनि न टलइ ससारि॥
(कड़वू ७)

नाकर तथा विष्णुदास—इन दोनों ही कवियों ने गुजराती के वैष्णव साहित्य की श्रीवृद्धि में योग दिया है नाकर ने जो उच्चकोटि का था के प.
ध्रुवचरित्र लिखा है इस तथ्य को उसने स्वय स्वीकार किया है

नाकर तथा विष्णुदास दोनों ने ही रामायण महाभारत तथा भ
पर अनेक आख्यान लिखे हैं।

चतुर्भुज—चतुर्भुज कवि ने फागु-पद्धति पर 'भ्रमर-गीता लिखी।
स्वत् १६२२ की प्राप्त हुई।'

भ्रमरगीता की कविता मधुर है—

भारती प्रार्थी प्रणमुं य वर्णवुश्र मदन मुरारि।
देव द्वारामती जई रहिया विरह हुउ ब्रजनारि॥
गोप कन्या करइ वातडी रातड़ी किम्हइन विहाई।
वाहलु विदेसि जइ रहिउ अम्हे मेल्या गोकुल माहि॥

गोपियों का उपालम्भ—

हरिती पारि आथे लाधी रे बाधी तिहाँ हुसि प्रीति।
नगर नी नारीधूतारी रमती हुसि विपरीति॥

गोपांगनाओं की उद्धव को फटकार—

चालसि अम्हारि भगति पावड अम्हनइ को किही कृष्ण दावि
ज्ञान कहिउ तम्हेते न लहीउ, जाणीउ हरि गन्नि लागी रहीई।

भ्रमर की अवतारणा—

जाणिउ कमलभ्रम भूलु भ्रमर गोपी पाये बईठि।
चरण गुँजरव करतु रे मानिनी मधुकर दीठ॥

श्रीमद्‌भागवत के भ्रमरगीत प्रसंग को लेकर और भी कई रचनाएँ हुई
सिकगीता' इसी प्रसग की रचना है। इसी प्रकार ब्रेहदेव की 'भ्रमरगीत
।

सूरदास—गुजराती के आख्यानकारों में सूरदासजी का नाम भी
नीय है। इन्होंने भागवत के प्रह्लाद आख्यान और ध्रुवाख्यान के अ
तथा मार्मिक रचना की है। उन्होंने अपने आख्यानों को भागवत क
प्रह्लाद आख्यान का एक चित्र देखिए—

हिरण्य कश्यपे मांडीयो मनमाँहि विचार।
आ असभाव्य दीसे निर्मित गर्जने आकार॥
सभा माँहि श्री नृसिंह जो गाजे गडेडे हनाल।
वुउहडे माहा दारुण कोपीयो माहाकाल॥
सूवर्ण सरखाँ पीत लोचन अति प्रोढां क्रूर।

ध्रुव के बन जाने के उपरान्त राजा उत्तानपाद शोकमग्न होकर कहत

ब्रह्म न साकेलि।
सूत बालक माहारो। स्त्रीजीत अदयाल हु जेह।
पाँच वरसनो पूत्र मे काढियो चतुर शरोमणि बेह।
अनाथ क्र वर वन माँहि अकेलो क्षुध त्रस लागहि से हो मा

इस प्रकार कवि करुणरस का रससिद्ध कवि है।

कीकु बसही—यह औदीच्य ब्राह्मण था। इस का काव्य 'बाल चरित्र' है। भगवान् कृष्ण की बाललीलाओं के आधार पर इसने अपने काव्य की रचना की परन्तु कई स्थलों पर वह भागवत निरपेक्ष भी हो गया है जैसे कालियदमन लीला मे भागवत मे विषमय जल से गाय व गोपों के कारण ह्रद में कृष्ण का कूदना लिखा है जबकि कीकु ने गेंद के लिए कूदना लिखा है। कीकु ने यशोदा की विह्वलता का चित्रण बड़े सुन्दर शब्दों मे किया है एक उदाहरण देखिए—

सुणी बात माता दडवडी, रुदन करि चाली श्रडवडी।
नंदगोप मनि विह्वल थाइ, नयर लोक शूँ यमुना जाई॥
गोकुल सकल सुणी खलभल्यूं नद केडि सवि आविमिल्यूं।
गोपनारि सहू साथे जाइ, करि विलाप यशोदा माय॥

कवि भागवत कथा का अनुसरण करता चलता है। यद्यपि प्रेमानन्द की भाँति वह कठोर भागवतानुसारी नही है फिर भी उसके अनेक वर्णन अति सुन्दर है।

मेगल—भागवत के ध्रुवाख्यान के आधार पर इसने 'ध्रुवाख्यान' की रचना की। इसकी भाषा मँजी हुई गुजराती है। नाकर के ध्रुवाख्यान से इसका ध्रुवाख्यान उत्तानपाद की पत्नियों के नामों की दृष्टि से थोड़ा भिन्न पड़ता है। नारद के उपदेश की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य है—

उपदेश कहो ते रुदे राखो मुनि वदे क्रीपाल।
सीस मुगट ने काने कुण्डल तीलक श्रीपीत भाल॥
अनेक सेवक रह्या उभा मला ढोले वाय।
गरुड आसन प्रभुजी ने पद्म झलके पाय॥

लक्ष्मीदास—ने भागवत के आधार पर रास पञ्चाध्यायी की रचना की। साथ ही दशम स्कन्ध का गुजराती अनुवाद भी किया है। गजेन्द्रमोक्ष के आख्यान के आधार पर इसने 'गजेन्द्रमोक्ष' काव्य भी लिखा है। दशम स्कन्ध के ९० अध्यायो को इसने १९५ कड़वा छन्द मे लिखा है। भाषा प्रवाहमयी है।

जलहल पुरण कालाग्रेमां तेज ते नयमाय।
उचंगे ते देवकाजी ने बालक वैकुठराय॥
देवकी ने वसुदेव नां लोहे भांग्या बधन।
जीव सहु को अन्तरज्यांमी थया तेह प्रसंन॥
चन्द्रनी कीरणावली ते सकल माहि शोभाय।
वन सर्वे प्रसन फूल्यां सौरभ्य आव्या वाय॥

अखोजी—१६ वी शताब्दी मे गुजराती भाषा का समर्थ वेदान्ती कवि अखो हुआ। यह तो नहींकहा जा सकता कि उसकी रचनाओं पर भागवत का साक्षात् प्रभाव है, परन्तु अखो क ब्रह्म निरूपण भागवत के समान ही है। अखो ने ब्रह्म-निरूपण के लिए बड़े कल्पनामय सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किये हैं तथा अद्वैतदर्शन की कवित्वमयी भाषा में व्याख्या की है। भागवत के प्राय सभी सामान्य सिद्धात उसकी रचनाओं में आ गये हैं। उसकी प्रमुख रचनाएँ हैं,

चित्तविचार संवाद, अनुभव बिन्दु और अखेगीता। सूरदास की भाँति अखो ने माया को लेकर अनेक रूपक बाँधे हैं। ब्रह्मानन्द को उसने सूर की भाँति अगम और अगोचर कहा है एक उदाहरण देखिए।

"आज आनन्द माए अंगमां ऊपज्यो,
परिब्रह्मनी पुण्ये भाल लाधीं।
गूगानी सानमां सामो समजे नहीं,
अदबद मूठडी रही रे बांधी।
हुं टल्यो तुं ठर्यो करतार करुणा करी,
सुख दुख वृक्षनी मूली दाझी।
सपन समाई गयुं ज्यम हतुं त्यम थयुं
अखो आ लखी सूतो सुखनी गादी।"

प्रेमानन्द—१७ वी शताब्दी मे भागवतानुमारी रचना करने वालों में प्रेमानन्द का नाम अग्रगण्य है। पौराणिक साहित्य लिखने वालों में ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके पिता का नाम कृष्ण था तथा इनका जन्म बडौदा मे हुआ था। आख्यान शैली को इन्होंने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। अपनी रचनाओ को ये माणभ्या भट्ट के रूप मे स्वयं ही गाकर सुनाया करते थे। इनकी रचनाओ मे मधुर संगीत की ध्वनि गूँज उठती है। अपने पूर्ववर्ती सभी कवियो की विशेषताओ को इन्होंने ग्रहण किया। प्रेमानन्द की चालीस के लगभग प्रमाणिक रचनाएँ प्राप्त है। इनमें कई आख्यान हैं जिनका आधार श्रीमद्भागवत है। भागवत के आधार पर इनकी 'दशमस्कन्ध' नाम की अलग ही रचना है। प्रेमानन्द को गुजराती का सूर कहा जा सकता है। इनकी रचनाओ मे सम्पूर्ण मानवता के लिए संदेश निहित हैं। भक्ति के के क्षेत्र में उन्होंने सुदामा को अपना आदर्श माना है। कृष्ण-लीला से सम्बन्ध रखने वाले इनके दो उदाहरण देखिए—

(१)

कालिन्दीनुं कालु पाणी, माहे वसे कालो काली,
हवे आशा ते शी मलवानी, केम आवे वनवासी रे।
काने कुण्डल, मुखमा मोरली, सांजे गोकुल आवे,
भुख्यो छो कही पेट देखाड़े, मा कहीने बोलावे रे।
पीत पछोड़ी काछ कछे, मुज कने नेतरू मागे
हुँ घरडी माने थाकी जाणी कोण बोलववा लागे रे।

(२)

चौद लोक तरणो महाराज रे महता माहे थया सवाज रे।
वागो शोभे केशर छाँटे रे बाँधि पागड़ी अवले आँटे रे।
काने कुण्डल हीर जड़िया रे, नेत्र प्रलम्ब श्रवणे अड़िया रे।
एक लेखण काने खोसी रे, धरयु नाम दामोदर दोषी रे।
झीणा जामा ने पटका भारे रे, हरि हलवे हलवे पधारे रे।
खोंधे पछेडी ओढी नाये रे वेळ छेडा गृहि आछे हाथे रे।

इनके 'नलाख्यान और सुदामा-चरित्र' दोनो ही काव्य बड़े सरस तथा हृदय-ग्राही हैं। इनकी कविताओं मे सूरदास जैसी कल्पना तथा साज सज्जा है।

अठारहवी शताब्दी में गुजराती भाषा मे और भी अधिक धार्मिक साहित्य लिखा गया। गुजरात मे वल्लभ मत की पूर्ण प्रतिष्ठा इसी शताब्दी मे हुई। साथ ही सहजानन्द के प्रभाव से धर्म मे नैतिकता का समावेश हुआ। सहजानन्द ने स्वामी नारायण सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया था। राधा और कृष्ण को लेकर परवर्ती काल मे प्रेमानन्द के शिष्यो तथा डभोई निवासी रत्नेश्वर ने संगीतमयी बारामासियो की रचना की। रत्नेश्वर ने तो भागवत का अनुवाद भी किया।

बंगला

भागवतानुसारी चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा काव्य का विवेचन करते हुए हम यह सकेत कर चुके हैं कि ब्रजभाषा के अतिरिक्ति संस्कृत तथा बंगला में भी भागवतानुसारी विशाल साहित्य मिलता है। बंगाल प्रारम्भ से ही एक धर्म प्रवण प्रदेश रहा है तथा बंगला के साहित्य में आदिकाल से ही धार्मिकता का रूप मिलता है। कहना न होगा कि मध्य युगीन वैष्णव साहित्य पर विशेषकर हिन्दी साहित्य पर भाव तथा विषय दोनों ही दृष्टियों से बंगला साहित्य का बड़ा प्रभाव है। बौद्धों के सहजयान सम्प्रदाय की भावुकता तथा उपासना पद्धति वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के माध्यम से मध्ययुगीन वैष्णव साहित्य मे प्रतिफलित हुई। बंगला साहित्य में बौद्ध सिद्धाचार्यों के रहस्यवादी चर्यागीत उसकी आदि रचनाएँ मानी जाती हैं। सरहपाद और कान्ह के अपभ्रंश मे लिखे गये दोहाकोशों मे बगला का प्रारम्भिक रूप मिलता है। सहजिया सम्प्रदाय के गीतो मे हमे भक्ति का सहज रूप प्राप्त होता है। इसी सहज रूप की अभिव्यक्ति भागवतकार का चरम उद्देश्य है। यह तो नही कहा जा सकता कि इन चर्यागीतो पर श्रीमद्भगवत का साक्षात् प्रभाव है, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि चर्यागीत श्रीमद्भागवत की भाँति लोकभवना का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चर्यागीतों की रचना १० वी, ११ वीं शताब्दी के लगभग हुई। इनके माध्यम से उस क्षेत्र की विभिन्न धार्मिक भावनाओ का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। यह समन्वय हमें उस समय की कला और शिल्प मे भी मिलता है। इस युग का बगला का साहित्य जन प्रवृत्तियों को धार्मिक रूप देने का प्रयास करता हुआ प्रतीत होता है, उदाहरण के लिए चर्यागीतों के अतिरिक्त 'शून्य पुराण' और 'धर्म पूजा विधान' कृतियों को प्रस्तुत किया जा सकता है। बंगाल में इस प्रकार की रचनाएँ पालवश के समय मे हुईं। विशुद्ध वैष्णव साहित्य की रचना सेन राजाओं के समय में प्रारम्भ हुई। कहा जाता है कि सेन परिवार दक्षिण से ही बगाल मे आया था और शायद इसीलिए कर्नाटक देश की भक्ति-पद्धति का प्रभाव सेन राजाओं के आश्रय मे लिखे गये वैष्णव साहित्य पर पड़ा। जयदेव का 'गीत गोविन्द' लक्ष्मणसेन (सन् ११७५-१२००) के समय में लिखा गया था। जयदेव के गीत गोविन्द में जो राधाकृष्ण का विवेचन प्राप्त होता है वह निश्चित रूप से भागवतेतर सूत्र से सम्बद्ध है। बंगला के गीति काव्य को जयदेव के 'गीत गोविन्द से बड़ी प्रेरणा मिली। १४ वीं शताब्दी से आजतक बंगला में धार्मिक गीतों की परम्परा जारी है। चण्डीदास ने राधाकृष्ण विषयक सहस्रों गीत लिखे। इधर हाल मे एक 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' नाम की रचना प्राप्त हुई है जिसके लेखक के सम्बन्ध में अभी तक निर्णय नहीं हो सका है परन्तु

चण्डीदास का नाम इससे सम्बद्ध अवश्य है। यह विचारणीय है कि यह रचना प्रसिद्ध गीतकार चण्डीदास की ही है अथवा किसी अन्य चण्डीदास की। राधा और कृष्ण की जीवन-गाथा को इसमे काव्यबद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ मे प्रेम-भावना का ही विशेष रूप मे चित्रण हुआ है।

बंगला के मध्ययुगीन भक्ति साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है मंगलकाव्यों की रचना। इन मगलकाव्यों में अनेक देवी देवताओं, धार्मिक संस्कारो तथा लोक कहानियों का सुन्दर काव्यात्मक शैली मे विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पुराणो का विवेचन करते हुए हमने ब्रह्म-वैवर्त पुराण के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह महापुराण सम्भवतः बगाल मे लिखा गया था ऐसा लगता है कि इस महापुराण के समकक्ष बंगाल मे और भी कई पुराण अथवा उपपुराण रहे होगे जिनका प्रभाव चैतन्य पूर्ववर्ती वैष्णव साहित्य पर पड़ा।

विशुद्ध भागवतानुसारी साहित्य बगला मे चैतन्य के प्रभाव मे लिखा गया तथा लगभग दोसौ वर्षो तक यह परम्परा चलती रही। हम पहले लिख चुके है कि चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत को आर्ष ग्रन्थवत् मान्यता होने पर भी राधा को भागवत निरपेक्ष रूप मे स्वीकार किया गया है तथा उसे बड़ी मान्यता प्रदान की गयी है—यह क्षेत्रीय परम्पराओ का प्रभाव था। चैतन्य महाप्रभु के समय मे ही अनेक गीति काव्य तथा चरित काव्य लिखे गए। राधाकृष्ण के प्रेमगीत लिखने वाले बगला मे असंख्य कवि हुए हैं जिनमे कई मुसलमान भी हैं। कृष्ण-लीलाओ का अनेक ग्रन्थो मे वर्णन हुआ है। बगला के वैष्णव कवियो के विषय प्रायः वही है जो बगाल के ब्रजभाषा कवियो के हैं। बगाल मे श्रीमद्भागवत के कई अनुवाद प्राप्त होते है। १५ वी शताब्दी का मालाधर वसु का भागवतानुवाद प्रसिद्ध है। १६ वी शताब्दी मे माधवाचार्य, रघुनाथ पण्डित तथा श्यामदास आदि ने भी भागवत के अनुवाद प्रस्तुत किए।

असमिया

बगला की भाँति असमिया का भी आदिकालीन साहित्य गीत साहित्य ही है जो 'चर्या' के नाम से विख्यात है। भाषा विज्ञानी तो प्रारम्भिक असमिया को बंगला का ही रूप मानते हैं परन्तु असमिया पर और भी कई परिवारों की भाषाओ का प्रभाव है। परन्तु शब्दावली मे संस्कृत भाषा का प्राधान्य है। असमिया साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण तेरहवीं शताब्दी से प्राप्त होते है। इस काल की रचनाएँ प्रायः धार्मिक है जो अधिकांश मे पुराणों पर आधारित है। हेम सरस्वती के 'प्रह्लाद चरित' का आधार 'वामन पुराण' है। इसी प्रकार उनकी एक दूसरी रचना 'हर-गौरी-सम्वाद' अनेक पौराणिक आख्यानों के आधार पर लिखा गया है। हेम सरस्वती के समान हरिहर विप्र की भी कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं। असमिया का सबसे पहला जनकवि माधवकन्दली था। माधवकन्दली की रामायण असमिया भाषा की एक प्रख्यात रचना है। माधव कन्दली ने अपनी दूसरी रचना 'देवजित्' में कृष्ण चरित्र लिखा है। माधव कन्दली के पश्चात् असमिया में अनेक गीतकार हुए हैं जिन्होंने अनेक प्रेम-गीत लिखे हैं। असमिया मे वैष्णवधारा को विशेष बल देने वाले कवि शंकर देव थे जिनका जन्म सन् १४४९ ई० मे हुआ था। उन्होंने असम मे भागवतधर्म का प्रचार किया। असम मे धर्म को ' कहते हैं उनके ग्रन्थों पर विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण

दोनों का ही प्रभाव स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। उन्होंने कई नाटक लिखे जिनमे रुक्मिणी-हरण, कालीदमन, रसक्रीड़ा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होने भागवत पुराण का भी रूपान्तर प्रस्तुत किया। भागवत पुराण का रूपान्तर उन्होंने गेय पदो मे किया है। उनके पद 'कीर्तन' नामकी पुस्तक मे सुरक्षित है। महाकवि सूरदास के 'सूर सागर' के समान उनका 'कीर्तन' ग्रन्थ भी भागवतानुसारी है तथा गेय पदों मे लिखा गया है। यह नही कहा जा सकता कि गीतो का सकलन तथा सम्पादन उन्होने स्वय ही किया था अथवा वह सूरसागर की भाँति उनके बाद किया गया था। इस कीर्तन-सग्रह मे २२६१ पद हैं जो अधिकांश भागवत पुराण की कथाओं के रूपान्तर हैं। प्रत्येक पद मे सूर के पदों की भाँति टेक भी है। असमिया का 'संयुक्त कीर्तन घोपा' नामक ग्रन्थ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमे अनेक कीर्तनो तथा बड़गीतों का सकलन है। इस संकलन मे शकरदेव के शिष्य माधवदेव के बड़गीत भी सम्मिलित हैं। वास्तव मे माधवदेव ने बड़गीतों की रचना मे शकरदेव की बड़ी सहायता की थी। शकरदेव तथा माधवदेव का असमिया मे विशाल वैष्णव साहित्य है। असमिया के बड़गीत भागवत से बहुत अनुप्राणित हैं। उनमें बालकृष्ण की लीलाओ तथा यशोदा के वात्सल्य का बडा सुन्दर चित्रण हुआ है। ये बड़गीत महाकवि सूरदास के पदों से तुलनीय हैं। माधवदेव के प्रत्येक बडगीत मे कृष्ण की बाललीला का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। असमिया के इन दो महान् कवियों के प्रभाव से अनेक कवियों ने भक्ति-रचनाएँ की। अनन्तकंदली ने भागवत के ४, ५, ६, ९ और १० स्कन्धों का असमिया में अनुवाद भी किया तथा और भी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ की।

असमिया के मेधावी लेखक भट्टदेव (१५२८-१६३८ ई०) ने भागवत का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया तथा गीता का भी अनुवाद किया। असमिया मे भागवत का अनुवाद करने वालों में अनन्त कन्दली, केशवशरण, गोपालशरण, कल्पचन्द्र विष्णुभरत, रत्नाकर मिश्र, श्रीचन्द्रदेव तथा अनिरुद्ध कायस्थ विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

उड़िया

उड़िया साहित्य का प्रारम्भ ८ वी-९ वी शताब्दी के आसपास माना जाता है, परन्तु इस भाषा को स्थिरता तेरहवी शताब्दी मे प्राप्त हुई। उडिया के साहित्य में कई धर्म साधनाएँ प्राप्त होती है, जैसे बौद्ध, शैव शाक्त और वैष्णव। वैष्णव-धर्म-साधना की राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति दोनों का साहित्य उड़िया मे प्राप्त होता है। १४ वी शताब्दी मे सारलादास ने उड़िया मे छोटे-छोटे ग्रथो की रचना की जो महाभारत पर आधारित हैं। इसीलिए सालारदास को 'उड़िया का व्यास' कहा जाता है। उडिया साहित्य का यह युग 'पंचसखा' नाम से प्रख्यात है। इन पंचसखाओ में बलरामदास, जगन्नाथदास, अनन्तदास, यशवन्तदास तथा अच्युतानन्ददास सम्मिलित है। इन पंच-सखाओं मे से जगन्नाथदास ने 'उड़िया भागवत' की रचना की। जगन्नाथप्रसाद सस्कृत के प्रौढ़ पण्डित थे। उन्होने उड़ीसा में भक्ति के प्रचार के लिए जनभाषा मे भागवतपुराण को प्रस्तुत किया, अपने ग्रन्थ मे उन्होंने वही माधुर्य तथा प्रसाद गुण लाने का प्रयास किया है जो मूल भागवत में है। परन्तु भाषा बड़ी सरल तथा सुबोध है। उनके भागवत का उड़ीसा में बड़ा मान है तथा उसे उड़िया जनता की 'बाइबिल' के नाम से पुकारा जाता है। ने अपने ग्रंथ में नवीन तथा लोकप्रिय छन्दों का प्रयोग किया है जिस

विशिष्ट छन्द का इस ग्रन्थ मे प्रयोग हुआ है, उसका नाम ही भागवत 'छन्द' है। एक जनश्रुति के अनुसार जगन्नाथ अपने ग्रथ की सरलता तथा बोधगम्यता का परीक्षण जगन्नाथ जी के मन्दिर में साधारण जनता को सुनाकर किया करते थे। शायद इसीलिए इनके ग्रथ का प्रचार साधारण जनता में बडी सरलता से हो गया। उडीसा के घर-घर मे भागवत का पाठ होने लगा। जनता मे इस ग्रंथ का इतना प्रचार होने लगा कि मजदूरो तक मे इसका पाठ लोकप्रिय हो गया तथा वे मुक्त भाव से इसका पाठ करने लगे। इस प्रकार जगन्नाथदास के भागवत ने इस क्षेत्र की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक एकता में बडा योगदान किया। आज भी यह ग्रथ उडीसा की जनता का प्रेरणा-स्रोत है। साथ ही उड़ीसा के सीमावर्ती क्षेत्रों में भी इसका प्रचार है। इस ग्रथ के अनेक अंश कहावतों के रूप मे जनता मे प्रचलित है।

सोलहवी शताब्दी में उड़िया का भक्ति-साहित्य चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित हुआ तथा उड़िया मे असख्य प्रेम-गीत लिखे गए। भक्त चरणदास का 'मथुरा-मंगल' प्रसिद्ध ग्रथ है जिसमे कवि ने कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियों के वियोग-प्रसग मे भक्ति का विवेचन किया है। विवेचन का आधार 'श्रीमद्‌भागवत' है। उद्धव-संवाद बड़ी सशक्त तथा मोहक भाषा मे लिखा गया है। ब्रज-भाषा के कवियो की भाँति भक्त चरणदास ने भी गोपियो के प्रेम की ही विजय दिखाई है।

पंजाबी

पंजाबी का वैष्णव साहित्य बहुत कुछ हिन्दी मे ही लिखा गया, इसलिए उसका भागवतानुसारी साहित्य ब्रजभाषा में निबद्ध होने के कारण हिन्दी के अन्तर्गत ही आता है, चाहे वह गुरुमुखी लिपि मे हो अथवा देवनागरी लिपि में। गुरुमुखी लिपि के आविष्कर्त्ता गुरु अङ्गददेव जी थे। गुरुमुखी लिपि का आविष्कार होने के अनन्तर भी पजाब मे देवनागरी लिपि का प्रचार रहा। यह बात अवश्य है कि पंजाब मे जो हिन्दी के साहित्यकार हुए उनकी भाषा में काफी पंजाबीपन रहा है। पंजाबी साहित्य के इतिहास को सामान्यरूप से तीन कालों मे बाँटा गया है। पहला काल आदिकाल है जिसकी सीमा संवत् १००० से १५०० तक मानी गयी है। दूसरा काल मिश्रित काल के नाम से अभिहित किया गया जिसकी सीमा स० १५०१ से स० १९०० तक है। तीसरा काल आधुनिक काल के नाम से सं० १९०१ से आज तक का है। हमारा विषय द्वितीय काल की सीमा मे पड़ता है। प्रसिद्ध गीतिकार जयदेव को पंजाबी के साहित्यकार पजाबी मानते हैं। जयदेव १२ वी शताब्दी के कवि हैं। जयदेव के सम्बन्ध मे एक किम्वदन्ती है कि उनके प्रपितामह पण्डित गिरिधारीलालजी एक मन्दिर मे पुजारी थे तथा उन्होने पुत्रोत्पत्ति के निमित्त श्रीमद्‌भागवत का पारायण किया था। इस किंवदन्ती से यह संकेत अवश्य मिलता है कि ११ वीं सदी मे भी पंजाब में श्रीमद्‌भागवत की काफी मान्यता थी।

आदिकाल से ही पंजाब राजनीतिक क्रान्तियों का केन्द्र रहा है तथा धार्मिक दृष्टि से भी वहाँ अनेक धर्म तथा सम्प्रदाय पल्लवित होते रहे हैं। आदिकाल मे पंजाब मे कोई उल्लेखनीय भक्ति-ग्रन्थ नही लिखा गया। मिश्रितकाल मे प्रधानता सिख साहित्य की रही। बात यह है कि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का पंजाब पर प्रभाव बाद मे पड़ा। इसीलिए वहाँ का सगुण भक्ति-साहित्य १७ वी शताब्दी के बाद का है। १७ वी और १९ वी शताब्दी के बीच

हमें कृष्णभक्ति शाखा के अनेक ग्रंथ मिलते है जिन पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है कृष्णलीला से सम्बंध रखने वाले कई मंगलकाव्य भी लिखे गये हैं। इस युग मे महाभारत के आधार पर अनेक काव्य लिखे गये।

भागवत के दशम स्कंध के आधार पर पंजाब मे कई रचनाएँ हुईं परन्तु उनकी भाषा ब्रजभाषा ही है। इसलिए यहाँ उनका उल्लेख आवश्यक प्रतीत नही होता है।

भारतीय भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्य का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भारतीय धार्मिक चेतना सदा एक सांस्कृतिक तथा रागात्मक एकता की ओर अग्रसर रही है। चौदहवी शताब्दी के अन्त तक लगभग सभी भारतीय भाषाएँ विकसित हो चुकी थी। भारतीय मनीषियो के सामने अब तीन आदर्श उपस्थित थे–(१) प्राचीन भारतीय धर्म-साधना। (२) नाथों और सिद्धों का क्रान्तिकारी स्वर और (३) मुस्लिम धर्म और संस्कृति के तत्त्व। हम पहले कह चुके हैं कि दक्षिण के आलवार भक्तों की लोकप्रियता के भय से भारतीय धर्म-शास्त्र मे वैष्णव भक्ति का स्वरूप प्रेम के परिधान मे उपस्थित हो रहा था। मुस्लिम धर्म की अपेक्षा सूफियो की प्रेम-पद्धति से इसे और भी बल मिला। नाथ-सम्प्रदाय आचार की कटुता के कारण जनता को अग्राह्य हो चुका था। साहित्य चेतना प्रेम का संदेश चाहती थी जो उसे श्रीमद्भागवत से प्राप्त हुआ। यही कारण है कि पन्द्रहवी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी तक का भारतीय भाषाओं का सम्पूर्ण साहित्य प्रेम के रंग मे रँगा हुआ है। मध्ययुगीन धर्म-साधना का यही मूलस्वर है तथा यही वह संगम-स्थल है जहाँ भारतीय तथा अभारतीय संस्कृतियों का समन्वय हुआ। इस समन्वय के फलस्वरूप जिस साहित्य की सर्जना हुई वह वैष्णव साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। सामान्य रूप से अवतारवाद इस साहित्य का मूलस्वर है। दक्षिण की भाषाओं मे यह भावना अधिक प्रबल रही या यों कहना चाहिए कि इस नवीन विधा को विशेष बल दक्षिण से ही मिला।

मध्ययुगीन भाषाओं के साहित्य के अध्ययन से यह बात सहज ही हृदयंगम हो जाती है कि भाषाओं के कारण साहित्य परिधान चाहे जैसा भी रहा हो, उसमे धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता सर्वत्र उपलब्ध होती है। वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रेम तथा आनन्द भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व हैं और इसीलिए उसमे अन्य सभी विशिष्ट संस्कृतियो के विशिष्ट तत्त्वो को आत्मसात् करने की अपूर्व क्षमता है। प्रेम तथा शृङ्गार मानव की मौलिक वृत्तियाँ हैं. उनके परिष्कार तथा उदात्तीकरण का जैसा प्रयास भारत के मध्ययुगीन साहित्य मे हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। एक बात और भी लक्ष्य करने की यह है कि साहित्य ने प्रेम और शृङ्गार को लोकप्रिय, मधुर और आकर्षक बनाने के लिए संगीत का आश्रय लिया। इसीलिए संगीत और काव्य का जैसा सुन्दर मणि-कांचन योग मध्ययुग मे हुआ वैसा और किसी भी काल में नही हो सका। एक प्रकार से वह संगीत के विकास का युग था।

उपसंहार

भारतीय वाङमय मे श्रीमद्भागवत के आविर्भाव को निःसन्देह एक चमत्कार समझना चाहिए। उसकी रचना कब और कहा हुई ? यह विषय आलोचको तथा इतिहासकारों के लिए उपादेय हो सकते हैं, सामान्य सहृदय पाठक के लिए तो श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य ही महत्त्वपूर्ण है। महाभारत हिन्दू धर्म तथा इतिहास का विश्वकोश कहा जाता है परन्तु धर्म-साधना के स्तर पर उसमे कोई समन्वय का प्रयास दृष्टिगोचर नहीं होता। महाभारत के अंश श्रीमद्भागवद्गीता में भी यह प्रयास किया गया था परन्तु उसे हम विकसित सूत्र-शैली में लिखा हुआ एक स्वतंत्र ग्रंथ ही मानते हैं। धर्म के तीनों काण्ड-ज्ञान, कर्म तथा उपासना-उसमे प्रतिपादित तो अवश्य हुए हैं परन्तु गीताकार ने उनका विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया है। श्रीमद्भागवद्गीता के पश्चात् धर्म के दार्शनिक पक्षो का समन्वय ब्रह्मसूत्रो मे प्रस्तुत किया गया परन्तु ब्रह्मसूत्रो मे मीमांसा का स्वरूप विधानात्मक न होकर निवारणात्मक ही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि दर्शन-साहित्य की परम्परा मे ब्रह्मसूत्रो का विशेष स्थान है तथा श्रुतिवादी मतो में उनकी मान्यता भी है पर सूत्रकार का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मकारणवाद की स्थापना ही है। सूत्रकार श्रुतिप्रतिपादित सिद्धान्तों को एक समन्वित वेदान्त दर्शन के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। ब्रह्मसूत्रो के दो भाग हे—प्रथम भाग में सूत्रकार ने तत्त्व-मीमांसा प्रस्तुत की है तथा द्वितीय भाग मे आचार-मीमांसा। धर्म के दो ही पक्ष माने जाते हैं—तत्त्वनिरूपण तथा आचार-प्रतिपादन। आचार प्रतिपादन तत्त्व निरूपण का ही व्यावहारिक पक्ष है। ब्रह्मसूत्रों पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं। परन्तु मेरी दृष्टि मे वे सब एकांगी ही है। शंकराचार्य से पहले कई भाष्यकारो का उल्लेख शांकरभाष्य तथा श्रीभाष्य मे मिलता है परन्तु सबसे पहला क्रांतिकारी भाष्य शांकरभाष्य ही था। शंकराचार्य ने परमोच्च सत्ता को निर्विशेष मानकर तत्त्व मीमांसा की प्रतिष्ठा तो की पर आचारमीमांसा को दुर्बल कर दिया। श्रुति, स्मृति विहित सामान्य आचार भी उस तत्त्वमीमांसा के आगे गौण पड गये। बौद्ध मत के शून्यवाद को तो शांकरभाष्य से अवश्य ठेस पहुंची परन्तु वह जन-साधारण के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत न कर सका। वह बौद्धिक वैभव की वस्तु बनकर दार्शनिक पण्डितों तक सीमित रह गया। जनता की क्रांतिकारी प्रवृत्तियो को शांकरभाष्य मे प्रश्रय प्राप्त न हो सका। इस रिक्त स्थान की पूर्ति भागवत महापुराण ने की। उसकी रचना चाहे जब भी हुई हो, उसका प्रकाश-पुञ्ज दसवीं शताब्दी से ही विकीर्ण होना प्रारम्भ हुआ है। भागवत पुराण मे ब्रह्म-सूत्रों की तत्त्व-मीमांसा के साथ आचारमीमांसा पर विशेष बल दिया गया। इसमे धर्म की सभी प्राचीन परम्पराओं से अलग एक क्रान्तिकारी धार्मिक परम्परा की स्थापना हुई है तथा धर्म के सम्बन्ध मे एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। वैष्णव भाष्यो मे भागवतकार को ब्रह्मसूत्रो के भाष्यकार के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। भागवत पुराण का प्रारम्भ ही ब्रह्मसूत्र के द्वितीय सूत्र से हुआ है तथा समाप्ति 'हरिम् परम्' से हुई है जिसमे यह ध्वनि निकलती है कि ब्रह्मसूत्रों का प्रतिपाद्य 'परात्पर तत्त्व' 'हरि अर्थात् श्रीकृष्ण हैं। धर्म की व्याख्या करते हुए भागवतकार ने भगवान् की उपासना को निष्प्रयोजन तथा अहैतुक कहा है

जिसमे किसी प्रकार का राग-द्वेष या भेद भाव नही है धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसकी प्राप्ति विकृतियो के निराकरण से ही सम्भव है बाह्य विकृतिया जब नष्ट होजाती है तब धर्म की सिद्धि होती है। इसीलिए धर्म का यह रूप व्यक्तिगत तथा एकान्तिक है। श्रीमद्-भागवत इसी धर्म भावना का रसार्णव है—

धर्म. प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणा सतां, वेद्य वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्र योन्मूलनम् । श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वर:, सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभि' शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसयुतम् ।
'पिबत भागवतं रसमालय मुहुरहो रसिका भुवि भावुका' ।।
(श्रीमद्भागवत १–१–२–३)

उपर्युक्त तृतीय श्लोक में भागवतकार ने निगम से आगे की परम्परा का सकेत किया है, जो निगमानुसारी होते हुए भी अमृतद्रव संयुत तथा रसपूर्ण है। मै समझता हूँ कि भागवतकार का यह संकेत आगमों की ओर है। धर्म के आचार-पक्ष के महत्त्व को भागवतकार ने प्रथम स्कंध के द्वितीय अध्याय मे और भी स्पष्ट कर दिया है तथा अहेतुकी तथा अप्रतिहत भक्ति को ही धर्म का श्रेष्ठ रूप बताया है। भगवान् के लिए 'अधोक्षज' विशेषण का प्रयोग कर भागवतकार ने स्पष्ट कर दिया है कि धर्म इच्छाओ की पूर्ति नहीं, बल्कि इच्छाओं की परिष्कृति का नाम है। श्रीमद्भागवद्गीता मे प्रतिपादित धर्म की ही यह व्याख्या है जो धर्म को श्रुति विहित कर्म से अलग करती है।

भागवतकार ने अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करते हुए प्रथम अध्याय के पहले ही श्लोक मे भगवान् को परम सत्य बताया है—"सत्यम् परम्धीमहि"। सत्य का साक्षात्कार धर्म की सिद्धि है। सत्य यथार्थ होता है, उस सत्य के प्रसार जगत् को उसी रूप मे ग्रहण किया किया जाना चाहिए। भागवतकार यहीं से जगन्मिथ्या के सिद्धान्त का प्रत्याख्यान प्रारम्भ कर देता है। भागवत के द्वितीय अध्याय के ग्यारहवे श्लोकमे इस सिद्धान्त का और भी स्पष्टी-करण हो जाता है—

''वदन्ति तत्तत्त्व विदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।
(श्रीमद्० १–२–११)

इन तीन नामों मे भागवतकार को इष्ट है भगवान् जिसका स्पष्टीकरण उसने आगे के श्लोकों में कर दिया है तथा भगवान् को 'सात्वतापति': कहकर उसका वासुदेव कृष्ण से अभेद स्थापित कर दिया है।

भागवतपुराण में दर्शन के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वे समन्वयात्मक तथा मौलिक हैं। सांख्यदर्शन की सभी शाखाओ का ही उसमें समाहार नहीं हुआ, अन्य दर्शनो के सिद्धान्त भी उसमें खोजे जा सकते हैं। विभिन्न धर्म सम्प्रदाओं के आचार पक्षों का भी भागवत में समावेश हुआ है। हमें भागवत में एक समन्वित धर्म भावना के दर्शन होते है तथा उसमें सभी दर्शनों तथा धर्ममार्गों में पत करने का सफल प्रयास किया

श्रीमद्भागवत में जिस तत्त्व पर अधिक बल दिया गया है, वह है भगवान् की शक्ति अथवा माया। भगवान् स्वयं अरूप तथा चित् स्वरूप है तथा अपनी त्रिगुणमयी माया से वह सृष्टि की रचना करता है। उस शक्ति अथवा माया के तीन रूप है—अन्तरंग, वहिरंग तथा कृतित्व। अन्तरंग शक्ति के भी तीन रूप है—ह्लादिनी सन्धिनी और संवित्। इसी त्रिरूपा अन्तरंग शक्ति को चित् शक्ति और आत्ममाया भी कहते हैं जबकि, बहिरंग शक्ति तटस्थ शक्ति कहलाती है। यह आत्म-माया सदसद् रूपा है। भागवतकार ने इसी माया को केन्द्रीभूत करके सभी धर्म-साधनाओं तथा दार्शनिक मान्यताओं का समन्वय प्रस्तुत किया है।

अवतार-वाद पुराणों की विशेषता है। यह निश्चित रूप से तन्त्रों का प्रभाव है। तन्त्र-साहित्य क्रान्तिकारी जनता का साहित्य रहा है। यही कारण है कि भारतीय धर्म-साधना में शक्ति का समावेश बहुत प्राचीनकाल से हो गया था। वैदिक-साहित्य के उत्तर काल में शक्ति का रूप खोजा जा सकता है। महाभारत में कीर्ति, लक्ष्मी, श्रद्धा, क्रिया और बुद्धि आदि शक्ति के ही स्वरूप हैं। तन्त्र-साहित्य में शक्ति उपासना को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक-युग में शक्ति उपासना का प्राबल्य तन्त्रों के प्रभाव के कारण ही है। प्रत्येक पुराण में इष्ट के साथ किसी न किसी शक्ति का योग किया गया है। यह शक्ति-पूजा शिव और पार्वती के रूप में ही पहले अधिक प्रचलित हुई। ऐसा लगता है कि शिव और पार्वती की लीलाओं के आधार पर ही गोपी-कृष्ण की लीलाओं का इतना अधिक विस्तार हुआ। तन्त्रागमों में युगल उपासना का ही विस्तार से विवेचन मिलता है तथा उनमें युगल उपासना के माध्यम से वैदिक-विधि-विधानों को सरल तथा लोक-प्रिय बनाने का प्रयास किया गया है। पुराण-साहित्य ,आगमों की भाँति ही धर्म-साधना को सरल तथा जन-प्रिय बनाने में प्रयास करता दीख पड़ता है। वैदिक-यज्ञ तथा औपनिषदिक-ज्ञान-प्राप्ति के स्थान पर जनता के सामान्य विश्वासों को महत्त्व देकर उपासना-पद्धति में आमूल-चूल परिवर्तन किये गये। इसीलिए इस नवीन उपासना-पद्धति में अनेक आर्य तथा अनार्य देवी देवताओं की अवतारणा हुई। शायद इसीलिए प्रारम्भ में पुराणों को अवैदिक कहा गया है। पद्मपुराण में तो स्पष्ट ही भक्ति को अवैदिक घोषित किया गया है—'उत्पन्ना द्रविडे साहं कर्णाटे वृद्धिमागता'।

एक बात लक्ष्य करने की यह है कि पुराणों का दृष्टिकोण समन्वयकारी रहा है। नवीन धर्म-साधना का आर्यीकरण करने का प्रयास पुराणों में स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। शायद इसीलिए पुराणों का नैतिक स्वर ऊँचा रहा है। तंत्रों में यह बात नहीं मिलती। वे सामान्यतः यथार्थ भूमि पर ही रहे। परन्तु तंत्र-साधना को सभी सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप में अपनाया है। ऐसा लगता है कि जिस प्रकार पुराणों की रचना बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त तथा वैष्णव सभी सम्प्रदायों में हुई, उसी प्रकार तन्त्र-रचना भी सभी सम्प्रदायों का आवश्यक अंग माना गया। जनता के निचले स्तर का प्रतिनिधित्व करने में बौद्धतांत्रिक साधना सबसे अग्रणी थी। इस बौद्धतांत्रिक-साधना से पाञ्चरात्र-तांत्रिक साधना बहुत अधिक प्रभावित हुई। मध्ययुग में यह तंत्र-साधना सम्पूर्ण भारतीय धर्म-साधना पर छाई हुई सी लगती है। एक बड़ी विचित्र बात यह है कि बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त तथा वैष्णव सभी तन्त्रों में समान तत्त्व मिलते हैं। कुछ स्थानीय परम्पराओं तथा देवी, देवताओं के कारण कुछ भेद अवश्य हो गया है क्योंकि निम्न स्तर पर तन्त्र-साहित्य जनता का साहित्य रहा है और उसकी

धार्मिक साधना जनता की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है उस में सैकड़ों परम्पराओं संस्कृतियों तथा धार्मिक साधनाओं का समावेश है साथ ही उसमें उच्च भावनाएं भी कम नहीं है।

हमने इस ग्रन्थ में यह बात कई बार स्पष्ट की है कि मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन में दक्षिण के आचार्यों का सबसे अधिक हाथ रहा है। यामुनाचार्य के प्रशिष्य रामानुजाचार्य सबसे पहले आचार्य थे जिन्होंने भक्ति को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास किया था। जनता की आवाज़ को पहिचान कर स्वयं यामुनाचार्य ने विष्णु के साथ लक्ष्मी शक्ति को स्वीकार करके इस मान्यता पर मुहर लगा दी। दक्षिण में आलवार भक्तों की लोक-प्रियता बढ़ रही रही थी। तन्त्र साहित्य की भांति उनकी भक्ति-साधना में प्रेम और सौन्दर्य का पक्ष ही प्रबल था। इसलिए दक्षिण के आचार्यों ने भक्ति के क्षेत्र मे इन दोनों तत्त्वों का मुक्त-भाव से समावेश किया तथा जाति-पाँति के भेद-भाव को अमान्य घोषित किया। यामुनाचार्य ने 'सिद्धि-त्रय', 'आगम-प्रामाण्य' तथा 'गीतार्थ सग्रह रक्षा' में इस नवीन भक्ति-भावना की व्याख्या की है। परन्तु ब्रह्मसूत्रों द्वारा सगति के अभाव मे वह भक्ति-भावना पंडितों को मान्य नहीं हो सकती थी। इस अभाव की पूर्ति रामानुजाचार्य ने अपने 'श्रीभाष्य' द्वारा की। 'श्रीभाष्य' मे यामुनाचार्य के ग्रन्थों का पूरा उपयोग किया गया है। ब्रह्म सूत्रों का यह पहला वैष्णव-भाष्य है। श्री सम्प्रदाय का व्यावहारिक-पक्ष आलवारों की भक्ति-पद्धति से बहुत प्रभावित हुआ है। रामानुजाचार्य ने अपनी अलौकिक प्रतिभा से ब्रह्मसूत्रों की व्याख्या अपने सिद्धान्तों के अनुरूप की तथा शंकर, भास्कर तथा यादवप्रकाश के सिद्धान्तों का निराकरण किया तथा जगत् को सत्य सिद्ध कर ब्रह्म के सविशेषत्व रूप का प्रतिपादन किया। श्रीमद्भागवत में जिन दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन हुआ वे प्राय. सभी वैष्णव-भाष्यों में समान है। मुख्य रूप में ये सिद्धान्त निम्नलिखित है—

१—जगत् का सत्यत्व, सत्योपादानकत्व। २—जीव का ज्ञानस्वरूपत्व, नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ब्रह्मावश्यत्व तथा बहुत्व। ३—ब्रह्म का परमार्थतः सविशेषत्व, निर्दोषत्व, परमेश्वरत्व, जगत्कर्तृत्व, सर्वव्यापकत्व सर्वान्तर्यामित्व, उपास्यत्व तथा सर्वकल्याण-गुण सम्पन्नत्व आदि। ४—भक्ति का महत्व तथा उसका साध्यत्व। ५—उपाधि का अस्वीकार ६—माया का ब्रह्म की शक्ति के रूप मे स्वीकरण, तथा ७—कार्य-कारण सम्बन्ध में परिणाम-वाद का स्वीकार।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का सकेत भागवतकार ने प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय मे ही कर दिया है:—

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया। सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभुः ॥
तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव। अन्तःप्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥
यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु। नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥
असौ गुणमयैर्भावैर्भूत सूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः। स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान्।
भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः। लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥

(श्री १ २ १० ३४)

यह नहीं कहा जा सकता कि रामानुजाचार्य ने श्रीमद्भागवत पुराण का स्पष्ट विवेचन अपने ग्रन्थों में क्यों उपयोगी नहीं समझा ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं जिनका संकेत हमने भागवत के तिथि-निर्णय प्रकरण में किया है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि ब्रह्मसूत्रों की नवीन व्याख्या के अनुसार भागवत पुराण ही सबसे पहला व्यावहारिक तथा प्रामाणिक ग्रन्थ है जिसके द्वारा ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित पर ब्रह्म स्वरूप नैष्कर्म्य का आविष्कार हुआ।

श्रीमद्भागवत में भक्ति तथा लीला इन्हीं दो तत्वों पर विशेष बल दिया गया है। इसके आदि, मध्य और अन्त में भक्ति का ही प्रतिपादन हुआ है। भक्ति और लीला वास्तव में अनन्योन्याश्रित हैं इसीलिए भागवतकार ने भगवान् को 'लीलावतारानुरत' कहा है। भागवत में भक्ति के सभी रूपों में अविरोध स्थापित करने का प्रयास किया गया है तथा प्रेमलीलाओं का बड़े विस्तार से वर्णन हुआ है। भागवत के उपाख्यानों स्तुतियों तथा भक्ति-प्रसंगों के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें सभी मतों एवं सम्प्रदायों का समावेश है। तन्त्रागमों की शृङ्गार परक साधनाओं को अलौकिक लीलाओं का रूप देकर भागवतकार ने परिष्कृत किया है। एक बात जो भागवतकार स्पष्ट रूप से नहीं कह सका वह है, प्रेममयी भगवान् की एक शक्ति। यों तो ब्रज की अनेक गोपियाँ कृष्ण की प्रेमपात्री थीं, परन्तु भगवान् की शक्ति के रूप में उन्हें ग्रहण नहीं किया जा सकता। इसीलिए भागवतानुयायी वैष्णव सम्प्रदायों ने राधारूप में इस शक्ति का विशदीकरण किया। यह बात दूसरी है कि उनके प्रवर्तकों तथा आचार्यों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भागवत में भी राधा को खोज लिया। यह बात निर्विवाद है कि भक्ति के व्यवहार पक्ष की आधार-शिला सबसे पहले भागवतकार ने ही रखी क्योंकि प्रेमलीलाओं का जितना विस्तार भागवत पुराण में है उतना अन्य पुराणों में नहीं। फर्कुंअर ने भागवत के प्रेम लीलापरक पदों के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"A careful study of those passages will convince the student that they are expressions of a living religious experience."

(J. N. Farquhar, Outlines of the Religious Literature of India. P. 229)

और वे आगे कहते हैं— 'Bhakti in this work is a surging emotion which chokes the speech, makes the tears flow and the hair thrill with pleasurable excitement, and often leads to hysterical laughing and weeping by turns, to sudden fainting fits and to long trances of unconsciousness.'

(J. N. Farquhar, Outlines of the Religions Literature of India, P, 230)

फर्कुंअर ने भागवत पुराण को अन्य पुराणों से अधिक महत्त्व इसलिए प्रदान किया है कि इसमें उस लौकिक प्रेम और शृङ्गार का समावेश है जो और किसी पुराण में नहीं है लौकिक प्रेम और शृङ्गार का यह तत्त्व भक्ति का साधक है, बाधक नहीं—

'Meditation on these scenes is expected to produce that passionate Bhakti which is regarded as the highest religious experience

Ibid. Pp 230-231

भागवत के आलोचक कुछ भी कहे हमारी यह निश्चित धारणा है कि भागवतकार ने पहली बार लीलाओ के माध्यम से प्रेम को सात्विक तथा विशुद्ध रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। धर्म के दो पक्ष हैं—श्रद्धा और विश्वास। हम श्रद्धा को ज्ञान मानते हैं और विश्वास को विज्ञान; विश्वास प्रेम का ही दूसरा नाम है इसलिए प्रेम धर्म का विज्ञान है, लीला इस विज्ञान की प्रयोगशाला है जिसमे प्रेम का क्रमिक विकास होता है तथा सस्कारो का परिष्कार होता है। बिना वासनाओ के परिष्कार के प्रेम की सिद्धि सम्भव नहीं है। रासपञ्चाध्यायी के अन्त में राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से यही प्रश्न किया है कि सर्वशक्तिमान् तथा लोककल्याणकारी भगवान् कृष्ण ने परस्त्री स्पर्श का पाप क्यो किया—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च। अवतीर्णो हि भगवानशेन जगदीश्वरः॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिस्पर्शनम्॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवानु वै जुगुप्सितम्। किमभिप्राय एतं नः सशयं छिन्धि सुव्रत॥
(श्रीमद्० १०।३३।२७-२९)

महर्षि शुकदेवजी ने इस प्रश्न का बडे स्पष्ट शब्दों मे उत्तर दे दिया कि भगवान् कृष्ण का आचरण सामान्य जनों के लिए अनुकरणीय नही हैं। वे सर्व समर्थ हैं। जो स्वयं निर्दोष है उसका दोषों से संपृक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता—

'तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।' (श्रीमद्० १०।३३।३०)

प्रेम के परिपाक की यह प्रक्रिया हमे किसी भी धर्म-सिद्धान्त में दुर्लभ है। विश्वधर्मों के संदर्भ मे इसे हम मानव-प्रेम का प्रतीक कह सकते हैं। मानव-प्रेम का ऐसा क्रमिक विकास अन्य किसी धर्म में नही मिलता। यह मन, बुद्धि और आत्मा के परिष्कार का साधन है।

सम्पूर्ण भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि में एकमात्र भागवत पुराण ही वैष्णवो का प्रेरणास्रोत रहा है। वैष्णव आचार्यों ने 'प्रस्थानत्रयी' की व्याख्या भागवतपुराण के सदर्भ मे की। अपने-अपने सम्प्रदायो के विशिष्ट सिद्धान्त भी उन्होंने भागवत मे खोज लिए। यही कारण है कि साम्प्रदायिक सिद्धान्तों में मतभेद होने पर भी सब वैष्णव सम्प्रदायों में भागवत-पुराण की समान मान्यता है। श्री सम्प्रदाय में विष्णु को परब्रह्मत्व रूप दिया गया था शायद इसीलिए उसमें तथा उसके उपजीवी सम्प्रदायों में स्पष्टरूप से भागवत की दुहाई आवश्यक नहीं समझी गयी वैसे सिद्धान्तरूप में उनकी भक्ति प्रक्रिया भागवतानुकूल ही है।

१२ वीं शताब्दी से आजतक श्रीमद्भागवत की लोकप्रियता बढ़ती ही रही है। भारत की सांस्कृतिक तथा धार्मिक एकता में जितना योगदान भागवत पुराण का है उतना अन्य किसी एक ग्रन्थ का नहीं। यही कारण है कि देश की सभी भाषाओं में इतना विशाल भागवतानुसारी साहित्य प्राप्त होता है।